शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

शोध अंक 24 | अक्टूबर-दिसंबर 2013 | 200 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय
दिल्ली एन॰सी॰आर॰
अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09952070700

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फ़ोन : 0124-4076565, 07838090237

डॉ॰ हरिशरण वर्मा
एफ-120, सेक्टर 10
डी॰एल॰एफ॰ (के॰एल॰ मेहता स्कूल के पास)
फरीदाबाद (हरियाणा)

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन :
व्यक्तिगत : चार हज़ार रुपए
संस्थागत : पाँच हज़ार रुपए
वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रुपए
यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डा॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
डॉ॰ आर॰पी॰ सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ॰प्र॰)
डॉ॰ अशोक चक्रधर, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
डॉ॰ हरिमोहन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, के॰एम॰मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ रामसजन पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
डॉ॰ दामोदर खड़से, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा॰)
डॉ॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
डॉ॰ पद्मा पाटिल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ नरेंद्रकिशोर पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
डॉ॰ बाबूराम, प्रोफ़ेसर, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र
डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, रीडर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ हरेराम पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ श्यामधर तिवारी, प्रोफ़ेसर हिं॰वि॰, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ सभापति मिश्र, पूर्व प्राचार्य, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ शाहबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ महेशचंद्र, रीडर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ संतोषकुमार गौड़, रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ घनश्याम अरोरा, पूर्व रीडर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)
डॉ॰ सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना॰ महा॰, मेरठ

आजीवन सदस्य

डॉ॰ रामानंद शर्मा
अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी॰जी॰) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलिज, साहिबाबाद
गाषियाबाद (उ॰प्र॰)

श्री हरिराम 'पथिक'
स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं॰ 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ वंदना सेमल्टे
टी॰एफ॰ 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाज़ियाबाद 201001

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल
147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अँग्रेज़ी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा॰)

डॉ॰ शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख़
(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको, अहमदनगर 414003
09850119687

डॉ॰ लियाक़त मियाँ भाई शेख़
अखिलेश नगर, प्लाट क्र॰ 11
नए बस स्टेंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा॰
09423933402

प्रो॰ शेख़ मुहम्मद शाकिर शेख़ बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ़ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा॰)
09423017017

डॉ॰ अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा॰) 414003
09822941330

प्रा॰ दत्तात्रय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं॰ 13
पाटील अली, ओतूर
तह॰ जुन्नर, ज़िला पुणे (महा॰) 412409
09860229544

डॉ॰ मजीद मुनीर शेख़
ग्राम व पो॰ साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह॰ अंबड
षिला जालना (महा॰) 431212
09765944586

श्री अरुणकुमार भगत
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्राकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा॰)

डॉ॰ भरत त्र्यंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो॰ व तह॰ अकोले
षिला अहमदनगर (महा॰) 422601
09423164521

डॉ॰ पोपट विट्ठल कोटमे
फ्लैट नं॰ 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा॰) 422006
09850760866

प्रा॰ अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दाते नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा॰)

डॉ॰ शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट, नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड,
नासिक (महा॰) 422013

डॉ॰ श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लाट क्र॰ 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफ़िस
नागपुर 440014 (महा॰)

डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा॰)
09822991516

प्रा॰ (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड
कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा॰)
09011449636

डॉ॰ एस॰एन॰ देवरे
प्लाट नं॰ 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा॰) 424002

डॉ॰ अर्चना वालिया
286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
पुराना माधव नगर, भारद्वाज गली,
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईंदास ए॰एस॰सी॰ सी॰से॰ स्कूल
पटेल चौक,
जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या
आर॰बी॰डी॰ महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग,
जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ॰ विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ॰ विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए,
गुड़गाँव (हरियाणा) 122001

डॉ॰ सुधारानी सिंह
सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ॰प्र॰)

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र
14/4 स्नेहलता गंज,
इंदौर 452003 (म॰प्र॰)

डॉ॰ स्मृति शुक्ला
ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड,
जबलपुर (म॰प्र॰)

डॉ॰ सुरेंद्र यादव
301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत),
इंदौर 452018

डॉ॰ प्रेमव्रत तिवारी
सरस्वती सदन, बेतियाहाता,
गोरखपुर (उ॰प्र॰)

प्रो॰ डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल
हिंदी विभाग,
एस॰एन॰डी॰टी॰ वुमन विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड,
पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री शारदा बी. जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र॰ 402
प्लाट नं॰ 26, सर्व क्र॰ 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
08805616654

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह. साक्री,
ज़िला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर, मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री,
ज़िला धुले 424304

प्रा. करुणा दत्तात्रय अहिरे
व्ही.यू.पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह॰ साक्री,
ज़िला धुले 424304

प्रा. डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील
मु.पो. मोराणे (प्र.ल.)
तह. ज़िला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार
मु. पो. जुनवणे,
तह. जि. धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ॰ संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीराम नगर, वाडीभोकर रोड,
देवपूर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागड़े
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
ज़िला नासिक (महा॰)

प्रा. डॉ॰ अश्फाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड,
धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ॰ महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास,
नंदुरबार 425412

डॉ॰ सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं॰ 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464

प्रा. डॉ॰ योगेश गोकुळ पाटिल
प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड,
देवपूर, धुले 424002

प्रा. डॉ॰ मंजू तरड़ेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,
कुमार नगर,
साक्री रोड, धुले 424001

प्रा. डॉ॰ चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा,
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ॰ देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड
अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ॰ कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

प्रा॰ डॉ॰ रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग, क॰वा॰वि॰ महाविद्यालय,
नवापुर, षिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ॰ रेखा वसंत पाटील
सीतामाई नगर, चालिसगाँव
जिला-जलगाँव (महा॰) 424101

प्राचार्य
विद्यावर्धिनी महाविद्यालय,
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट),
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

डॉ॰ पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार,
मुजफ़्फ़रनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं॰ 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं॰ 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं॰ 12, एस नं॰ 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058
08087612123

प्रा॰ शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304

डॉ॰ ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी॰एच॰एल॰ अपोलो हास्पिटल के सामने
ए॰बी॰ रोड,
इंदौर 452008 (म॰प्र॰)
09926300355

डॉ॰ चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09425944773

डॉ॰ वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09926477787

डॉ॰ पुष्पा शाक्य
110, सुंदर नगर मेन
सुकलिया, इंदौर (म॰प्र॰)
09827281203

सुश्री मीनल वार्वे
बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास,
शिवाजी नगर, जेल रोड,
नासिक रोड (महाराष्ट्र)

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Preumbakkam
Chennai-600100

प्रा॰ ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर
तहसील यावल (जलगाँव)

सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु॰पो॰ सावलदे, तहसील शिरपूर
ज़िला धुले (महा॰)

डॉ॰ सुचित्रा मलिक
37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
के 83 सी आशियाना
लखनऊ 226012
09415917170

प्राचार्य
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म॰प्र॰)

डॉ॰ चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी
इंदौर (म॰प्र॰) 452001

डॉ॰ जुबैदा हाशिम मुल्लाँ
बैतुल हाशमी, म॰नं॰ 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

प्रो॰ दीपक विश्वासराव पाटील
मुकाम पोस्ट सुन्दने
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
तहसील ज़िला धुले
घुलेवाडी, संगमनेर (महा॰) 424002
099923811609

डॉ॰ अनिता मधुकर अंतरे
मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो॰ लोनी बी के, तालुका रहाता,
ज़िला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
09970343766

डॉ॰ विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे
'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
ज़िला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
08888590156

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर
201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी
बड़ोदरा (गुजरात) 391740
09624501415

प्रो॰ अमानुल्लाह मो॰ शेख़
श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिंग ए, बिंग ए-201
आई॰टी॰आई॰ कालेज के पास
पो॰ मुकिन्दपुर, तह॰ नेवासा
ज़िला अहमदनगर (महा॰)

डॉ॰ राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि॰) 125053
मो॰ 09896789100

डॉ॰ उर्मिला मानसिंह गायकवाड
प्लॉट नं॰ 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग, फ्लैट नं॰ 303 रावेत
निकट डी-मार्ट, पुणे 412101
मो॰ 07620225839

डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
द्वारा श्री टी॰एम॰ धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी॰बी॰ टोली
गोंदिया (महा॰) 441614
मो॰ 07620042772

शोध दिशा

के आजीवन सदस्य बनकर शोध और साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य सहयोग दीजिए। आजीवन सदस्यों को पत्रिका के पहले छपे अंक बिना मूल्य भेंट किए जाते हैं।

जनसुलभ साहित्य माला

हिंदी साहित्य निकेतन ने जनसुलभ साहित्य माला के अंतर्गत निम्नलिखित पुस्तकों को प्रकाशित किया है। इनमें से प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल पचास रुपए है। 12 पुस्तकों का पूरा सैट मात्र 500 रुपए में।

कहानी

कमरा नंबर 103 / **सुधा ओम ढींगरा**

इमराना हाज़िर हो / **महेशचंद्र द्विवेदी**

कुत्तेवाले पापा / **डॉ॰ मीना अग्रवाल**

प्रेमचंद : कालजयी कहानियाँ / **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**

लघुकथाएँ मानव-जीवन की /
सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'

कहानियाँ अमेरिका से / **सं॰ इला प्रसाद**

व्यंग्य

दूध का धुला लोकतंत्र / **गोपाल चतुर्वेदी**

आदमी और कुत्ते की नाक / **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

सच का सामना / **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**

व्यंग्य-एकांकी

अफलातून की अकादमी / **डॉ॰ शिव शर्मा**

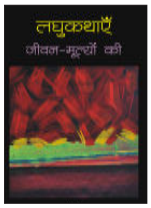

सिनेमा

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति / **नवलकिशोर शर्मा**

कविता

मान भी जा छुटकी / **गीतिका गोयल**

हास्य और व्यंग्य का स्वरूप

हँसना मानव का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण गुण है। साधारणत:, जिनके चेहरों पर मौत जैसी उदासी छाई रहती है, जो सदैव रोनी सूरत बनाए बैठे रहते हैं, धीरे-धीरे उनसे सामाजिकों का संपर्क कम होता चला जाता है। परंतु जो मनुष्य हास्य के कारण अपने वातावरण को जीवित बनाए रखते हैं, वे शीघ्र ही आस-पास के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

नि:संदेह, विनोदी मन की अभिव्यक्त मुद्रा के रूप में हास्य मानव की अक्षय निधि है। परंतु अचानक किसी हँसते हुए व्यक्ति से यह पूछा जाए कि हँसी क्या है, तो उसकी हँसी ही रूक जाए। क्योंकि हास्य को परिभाषित करना एक टेढ़ी खीर है।

हास्य का स्वरूप विवेचन करते हुए अनेक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं। परंतु 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्न:' की कहावत ही चरितार्थ हुई है।

हास्यविषयक भारतीय दृष्टिकोण की परख करते समय सर्वप्रथम भरत मुनि का दृष्टिकोण ही हमारे सामने आता है। आपने नाट्यशास्त्र के रस-प्रकरण में शृंगार रस को प्रमुखता प्रदान करते हुए हास्य को शृंगार का अनुकरण बताया है।[1] और विकृति को प्रधानता देते हुए हास्य की परिभाषा इस प्रकार दी है–

विपरीतालंकाररैर्विकृताचाराभिधानवैषैश्च,
विकृतैरर्थविशेषैर्हषतीति रस: स्मृतौ हास्य:।
विकृताचारैर्वाक्यैरंगविकारैश्च विकृतवैषैश्च,
हासयति जनं यस्मात्तस्माज्ज्ञेयौ रसो हास्य:। [2]

अर्थात् हास्य का उद्रेक विकृत अलंकार, विकृत आचार, विकृत अभिधान, विकृत वेश, विकृत आकार, विकृत वाणी आदि द्वारा होता है। ये विकृतियाँ अभिनेता में हों या वक्ता में या किसी अन्य में, यदि इनका संकेत या वर्णन मन में आनंद उत्पन्न करे तो हास्य रस की सफल सृष्टि माननी चाहिए।

हास्य के विवेचन में परवर्ती आचार्यों ने भी भरत का ही आधार ग्रहण किया। साहित्य दर्पण के तृतीय परिच्छेद में आचार्य विश्वनाथ ने कहा कि जहाँ विकृत वेशभूषा, रूप, वाणी, अंगभंगी आदि के देखने-सुनने से 'हास' स्थायी भाव की पुष्टि होती, वहाँ हास्य रस होता है। [3]

श्री रामचंद्र गुणाचंद्र ने भी अपने नाट्य दर्पण में विकृति को ही हास्य का मूल कारण बताया–

विकृताचार जल्पांगकल्पविस्मापनोद्भव:,
हास्यौऽस्याभिनयो नासास्पन्दश्रुजठरग्रहै:।[4]

दशरूपककार धनंजय ने विकृति को ही मान्यता देते हुए इतनी बात और जोड़ी कि आकृति, वाणी या वेश की विकृति अपनी भी हो सकती है और दूसरे की भी। उनके अनुसार अपनी

या दूसरे की विकृत आकृति, वाणी या वेश को आलंबन मानकर हास्य का पोषण होता है–

विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा,

हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः।[5]

इस दृष्टि से, हास्य रस विशेष रूप से विकृति-युक्त आलंबन के स्वरूप पर निर्भर है। संस्कृत की इसी विचारधारा को हिंदी के रीतिकालीन आचार्य कवियों ने भी ग्रहण किया। धीरे-धीरे पाश्चात्य प्रभाव से हास्य के स्वरूप में परिवर्तन आया और साथ ही हास्य की परिभाषाओं में भी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हास्य रस के भाव 'हास' को सुखात्मक बताया और उसकी विस्तृत व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की–

'हास यों तो केवल मन का एक वेग मात्र है, पर भावों में जिस हास को स्थान दिया गया है, वह ऐसा है, जिसके आश्रयगत होने पर श्रोता या दर्शक को भी रस रूप हास की अनुभूति होती है। वह आलंबन प्रधान होता है। यों ही प्रसन्नता के कारण–जैसे शत्रु के प्रति अपनी सफलता–जो हँसी आती है वह भाव की कोटि में नहीं, वह मन को उमंग या शरीर का व्यापार मात्र है, उसके प्रदर्शन से श्रोता या दर्शक के हृदय में हास की अनुभूति नहीं हो सकती।' [6]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय विद्वानों ने यह स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया कि हास्य केवल विकृत वेश और वाणी का प्रदर्शन नहीं, कुछ और भी है।

डॉ॰ एस॰पी॰ खत्री ने हास्य की आत्मा की चर्चा करते हुए कहा कि इसका संबंध अविच्छिन्न रूप से मानवी विचारधाराओं से हैं, 'हास्य की विशिष्ट आत्मा का विचरण क्षेत्र मानवी विहार क्षेत्र रहा है और इसी क्षेत्र में वह फले फूलेगी। आगे चलकर डॉ॰ खत्री ने बताया है, 'जब कभी हमारे सम्मुख शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक, सामाजिक तथा नैतिक पीड़ा रहित कार्य अथवा घटना अपने साधारण और अभिमत स्तर से गिरती हुई दिखाई देगी और जिसके फलस्वरूप किसी प्रकार की क्षति न होगी, हास्य के आविर्भाव में सहायक होगी। [7]

इसी प्रकार श्री जी॰पी॰ श्रीवास्तव के अनुसार, 'जब कोई व्यक्ति साधारण मनुष्यत्व के दर्जे से अपने कर्मों द्वारा गिर जाता है, तब उसका यह पतन उसे हमारी दृष्टि में नक्कू बनाकर उपहास योग्य कर देता है। क्योंकि ईश्वर ने मानवीय स्वभाव ऐसा बना रखा है कि वह अपने से किसी को भिन्न पाते ही उस पर ठिठोली करता है। इस हँसने वाली भिन्नता की उत्पत्ति पतन से होती है, जिसका कारण गुणों की कमी या अवगुणों की ज्यादती है। 8

इस प्रकार भारतीय दृष्टि हास्य के उद्रेक में आलंबन की विकृति पर निर्भर करती है।

विदेशी विद्वानों में हास्य के विवेचन का सर्वप्रथम प्रयास अरस्तू (384-322 बी॰सी॰) का है। उन्होंने हास्य को असंगति के रूप में परिभाषित किया है। 9 उनके पश्चात् अनेक विद्वानों ने मनोविज्ञान का आश्रय ग्रहण कर हास्य के मूल कारणों की खोज की, जिनके आधार पर अनेक सिद्धांतों ने जन्म लिया, परंतु इनमें कोई भी सिद्धांत अपने में पूर्ण नहीं है। हाँ, हाँ, वे एक-दूसरे के पूरक अवश्य हैं।

उत्कर्ष का सिद्धांत :

प्रायः लोगों की असफलता और उनकी कमियों पर, उन्हें किसी प्रकार की अलाभकर

स्थिति में पाकर अथवा उन्हें किसी दुर्भाग्य का सामना करते देखकर हम हँसते हैं। हास्य से उत्पन्न होने वाला यह आनंद हमारा उत्कर्ष की भावनाओं से उद्‌भूत होता है। 10 इस 'अनायास उत्कर्ष के सिद्धांत' का प्रतिपादन हास (1588-1679 ई॰) ने किया। उनके अनुसार अपने में अचानक किसी उत्कर्ष को देखकर उसे पूर्व की दुर्बलताओं की समता में रखकर जो उत्कर्ष व्यंजक उल्लास होता है, वही हास्य का कारण है। हाब्स का विचार है कि हमें हँसी इसलिए आती है, क्योंकि हमारे मन में दूसरों की अपेक्षा इस समय श्रेष्ठ हैं। मूर्ख को देखकर इसलिए हँसी नहीं आती कि वह मूर्ख है वरन् इसलिए कि उसकी अपेक्षा हम अधिक बुद्धिमान हैं।

हाब्स के सिद्धांत को आधार मानकर अलैक्जेंडर बैन (1818-1903 ई॰) ने यह तर्क पूर्ण विचार रखा कि हास्य का आविर्भाव तभी होगा जब कोई ऐसा व्यक्ति हीनता अथवा अधोगति को प्राप्त हो जो स्वयं कोई गर्वपूर्ण भावभंगी बनाए हुए हो। परंतु साथ ही वह किसी अन्य तीव्र भावना को प्रसार न करे। [11]

असंगति का सिद्धांत :

वास्तव में पतन और हीनता के इस सिद्धांत में सभी प्रकार के हास्य को समाहित करने वाली व्यापकता नहीं है अनेक हास्य लेखकों ने हास्य के लिए वैषम्य और असंगति की सहायता प्राप्त की है। उनके विचार से पतन अथवा हीनता नहीं वरन् असंगति हास्य का प्रधान तत्त्व है। इमैन्युयैल कांट (सन् 1724-1804 ई॰) ने इस सिद्धांत की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जब कोई अपेक्षायुक्त कल्पना अचानक अस्तित्व विहीन हो जाती है, उस समय होने वाली मनोविकार जन्य क्रिया ही हास्य है। [12]

बैन जानसन (1573-1637 ई॰), हैजलिट (1778-1830 ई॰), आर्थन शॉपेन हावर (1788-1860 ई॰), लीकॉक (1869-1944 ई॰) ने भी हास्य के लिए असंगति पर अधिक बल दिया। इनके अनुसार चित्र, चरित्र, भाव, विचार अथ्ज्ञवा भाषा के अवयवों के वैषम्य से हास्य का जन्म होता है। किसी वस्तु की सत्ता में एक असंतुलन (Disharmony in the setting of a thing) हमें हँसाता है।

असंगति का विचार करते ही इतना स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जिस वस्तु या व्यक्ति की असंगति पर हमें हँसी आती है उसका संतुलित रूप हमारे मस्तिष्क में अवश्य ही होगा। इसलिए किसी वस्तु को कैसा होना चाहिए और वह कैसी है इस बात में भेद करके हम हँसते हैं।

तनाव से मुक्ति का सिद्धांत :

इस सिद्धांत के अनुसार हास्य का मुख्य कारण न उत्कर्ष की भावना है और न असंगति की चिंता वरन् संघर्ष और नियंत्रण से मुक्ति की भावना है। इस प्रकार हास्य की उत्पत्ति तब होती है जब अचानक किसी अवरोध से हमें मुक्ति मिल जाती है। अधिकतर घोर परिश्रम तथा थकान के कार्य में लगे व्यक्ति उस समय अट्‌टहास कर उठते हैं जबकि उनकी परेशानी अचानक समाप्त हो जाती है। इस सिद्धांत को विकसित करने और प्रधानता प्रदान करने में सिगमंड फ्रायड (1856-1939 ई॰) की मनोवैज्ञानिक खोजों ने विशेष सहायता प्रदान की।

हम अपने मन की सभी प्रकार की वृत्तियों तथा अपने सभी आवेगों को समाज के बंधन के कारण रोके रखते हैं, विशेष रूप से इसलिए कि इनके प्रदर्शन करने पर समाज हमारा तिरस्कार

न करे। फ्रायड ने इन आंतरिक निषेधों को, जो हमें अपने बहुत से आवेगों को खुली छूट देने से रोकते हैं 'सेंसर' की संज्ञा दी है। उनके अनुसार हास्य सेंसर को ठगने का एक साधन है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक मैकडूगल (1871-1938 ई॰) का कहना है कि मनुष्य सहानुभूतिशील प्राणी है। तनिक-तनिक-सी बात पर वह दुखी हो उठता है। प्रकृति ने उसे दुख से बचाने के लिए हास्य की योजना की है। किसी ऐसे अनिष्ट से, जिस पर रोना हम व्यर्थ समझते हैं, हँसी का उद्रेक होता है। हम यह जानते हैं कि यदि हम नहीं हँसते तो यही अनिष्ट हमारे लिए कष्टप्रद सिद्ध होता। [13]

इस सिद्धांत के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि सभी प्रकार की हँसी का मूल कारण वेदना नहीं होता। समाज में वेदनाशून्य हास्य भी हो सकता है। इसलिए इस सिद्धांत को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। परंतु इतना निश्चित है कि इस सिद्धांत की पृष्ठभूमि में अनेक रोमांसवादी कवियों के भाव कार्य करते हैं। [14]

यांत्रिक क्रिया :

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विवेचित हास्य का प्रकरण फ्रांसीसी विद्वान वर्गसा के उल्लेख के बिना अधूरा रहेगा। वर्गसां (1859-1941 ई॰) ने हास्य को परिभाषा में बाँधने के स्थान पर इस बात की खोज की कि सहँसी क्यों आती है?' उनके अनुसार हास्य के आलंबन को समाज प्रिय (श्रद्धेय, श्रद्धाभाव समन्वित) नहीं होना चाहिए, हँसी उड़ाए जाने का उसे ज्ञान नहीं होना चाहिए एवं घटना, शब्दावली और पात्र में यांत्रिक क्रिया (Automatism) आवश्यक है। डॉ॰ गुलाबराय ने शारीरिक यांत्रिक क्रिया का एक सुंदर उदाहरण दिया है–

'फ़ोन पर एक पुलिस इंस्पेक्टर महोदय बात कर रहे थे। दूसरे छोर पर सुप्रिटेंडेंट साहब ने कहा कि मैं एस॰पी॰ बोल रहा हूँ, तुरंत इंस्पेक्टर साहब का हाथ ऊपर उठकर फौजी मुद्रा में हो गया। [15]

हम क्यों हँसते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में विभिन्न विद्वानों के मतों से इतना अवश्य ही स्पष्ट होता है कि हास्य के मूल में कहीं न कहीं असंगति और वैषम्य अवश्य विद्यमान है।

हास्य के विभिन्न भदोपभेदों में विनोद (ह्यूमर) और व्यंग्य (सैटार) दो भिन्न कोटि के भाव हैं, परंतु इनमें कहीं न कहीं संबंध भी है।

विनोद करुणासिक्त ह्रास है, सजलहास है, मुक्तहास है। इसमें आलोचना, उपहास तथा जुगुप्सा के लिए अवसर नहीं। यह हास्य हृदयहीनता का हास्य नहीं होता वरन् प्रहसनीय की दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति को हलकी-सी रेखा लिए रहता है। जहाँ हास्य में क्षमता रहती है, जिस पर हम हँसे वह हमारा प्रिय भी हो, ऐसा हास ही विनोद है। जार्ज मेरिडिथ ने लिखा है कि हास्यास्पद की हँसी उड़ाने तथा उससे प्रेम करने में संतुलन नहीं खोना चाहिए। जिसकी हँसी उड़ाई जाए, उसे प्रेम भी किया जाए। 16

विनोद का कोई निहित लक्ष्य नहीं। उसका उपयोग सामाजिक अवगुणों के संशोधन के लिए नहीं होता। यह केवल आत्म-निवेदन है। यह उस शिक्षक की भाँति नहीं, जो अपने विद्यार्थियों के सम्मुख प्रतिदिन नैतिकता के विज्ञय पर तर्कपूर्ण भाषण करता है और अनैतिक कार्यों को देखकर क्रोध करता है अथवा भर्त्सनापूर्ण शब्दों का प्रयोग करता है। श्रेष्ठ विनोद मैत्री

का पोषक और वैमनस्य का शोषक होगा। वास्तव में विनोद मानसिक आनंद का अमरकोष है।

व्यंग्य का स्वरूप विवेचन :

मैरिडिथ ने व्यंगय के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि यदि आप हास्यास्पद का इतना मजाक उड़ाते हैं कि उसमें आपकी दयालुता समाप्त हो जाए तो आपका हास्य व्यंग्य की कोटि में आ जाएगा। [17]

प्रो॰ जगदीश पांडेय ने व्यंग्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'जब हास्य विशेष आनंद या रंजन की भावना को छोड़कर प्रयोजननिष्ठ हो जाता है वहाँ वह उपहास (व्यंग्य) का मार्ग पकड़ लेता है। हास्य के आलंबन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा, या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़ने वाला हास्य उपहास कहलाता है। 18

इस प्रकार व्यंग्य किसी व्यक्ति, समाज, संस्था अथवा समूह की दुर्बलताओं तथा दुर्गुणों का उद्‌घाटन करता है, उन पर आक्षेप करता है। इसका लक्ष्य केवल हँसाना मात्र नहीं होता वरन इसका अभिप्राय किसी वस्तु का विरोध करना भी होता है।

डॉ॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य की प्रयोजन-निष्ठा को प्रकट करते हुए लिखा है कि, 'सच्चा व्यंग्यकार समाज की कुरीतियों को सही रूप में देखता है और अपने व्यंग्य बाण से उसे बेधता रहता है। उसका उद्‌देश्य समाज का परिशोधन होता है। वह व्यक्ति को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता, बल्कि उन छिछली मान्यताओं का पर्दाफ़ाश करता है, जिसमें औसत या उसके नीचे का मनुष्य उलझकर असत् आचरण से विरत होने के प्रलोभन का शिकार होता रहता। [19]

व्यंग्यकार प्राय: छिपकर प्रहार करता है अत: व्यंग्य करते समय वह सुरक्षित रहता है। उसके वाक्य से दुहरे अर्थ की प्रतीति होती है अत: वह आहत से यह कह सकता है कि मैं आप पर नहीं वरन् किसी अन्य पर प्रहार कर रहा हूँ। परंतु व्यंग्य ख़तरे से ख़ाली नहीं है। तनिक-सी देर में ही यह अश्लीलता की परिधि में आ सकता है और साधारण व्यवहार की सीमा का उल्लंघन कर सकता है।

साधारण रूप से व्यंग्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– एक विषाक्त और दूसरा मधुर। विषाक्त में व्यंग्य कठोर होकर विषैले वाण जैसा आक्रमण करता है, जबकि मधुर में विनोद अथवा मीठे कटाक्ष से लज्जित। एक में विरोध की भावना होती है तो दूसरे में मीठी मार। श्रेष्ठ व्यंग्य में परिहास और आलोचना दोनों का समन्वय होता है। रिचर्ड गारनैट के अनुसार हास्य के बिना व्यंग्य गाली के समान है। 20 यदि व्यंग्य में केवल वैर या शत्रुता होगी तो उसमें इतनी हिंसा आ जाएगी कि हँसी के कहीं दर्शन न होंगे। इसलिए व्यंग्य का रूप हास्य मिश्रित होना चाहिए क्योंकि मखोल उड़ाकर किसी के हृदय को दुखाया जा सकता है, परंतु व्यंग्यात्मक हास्य द्वारा त्रुटि बताकर भी व्यंग्य के आलंबन के हृदय को दुखाया नहीं जाता। वह व्यक्ति स्वयं ही अपनी ग़लती का अनुभव करके उन्हें सुधारने का प्रयत्न करता है। किसी भी व्यंग्यात्मक हास्य-लेखक को यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि उसका उद्‌देश्य स्वस्थ टीका-टिप्पणी को हास्य के आवरण में लपेटकर इस प्रकार प्रस्तुत करना है, जिस प्रकार रोगी को स्वास्थ्य-लाभ के लिए 'शुगर कोटेड' कुनेन दी जाती है।

व्यंग्य किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके न किया जाए। व्यंग्य के प्रत्येक श्रोता को

ऐसा आभास होना चाहिए कि यह व्यंग्य उसी को लक्ष्य करके किया जा रहा है। अर्थात् व्यंग्य का सामान्यीकरण किया जाना चाहिए।

व्यंग्य का क्षेत्र केवल वर्तमान होता है। वर्तमान पर किया गया व्यंग्य उपयोगी और प्रभावकारी होता है। किसी मृत व्यक्ति पर किए गए व्यंग्य को हम श्रेष्ठ नहीं मानते। इस दृष्टि से अतीत व्यंग्य की सीमा से बाहर आ जाता है। भविष्य के लिए भी वर्तमान स्थिति का आश्रय लेना होता है। इसलिए वर्तमान रूढ़ियों, समस्याओं और व्यक्तियों पर किया गया व्यंग्य ही श्रेष्ठ होता है।

हास्य और व्यंग्य में अंतर :

हास्य और व्यंग्य के विवेचन के अनंतर यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि व्यंग्य भी हास्य का एक अंग है तथापि दोनों में कुछ ऐसे मूलभूत अंतर हैं, जिनकी ओर दृष्टिपात करना परमावश्यक है। फिर भी यदि इन अंतरों की परिधि को थोड़ा संकुचित करके इन्हें पास-पास लाया जाए तो ऐसे आनंदमयी भाव की सृष्टि होती है कि पाठक सहज रूप में उनकी ओर आकर्षित होने लगता है।

व्यंग्य की प्रयोजननिष्ठता स्पष्ट है। कोई भी व्यंग्यकार समाज की कुरीतियों, असंगतियों, धार्मिक पाखंडों, आडंबरों और मिथ्याचारों, राजनीतिक भ्रष्टाचार आदि को अपना लक्ष्य बनाकर व्यंग्य का प्रयोग करता है। इस प्रयोग में प्रहार की भावना स्पष्ट रूप से निहित रहती है और उद्देश्य इन बुराइयों को समाप्त करना होता है, परंतु हास्य का कोई प्रयोजन अथवा लक्ष्य नहीं होता। इसमें मात्र आनंद की भावना प्रधान होती है। समाज-सुधार इसका उद्देश्य नहीं होता।

हास्य में जहाँ सहानुभूति की स्निग्ध धारा प्रवाहित होती रहती है वहाँ व्यंग्य घृणा, क्रोध, विरोध आदि प्रदर्शित करने का अस्त्र मात्र है। कई बार व्यंग्य का अनुचित प्रयोग करके लेखक इतनी मार्मिक, तीखी और कटु आलोचना करता है कि श्रोता तिलमिला उठता है। उसमें सहानुभूति, दया, उदारता के भाव समाप्त हो जाते हैं, यहाँ तक कि व्यंग्य निंदा की सीमा तक आ जाता है, परंतु हास्य में असहिष्णुता अथवा तिरस्कार नहीं होता। यह हृदयहीनता का हास्य नहीं होता वरन् प्रहसनीय की दुर्बलताओं के प्रति, सहानुभूति की हलकी-सी रेखा लिए रहता है। जार्ज मैरिडिथ ने तो हास्य के आलंबन के प्रति करुणा होना भी आवश्यक माना है। [21]

हास्य का उद्देश्य मनोरंजन और आनंद है तो व्यंग्य मूलतः हास्यात्मक प्रहार है, जो तीखी चोट करता है। हास्य के लिए हास्य की भूमिका बनाई जा सकती है। परंतु व्यंग्य के लिए व्यंग्य की भूमिका वैमनस्य से परिवर्तित हो सकती है। हास्य सहज व्यक्तित्व का विकसित रूप है तो व्यंग्य गंभीर व्यक्तित्व का तीखा स्वभाव। हास्य मन का विलास है तो व्यंग्य मन की प्रहार आयोजना। एक में मीठापन है तो दूसरे में चटपटाहट है।

हास्य-व्यंग्य का संबंध :

हास्य और व्यंग्य के पारस्परिक अंतर को देखकर मन में ऐसी धारणा बन सकती है कि इन दोनों का परस्पर संबंध नहीं हो सकता, दोनों का प्रयोग और व्यवहार क्षेत्र अलग-अलग है क्योंकि एक मीठी शक्कर है तो दूसरी कड़ी कुनेन की गोली। कड़वे-मीठे का क्या साथ, परंतु ऐसी धारणा नितांत भ्रमपूर्ण है।

हम यह मानते हैं कि हास्य का व्यापार आनंद प्रदान करना है। हम अपनी निराशा और

व्यक्ति भावना का निराकरण करने के लिए हास्य का आश्रय ग्रहण करते हैं। परंतु हर समय बिना किसी कारण के हँसने वाले व्यक्ति को हम पागल की संज्ञा देते हैं। ऐसा हास्य अनुपयोगी श्रेणी में गिना जाता है और परिपक्व बुद्धि का कोई व्यक्ति उससे लाभ नहीं उठा सकता।

दूसरी ओर व्यंग्य का लक्ष्य समाज सुधार है। एक व्यवहार समाज की गंदगी ओर सड़ांध को दूर करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, परंतु यह कार्य इस प्रकार किया जाए कि दूसरों पर उसके छींटे पड़ें या व्यक्ति मुँह सिकोड़ने लगें तो सफ़ाई करने का यह ठीक ढंग नहीं होगा अर्थात् यदि समाज-सुधार की भावना से किया गया व्यंग्य निंदा की कोटि तक पहुँच जाता है तो उसका उतना अधिक सौम्य प्रभाव पड़ने वाला नहीं है, जितना सरलता और सादगी से समझाने पर पड़ेगा। एक बात और भी है। हास्य और व्यंग्य दोनों को ही समझने वाले और उसका रसास्वादन करनेवाले बौद्धिक वर्ग के व्यक्ति होते हैं। इसलिए कोई भी वर्ग निंदा सहन नहीं करेगा और परिणाम परस्पर शत्रुता में बदल जाएगा।

हास्य को हम शक्कर के समान मीठा मानते हैं परंतु केवल मीठे का प्रयोग भी हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकर होगा, दूसरी ओर जूड़ी को दूर करनेवाली कुनेन की कड़ीव गोलियाँ भी सीधे ढंग से निगलना कठिन होता है अत: मेरे विचार से यदि समाज की जूड़ी को दूर करने के लिए व्यंग्य रूपी कुनेन की गोलियाँ हास्य की शर्करा में लपेटकर खिलाई जाए तो बिना किसी कष्ट के समाज व व्यक्तियों का कल्याण होगा।

महात्मा कबीर ने अपने काव्य में समाज पर तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार किए हैं। यहाँ तक कि उनकी चोटें भीगे कोड़े से भी अधिक कठोर हो गई हैं। परंतु क्या हम उनके इतने तीक्ष्ण व्यंग्यों को पचा पाए? मेरे विचार से नहीं। यदि कबीर ने अपने इन व्यंग्यों को हास्य के आवरण में लपेटकर समाज को दिया होता तो उसका रूप आज दूसरा ही होता।

वास्तव में वही व्यंग्य श्रेष्ठ होता है, जिसका आलंबन भी उस पर हँस दे और बुरा न माने। व्यंग्य इस प्रकार का होना चाहिए जिस प्रकार खुजली जो हाथ को काटती हुई-सी लगती है परंतु काटती नहीं। मनुष्य को अनुभव होता है कि कोई चीज़ धीरे-धीरे उसके हाथ को काट रही है तो भी उसे उस कटन में आनंद का अनुभव होता है। इसी प्रकार के व्यंग्य से मनुष्य और समाज का सुधार हो सकता है।

संदर्भ

1. नाट्यशास्त्र, भरत 6/40
2. नाट्यशास्त्र, भरत 6/49-50
3. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, 3/214-215-216
4. नाट्य दर्पण, 12/114 सूत्र 168
5. दशरूपक, 4/75
6. रस मीमांसा, प्रथम संस्करण, पृ॰ 195
7. हास्य की रूपरेखा, पृ॰ 432
8. वही, पृ॰ 168
9. कोलियर्स एनसाइक्लोपीडिया, खंड 12, पृ॰ 355
10. एनसाइक्लोपीडिया इंटरनेशनल, खंड 9, पृ॰ 39

11. Laughter results from the degradation of some peson or intrest possesing dignity in cirnmstances that excite no other strong emotion.
Alexander Bain, Quoted in Toster's hand Book P. VIII
12. An affection arising from sudden Transformation of a strained expection to nothing.'
Immanual Kant Quoted in Collier's Eucyclopadia Vol 12] P. 356
13. Some maladjustment something inappropriate, which would displease us if we did not laugh at it.
Willian Me Dougall, Argument of Laughter P. 144
14. Our sincerest laughter with some pain is fraught. Shelley, To a skylark from palgratrs golden Treasury Book IV
15. हिंदुस्तान, व्यंग्य विनोद विशेषांक, 28 मार्च 1945, रसराज हास्य और उसके विभिन्न रूप।
16. मेरिडिथ, एन ऐसे आन कामेडी, पृ॰ 134
17. वही, पृ॰ 133
18. हास्य के सिद्धांत और मानस में हास्य, प्रो॰ जगदीश पांडेय, पृ॰ 101
19. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बेढव बनारसी अंक, जनवरी, 1969, पृ॰ 22
20. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका
21. मेरिडिथ, एन ऐसे आन कामेडी, पृ॰ 137

अनुक्रम

साहित्य और संस्कृति / **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 19
डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया की समीक्षा-सृष्टि एवं दृष्टि / **कृष्णगोपाल मिश्र** 24
चंद्रनारायण सक्सेना के नाटकों में हास्य-व्यंग्य / **डॉ॰ अशोक उपाध्याय** 31
साठोत्तरी हिंदी साहित्य में दलित विमर्श का प्रतिपाद्य व दलित चेतना / **डॉ॰ राजाराम** 37
धूमिल के काव्य में सामाजिक चेतना / **प्रो॰ अनंत केदारे** 43
हिंदी नुक्कड़ नाटकों में अल्पसंख्यकों का विचार / **डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे** 52
डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला की कहानियों में कथ्यगत अध्ययन / **डॉ॰ कृष्णकुमार** 59
मध्यकालीन भक्ति-चेतना / **डॉ॰ अशोककुमार** 68
नारी एक रूप अनेक (दिनकर कृत उर्वशी के विशेष संदर्भ में)/ **डॉ॰ मंजुलता श्रीवास्तव** 73
कला-संवेदनाशून्य समाज में कलासंस्कृति के कायल कलाकार की त्रासदी : नटरंग / **प्रा॰ जयराम श्री सूर्यवंशी** 82
कामायनी में हिमालयी (पर्यावरणीय) चेतना / **प्रो॰ मृदुला जुगरान एवं कु॰ प्रियंका घिल्डियाल** 86
उर्वशी में नारी चेतना / **कु॰ प्रियंका घिल्डियाल** 93
अंधायुग : आधुनिकता का संदर्भ / **ममता सेमवाल** 98
पहाड़ की पीड़ा के पर्याय : विद्यासागर नौटियाल की औपन्यासिक कृतियाँ / **रेखा** 102
फणीश्वरनाथ रेणु के कथासाहित्य में नारी-चेतना / **डॉ॰ नम्रता सिंह** 106
डॉ॰ मनोज सोनकरजी के काव्य का शिल्प-विधान / **पाटील मनोहर हिलाल** 109
हिंदी साहित्य और दलित-समाज / **श्रीमती कविता** 111
भारतीय साहित्यशास्त्र में बिंब-विधान / **डॉ॰ दुर्गा अग्रवाल** 117
डॉ॰ रामविलास शर्मा का आलोचना-संसार / **नीतू सारस्वत** 125
केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' : जीवन और समाज / **डॉ॰ नमिता जैन** 129
भीष्म साहनी के उपन्यासों में आर्थिक मूल्य / **संदीपकुमार** 136
भीष्म साहनी के उपन्यासों में सामाजिक मूल्य / **संदीपकुमार** 149
दौलति उपन्यास में चित्रित जनजीवन का चित्रण / **डॉ॰ कृष्णकुमार** 156
समकालीन कविता में नारी-संदर्भ / **प्रियंकासिंह** 162
देवनागरी लिपि : भाषाई समन्वय एवं राष्ट्रीय एकता / **प्रा॰ डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह** 166
हिंदी व्यंग्य का आधुनिक काल / **पंकजकुमार डी॰ पटेल** 172

मीडिया का बदलता चेहरा / **डॉ॰ ओमप्रकाश सैनी** 181
श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण, एक तात्त्विक दृष्टि / **कादंबरी मिश्रा** 184
सप्तशती परंपरा की नायिकाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण / **दीपशिखा** 189
पुराणों पर आधारित शिव की दार्शनिक मीमांसा / **वेदप्रकाश शर्मा** 197
भारतीय धर्मव्यवस्था में गैर ब्राह्मण जनता के उत्पीड़न का प्रसंग / **डॉ॰ अनिलकुमार** 203
ब्रह्मानंद सरस्वती की दार्शनिक चेतना / **राममूर्ति** 216
समकालीन कथासाहित्य में व्यक्ति और समाज की बदलती पहचान / **डॉ॰ पुष्पा गर्ग** 222
कवि ग्वाल और उनका 'हम्मीरहठ' / **डॉ॰ विशेषकुमार शर्मा** 231
गढ़वाल का नामकरण और पराधीन गढ़वाल / **डॉ॰ गुड्डी बिष्ट** 246
शैक्षिक चिंतक गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर का शिक्षा-दर्शन/ **डॉ॰ आदित्यकृष्ण सिंह चौहान** 252
भारत में पंचायतीराज का विकास / **श्रीमती शालिनी यादव** 256
उत्तर प्रदेश में अचल संपत्तियों के मूल्यांकन से संबंधित विधि का एक अध्ययन / **जियाउलहक** 262
बहुआयामी व्यक्तित्व 'भगत सिंह'/ **अनंत वडघणे** 267
स्वामी विवेकानंद : भारत का पुनरुत्थान / **डॉ॰ रोहताश जमदग्नि** 270
मानवतावादी लेखिकाकैथरीन मैंसफील्ड / **प्रा॰ माधुरी एस॰ मोगल** 276
भारतीय भाषाओं की चर्चित कहानियों में सामाजिक सरोकार / **डॉ. रूबी जुत्शी** 280

साहित्य और संस्कृति

प्रोफेसर आदित्य प्रचंडिया, डी॰लिट्॰

साहित्य और संस्कृति अन्योन्याश्रय हैं। संस्कृति की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। सामाजिक परंपरा से सुलभ व्यवहार का नाम नाम ही संस्कृति है। संस्कृति और सभ्यता में सूक्ष्म अंतर है। सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं से समझना चाहिए, जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन यात्रा सरल-सहज एवं स्वतंत्रता का पथ प्रशस्त होता है। संस्कृति का अर्थअभिप्राय चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएँ समझनी चाहिए, जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली हैं। संस्कृति और दर्शन का भी जुड़ाव है। किसी भी दर्शन में उसकी संस्कृति की ही अभिव्यक्ति होती है। इतिहास के सुदीर्घ अंतराल में भारतीय संस्कृति पर अनेक प्रभाव पड़ते रहे हैं। भारत में अनेक धर्मों और जातियों का सम्मिलन रहा है। इसीलिए संस्कृति भी सतत विकासमान रही है। उसमें समन्वय की भावना का समावेश है। हिंदू धर्म में अनेक दार्शनिक सिद्धांतों के अभिदर्शन होते हैं जिसमें सहिष्णुता और समन्वय की उदात्त भावना प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है। इस देश में वैदिक, जैनधर्म के अतिरिक्त बौद्ध, इस्लाम, सिक्ख और ईसाई धर्म का भी प्रभाव पड़ा है। भारतीय दर्शन में व्यापक नैरन्तर्य है। भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि कर्मों का फल अवश्य मिलता है, लेकिन जीवन में समुचित पुरुषार्थ कर मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था महनीय है। संस्कृत महाकाव्यों, जैन और बौद्ध धर्म की शिक्षा में भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप अभिदर्शित हैं। यूनानी संस्कृति में भी बहु देववाद प्रचलित है। यूनानी संस्कृति की झलक वहाँ के महाकाव्यों में परिलक्षित है। भौतिक जगत की व्याख्या कर ज्ञान पर अधिक बल प्राचीन-अर्वाचीन यूरोपीय दर्शन में दिया गया है। संस्कृति के विस्तृत अध्ययन की प्रत्येक साहित्य की सर्जना में परमावश्यकता होती है।

संस्कृति सामाजिक विरासत है, जिसमें परंपरा से पाया हुआ कला-कौशल, वस्तु सामग्री, यांत्रिक क्रियाएँ, विचार, आदतें और मूल्य समावेशित हैं। संस्कृति जीवन की ओर एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। अनुभव के मूल्यांकन और व्याख्या का एक विशिष्ट और मूलभूत प्रकार है। विचार, भावना तथा आचरण के विभिन्न प्रस्तरों से संस्कृति की सिद्धि है। संस्कृति के निर्माण में प्रायः चार तत्त्वों का प्रभाव होता हैदर्शन, धर्म, अध्यात्म और साहित्य-कला। भारतीय संस्कृति के साथ विश्व में अन्य संस्कृतियाँ भी थीं, किंतु कालांतर में उनका अस्तित्व समाप्त हो गया। भारतीय संस्कृति आज भी जीवंत बनी हुई है। इकबाल कहते हैं'यूनान, मिश्र, रोमा, सब मिट गए जहाँ से/बाकी अभी है लेकिन नामानिशां हमारा/कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी/सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।' भारतीय संस्कृति में भौगोलिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता, अनेकता में एकता, युगानुरूप

परिवर्तन की क्षमता, दार्शनिक चिंतन की प्रधानता आदि अनेक तत्त्वों के कारण अनेक झंझावातों को झेलते हुए भी विश्व की महान संस्कृति बनी हुई है। आदर्शवाद जीवन को पूर्णता की ओर ले जाने वाली परिकल्पना है। भारतीय साहित्य में चार प्रकार के नायक माने गए हैंधीरोदात्त, धीर ललित, धीर प्रशांत और धीरोद्धत। इनमें से धीरोदात्त और धीर प्रशांत चरित्र वाले नायक आदर्श होते हैं। भारतीय साहित्य में जितने भी प्रबंध काव्य और नाटक लिखे गए हैं, उनमें आदर्शवादी चरित्रों को ही नायक बनाया गया है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि ही भारतीय साहित्य में नायक के रूप में प्रतिष्ठित होते रहे हैं। भारतीय साहित्य और कला का स्वरूप भारतीय संस्कृति में आदर्शवादी रहा है। भारतीय साहित्य में काव्य और नाटक सदैव सुखांत ही होते हैं। असत् पर सत् की विजय ही कथानक को सुखांत और आदर्शवादी बना देती है।

भारतीय संस्कृति की महनीय विशेषता यह है कि वह अपनी परंपराओं का निरीक्षण कर उनमें संशोधन-परिवर्तन करती रहती है और वह संपर्क में आने वाली किसी भी संस्कृति को अपने में समाहित करने में सक्षम रही है। आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति में अनेक नए तत्त्व जुड़े हैं। भारतीय संस्कृति समान्वित धर्म-निरपेक्ष हो गई है। भारतीय पुनर्जागरण के कारण एक और भारतीय संस्कृति में कई बदलाव हुए यथाबहुविवाह, बाल-विवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा आदि का परित्याग तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति ने प्रजातंत्र, वैज्ञानिक शिक्षा, सांप्रदायिक सद्भाव, राष्ट्रीयता, नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण आदि को जीवंत और आधुनिक बनाए रखने के लिए स्वीकार किया है। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर भारतीय संस्कृति ने अनेक अंधविश्वासों को छोड़ा है यथाविदेश यात्रा को स्वीकारना और नई शिक्षा को मान्यता देना आदि। इस प्रकार भारतीय संस्कृति अपने मानवतावादी स्वरूप को बनाए रखने में सफल सिद्ध हुई है।

किसी देश की लोकसंस्कृति का महत्त्व उस देश के जीवन में निर्विवाद है। उसका अपना स्वतंत्र प्रवाह होता है जो निरंतर प्रभावित हुआ करता है और जो बड़ी कठिनता और युगों के प्रयत्न से किंचित परिवर्तित किया जा सकता है। उसमें स्थायित्व का तत्त्व अधिक होता है और परिवर्तनशीलता की प्रवृत्ति बहुत कम। लोक संस्कृति लोक अर्थात् जनसामान्य की संपत्ति होती है। समाज का अधिक शिक्षित वर्ग अपनी ऊँची संस्कृति के नशे में शीघ्रता से आगे बढ़ जाता है और वह परिवर्तन के चक्कर में भी अधिक रहता है। महाकवि से आरंभ करके हमारे साहित्य में जो संस्कृति एक प्रमुख विधायक अंग है अब तक जाने कितने प्रयोग हो चुके हैं। यह उच्च वर्ग की संस्कृति का उदाहरण हुआ, पर लोक संस्कृति का विधायक अंग, ग्रामगीत न्यूनाधिक अब भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। उसकी विषयवस्तु में कम-से-कम परिवर्तन दिखाई देता है। उसकी भावभूमि अब भी वही है, जो शताब्दियों पहले थी। लोकसंस्कृति पर सभ्यता का आवरण नहीं चढ़ा होता। नागरिक संस्कृति पहले अपने छद्म वेश के कारण अधिक आकर्षक हो सकती है जैसे वस्त्राभूषण, अलक्तराग और लिपिस्टिक से अलंकृत आधुनिक नारी पर इससे वास्तविक सौंदर्यान्वेषी और रूपपारखी के लिए मैली धोती में लिपटी रूप और यौवन के उमंग से भोली-भाली ग्राम बाला सरीखी लोकसंस्कृति का आकर्षण कम नहीं हो जाता। उसका सहज, सरल और अकृत्रिम रूप-माधुर्य अपने सम्मोहनकारी प्रभाव से सहृदयी को रससिक्त बनाए बिना नहीं रहता।

प्रत्येक समाज में दो तरह के लोग होते हैंशिक्षित वर्ग और अशिक्षित वर्ग। शिक्षित वर्ग के हाथ में अधिकार होता है, वह समाज का नेतृत्व करता है जैसेराजनीति का सूत्र उसके हाथ में रहता है वैसे ही कला और साहित्य के सृजन में भी वह आगे रहता है। भाषा, साहित्य, संगीत, नृत्य आदि का मानदंड उसी के हाथों निर्धारित होता है। इतिहास उसी की कृतियों के आधार पर तत्कालीन समाज का मूल्यांकन करता है। आदिकाल से ऐसा होता आया है और आज यही हो रहा है तथा भविष्य में भी ऐसा ही होगा। वैदिककाल से लेकर अब तक पूरा संस्कृत वाड्.मय और मध्यकालीन तथा आधुनिकशिष्ट साहित्य दार्शनिक, चिंतन, अध्यात्मिक तथा धार्मिक साधना, ललित कलाओं के क्षेत्र की विविध उपलब्धियाँ समष्टि रूप में भारतीय संस्कृति के नाम से अभिहित होती हैं, पर लोकसंस्कृति के नाम पर हर प्रादेशिक क्षेत्र की अपनी विशेषताएँ हैं। उनके गीत उनकी लोककथाएँ, उनकी नृत्यशैली सबमें भिन्नता मिलेगी।

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता पर अवलबिंत रही है। आर्यों और द्रविड़ों की संस्कृति का मिलन इतनी सघनता से हुआ है कि उसे अलग करना कठिन है। विष्णु और शिव का महत्त्व आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों के इस मिलन को प्रमाणित करता है। मनु ने द्रविड़ शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए किया है जो द्रविड़ देश में बसते थे। प्राचीन वेदों से रामायण और महाभारत काल तक भारतीय संस्कृति का यह विस्तार भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक एकता का प्रतीक बन गया है। हिंदू संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्येत्तर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ जिसे वैदिक संस्कृति कहा गया है। पौराणिक हिंदू धर्म निगम और आगम दोनों पर आधृत स्वीकारा गया है। निगम वैदिक विधान है और आगम प्राग्वैदिककाल से आती हुई वैदिकेतर धार्मिक परंपरा का वाचक है। निगम अपौरूषेय है, वह ईश्वर निर्मित नहीं है। आगम शिव, शक्ति अथवा विष्णु के मुख से उदगीर्ण है और उसकी सम्यक् परिणति भक्ति में हुई। भक्ति और वेदांत केवल ब्रह्म को मानते हैं। भक्ति ईश्वर, जीव और प्रकृति में आस्था रखती है। भारत की राष्ट्रीय एकता में संस्कृति का अत्यंत महनीय योगदान है।

भारतीय संस्कृति किसी एक विश्वास पर आधारित नहीं है। वह अनेक आस्थाओं का समवाय है। भारतीय संस्कृति की जो विशिष्टताएँ हैं, वह उसे विश्व की अन्य संस्कृतियों से विभक्त करती है और उसका प्रभाव केवल हिंदुओं पर ही नहीं भारत में रहने वाले मुसलमानों और ईसाईयों पर भी है। साहित्य में संस्कृति एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण आयाम है। प्रत्येक देश की अपनी एक संस्कृति होती है, जो वहाँ के साहित्य को प्रभावित ही नहीं करती, अभिव्यक्त का आधेय भी होती है। संस्कृति विश्व मानवता का रूप स्थिर करती है। साहित्य की मूल प्रक्रिया और उसकी सामाजिक विशेषता का निर्माण संस्कृति से ही होता है। मानव समूह से विनिर्मित वृत्तियों का व्यवहार संस्कृति की अवधारणा में अंकित होता है। मनुष्य जिस सांस्कृतिक प्रक्रिया से गुजरता है उसके अंतर्गत सामाजिक समूहों के चरित्र, मानवीय विचार, विश्वास और रीतियाँ एक विस्तृत आयाम निर्मित करती हैं। आदिम युग से ही मनुज अपने मिथकों के वातावरण में अपना स्थान ग्रहण करता है। सांस्कृतिक स्तर पर मानवशास्त्र और समाजशास्त्र का अध्ययन किसी वैज्ञानिक प्रणाली से संभव नहीं है। संस्कृति की प्रक्रिया में व्यक्ति को रखने से यह स्पष्ट है कि मानवीय समाज की अवधारणा में व्यक्ति की स्थिति सामान्यतः अलग और स्वतंत्र नहीं होती। मानवीय संस्कृति का रचनात्मक आयाम में संस्कृति के

व्यापक रूप को स्पष्ट किया है जिससे यह प्रमाणित होता है कि साहित्य और संस्कृति परस्पर में जुड़ाव लिए हैं। रचना के स्तर पर अनुभव, स्थितियों और चरित्रों में अभिव्यक्त होते हैं जिन्हें रचना तक सीमित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार साहित्य और कला की रचना शीतलता में जीवन के मूल्यों की व्यवस्था के आधार पर व्यंजना को पाया जाता है उसी प्रकार आदिम समाज में इन मूल्यों के स्रोत की अभिव्यंजना देखी जा सकती है।

मनुष्य के सर्जन क्षमता की अभिव्यक्ति में संस्कृति का रचनाशील रूप देखा गया है। इस परिप्रेक्ष्य में मनुष्य संस्कृति के संदर्भ में व्यक्ति है, विशिष्ट है, वह भौतिक अर्थ में और आध्यात्मिकता में भी सार्थकता और दायित्वबोध के साथ जीता है। मानवीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों का क्रमिक विकास मिलता है। संस्कृति में मानवीय मूल प्रक्रिया और रचना प्रक्रिया दोनों का ही अंतर्भाव होता है। साहित्य में सौंदर्य की अभिव्यक्ति में भी संस्कृति का स्वरूप अभिदर्शित है। काव्यकला के जो सिद्धांत संस्कृत काव्यशास्त्र या पश्चिमी काव्यशास्त्र में निहित हैं उनमें भी यह सांस्कृतिक परिवेश संयोजित है। रचनात्मक अभिव्यक्ति में अनुभव की समग्रता होती है। रचनाकार जिस भाषा रूप को स्वीकारता है उसमें भी भाषिक संस्कृति है। संस्कृति की विकासधारा को कोई भी समय अवरुद्ध नहीं कर सकता। आधुनिकता और संस्कृति में भी अंतर्संबंध है। सांस्कृतिक आयामों में आधुनिकता किस प्रकार गतिमान रही है इसका प्रमाण साहित्य कलाओं में ही नहीं, सांस्कृतिक गतिविधियों में भी है। संस्कृति आज के जनवाद को लोकतंत्रीय व्यवस्था से जोड़ती है। संस्कृति परंपराओं के विभिन्न आयामों में संस्कार की वृत्ति को स्थापित करती है। किसी देश की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते हैं। भारत के प्राचीन साहित्य में जिसे आजकल संस्कृति कहते हैं, सामान्य रूप से 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया जाता था और जिसे वर्तमान में 'सभ्यता' कहते हैं, उसका अंतर्भाव 'अर्थ' शब्द में था, परंतु समय के साथ-साथ धर्म और अर्थ इन दोनों शब्दों का प्रयोग संकुचित होता गया। 'धर्म' केवल विश्वास और कर्म का पर्याय हो गया और अर्थ, धन, संपत्ति का प्रतीक बन गया। इस कारण संस्कृति और सभ्यता शब्दों का वर्तमान प्रयोग हमारी भाषा में अर्वाचीन है, लेकिन अभिप्राय को प्रकट करने की दृष्टि से वह उपयोगी और ग्राह्य है। आदित्य प्रचंडिया के कविता-संग्रह 'खिलीधूप' की कविता 'चीवर' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं'फटा पुराना/पूर्वजों से/मिला
विरासत में'चींवर'/जी! मैंने उसे/ आज तक सहेजा/मौके बेमोके पहना/और मन है, अब उसे/फाड़ने
को करता/ऊब की नदी में/डुबकी लगाता/यकायक खिड़की से/आवाज एक/हवा में गूँजती/फाड़ना
इसे/सभ्यता के खिलाफ है।'

संस्कृति से आधुनिकता भी अलग नहीं हो सकती। परंपराओं का विकास आधुनिकता में होता है। आधुनिकयुग में सांस्कृतिक एकात्मकता की जगह द्वंद्व की स्थिति है तथापि भारत में आधुनिकीकरण मशीन की अपेक्षा संस्कृति से अधिक जुड़ा है। भारत की आधुनिकता और संस्कृति की आधुनिकता ने भारतीय साहित्य को इतने वेग से प्रभावित किया है कि हमारे देश ने बीसवीं सदी में विचारधारओं और साहित्यिक आंदोलनों की बाढ़-सी आ गई। भारत में आधुनिकता का पदार्पण वस्तुतः एक चेतना का ही पर्दापण है जिसने मानवीय आधारों को फिर से स्थापित किया है। इसने साहित्य और कलाओं को भी प्रभावित किया है। भारत में आधुनिकता के अन्वेषण के लिए भारतीय

धर्म, दर्शन और संस्कृति के विभिन्न आयामों का अध्ययन अनिवार्य है। अपने धर्म और इतिहास को बिना जाने यह संभव नहीं है। आज की आधुनिकता सांस्कृतिक संक्रमण और संक्रांति की स्थितियों से गुजर रही है। मानवीय दायित्व और सृजनात्मकता के आयामों को समझना आवश्यक है। तकनीकी विकास होते हुए भी संस्कारित संस्कृतिबोध से अलग नहीं हुआ जा सकता। साहित्य संस्कृति के बिना और संस्कृति साहित्य के बिना उस चित्र को पूरा नहीं करते जिसे हम मानव समाज का चित्र कहते हैं। प्राचीन से अर्वाचीन तक मानवीय संस्कृति एक ग्लोबल साहित्य का सृजन कर रही है। मनुष्य के अनुभवों और संवेदनाओं की पहचान साहित्य में होती है। इसीलिए साहित्य और संस्कृति दोनों मनुष्य जीवन से जुड़े हैं। इस प्रकार संस्कृति मानवता का मेरुदंड है। वह शिष्टता, सौजन्य तथा शील की आधारशिला है। साहित्य के अध्येता संस्कृति की संरक्षा करते हैं।

मंगलकलश
394, **सर्वोदयनगर, आगरा रोड**
अलीगढ़ 202009 **(उ०प्र०)**
दूरभाष : 0571-2410486

डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया की समीक्षा-सृष्टि एवं दृष्टि

कृष्णगोपाल मिश्र

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हिंदी साहित्य और समीक्षा को समृद्ध करनेवाले साहित्य-मनीषियों में डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया विशिष्ट हैं। कविता, नई कविता, गीत, मुक्तक, कहानी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, शोध, समीक्षा, साक्षात्कार, अनुवाद, संपादन एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में विगत चार दशकों से सक्रिय डॉ॰ प्रचण्डिया साहित्य के सुधी अध्येता, समर्थ व्याख्याता और मर्मज्ञ समीक्षक हैं। उनके प्राध्यापकीय व्यक्तित्व ने उन्हें साहित्य के अध्ययन-मनन की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं। परिणामतः शोध-समीक्षा के क्षेत्र में उनकी गहरी पकड़ बनी है और वे अपने शोध-छात्रों का शोध-निर्देशन करते हुए भावयित्री प्रतिभा से समृद्ध हुए हैं। यद्यपि साहित्य-सृजन में उनका प्रदेय उल्लेखनीय है किंतु उनकी शोध समीक्षा-सृष्टि प्रथम स्थानीय है, मौलिक है, किंतु उनकी शोध-समीक्षा सृष्टि प्रथम स्थानीय है। मौलिक चिंतन, निष्पक्ष विवेचन और अध्यवसाय पूर्ण अन्वेषण के कारण उनकी समीक्षा कृतियाँ विशेष महत्त्व की सिद्ध होती हैं।

डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया के शोध आलोचना ग्रंथों में सर्वप्रथम 'जैन हिंदी काव्य में छंदोयोजना' सन् 1976 ईसवी में प्रकाशित हुआ। इसके उपरांत 'जैन हिंदी पूजा काव्य : परंपरा और आलोचना' (1987), हिंदी कविता के प्रमुख वाद (1991), आधुनिक हिंदी कविता परंपरा और परिवेश (1991), जैनेंद्र के उपन्यास (1994), उपाध्याय केवल मुनि का साहित्य संसार (1995), अपभ्रंश भाषा का पारिभाषिक कोश (1999), मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ जीवन और साहित्य (2003), श्रावक की आचार संहिता (2007), मध्यकालीन हिंदी संतकाव्य (2008) और अपभ्रंश आलोक (2008) उपलब्ध ग्रंथ हैं। इस प्रकार डॉ॰ प्रचण्डिया की समीक्षा-सृष्टि का परिसर अत्यंत विस्तृत है। वे संतकाव्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं और समसामयिक संघर्षमयी अति विषम परिस्थितियों में मानव-मूल्य चेतना समृद्ध संत-काव्य के माध्यम से मनुष्य के मंगल-पथ के अन्वेषण में व्यस्त हैं। पूर्व में असमीक्षित नितांत नवीन विषयों पर ग्रंथ-लेखन में उनकी रुचि रही है। उनकी शोध-समीक्षा सृष्टि का संक्षिप्त परिचय और महत्त्व निम्नवत् प्रस्तुत है

1. हिंदी-कविता के प्रमुख वाद

यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य में प्रचलित विविध वादों के अध्ययन की दृष्टि से विशेष उपादेय है। ग्रंथ की भूमिका के रूप में प्रस्तुत प्रथम आलेख कविता और वाद संक्षिप्त किंतु सारगर्भित है। लेखक के मौलिक चिंतन को प्रस्तुत करनेवाले इस आलेख में कविता एवं वाद के अंतःसंबंधों की युक्ति-युक्त विवेचना हुई है। कविता और वाद को प्रायः एक समझ लिया जाता है, जबकि दोनों भिन्न हैं। डॉ॰

प्रचंडिया ने इस संदर्भ में निर्भ्रांत निष्कर्ष स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत किया है'कविता और वाद दोनों अलग-अलग चीज हैं। वाद कविता नहीं बन सकता। काव्य में वाद अभिव्यक्त हो सकता है। हालाँकि दोनों का स्रोत एक ही है जनजीवन किंतु उनके स्वरूप में महान अंतर है। इस प्रकार कविता अमंगल की अपेक्षा मंगल की, शव की अपेक्षा शिव की प्रतिष्ठा कराती है और वाद तटस्थ हो उसका उद्‌घाटन-प्रकाशन करता है।[1] इस प्रकार के स्पष्ट अभिमत प्रस्तुत विषयवस्तु को समझने में सर्वथा सहायक हैं।

समीक्ष्य ग्रंथ में भूमिका (कविता और वाद) के उपरांत रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद, छायावाद, हालावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नकेनवाद और नई कविता में विविधवाद शीर्षकों से आठ लेख प्रस्तुत हुए हैं। इन आलेखों की क्रमिक प्रस्तुति बीसवीं शताब्दी में हिंदी कविता के विकास-क्रम का प्रामाणिक इतिहास भी दर्शाते हैं। डॉ॰ राकेश गुप्त ने इस ग्रंथ के प्राक्कथन में इसकी सफलता इन शब्दों में अंकित की है '...हिंदी कविता के प्रमुख वादों की सुबोध व्याख्या करने में तथा उनके निर्भ्रांत स्वरूप-निर्धारण में विद्वान लेखक को सराहनीय सफलता मिल सकी है।[2] इस प्रकार डॉ॰ राकेश गुप्त के साक्ष्य से भी इस ग्रंथ का महत्त्व प्रमाणित होता है।

2. आधुनिक हिंदी-कविता : परंपरा और परिवेश

डॉ॰ शैलेश जैदी ने इस ग्रंथ की भूमिका में इसकी विषयवस्तु और उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि आधुनिक हिंदी-कविता परंपरा और परिवेश 1850 ईसवी के बाद की हिंदी कविता का एक परिचयात्मक विवरण है। यह लेखक के छोटे-छोटे किंतु प्रौढ़ एवं सारगर्भित लेखों का संग्रह है जिससे हिंदी की आधुनिक कविता की समझ बनती है।[3] प्रस्तुत ग्रंथ के अनुशीलन से डॉ॰ जैदी के उपर्युक्त निष्कर्ष की सत्यता प्रमाणित होती है।

समीक्ष्य ग्रंथ के प्रारंभ में पृष्ठभूमि : आधुनिक हिंदी कविता परंपरा और परिवेश शीर्षक से लेखक ने रीतिकालीन काव्य की परवर्ती प्रवृत्तियों और उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी की विविध परिस्थितियों में साहित्य की भूमिका का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके उपरांत क्रमांक दो से सत्ताईस तक के विविध शीर्षकों में क्रमशः भारतेंदु, हरिऔध, रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, दिनकर, नागार्जुन, अज्ञेय, शमशेर, नरेंद्र शर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, मुक्तिबोध, गिरजाकुमार माथुर, नरेश मेहता, नीरज, केदारनाथ सिंह, धूमिल के काव्य पर समीक्षात्मक दृष्टि डालते हुए नवें दशक की हिंदी कविता के स्वर शीर्षक से काव्य की प्रगति प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है। इस ग्रंथ के समस्त आलेख संबोधित कवियों के महनीय कृतित्व को समझने में सहायक हैं।

3. जैनेंद्र के उपन्यास

उपन्यास साहित्य की समीक्षा के क्षेत्र में डॉ॰ प्रचण्डिया की यह रचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें न केवल समीक्ष्य साहित्यकाकर जैनेंद्र की बारह उपन्यास-कृतियों की तात्त्विक समीक्षा अपितु जैनेंद्र की इन रचनाओं पर प्राप्त समीक्षात्मक सामग्री की भी युक्ति-युक्त परख की गई है। डॉ॰ प्रचडिया समीक्ष्य उपन्यासकार जैनेंद्र के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित रहे।[4] यही प्रभाव इस ग्रंथ के प्रणयन की प्रेरणाभूमि है।

प्रस्तुत समीक्षा-कृति की पृष्ठभूमि में लेखक ने उपन्यास शब्द के अर्थ, उसकी पारिभाषिक

अवधारणाएँ, तात्त्विक ऐतिहासिक विवेचन एवं हिंदी-उपन्यास के विकास में जैनेंद्र के प्रदेय पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। तत्पश्चात 'जैनेंद्रकुमार व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षक से समीक्ष्य उपन्यासकार के वैशिष्ट्य को रेखांकित किया है। इसके अनंतर ग्रंथ की मुख्य विषयवस्तु जैनेंद्र के बारह उपन्यास परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन, मुक्तिबोध, अनंतर, अनाम स्वामी और दशार्क समीक्षित हुए हैं। प्रख्यात कथाकार जैनेंद्र के साहित्यिक अवदान को समझने की दृष्टि से यह ग्रंथ विशेष उपयोगी है।

4. **मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ : जीवन और साहित्य**

यह समीक्षा-कृति मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियों के प्रदेय को मूल्यांकित करती है। इस शोध-समीक्षा कृति के सृजन में डॉ॰ प्रचंडिया का प्रयोजन कवयित्रियों के प्रदेय को सामने लाना है। उनका मत है कि 'समाज में नारी का स्थान आरंभ से ही उपेक्षित रहा है। उनके द्वारा की गई साहित्यिक सेवाओं का सम्यक् और वैज्ञानिक मूल्यांकन प्रायः नहीं हुआ है।'[5]

डॉ॰ प्रचण्डिया का यह मत तथ्यसम्मत है। हिंदी साहित्य में राजवंश से संबंधित शक्तिमती मीरा की चर्चा हुई। आधुनिककालीन परिवर्तित परिवेश में महादेवी वर्मा आदि कवयित्रियों पर भी आवश्यक चर्चा मिलती है। किंतु मध्यकालीन निर्गुण संत कवयित्रियाँ लगभग उपेक्षित ही रहीं। भक्तिकाव्य के शोध-कर्त्ताओं और समीक्षकों की दृष्टि कबीर आदि निर्गुण संतों पर तो बार-बार गई, उन पर प्रचुर शोधकार्य हुआ, किंतु उसी युग की नारियों का साहित्य उपेक्षित रह गया। डॉ॰ प्रचण्डिया ने इस अभाव की पूर्ति की है।

प्रस्तुत समीक्षाग्रंथ में दयाबाई एवं सहजोबाई (संतकाव्य-परंपरा), ब्रजदासी बाँकावती (कृष्णकाव्य-परंपरा), सुंदर कुँवरि (रामकाव्य परंपरा) और शेख (शृंगारपरक रीतिकाव्यधारा) के जीवन एवं काव्य की साहित्यिक समीक्षा प्रस्तुत की गई है। इन महान स्त्री रचनाकारों के जीवनवृत्त से संबंधित उपलब्ध सामग्री का विवेचन करते हुए डॉ॰ प्रचंडिया ने तर्कसंगत मौलिक निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। समीक्ष्य कवयित्रियों की भक्तिभाव संपदा और कलापक्षीय विशेषताओं को भी उदाहरणसहित विवेचित किया गया है। विषयवस्तु की नवीनता तथा विश्लेषणगत मौलिकता के कारण यह शोध-समीक्षा ग्रंथ विशिष्ट है।

5. **मध्यकालीन हिंदी संतकाव्य : दर्शन और मूल्यांकन**

समसामयिक समस्याओं के समाधान के लिए इस कृति की रचना की गई है। इस संदर्भ में स्वयं डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया ने स्पष्ट किया है कि 'संतकवियों ने अपने अनुभव के वातायन से दार्शनिक चिंतन के माध्यम से व्यक्ति को उत्थित करने के लिए कल्याणकारी संदेश फूँका था। आज भारतीय समाज के सामने जो सवाल और समस्याएँ हैं, उनका समाधान संतकाव्य से प्राप्त किया जा सकता है।'[6] स्पष्ट है कि इस ग्रंथ की प्रेरणा और प्रयोजन युगजीवन को निरापद बनाने की उत्कट अभिलाषा में निहित हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में संतकाव्य का रूपस्वरूप, संतकवि और उनका काव्य, संतकाव्य की दार्शनिकता, दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण, संतकाव्य का साहित्यिक अध्ययन, आधुनिक जन-जीवन और संतकाव्य की आवश्यकता, संतकाव्य में विवेच्य प्रज्ञापुरुष और उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक देन

शीर्षक अध्यायों में विषयवस्तु का तथ्यपरक विश्लेषण हुआ है।

6. **अपभ्रंश आलोक**

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया अपभ्रंश साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। उनकी यह कृति सप्त सिंधु जैन विद्या, अपभ्रंश भारती परामर्श वैचारिकी अहिंसा वाणी परिषद पत्रिका, अनेकांत शोधार्णव आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का संयोजित संग्रह है। अपभ्रंश भाषा और साहित्य को समझने के लिए इस ग्रंथ की रचना की गई है।

समीक्ष्य ग्रंथ में पच्चीस आलेख संगृहीत हैं। अपभ्रंश साहित्य की तद्युगीन परिस्थितियाँ, अपभ्रंश साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, अपभ्रंश की बौद्धधर्म प्रधान रचनाएँ, प्रयोग और प्रयोजन, अपभ्रंश के आद्यकवि स्वयंभू और उनका परवर्ती काव्यकारों पर प्रभाव, स्वयंभू काव्य में छंद : एक विश्लेषण, स्वयंभू के राम, सरह का साहित्यिक महत्त्व, सिद्धकवि कृष्णपाद का महत्त्व, महाकवि पुष्पदंत : व्यक्तित्व और कृतित्व, पुष्पदंत काव्य में प्रयुक्त लक्ष्मी, भविस्यत्तकहा का साहित्यिक महत्त्व, जबूसामिचरिउ का साहित्यिक मूल्यांकन, सुदंसणचरिउ का साहित्यिक मूल्यांकन, करकंड चरिउ की कथा : परंपरा और विवेचना, कविश्री जोइंदु : व्यक्तित्व और कृतित्व, कविश्री जोइंदु का साहित्यिक अवदान, अपभ्रंश वैयाकरण हेमचंद्र के दोहे, संदेश रासक में समाज और संस्कृति, अपभ्रंश कवियों की आत्मलघुता का मध्ययुगीन हिंदी काव्यधारा पर प्रभाव, अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावली और उनका अर्थ-अभिप्राय, अपभ्रंश में स्वर-परिवर्तन : एक दृष्टि, अपभ्रंश में सर्वनाम रूप और अपभ्रंश की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, शीर्षकों से प्रस्तुत उपर्युक्त आलेख अपभ्रंश भाषा, साहित्य एवं साहित्यकारों का युक्तियुक्त परिचय देते हैं। प्रामाणिक संदर्भ-उद्धरण देते हुए डॉ॰ प्रचंडिया ने इनमें मौलिक विवेचन द्वारा विषय को अधिकाधिक तर्कसंगत एवं तथ्यसम्मत बनाया है। हिंदीभाषा और साहित्य की पीठिका के रूप में प्रतिष्ठित अपभ्रंश भाषा-साहित्य का यह अध्ययन हिंदी-प्रेमियों और शोधार्थियों के लिए भी विशेषतः महत्त्वपूर्ण है।

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया के उपर्युक्त शोध-समीक्षा ग्रंथों के अनुशीलन से उनकी समीक्षा-सृष्टि की विषयगत व्यापकता और विश्लेषणगत गंभीरता का परिचय मिलता है। साथ ही उनकी समीक्षा-दृष्टि का वैशिष्ट्य भी विविध रूपों में उजागर होता है। विषयवस्तु की नवीनता, निष्कर्ष-निरूपण में मौलिकता, पारिभाषिक संक्षिप्तता, युगीन समस्याओं के समाधानों की अन्वेषणमुखी तत्परता, सूक्ष्मोक्षिणी दृष्टि डॉ॰ प्रचंडिया की समीक्षा-सृष्टि की प्रमुख विशषताएँ हैं। उनकी समीक्षा-दृष्टि समीक्षाकार्य के लिए नवीनतम विषयों का चयन करती हैं। जिन विषयों, बिंदुओं पर शोध-समीक्षा कार्य नहीं हुआ है, उन विषयों को अपने शोध का विषय बनाकर डॉ॰ प्रचडिया एक ओर समीक्षा-क्षेत्र में प्राप्त अभाव को दूर करते हैं तो दूसरी ओर असमीक्षित की समीक्षा करके अल्पख्यात एवं विस्मृत रचनाकारों के साहित्यिक अवदान के प्रति न्याय करते हैं। 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ : जीवन और साहित्य' शीर्षक कृति में ब्रजदासी बाँकावती और सुंदरकुँवरि पर प्रस्तुत शोधसमीक्षा कार्य से इस तथ्य की पुष्टि होती है। जैनेंद्र के उपन्यास-साहित्य पर भी उनका ग्रंथ प्रारंभिक शोध-समीक्षाग्रंथों में अग्रणी है। इसीप्रकार अपभ्रंश आलोक में प्रकाशित आलेख शोधपत्र भी डॉ॰ प्रचंडिया की विषय-चयन की नवीनता प्रतिपादित करते हैं।

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया की समीक्षा-दृष्टि विश्लेषण, विवेचन एवं निष्कर्ष-निरूपण में प्रायः मौलिक रही है। 'मध्यकालीन विवेचन एवं निष्कर्ष-निरूपण' में प्रायः मौलिक रही है। 'मध्यकालीन हिंदी संतकाव्य : दर्शन और मूल्यांकन' में उनकी यह सामर्थ्य दूर तक प्रमाणित होती है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में वे लिखते हैं'काव्य प्रत्येक देश और काल में प्रासंगिक रहता है। देश और काल के बदलाव से जो बदलती है, वह है दृष्टि। किसी काल-विशेष की अपनी अलग अपेक्षाएँ और प्राथमिकताएँ होती हैं। प्रासंगिकता की खोज उन्हीं अपेक्षाओं और प्राथमिकताओं की दृष्टि से की जाती है।[7] इस निष्कर्ष-निरूपण में डॉ॰ प्रचंडिया की चिंतनगत मौलिकता स्पष्ट होती है। वास्तव में साहित्यकार अपनी युगीन अपेक्षाओं के आलोक में साहित्य-सृजन करता है, जबकि उसके परवर्ती युग का पाठक-समीक्षक अपने समय की माँग के अनुरूप उसकी परख करता है। परिणामतः कई बार सर्जक और पाठक का दृष्टि-भेद रचना के साथ न्याय नहीं होने देता। उदाहरण के लिए मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियाँ

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।[2]

द्विवेदीयुगीन संदर्भों में नारी के प्रति व्यक्त संवेदना के कारण विशेषतः महत्त्वपूर्ण और प्रशंस्य रही, किंतु परवर्तीकाल में स्वतंत्रता के अनंतर जैसे-जैसे भारतीय नारी सशक्त हुई, इन पंक्तियों की आलोचना होने लगी, क्योंकि परवर्ती पाठक समीक्षक की दृष्टि में नारी अबला नहीं रही, वह सबला की भूमिका में आ गई। इससे स्पष्ट होता है कि डॉ॰ प्रचंडिया का यह कथन कि देश और काल के बदलाव से जो बदलती है, वह है दृष्टि सत्य प्रमाणित होता है। इस प्रकार मौलिक चिंतन प्रसूत निष्कर्ष-निरूपण डॉ॰ प्रचंडिया की समीक्षा दृष्टि का महत्त्वपूर्ण आयाम है।

सूक्ष्मोक्षिणी दृष्टि डॉ॰ प्रचण्डिया की समीक्षा-सृष्टि का अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है। प्रख्यात विद्वान डॉ॰ धर्मपाल मैनी ने इस तथ्य को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है'प्रत्येक अध्याय में दिए गए बहुत अधिक शोध संदर्भ इस बात के द्योतक हैं कि न केवल उन्होंने उपलब्ध सामग्री (कृतियों) का व्यापक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है, अपितु अपनी सूक्ष्मेक्षिणी दृष्टि से मात्र ग्राह्य को लिया है, त्याज्य को छोड़ दिया है। यह उनकी सूक्ष्मेक्षिणी दृष्टि का परिचायक है।'[9] जैनेंद्र के उपन्यास, हिंदी कविता के प्रमुख वाद आदि अन्य शोध-समीक्षा कृतियों का अनुशीलन करने पर भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। समालोचना में सूक्ष्मेक्षिणी दृष्टि के प्रयोग ने डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया के कृतित्व को अनावश्यक विस्तार से बचाया है। उनकी शोध-समीक्षा कृतियाँ सुगठित और संतुलित कलेवर में प्रस्तुत हुई है।

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया की समीक्षा-दृष्टि अपने युग की समस्याओं से सीधा साक्षात्कार करती है। समालोचना स्वयं भी रचना है। वह भी सशक्त साहित्य-सर्जना होती है और इसके माध्यम से डॉ॰ प्रचंडिया युगीन समस्याओं के समाधान तलाश करते हैं। उनकी शोध-समीक्षा कृति 'मध्यकालीन हिंदी संतकाव्य : दर्शन और मूल्यांकन में इस तथ्य का अंतःसाक्ष्य इस प्रकार दृष्टव्य है'....आज व्यक्ति, समाज और देश के सामने जो चुनौतियाँ हैं उन्हें संतकाव्य समझने-सुलझाने में किस सीमा तक सहायक हो सकता है, यही इस पुस्तक का मूल प्रतिपाद्य है।[10] मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ : जीवन और साहित्य तथा आधुनिक हिंदी कविता परंपरा और परिवेश के सृजन में भी डॉ॰ प्रचंडिया का यही

प्रमुख प्रयोजन रहा है। इससे स्पष्ट है कि उनकी समीक्षा दृष्टि प्रमुख प्रयोजन रहा है। इससे स्पष्ट है कि उनकी समीक्षादृष्टि समालोचना के माध्यम से न केवल असमीक्षित साहित्यिक सामग्री की समीक्षा करती है, बल्कि उसके द्वारा युगीन यक्षप्रश्नों के व्यावहारिक समाधान रेखांकित करने का भी प्रयत्न करती है।

पारिभाषिक शब्दों को स्पष्ट करने में डॉ॰ प्रचंडिया को अद्‌भुत सफलता मिली है। वे अत्यंत संक्षेप में संबंधित शब्द को बड़ी कुशलता से व्याख्यापित-परिभाषित कर देते हैं। इस संदर्भ में कुछ उद्धरण इस प्रकार दृष्टव्य हैं

1. कविता में निर्विवाद रूप से कोई वाद है तो वह है मानवहितवाद।[11]

2. वस्तुतः वाद कवि-प्रवृत्ति की व्याख्या है।'[12]

3. अंतस्थ भावनाओं को जाग्रत करने की शक्ति का नाम कवि हैऔर भावनाओं से परिमार्जित मति का नाम कविता है।[13]

4. उपन्यास मानव-जीवन का रसात्मक इतिवृत्त होता है।[14] वाद कवि, कविता एवं उपन्यास के संदर्भ में प्रस्तुत उपर्युक्त पंक्तियाँ न्यूनतम शब्दों में अधिकतम अर्थाभिव्यक्ति की सामर्थ्य व्यक्त करती हैं। डॉ॰ प्रचंडिया की समीक्षा-सृष्टि में यह सूत्रात्मक शैली, अत्यंत प्रभावोत्पादक हैं। जो आशय एक खंड अथवा एक दो पृष्ठों के विस्तृत वक्तव्य में भी स्पष्ट न हो सके, उसे डॉ॰ प्रचंडिया एक-दो पंक्तियों में ही भली-भाँति अभिव्यक्त कर देते हैं। यह उनकी समीक्षा-दृष्टि की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

समालोचना की भाषा के संदर्भ में भी डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया विशिष्ट हैं। प्रायः यह समझा जाता है कि आलंकारिकता केवल सर्जनात्मक साहित्य की निधि है। समालोचना की भाषा आलंकारिकता से मुक्त होनी चाहिए। डॉ॰ प्रचंडिया ने इस भ्रांति का निवारण करते हुए अपनी समीक्षा-सृष्टि में आलंकारिक भाषा के सफल प्रयोग प्रस्तुत किए हैं। आधुनिक हिंदी कविता : परंपरा और परिवेश में अनेक स्थलों पर प्रभावपूर्ण आलंकारिक भाषिक प्रयोग सहज सुलभ हैं। निम्नांकित उद्धारणों से इस तथ्य की पुष्टि होती है

1. नई कविता के नाम पर अकविता, सूर्योदयी कविता, अगीत, तेवरी, क्षणिकाएँ, सीपिकाएँ आदिआए दिन नए-नए आंदोलन उभर रहे हैं। यदि नए कवि अपने शिल्प-विधान और कथ्यों में वैचारिक धरातल पर मानवानुभूति के साथ, मानवीय संवेदनाओं को रागात्मक तत्त्व के साथ प्रस्तुत करेंगे तो निश्चय ही आशाओं का मधुवन फिर से हरा-भरा होगा। आस्था और विश्वास के विविधवर्णी पुष्प खिलेंगे और काव्य की कोकिल अपनी कूक में जनमानस के स्पंदन को अनुप्राणित कर सकेगी।'[15]

2. भारतेंदु साहित्य में नहीं, समाज और राजनीति में भी नवजागरण की पूर्ण चेतना के प्रवर्तक और अमर गायक थे। वस्तुतः कवि चूड़ामणि भारतेंदु का उदय भारतीय नवोत्थान का प्रतीक है। यह पुरुषरत्न हिंदी काव्योद्यान का कल्पवृक्ष है।'[16]

इस प्रकार की आलंकारिक भाषा ने समीक्ष्य समीक्षा-साहित्य में सरसता उत्पन्न करते हुए समालोचना की रुक्षता का परिहार किया है। अब जबकि समीक्षा को भी सृजनात्मक साहित्य की एक विधा के रूप में मान्य किया जा रहा है, तब उसमें भावों का सुसंगत आख्यान करनेवाली ऐसी सुबोध आलंकारिक भाषा भी स्वागत के योग्य है, क्योंकि यह साहित्यप्रेमियों का बाँधती है, उन्हें काव्य-सदृश

आनंद प्रदान कर उनके चित्त को रमाती है। अतएव भाषा के स्तर पर व्यक्त यह लालित्यपूर्ण आलंकारिकता स्पृहणीय है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया की समीक्षा-सृष्टि संतुलित है। उन्होंने न बहुत अधिक लिखा है और न बहुत कम, किंतु जो कुछ लिखा है वह विषयगत नवीनता का संवहन करने के कारण महत्त्वपूर्ण है और स्वागत के योग्य है। उनकी समीक्षादृष्टि तत्त्वान्वेषिणी है और सूक्ष्म पर्यवेक्षण द्वारा कथ्य के तथ्य को निरूपित करने में सर्वत्र सफल है। संक्षिप्तता तथा सूत्रात्मकता उनकी समीक्षा दृष्टि के महत्वपूर्ण आयाम है। आलंकारिक भाषिक प्रयोगों ने उनकी समालोचना सरस बनाई है। अपनी समीक्षकीय प्रतिभा का सर्वोत्तम उपयोग डॉ॰ प्रचंडिया ने साहित्य और समाज के जलते यक्षप्रश्नों के उत्तरों का अनुसंधान करने में किया है, इसलिए भी उनकी समीक्षा-सृष्टि और दृष्टि विशिष्ट है।

संदर्भ

1. हिंदी कविता के प्रमुख वाद, पृ॰ 14
2. वही, पृ॰ 8
3. आधुनिक हिंदी कविता : परंपरा और परिवेश, पृ॰ 8
4. जैनेंद्र के उपन्यास (अंतर्भाव), पृ॰ 9
5. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ : जीवन और साहित्य, पृ॰ 9
6. मध्यकालीन हिंदी संतकाव्य : दर्शन और मूल्यांकन
7. वही, अमुद्रित
8. यशोधरा, पृ॰ 29
9. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ : जीवन और साहित्य, पृ॰ 7
10. मध्यकालीन हिंदी संतकाव्य : दर्शन और मूल्यांकन
11. हिंदी कविता के प्रमुख वाद, पृ॰ 09
12. वही, पृ॰ 09
13. वही, पृ॰ 13
14. जैनेंद्र के उपन्यास, पृ॰ 14
15. आधुनिक हिंदी कविता : परंपरा और परिवेश, पृ॰ 17
16. वही, पृ॰ 23

9, **चैतन्य नगर**
मालाखेड़ी रोड, होशंगाबाद

चंद्रनारायण सक्सेना के नाटकों में हास्य-व्यंग्य

डॉ॰ अशोक उपाध्याय
अध्यक्ष हिंदी विभाग, बरेली कालेज, बरेली

'पारसी नाटक तख्टानी टवरीख' के लेखक डॉ॰ धनजी न॰ पटेल के अनुवार सबसे पहली 'पारसी नाटक मंडली' की स्थापना सन् 1853 ई॰ में अक्टूबर के महीने में हुई। इसके संरक्षक थे दादा भाई नौरोजी और एदलजी नसखान जी मजगाँव वाला। इसमें 'रुस्तम साहेराव' आदि गुजराती नाटकों के साथ 'धनजीगरक' और 'तिरीराम' नामक 'फार्स' प्रायः प्रदर्शित होते थे। इसके कुछ समय बाद एक अन्य नाट्य संस्था 'जोरा स्ट्रियन क्लब' की स्थापना सन् 1858 के आस-पास हुई। इसमें नाट्य-प्रदर्शन के अंतिम छोर पर उपदेशात्मक फार्स रंगदेवता के चरणों में प्रस्तुत करने की व्यवस्था थी। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन मराठी नाटकों में अँग्रेजी से गृहीत फार्स के सफल प्रयोगों से प्रोत्साहित होकर इनके द्वारा इस प्रकार के प्रदर्शन किए गए। पंडित सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार 'प्रहसनों में सबसे भद्दे और अश्लील भड़ैती (फार्स) प्रहसन होते हैं, जिनमें अनेक प्रकार की अश्लील, असंगत तथा निम्न कोटि की मुख-मुद्राएँ, बातचीत या क्रिया के द्वारा हास्य उत्पन्न किया जाता है।'[1]

स्वयं अपने अथवा किसी अन्य व्यक्ति के रूपाकार, वाणी तथा वस्त्र इत्यादि के विकृत रूप को देखकर हृदय में उच्छ्वसित प्रफुल्लता से जिस आनंदप्रदायक मनोभाव की अभिव्यंजना होती है, उसे हास्यस की संज्ञा दी जाती है। हास, परिहास और व्यंग्य इसके स्थाई भाव हैं। व्यंग्य में मानव के आचार-विचार की सदोषता, मूर्खता, अशक्तता तथा सामाजिक एवं राजनीतिक अभावों की आलोचना, निंदा उपहास, ठिठोली, वक्रोक्ति, अन्योक्ति अथवा किसी अन्य माध्यम से की जाती है। जीवन के प्रति व्यंग्यकार की निष्ठा किसी गंभीर साहित्य लेखक से किसी प्रकार कम नहीं होती है। समाज के स्वस्थ्य, शक्ति और उन्नति के लिए तीखा, नुकीला और चटपटा हास्य-व्यंग्य अति आवश्यक है। 'व्यंग्य विश्वदृष्टि युक्त साहित्यकार का समाजधर्मी, यथार्थवादी एवं विशिष्ट भंगिमायुक्त एक ऐसा साहित्यिक अस्त्र है, जिसका प्रयोग वह हर प्रकार के अमंगल एवं कल्याण की स्थापना के लिए करता है।'[2] हास्य-व्यंग्य का सुगम संयोजन केवल हास्य-व्यंग्यात्मक परिस्थिति में ही नहीं होता, पूर्ण भव्यता की उद्भावना से भी होता है। डॉ॰ भानुदेव शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि 'मनुष्य समाज के बंधनों की जकड़ के भीतर ही किसी ऐसी वस्तु को देखना पसंद करता है, जो बंधनों से मुक्त स्वतंत्र ढंग से विचर रही हो, भले इस प्रकार वह हास्यास्पद बन गई हो। दो विपरीत परिस्थितयों के आमने-सामने उपस्थित होने पर जो विषम परिस्थिति पैदा होती है, वह साधारण स्थिति में भी सुंदर हास्य की योजना करती है।'[3]

बीसवीं शताब्दी में पारसी रंगमंच में व्यापक सुधार हुए। अँग्रेजी, मराठी और गुजराती

नाट्यमंचों के प्रभाव से हास्य-व्यंग्यपूर्ण नाट्य-दृश्यों का प्रदर्शन मनोरंजन के एक महत्त्वपूर्ण आयाम के रूप में स्थापित हुआ। यह कार्यसबसे पहले 'हिंदुस्तानी मारलो' के नाम से विख्यात श्री आगाहश्र कश्मीरी के द्वारा अत्यंत चातुर्य-पूर्ण ढंग से किया गया। उन्होंने प्रसिद्ध अँग्रेजी नाटककार शेक्सपियर की नाट्यकला से बहुत प्रभाव ग्रहण करने के उपरांत भी अपने नाटकों में दो स्वतंत्र कथानकों की आयोजना की, जिसमें एक तो गंभीर होता और दूसरा हास्योत्पादक। जनता प्रायः गंभीर कथानक से अधिक हास्यास्पद कथानक को ही पसंद करती। धीरे-धीरे प्रत्येक नाटक में एक हास्यमय कथानक रखने का नियम ही चल पड़ा। समय के साथ यह फैशन इतने जोर से बढ़ा कि जो लोग हास्यपूर्ण कथानक की रचना नहीं कर सकते थे, वे किसी दूसरे से प्रहसन लिखाकर अपने नाटकों के साथ जोड़ दिया करते थे।'[4] इसका ऐतिहासिक उदाहरण है श्री शिवनारायण सिंह द्वारा निर्मित 'कलियुगी साधु' प्रहसन का श्रीनंदकिशोर लाल वर्मा के महात्मा विदुर नाटक में उपयोग।

धार्मिक नाटकों की लोकप्रियता ने पारसी रंगलोक में पंडित राधेश्याम कथावाचक और पंडित नारायण प्रसाद बेताव की सुधारवादी दृष्टिकोणयुक्त उपदेश प्रदान करने वाली नाट्यपरंपरा की स्थापना की। हास्य-व्यंग्य इसमें भी आगाह हश्र कशमीरी जैसे ही थे। श्री चंद्रनारायण सक्सेना इसी नाट्य-परंपरा के विख्यात नाटक-लेखक और अभिनेता थे। इनका बचपन का नाम था सोना, जो कि संभवतः संयोगवश पारसी रंगमंच के गुजराती नाटककार श्री एदलजी खोरी द्वारा रचित कामावती नामक हिंदूकथा पर आधारित नाटक सोना न मूलनी खुरशेद के प्रारंभिक शब्द सोना से मेल खाता था। इनके सुपुत्र श्री जे॰एन॰ सक्सेना ने 'जब-जब याद आया' की पांडुलिपि में लिखा है कि यह बात सन् 1941 या 1942 की होगी। इनकी ससुराल पैतृक घर के पास में ही थी। ये कभी-कभी सुबह घर से जाते समय मुझे अपनी नानी के पास भेजते कि जाकर मुझिया से कहो कि सोना ने कुछ रुपए मँगाए हैं। मैं भागता हुआ जाता और मुझिया से कहता-पापा ने कुछ रुपए मँगवाएँ हैं। यह सुनकर मुझिया मुस्काती और तकिए के नीचे से एक सौ रुपए का नोट निकालकर दे दिया करतीं। इतना बड़ा नोट मैंने पहली बार देखा।'[5] इसके आगे उन्होंने यह भी लिखा है कि 'मैं भगता हुआ पिताजी के पास पहुँचा और वह सौ रुपए का नोट पिताजी को दिया और फिर मैंने नानी का संदेश पिताजी को दिया कि मुझिया ने आपके लिए कहा है कि सोना से कहियो नैक अपनो मुखड़ा तो दिखाया जाएँ। तो पिता जी ने कहा मुझिया से कहिओ कि सौ रुपए में तो मुखड़ा नहीं दिखाएँगे, पाँच सौ रुपए दें तो मुखड़ा दिखाएँगे। इस पर हमारी दादी, मेरी माँ और मुस्कराते हुए चले गए।'[6] श्री चंद्रनारायण जी कुशल नाट्य-अभिनेता भी थे। इनके वाकूपटुतापूर्ण संवाद बड़े ही मनोरंजक तथा स्वाभाविक होते थे। हास-परिहासपूर्ण पात्रों के चरित्र वह बड़ी कुशलता से अभिनीत करते थे। दर्शक उनकी उत्तर-प्रतिउत्तर शैली से बहुत प्रभावित होते थे। श्री जे॰एन॰ सक्सेना ने इस संदर्भ में लिखा है कि मेरे पिताजी की बाएँ हाथ की मुट्ठी बंद थी जन्म से, जो खुलती नहीं थी। यह चंद्रग्रहण का प्रभाव था, हाथ की उँगली पूरी न होकर छोटी थी। एक बार स्टेज पर दूसरे पात्र ने उनसे यह पूछ लिया 'आपके हाथ की उँगली कैसी है?' सब लोग जो नाटक देख रहे थे हँसने लगे, पिताजी ने फौरन जवाब दिया, जनाब हम जागीरदार परिवार से हैं और हमें बचपन से बटेर पालने का शौक था। दोनों हाथों में मुठ्ठी में बाँधे रहते थे और उनसे बातें करते थे और खेलते रहते थे। बस एक मर्तवा रात

को सोते समय बटेर मुठ्ठी में बाँधकर सो गए। सुबह जब आँख खुली तो देखा बटेर ने हमारी उँगली कुतर ली। तबसे हमारा बायाँ हाथ ऐसा हो गया। यह सुनकर वह किरदार, जिसने उनसे यह पूछा था, भौंचक्का रह गया और आगे बात करने की हिम्मत ही समाप्त हो गई। नाटक देख रहे लोगों ने खूब ताली बजाई और हँस पड़े।'[7] सक्सेना साहब का यह उत्तर इतना अच्छा माना गया कि नाटक-समाप्ति के उपरांत स्वयं कमिश्नर साहब ने इन्हें स्पेशल इनाम दिया।

डॉ॰ एस॰पी॰ खत्री ने लिखा है कि 'आधुनिककाल वाक्चातुर्य का काल है। वाक्चातुर्य एक श्रेष्ठ कला है, जिसमें विद्वत्ता तथा शब्दज्ञान का विशेष हाथ रहा है। व्यंग्य, श्लेष तथा उपहास इसके प्रधान अंग हैं। व्यंग्य के तीखे वाण छोड़कर, श्लेष का शब्दिक प्रयोग कर तथा उपहास का वातावरण उपस्थित कर कथोपकथनप्रधान प्रहसन लिखे गए हैं।[8] श्री चंद्रनारायण जी का प्रसिद्ध नाटक है द्रौपदी-वस्त्रहरण। इसमें विदुर और शकुनि के वार्तालाप हास-परिहास की दृष्टि से अवलोकनीय हैं। शकुनि धतराष्ट्र की पत्नी गांधारी के भाई हैं और विदुर धृतराष्ट्र के भाई हैं। अतः दोनों में जीजा साले का रिश्ता है। श्लेष के शाब्दिक प्रयोग की दृष्टि से विदुर के निम्नलिखित कथोपकथन देखिए

जब हृदय व्यथित हो, व्याकुल हो, अपनों से सुखद दिलासा ले।
मिष्ठान कहीं पर बँटता हो तो आगे बढ़कर हिस्सा ले
मैंने यह कहा शकुनि जी से मीठा और शुद्ध बता साले।
यह समझे मैं यह कहता हूँ कि मेरी बात बता साले।[9]

एक अन्य कथोपकथन में भी विदुर का यह उपहास बड़ा मजेदार लगता है कि 'जैसे सावन के अंधे को सर्वत्र हरियाला दिखाई देता है, वैसे ही तुम्हें भी नीति के वाक्यों में साला दिखाई देता है। शकुनिजी, बुरा क्यों मानते हैं। जैसे तरकारियों में गरम मसाला वैसे ही संबंधियों में साला।[10] शकुनि अराजक, अशक्त, मूल्यविहीन, स्वार्थसाधना में तत्पर, प्रशासनिक व्यवस्था में सांस्कृतिक विघटन से जुड़ी सामर्थ्यविहीन शासक के लाभ का प्रतीक है। धृतराष्ट्र विवेकहीन शासक की न्यायविहीन जीवन दृष्टि का उदाहरण हैं। वह भी संभवतः हास्य की स्थिति उत्पन्न करने के लिए ही 'यही तो मैं भी कहता हूँ'[11] की शाब्दिक आवृत्ति या 'तकिया कलाम' यथावसर बोलते रहते हैं। किसी व्यक्ति, संस्था अथवा समाज की दुर्बलता पर आक्षेप कर उसका विरोध उपहास में किया जाता है। इस प्रकार व्यंग्य अथवा उपहास साहित्यकार के हाथ का वह चाबुक है, जिसकी मार से व्याकुल होकर व्यक्ति, संस्था अथवा समाज सही मार्ग पर चलने को बाध्य किया जाता है। यह सुधारक का कोरा उपदेश नहीं है, जिसे सुनकर भुला दिया जाता है, यह वह तीखा वाण है, जो मर्म में सीधा घुसता है और इसका शिकार असहाय तिलमिलाता रह जाता है।[12] प्रायः नाटकों में चार प्रकार के विदूषक दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हें मूर्ख, विनोदी, धूर्त तथा व्यंग्यवक्ता का नाम दिया गया है। द्रौपदी वस्त्रहरण नाटक में विदुर यदि व्यंग्यवक्ता हैं, तो नंदा नाई धूर्त है। वह कौरव युवराज दुर्योधन का मुँहलगा सेवक है। उसके अनुसार सारी करामात उस्तरे की है सरकार। बुड्ढे को जवान जवान को बुड्ढा बना सकता हूँ। सोते को जगा सकता हूँ, जागते को सुला सकता हूँ। सारी कयामत उस्तरे की है सरकार।[13] वह दुर्योधन के संकेत पर उसके मामा शकुनि की मूँछें पहले तो छोटी-बड़ी कर देता है। शकुनि जब चपत मारकर उसे डाँटता है, तब वह उत्तर देता है कि देखिए राजकुमार, अगर आप चपटें बजाएँगे तो मैं भी उस्तरा लगा दूँगा। अभी तो लंगूर बने हो फिर बनमानुस

बना दूँगा[14] धीरे-धीरे वह उसकी पूरी मूँछें साफ कर देता है और एक टिकिया बालसफा साबुन की भी देता है। इसे पानी में घोलकर सिर पर लगाने के कारण शकुनि मामा के सिर के सभी बाल साफ हो जाते हैं। दुर्योधन उसे डाँटते हुए कहता है

इनके सिर का बाल तो हर एक पखेरू हो गया।
घुट गई है चाँद इनका सिर कसेरू हो गया।[15]

मूछों का महत्त्व प्रदर्शित करनेवाला नंदा का निम्नलिखित गाना भी सबको को खूब हँसाता है। हास्य की दृष्टि से इसका महत्त्व असंदिग्ध है। इसमें दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं'बजर बट्टू' और 'चपर गट्टू' एक का अर्थ है फल का काला गोला बीज तथा दूसरे का तात्पर्य है अभागा, विपत्ति से ग्रस्त

करूँ कैसी मैं बलमा बजर बट्टू हो गए
जिस तरह तमाखू बिना अच्छा लगे न पान
वैसे ही लगे ही जड़ा बिन मूँछ का जवान।
बैठे बिठाए बलमा चपर गट्टू हो गए।[16]

सत्ता-प्राप्ति के ईर्ष्याजनित घृणास्पद एवं निर्मम आचरण को विश्वमित्र के माध्यम से सफलतापूर्वक प्रदर्शित करनेवाले सत्यवादी हरिश्चंद्रनाटक में नक्षत्र और उसकी पत्नी विचित्री का प्रहसन है। नक्षत्र विश्वमित्र का प्रिय शिष्य है। वह सदैव स्वास्थ्य बढ़ाने के लिए भंग का गुल्ला चढ़ाता रहता है। उसका कथन है

जब तेज बढ़े मनमैल घटे दे रंग भग का लोटा
सब रोग घटै सब लोग मिटै करे भंग अंग को मोटा।
जब भंग दूध में घोला,
तब भंग बना अनमोला
हर बार बोल बम भोला
उठ भोर नहा के गंग चढ़ा के भंग जमा दे रंग
दिखा दे जंगी को कूँड़ी सोंटा।[17]

यहाँ पर विश्वमित्र स्वभिमानयुक्त दृढ़ प्रतिज्ञापूर्ण पूर्ण धर्माचरणप्रिय राजपरिवारों के विरुद्ध कुचक्र रचकर सत्ता हथियाने वाले वर्ग के प्रतीक हैं। उनका प्रिय शिष्य नक्षत्र निश्चित रूप से इस वर्ग की अविवेकपूर्ण स्वार्थनीति तथा प्रशासनिक अक्षमता को उजागर करनेवाला हरफन कामिल वंदा[18] जैसा वेषधारी प्रतिनिधि है। वह इस सच्चाई को तत्कालीन प्रशासन के भ्रष्टाचरण के संदर्भ में हँसी-हँसी में बहुत अच्छे प्रकार से स्पष्ट करता है

कुर्सी पै बैठूँगा ऐ हूँगा,
दौलता समेटूँगा सुबह-शाम,
दीवान बहादुर बनकर घर लूँगा जर लूँगा,
घर रिश्वत से भर लूँगा
फिर चाल चलूँ मैं टनके।
मैं स्वारथ पाऊँ मन के।[19]

प्रशासनिक शोषण नीति का युगीन यथार्थ और मन के स्वार्थ प्राप्त करने की कुपात्रोंचित महत्त्वाकांक्षा को स्पष्ट करनेवाली उपर्युक्त पंक्तियाँ नाटककार की निर्भीकतापूर्ण सुधारवादी नीति को प्रदर्शित करती हैं। हास्य-व्यंग्य का यह सशक्त प्रयोग तत्कालीन शासकवृंद की कुशाासनयुक्त अविवेकशीलता को तब और व्यापकता के साथ उजागर करता है, जब नक्षत्र को एक दिन के लिए राजा बना दिया जाता है। वह सर्वप्रथम कर्म तथा कर्मफल के सिद्धांत के अनुरूप पुरुषार्थ का विरोध करते हुए सत्यसागर नामक प्रधानमंत्री जी को आदेश देता है कि मैं चाहता हूँ कि हमारे देश से निर्धनता मिट जाए, राजा और रंक का भेद मिट जाए, संपत्ति का ऐसा आबंटन हो कि बराबर धन मिल जाए।[20] उसकी मान्यता है कि इतने बड़े राजा हरिश्चंद्र के राज्य में एक मंत्री। इसीलिए देश में निर्धनता फैली हुई है। इसे दूर करने के लिए कम से कम पाँच मंत्री, पाँच राज्यमंत्री तथा पाँच उपमंत्री होने आवश्यक हैं। इनका काम होगा रात्रि में नृत्यशालाओं में गाना सुनें, नाच देखें, सभाओं में भाषण दें, संस्थाओं का उद्घाटन करें, अपने भाई-भतीजों को शासन की सेवा में पद दिलाएँ[21] सुशासन को कुशासन में परिवर्तित करने की भोग-विलासपूर्ण स्थिति पर किया गया यह व्यंग्य नाटककार की निर्भीकता तथा युगचेतना के प्रति जागरूकता का परिचायक है। उसकी विचित्री उसे भूत बताकर परेशान करने की योजना बनाती हुई इस स्थिति पर अत्यंत स्पष्ट टिप्पणी करते हुए कहती है कि राजाजी ने जबसे स्वप्न में राज-पाट मुनि विश्वामित्र को दे दिया है, तबसे पतिदेव का मस्तिष्क सातवें आसमान पर पहुँच गया है। तरह-तरह के बहाने बनाकर धन उगाहते हैं। मुनिवर को राजा और अपने को उनका सचिव बताते हैं। औरों की क्या कहूँ, मुझे भी खातिर में नहीं लाते हैं। अमावस्या कहती हूँ तो वे पूर्णमासी बताते हैं। मैं ध्रुपद गाऊँ तो वे मल्हार सुनाते हैं। बात-बात में रोब जमाते हैं।[22] राजमद का ऐसा व्यंग्यात्मक रूप निरंकुश राजतंत्र की धूर्तता का प्रमाण है। वैसे नक्षत्र है पूर्णतया बौड़म या 'बोमोलोकस' यूनान में हास्य भाषण के सिद्धांत के अनुसार जिस मनुष्य का विनोद औचित्य या अनुपात की दृष्टि से अनावश्यक, शीलहीन, फूहड़, अश्लील और ईर्ष्यापूर्ण होता था, उसे या उस जैसे लागों को 'बोमोलोकस कहते थे, जो कला ही नहीं या जिनका चरित्र सामाजिक दृष्टि से दोषपूर्ण या फूहड़ होता था। साधारणतः अपहास या ईर्ष्यापूर्ण परिहास करनेवाले अथवा भँड़ैती के द्वारा हास्य उत्पन्न करनेवाले भाँड़ों या विदूषकों को भी बोमोलोकस कहते थे, जिसे अँग्रेजी में बेले डाहन कहते हैं।[23] नक्षत्रा विश्वामित्र जी द्वारा दिए गए दाढ़ी के बाल रूपी मुकुट को कमरे में और जटा के बाल रूप तलवार को सिर पर धारण करके उल्टा-पुल्टा करने में कुशल विदूषकों के समान हास्य उत्पन्न करने में भी प्रवीण है। उसकी पत्नी विचित्री ने ठीक ही कहा है

कमर में छत्र सिर पै खंग यह बानक बहुत भाया
बने राजा मगर राजा तुम्हें बनना नहीं आया।[24]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्री चंद्रनारायण सक्सेना के नाटकों में हास्यरस का व्यवस्थित एवं सौष्ठवपूर्ण प्रयोग उनके व्यंग्यात्मक कथोपकथनों तथा पात्रों के चरित्र के माध्यम से प्रशंसापूर्णता की स्थिति में स्थापित है। इसलिए वंसमोर नंदा और वंसमोर नक्षत्र

मैं हूँ उँची पदवी वाला बना हूँ मैं दीवान
बड़ी आन-बान शान क्या ही न्यारी है

यह कुर्त्ता धोती और लंगोटी फेंकूँ सारे नाले में
यह पेंची पटका और अंगरखा लगता अच्छा
सजीले महलों में रहूँ।
रंगीले लोगों में फिरूँ खाऊँ मैं बर्फी कलाकंद
उड़ाऊँ मौज और आनंद।[25]

संदर्भ

1. पंडित सीताराम चतुर्वेदी, अभिनव-नाट्यशास्त्र, प्रथमखंड, पृ॰ 608
2. डॉ॰ आनंदप्रकाश गौतम, हिंदी के व्यंग्य निबंध, पृ॰ 06
3. डॉ॰ भानुदेव शुक्ल, भारतेंदुयुगीन हिंदी नाट्य-साहित्य पृ॰ 143
4. डॉ॰ श्रीकृष्णलाल, आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास, पृ॰ 212
5. श्री जे॰एन॰ सक्सेना, जब जब याद आया, पांडुलिपि पृ॰ 8
6. वही, पृ॰ 9, 10
7. वही, पृ॰ 5, 6, 7
8. डॉ॰ एस॰पी॰खत्री, नाटक की परख, पृ॰ 255
9. चंद्रनारायण सक्सेना, द्रौपदी वस्त्रहरण, पृ॰ 22, 69
10. वही, पृ॰ 22
11. वही, पृ॰ 54, 55, 56, 58, 67, 68, 71
12. डॉ॰ भानुदेव शुक्ल, भारतेंदुयुगीन हिंदी नाट्यसाहित्य, पृ॰ 144
13. चंद्रनारायण सक्सेना, द्रौपदी वस्त्रहरण, पृ॰ 63
14. वही, पृ॰ 64
15. वही, पृ॰ 65
16. वही, पृ॰ 66
17. चंद्रनारायण सक्सेना, सत्यवादी हरिश्चंद्र नाटक, पृ॰ 11
18. वही, पृ॰ 14
19. वही, पृ॰ 14
20. वही, पृ॰ 42
21. वही, पृ॰ 43
22. वही, पृ॰ 22
23. पंडित सीताराम चतुर्वेदी, अभिनव नाट्यशास्त्र, प्रथम खंड पृ॰ 223
24. चंद्रनारायण सक्सेना, सत्यवादी हरिश्चंद्र नाटक, पृ॰ 40
25. वही, पृ॰ 38, 39

6/7 **खन्ना भवन**
सुभाषनगर, बरेली (उ॰प्र॰)

साठोत्तरी हिंदी साहित्य में दलित विमर्श का प्रतिपाद्य व दलित चेतना

डॉ॰ राजाराम
सहायक प्रोफेसर हिंदी
राजकीय महाविद्यालय, भटु कलाँ

दलित साहित्य और दलित-विमर्श मराठी साहित्य का विशिष्ट और सशक्त आविष्कार है। मराठी दलित साहित्य ने दलित-विमर्श को समग्र भारतीय साहित्य में प्रचारित-प्रसारित किया और साहित्य को विशिष्ट एहसास भी दिया।

दलित का अर्थ 'दलित' याने दला गया, दमित, उपेक्षित सवर्ण समाज द्वारा अस्वीकृत, धिक्कारित, अछूत समाज है। डॉ॰ श्यौराजसिंह बेचैन दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं'दलित वह है, जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।'[1]

कँवल भारती का मानना है कि 'दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।'[2]

भारतीय समाज के एक बहुत बड़े हिस्से को समाज ने हमेशा दुतकारकर अपमानित किया और मनुष्य होते हुए भी उसके साथ पशु से बदतर व्यवहार किया है। यह एहसास वेदनामय है और यह वेदना एक व्यक्ति की नहीं पूरे दलित समाज की है। इस वेदना की रचनात्मक अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य या दलित-विमर्श है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में घटित होनेवाली अच्छी-बुरी सारी घटनाओं को साहित्य के द्वारा समाज के सामने रखा जाता है। वे घटनाएँ समाज के सामने साहित्य के माध्यम से भले ही देर से आती हों, पर जब समाज के सामने आती हैं, तो उनसे समाज प्रभावित अवश्य होता है।

साहित्य 'सामाजिक यथार्थ को इस प्रकार चित्रित करता है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो और नई सामाजिक शक्तियों के संघर्षों, युयुत्सा और आस्था को बल मिले।'[3]

यद्यपि साहित्य का क्षेत्र विस्तृत होता है, पर उसका मूल केवल मानव-जाति के साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि को समाज के सामने रखना होता है। जिस समय समाज में जैसा घटित होता है, उसका वैसा ही रूप कलाकार की भावनाओं और संवेदनाओं में घुलकर कला के रूप

में समाज के सामने आता है। भारतीय संस्कृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जो चार वर्ण मिलते हैं। इनमें हमेशा संघर्ष चलता रहा है। विशेष रूप में दलित और शोषित वर्ग जब-जब भी विशेष कहे जानेवाले समुदाय की ओर से घोर उपेक्षा का शिकार हुआ, तब-तब इन दबे-पिसे लोगों की बस्ती, टोली या कबीले के आस-पास के परिवेश में उनकी कसक, पीड़ा और दर्द-भरी गूँज की आवृत्ति किसी-न-किसी रूप में अवश्य ही अभिव्यक्त हुई है।'[4]

दलित साहित्यकारों, दलित-विमर्शकारों द्वारा साठोत्तरी हिंदी साहित्य में दलित-विमर्श को सशक्त अभिव्यक्ति देने वाले एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन का दिया गया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, डॉ॰ के॰के॰ वियोगी, कौशल्या बैसंत्री, कँवल भारती, डॉ॰योराजसिंह बेचैन आदि इस आंदोलन के प्रमुख सूत्रधार हैं।

संघर्षशील जीवन में भोगा गया यथार्थ, गरीबी का दंश, तिरस्कार आदि वेदना को अनेक दलित लेखक-लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा लेखन से साठोत्तरी हिंदी साहित्य में उद्‌घाटित किया है।

'जूठन' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), मैं भंगी हूं' (भगवानदास) 'अपने-अपने पिंजरे' (मोहनदास नैमिशराय), 'दोहरा अभिशाप' (कौशल्या बैसंत्री), 'उठाइगीर' (लक्ष्मण गायकवाड़) 'झोंपड़ी से राजभवन' (माताप्रसाद), 'घूँट अपमान के' (सूरजपाल), 'मेरी मंज़िल मेरा सफर (डॉ॰ डी॰आर॰ जाटव) 'मेरा गुनाह' (श्रवणकुमार), 'हमारा जीवन' (बेबी कांबले), सहित श्योराज सिंह बेचैन की आत्मकथाएँ इनमें प्रमुख हैं।

दलितवर्ग अशिक्षित, शोषित और उपेक्षित होने के बावजूद अपने कर्म के प्रति ईमानदार अवश्य होता है। पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी कहते हैं, 'दलित जनसाधारण के पास ईमान है, सच्चाई है, शौर्य-धैर्य है और सबसे बड़ी बात है निरंतर कर्मशील रहने की शक्ति व साहस। इसीलिए दलित जनसाधारण रेल की पटरियाँ बिछा सकता है, समुद्र को बाँध सकता है, अत्याचारियों के वैभव को उजाड़कर उसके हौसलों को पस्त कर सकता है, रेगिस्तान को हरा-भरा बना सकता है।'[5]

साठोत्तरी हिंदी साहित्य का दलित-विमर्श दलितवर्ग की दशा का यथार्थ चित्रण कर उनकी समान मानवीय गरिमा बहाली का समर्थक है।

दलित-विमर्श के सबसे सशक्त हस्ताक्षर ओमप्रकाश वाल्मीकि का दलित-विमर्श एक ऐसे यथार्थ से साक्षात्कार कराता है, जो हजारों सालों तक रचनाकारों की रचना का विषय ही नहीं बना। उन्होंने उफनती पीड़ा, अँधेरे कोनों में व्याप्त वेदना, अपमानित जीवन का संत्रास, दारुण गरीबी, विवशता, दीनहीन होने की वेदना को रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है।

डॉ॰ रामगोपाल सिंह के अनुसार, 'गाँवों में दलितों का जीवन पशुवत् होता है। वे दिनभर अपने मालिकों के खेत पर काम करते हैं और शाम को खाना खाकर सो जाते हैं। उनसे उत्पन्न होने वाले बच्चे भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी क्रम को दुहराते रहते हैं। उन्हें समय नहीं मिलता कि वे शिक्षा प्राप्त कर सकें और न ही इतनी मजदूरी मिलती है कि अपने बच्चों को बिना काम के खिला सकें और उन्हें पढ़ने के लिए स्कूल भेज सकें, जिससे वे संस्कृति, साहित्य और कला के ज्ञान से तो वंचित रहते हैं, साथ ही अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक नहीं हो पाते और न ही अपने साथ होने वाले अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष कर पाते हैं।'[6]

दलित-विमर्श वास्तव में दलितों की उस क्षेत्र की समस्याओं को उठाता है, जहाँ किसी की दृष्टि नहीं पहुँच पाती।

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा 'जूठन' में लिखते हैं, 'दलित जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभव-दग्ध हैं, ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज-व्यवस्था में हमने साँसें ली हैं, जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। दलितों के प्रति असंवेदनशील भी हैं।'[7]

दलित-विमर्श दलितों की गहन मानसिक वेदनाओं और अपमानों के घूँट पी जाने की विवशता को साहित्य में अभिव्यक्त कर कथित उच्च समाज की नग्नता को समाज के सामने प्रस्तुत करने का साहस प्रस्तुत करता है। दलित होने के नाते भोगी गई पीड़ा के एक दारुण प्रसंग का ओमप्रकाश वाल्मीकि जी इस प्रकार वर्णन करते हैं, 'इस पीड़ा का एहसास उन्हें कैसे होगा, जिन्होंने घृणा और द्वेष की बारीक सुइयों का दर्द अपनी त्वचा पर कभी महसूस नहीं किया? अपमान जिन्हें भोगना नहीं पड़ा? वे अपमान-बोध को कैसे जान पाएँगे? रेतीले ढूह की तरह सपनों के बिखर जाने की आवाज नहीं होती है, भीतर तक हिला देनेवाली सर्द लकीर खिंच जाती है जिस्म के आर-पार। कभी-कभी लगता है जैसे क्रूर और आदिम सभ्यता में साँस लेकर पले-बढ़े हैं।'[8]

दलित-विमर्शकार थोथी व्यवस्था के सामने प्रश्न कर अपना (दलितों का) अधिकार माँगने लगे हैं। ब्राह्मण की गरीबी को महिमामंडित करने वाले और दलितों को अमानवीय परिस्थितियों में धकेलने वाले मास्टर जी से ओमप्रकाश वाल्मीकि जी पूछते हैं 'अश्वत्थामा को तो दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का माँड। फिर किसी भी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया? किसी महाकवि ने हमारे जीवन पर एक भी शब्द क्यों नहीं लिखा?'[9]

साठोत्तरी हिंदी साहित्य का दलित-विमर्श दलितों को संघर्ष जारी रखने को प्रोत्साहित करता है। 'दादा फौजी' उपन्यास के भगवानसिंह विद्रोही युवक अजय को समझाते हुए कहते हैं'हतोत्साहित होने की जरूरत नहीं, हजारों साल से हमारे पूर्वज दोहरे रूप से उत्पीड़ित रहे है एक शासकवर्ग से दूसरे हिंदू सवर्णों से, फिर भी हमारे पूर्वज टूटे नहीं। स्वयं के बलबूते अपने-आपको जीवित रखा। छोटे-से-छोटा काम किया, लेकिन अपने को नष्ट नहीं होने दिया। ये लोग नफरत करते हैं, करने दो, नफरत घुन की तरह उसी लकड़ी को खा जाती है, जिसमें लगती है। आप उनकी इस तरह की बातों पर ध्यान ही न दो और अपने काम को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते रहो।'[10] 'धरती धन न अपना' उपन्यास में जगदीशचंद्र ने पंजाब के गाँवों में दलित जीवन के विविध त्रासद पहलुओं को विस्तार से अंकित किया है।

दलित जीवन के त्रासद रूपों में सर्वाधिक त्रासद है इन तमाम शारीरिक, मानसिक यंत्रणाओं को सहते हुए उनके भीतर चेतना का अभाव और परस्पर फूट। उपन्यास में जब भी कोई चौधरी किसी चमार को गाली देता है, उसे पीटता है तो बाकी चमार उत्पीड़ित का साथ देने के बजाय दहशत के कारण चुप रहते हैं। कोई-कोई तो चौधरियों को ऐसे उत्पीड़न के लिए उकसाता भी है जैसेमंगू।

दलित-विमर्शकारों ने प्रतिपादित किया है कि दलित समाज अपने अंतर्विरोधों के बीच जीता है। उसके ये अंतर्विरोध जितने उसके अपने हैं, उतने ही बाहरी। दबाव और दमनात्मक रवैया सांस्कृतिक ढाँचे का भी हिस्सा है। साठोत्तरी हिंदी साहित्य में दलित-विमर्शकारों ने दलितों के आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन के कारणों को समग्रता में देखा है।

साठोत्तरी दलित-विमर्श के प्रतिपाद्य को कई रूपों में देखा जा सकता है

1. सामाजिक स्तर पर छुआछूत के व्यवहार में।

2. आर्थिक रूप में उनके श्रम के शोषण व निम्नमानव के स्तर तक उन्हें पहुँचाने में।
3. दलित स्त्रियों के यौन-शोषण द्वारा उन्हें मानसिक रूप से प्रताड़ित करने में।
4. दलित-समाज में चेतना का अभाव आपसी फूट व शोषकों से संघर्ष न कर पाने की त्रासदी का चित्रण भी दलित-विमर्शकारों ने किया है।
5. दलित-समाज की अपनी उत्पीड़क संस्कृति को भी दलित-विमर्शकारों ने अभिव्यक्त किया है।
6. दलित-विमर्श में दोहरी लड़ाई का प्रतिपादन हुआ हैअपने घोर दारिद्रय में लिपटी बस्तियों और उनमें छाए घोर अंधकार से तथा दूसरी और इस दलित-जीवन से बाहर की उस व्यवस्था से, जिसने उनके जीवन में यह जहर घोला है, और सामाजिक विषमताओं और भेदभाव को जन्म दिया है।

इस प्रकार दलितजीवन की अनवरत त्रासदी दलित-विमर्श का प्रतिपाद्य है। प्रतिकार सामाजिक भेदभावों का चित्रण, सवर्णों के पाखंड, दलित स्त्रियों पर यौनिक अत्याचार, अंतर्जातीय विवाह जैसे चिर-परिचित मुद्दों पर दलित-विमर्शवादी साहित्य केंद्रित रहा है।

दलित लोगों की जिजीविषा और जीवन कमाल का है, जो इन अमानवीय परिस्थितियों में जीने के बावजूद अपने को इंसान बनाए रखते है। ऐसे ही एक शानदार चरित्र 'अम्मा' का विरुद गाते हैं ओमप्रकाश वाल्मीकि। 'अम्मा' कहानी में वे अम्मा का चरित्र ही नहीं उकेरते, वे दलित नैतिकता की अवधारणा भी प्रस्तुत करते हैं। यह धर्म-आधारित नैतिकता नहीं है, बल्कि श्रम से उपजी स्वाभिमान चालित नैतिकता है।

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' के आत्मकथ्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी रचनात्मक प्रतिबद्धता के बारे में लिखते हैं, 'मेरे सामने वे तमाम लोग प्रश्न चिह्न बनकर खड़े है, जो मेहनतकश हैं शोषित, पीड़ित और दलित है, जिन्होंने भारतीय समाज-व्यवस्था का निकृष्टतम रूप चक्रवाती झंझावातों की तरह सहा है, उनकी बेबस चीख़ों ने मुझे हमेशा झिंझोड़ा है। कहानी हो कविता, मैं अपने ही शब्दों से क्षत-विक्षत हुआ हूँ। हिंदी साहित्य की सामंती ब्राह्मणवादी प्रवृत्तियों ने जिन विषयों को त्याज्य माना, जिन्हें अनदेखा किया उन पर लिखना मेरी प्रतिबद्धता है।'[11] वस्तुतः यही समस्त दलित-विमर्श की प्रतिबद्धता और उसका प्रतिपाद्य है। दलित-विमर्श समाज-सापेक्ष है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावना को सर्वोपरि मानता है। डॉ॰ पानतावणे दलित साहित्य की अंतःचेतना को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि 'दलित साहित्य हमारे समाज का दर्पण है।' जो हमने देखा है, अनुभव किया, भोगा, जाना, समझा उसका अंकन उत्कटतापूर्वक हुआ है। दलित्व का निर्मूलन हमारे साहित्य का हथियार है। इसलिए सर्वव्यापी क्रांति का यह आह्वान करता है।'[12]

निष्कर्ष :

इस प्रकार दलित-विमर्श समाज में अन्याय, शोषण, अत्याचार आदि से पिसते दलित-वर्ग में एक नई चेतना भरता है, उन्हें उनके अधिकारों के प्रति संघर्ष करने की प्रेरणा देता है। दलित-विमर्श दलितों को यह याद कराने का प्रयास करता है कि उसने जो संघर्ष किया है, वह अपने पूरे वर्ग को शोषण, अत्याचार एवं अन्याय से मुक्ति का संघर्ष है। हिंदी का दलित-विमर्श दलितों की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करता है और शिक्षा व संघर्ष द्वारा इनसे निबटने की राह सुझाता है।

दलित-लेखन या दलित-विमर्श चाहे वह किसी भी विधा के रूप में सामने आया है, वह सवर्ण समाज पर जारी श्वेतपत्र-सा लगता है। दलित-समाज प्रतिबंधों, अवरोधों, निषेधों और वंचनाओं के बीच जीने का अभ्यस्त रहा है, लेकिन उसका आक्रोश लेखन से सामने आया और जनमानस उद्वेलित हुआ। साठोत्तरी हिंदी साहित्य में दलित-विमर्श की यही प्रमुख उपलब्धि है। यदि कुल मिलाकर दलित-विमर्श पर चर्चा करते समय सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक संदर्भ तलाशे जाएँ तो सभी का मूल स्वर मुख्य धारा से अलग रहने की छटपटाहट अभिव्यक्त करता है। साठोत्तरी हिंदी साहित्य का दलित-विमर्श अपना वृत्तबिंदु मनुष्य को मानता है, दलित-वेदना, दलित-साहित्य की जन्मदात्री है। वास्तव में यह बहिष्कृत समाज की वेदना है। आज का दलित अपनी पहचान के लिए अपने स्वाभिमान के लिए सर उठाकर, सीना तानकर संघर्ष कर रहा है, तथापि उसके मन का ग्लानिभाव उसको अपनी नजरों में शर्मसार करता रहा है। दलित साहित्य आंदोलन और दलित मुक्ति-आंदोलन एक-दूसरे के पर्याय के रूप में जन्मे आंदोलन हैं। दलितमुक्ति-आंदोलन, जो सामाजिक स्तर पर सक्रिय था, उससे प्रेरणा लेकर दलित साहित्य आंदोलन साहित्यिक क्षेत्र में दलित-विमर्श के रूप में उभरा। साठोत्तरी हिंदी साहित्य की एक विशिष्ट देन है, दलित-विमर्शवादी साहित्य।

दलित साहित्य में व्यक्त होने वाला अनुभव मौलिक अनुभव है। इस अनुभव की मुख्य प्रेरणा है, स्वतंत्रता। 'दलित-विमर्श' उस विद्रोह का उन्मेष है, जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरुद्ध नहीं बलिक 'स्व' की खोज में निकले हुए एक पूरे समाज का पूर्व परपंराओं से विद्रोह एवं अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रयास है। दलित साहित्य के विचारक, चिंतक और लेखक डॉ॰ ताराचंद खांडेकर के अनुसार दलित-साहित्य केवल विद्रोह, प्रतिकार या प्रतिशोध नहीं है, या केवल नकार या निषेध नहीं है, बल्कि जो कुछ मंगल और शुभ है, उन सबकी निर्मिति के लिए यह पूर्व परंपराओं से विद्रोह है।' दलित साहित्य का 'वृत्त स्थान' मनुष्य है। धर्म की साजिश द्वारा छीनी हुई प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करने के लिए यह साहित्य प्रतिबद्ध है।

दलित साहित्य मानवतावादी साहित्य है। जो लोग उसे मानवतावादी न मानकर समाज को विभाजित करने वाला जातिवादी साहित्य मानते हैं, उन पर यह कहावत खरी उतरती है'जिसके पाँव न फटे बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई'। जिन्होंने अपमानबोध, लाचारी, अभाव, दारिद्रय, अवहेलना और त्रासद जीवन के अनुभवों की दाहकता को झेला नहीं हैं, वे किस आधार पर इस मानवतावादी साहित्य का विरोध कर सकते हैं। दलित-विमर्शवादी हिंदी साहित्य ने दलित, शोषितों के प्रति जातिवादी और भेदभावपूर्ण व्यवहार करने वाली कथित सवर्ण जातियों की घिनौनी प्रवृत्तियों को न केवल उघाड़ा है, बल्कि राज्य तथा जनतांत्रिक प्रणाली के प्रभाव द्वारा जातिवाद की जकड़न के कारण होने वाली अवहेलना का पर्दाफाश किया है। आजादी के पैसठ वर्षों का लंबा इतिहास जातिवादी प्रवृत्तियों की गैर-बराबरी को ख़त्म करके समानतावादी समाज की रचना नहीं कर पाया है। इस सबके कारणों और सवर्ण सत्ताधारी वर्ग की मानसिकता को उजागर करता है साठोत्तरी दलित-विमर्श।

संदर्भ

1. डॉ॰ श्यौराजसिंह बेचैन, युद्धरत आम आदमी (अंक 41-42), 1998, पृ॰ 14
2. कँवल भारती, युद्धरत आम आदमी (अंक 41-42), 1998, पृ॰ 41
3. डॉ॰ रामदरश मिश्र, हिंदी कविता तीन दशक, पृ॰ 79
4. मोहनदास नैमिशराय का लेख, दलित साहित्य : सीमाएँ एवं संभावनाएँ, आजकल पत्रिका, अप्रैल 1991

पृ॰ 13
5. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, लोकशक्ति की कविता : दलित कविता, आजकल, अप्रैल 1991 अंक, पृ॰ 9
6. डॉ॰ भीमराव अंबेडकर : अस्पृश्य मूलचे कोण, पृ॰ 152 (अनु॰ डॉ॰ रामगोपाल सिंह)
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि : जूठन, पृ॰ 7
8. वही, पृ॰ 62
9. वही, पृ॰ 4
10. डॉ॰ रमेश मेहरा : दादा फौजी, पृ॰ 101
11. ओमप्रकाश वाल्मीकि : पच्चीस चौका डेढ़ सौ, पृ॰ 9
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ॰ 23

ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
ज़िला फतेहाबाद (हरियाणा) 125053
मो॰ 09896789100

शोध
दिशा

'शोध दिशा' हिंदी में प्रकाशित विश्वस्तरीय शोध पत्रिका है, जो प्रत्येक तीन माह के अंतराल से नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है।

पत्रिका में साहित्य और समाजविज्ञान से संबंधित शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं।

'शोध दिशा' को भारत के प्रतिष्ठित शोध संस्थान हिंदी साहित्य निकेतन द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

'शोध दिशा' का उद्देश्य है शोध का विकास और शोध-छात्रों एवं शोध-निदेशकों के मध्य संपर्क-सूत्र का निर्माण।

हमें आशा है कि पत्रिका को देश के सभी शोध-निदेशकों, शोध-छात्रों और साहित्य-प्रेमियों का सहयोग प्राप्त होगा।

धूमिल के काव्य में सामाजिक चेतना

प्रो॰ अनंत केदारे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय, कोल्हार (महा॰)

सुदामाप्रसाद पांडेय उर्फ़ 'धूमिल' का जन्म 9 नवंबर 1936 ई॰ में उत्तर प्रदेश के खेवली नामक ग्राम में हुआ।[1] धूमिल का जन्म जिस घर में हुआ, वह एक ग्रामीण कायस्थ ब्राह्मण परिवार था। धूमिल के कृतित्व के अंतर्गत तीन काव्य-संकलन, कुछ लेख और डायरी के कुछ पन्ने प्राप्त होते हैं। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार धूमिल विरचित चार काव्य-संकलन हैं'बाँसुरी जल गई' (1961) 'संसद से सड़क तक' (1972) 'कल सुनना मुझे' (1977) तथा 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' (1984) उनका 'बाँसुरी जल गई' नामक संकलन अप्राप्य है, जो एक गीत-संकलन था। 'संसद से सड़क तक' कविता संकलन सन् 1972 में प्रकाशित हुआ। धूमिल का देहावसान होने के पश्चात् उनका दूसरा कविता-संकलन उनके भाई ने 'कल सुनना मुझे' शीर्षक से सन् 1975 में प्रकाशित किया। सन् 1984 में उनका तीसरा और अंतिम काव्य-संकलन 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' शीर्षक से उनके बेटे ने प्रकाशित किया है।

'संसद से सड़क तक' के प्रकाशन के साथ ही धूमिल की ख्याति हिंदी साहित्य जगत में द्रुतगति से फैल गई। यह कवि जन-जन से परिचित हो गया। धूमिल के काव्यत्व को देखते हुए सन् 1975 ई॰ में मध्य प्रदेश साहित्य परिषद ने उन्हें मुक्तिबोध 'पुरस्कार' से सम्मानित किया, तथा मरणोपरांत सन 1979 ई॰ में उन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।[2] इस संकलन की हिंदी साहित्य जगत में काफ़ी चर्चा हुई थी। धूमिल की सभी रचनाएँ सोद्देश्य हैं। सोद्देश्य होना अपने आपमें एक मूल्यप्रतिबद्धता है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन संदर्भों को यथार्थ के धरातल पर पेश कर व्यंग्य, क्रोध, खीझ व्यक्त की है। 'संसद से सड़क तक' कविता संकलन में इस नाम की कोई कविता नहीं है, लेकिन इस संकलन में धूमिल संसद से लेकर सड़क पर खड़े व्यक्ति तक सबकी चर्चा करते हैं। इस संकलन की सभी कविताएँ केवल भावात्मक स्तर पर ही नहीं, बल्कि बौद्धिक स्तर पर भी विचार करने के लिए बाध्य करती हैं। वह आदमी और आदमी के बीच के रिश्ते की बात करती हैं। 'मोचीराम', 'राजकमल चौधरी के लिए', 'अकाल दर्शन', 'पटकथा', 'प्रौढ़शिक्षा' आदि कविताओं के माध्यम से धूमिल हाशिए की दुनिया नहीं, बीच की दुनिया बसाते हैं। यह दुनिया जीवित और पहचाने जा सकनेवाले समकालीन मानव की दुनिया है।

'ग़रीबी के चित्र ग़रीब लोगों ने, ग़रीबी में मिलनेवालों ने खींचे हैं, मगर ग़रीबी की भाषिक संपन्नता में जीनेवाले धूमिल शायद अकेले हैं।' वैसे देखा जाए तो धूमिल का काव्य एक सामाजिक दस्तावेज़ है, क्योंकि धूमिल आम आदमी के जीवन से घुले-मिले जनवादी कवि हैं। उन्होंने जीवन के

खुरदरे अनुभवों को कारगर ढंग से व्यक्त किया तथा खुरदरी तीखी भाषा का आविष्कार किया।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण वह समाज में रहता है। मनुष्य आपसी साहचर्य से मिलजुलकर जीवन के अंतिम क्षण तक समाज से संबंधित रहता है। मॅकायवर तथा पेज के अनुसार 'समाज का तात्पर्य सामाजिक संबधों का जाल है।'[3] तो ड्रेसलर तथा विलिस के अनुसार'समान संस्कृतिवाले और हम सब एक हैं माननेवाला जनसमुदाय समाज कहलाता है।'[4] थिओडोर केपलो का कथन है'सभी उम्रवाले स्त्री-पुरुषों की स्वयंपूर्ण और स्वयं सातत्यशील सामाजिक व्यवस्था समाज कहलाती है।'[5] अतः कहा जा सकता है कि किसी विशिष्ट भू-प्रदेश पर स्थित समान संस्कृति एवं एकता की भावना रखनेवाले लोगों के बीच पारस्परिक संबधों की व्यवस्था को समाज कहा जा सकता है।

स्वातंत्र्योत्तरकाल में सही अर्थों में समाज उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग में विभाजित हुआ। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण तथा औद्योगिक प्रगति के कारण पूँजीवाद का निर्माण हुआ है। दूसरे शब्दों में समाज का वर्गीकरण धनार्जन के आधार पर किया गया है। धनिकवर्ग ही उच्चवर्ग की श्रेणी में आता है। मुट्ठीभर धनिक लोगों द्वारा मध्य एवं निम्नवर्ग पर अधिकार जमाया जाता है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के एक ही दशक पश्चात् स्वतंत्रता की धज्जियाँ उड़ते हुए यहाँ की जनता ने देखा था। देश में आर्थिक एवं सामाजिक वैषम्य अंतिम कगार पर था। इसी बीच 1965 और 1971 के युद्धोपरांत आम जनता का मोहभंग हुआ। समकालीन कवियों ने महसूस किया कि यथार्थ स्थितियों तथा समस्याओं से कटकर नहीं जिया जा सकता। इन सबके गुजरते सबसे बुरी दशा जनसाधारण की हुई। वह सड़क पर आ गया। वह रोटी, कपड़ा, मकान, महँगाई आदि समस्याओं की ज़ंज़ीरों में जकड़ा गया। उसका इतना अधःपतन हुआ कि अवनति के सीलें अंधकार में इस तरह गिरा कि आज तक बाहर नहीं आ पाया है। समकालीन कविता एवं कवियों की सबसे बड़ी विशेषता हैसामाजिक यथार्थ, जिसका चित्रण 'संसद से सड़क तक' में भरपूर हुआ है और साथ ही क्रांति के स्वर भी मुखरित हुए हैं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति से लेकर 1962 तक देश भ्रम में जीता रहा। आज़ादी से आम आदमी को काफ़ी उम्मीदें थीं, मगर आज़ादी के तुरंत बाद ही जनता के वे सारे महीन सपने जलकर ख़ाक हो गए। इसी बीच पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू हुईं और आम आदमी की आशाएँ फिर से पल्लवित होने लगीं। सप्तम दशक में देश में अरबों रुपयों का विनियोजन किया गया। स्वदेशी, विदेशी, बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने उद्योगों का जाल-सा बिछा दिया। व्यापार, उद्योग, ज्ञान-विज्ञान, कृषि-सुधार, भूमि-सुधार, शिक्षा आदि की उन्नति के नए कीर्तिमान स्थापित किए जाने लगे, लेकिन जनसाधारण को इसका कोई लाभ न हुआ। देश का निम्नवर्ग कीड़े-मकोड़े की तरह जीवन जीता रहा। धूमिल की पैनी दृष्टि इसी ओर गई है और उन्होंने आज़ादी के बीस साल बाद की देश की जो दुर्दशा हुई उसके बारे में लिखा है

बीस साल बाद और इस शरीर में
सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुज़रते हुए
अपने-आपसे सवाल करता हूँ
क्या आज़ादी सिर्फ़ तीन थके हुए रंगों का नाम है
या इसका कोई खास मतलब होता है।[6]

यहाँ पर धूमिल ने न सिर्फ आम जनता के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाया है, बल्कि आज़ादी

पर भी प्रश्नचिह्न लगाया है। आजादी के सपने कितने खोखले थे। वह आम आदमी के लिए कुछ लेकर न आ सकी।

जिन सपनों की तलाश में जनसाधारण जीता रहा वह आजादी के 60 साल बाद भी जारी है। धूमिल ने अपने काव्य में जनसाधारण का चित्रण कर उसके प्रति सहानुभूति भी दिखाई है और उन्नयन के लिए प्रयत्नरत भी है। 'वर्गचेतन कवि होने के कारण धूमिल न केवल निम्नवर्ग की प्रशंसा करते हैं, उसकी नासमझी और सहनशीलता पर व्यंग्य करके उसे उद्वेलित भी करते हैं।'[7] अर्थात् धूमिल ने जनता पर कुछेक स्थानों पर व्यंग्य भी कसा है, लेकिन वह उसकी खिल्ली उड़ाने के लिए न होकर उन्हें चेतीत करने के लिए है। तत्कालीन जनता का वर्णन करते हुए धूमिल लिखते हैं

जनता क्या है
एक शब्द सिर्फ़ एक शब्द है :
कुहरा और कीचड़ और काँच से
बना हुआ
एक भेड़ है
जो दूसरों की ठंड के लिए
अपनी पीठ पर
ऊन की फसल ढो रही है।[8]

धूमिल का 'मोचीराम' सही मायने में निम्नवर्ग का प्रतिनिधि है। मोचीराम काफ़ी होशियार है, वह जूतों के प्रकारों से ही जूता पहननेवाले आदमी के वर्ग को भाँप लेता है। उसकी नज़र में कोई व्यक्ति जूते की नाप से बाहर नहीं है। मोचीराम कविता में कवि ने जूते के माध्यम से निम्नवर्ग की स्थिति का चित्रण किया है।

मसलन एक जूता है :
जूता क्या हैचकतियों की थैली है
उसे एक चेहरा पहनता है
जिसे चेचक ने चुग लिया है
उस पर उम्मीद की तरह देती हुई हँसी है
जैसे टेलीफून के खंभे पर
कोई पतंग फँसी है
और खड़खड़ा रही है।[9]

इन पंक्तियों में उल्लखित जूता निम्नवर्ग के आदमी का है, जिसका जीवन, ज़िंदगी और मौत के बीच इस तरह फँसा है। जिस तरह टेलीफून के खंभे पर मानो कोई पतंग फँसी खड़खड़ा रही हो, जो न तो ऊपर की ओर उड़ सकती है और न नीचे ही गिर रही है। विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहलाने वाले भारत में निम्नवर्ग जीने की कोशिश में मात्र पतंग की तरह लड़खड़ा रहा है। अर्थात् धूमिल जिस वर्ग की बात करते हैं। वह सदियों से पीड़ित, अपमानित, शोषित, दलित और ग़रीब, लाचार है। धूमिल का मोचीराम ऐसे वर्ग का प्रतिनिधि है, जिसे सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा गया। वहीं शैक्षिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया और समाज में उच्चवर्ग ने यह धारणा बना ली कि शिक्षा पर सिर्फ़ किसी वर्ग अथवा जाति का अधिकार है। इस धारणा को ग़लत ठहराते हुए

मोचीराम कहता है

असल में वह एक दिलचस्प ग़लतफ़हमी का
शिकार है
जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है
और भाषा पर
आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है
जबकि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती है सच्चाई
सबसे होकर गुजरती है
कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं
कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अंधे हैं।[10]

स्त्री सकल विश्व की जन्मदात्री है। भारतीय संस्कृति में नारी को आदरणीय, पूजनीय बताया गया है तथा नारी का घर में दीपक के समान स्थान है। साहित्य, संस्कृति आदि में नारी को जहाँ पूजनीय बताया गया, वहीं समाज में नारी का सदा निरादर ही हुआ है। उसकी हर युग में प्रताड़ना की गई। उसके साथ सदा दुर्व्यवहार किया गया।

नारी के बिना संसार अधूरा है। प्रकृति निर्मित अप्रत्यक्ष रूप से नर-नारी एक-दूसरे में अपने जीवन की पूर्ति पाते हैं। जीवन के हर क्षेत्र में दोनों का अपना-अपना अस्तित्व है। जहाँ 'पितृदेवोभव' कहकर पुरुष की महत्ता प्रतिपादित की गई है, वहीं नारी को भी 'मातृदेवोभव' कहकर सम्माननीय पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। कबीर आदि कवियों ने उसे पाप का कुंड अथवा पापों का मूल कहकर उसकी अवहेलना भी की है, लेकिन इससे नारी का महत्त्व कम नहीं हुआ है। स्वयं कबीर ने भी पतिव्रता नारी की महत्ता को स्वीकार किया है। अतः भारतीय समाज-व्यवस्था में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक परिवर्तन के कारण नारी की स्थिति में आदिकाल से आज तक कई उतार-चढ़ाव आए हैं।

'संसद से सड़क तक' काव्य-संकलन में नारी के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। अपनी पहली कविता में धूमिल ने समकालीन समाज के जटिल एवं विसंगतियुक्त परिवेश में मानव-जीवन की मूलगत आवश्यकता प्यार का न होना मानवी जीवन की कितनी बड़ी विडंबना को प्रकट किया है

एक संपूर्ण स्त्री होने के पहले ही
गर्भाधान की क्रिया से गुजरते हुए
उसने जाना कि प्यार
घनी आबादीवाली बस्तियों में
मकान की तलाश है
लगातार बारिश में भीगते हुए
उसने जाना कि हर लड़की
तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला बन जाती है।[11]

समकालीन समाज में नारी की विकासावस्था पूर्ण होने के पहले ही वह गर्भाधान के बोझ के नीचे दब जाती है। उसे असामयिक मातृत्व का भार उठाना पड़ता है और उसे इस मातृत्व के भार को

लेकर आश्रय पाने के लिए दर-दर भटकना पड़ता है। समकालीन समाज में नारी केवल भोग्या बनकर रह गई है। उसके साथ बार-बार अतिचार किए जाते हैं और आखिर में तीसरे गर्भपात के बाद वह अपना नारीत्व खो देती है और धर्मशाला बन जाती है। रीतिकाल में नारी तन और स्तन तक सीमित बनकर रह गई थी और समकालीन समाज में वह सिर्फ एक देह बनकर रह गई।

भारतीय समाज-व्यवस्था में विवाह एक संस्था है। मगर यह संस्कार न होकर एक बंधन है, क्योंकि सुविधाओं से ज़्यादा समस्याओं का सामना विवाह के बाद करना पड़ता है। इसलिए पति-पत्नी का रिश्ता पैरों में एक बेड़ी या ज़ंज़ीर बन जाता है। आर्थिक विपन्नावस्था में भी निम्नमध्यवर्गीय समाज विवाह के बंधन में बँध जाता है, जिससे उसे सुविधाओं के नाम पर मात्र शरीर-सुख मिल जाता है। नारी के प्रति धूमिल के भोगवादी विचार अवश्य हैं, मगर उसमें आत्मग्लानि है। कवि को आत्मग्लानि इसलिए है, क्योंकि मानव 'जीभ और जाँघ' के लालच के कारण वैवाहिक जीवन बिताने के लिए इच्छुक और उत्सुक रहता है, इससे धूमिल स्वयं भी कहाँ बच पाए थे। धूमिल को लगता नहीं कि इसके अलावा शायद ही विवाह के पीछे और कोई तर्क रहता होगा

फूल और गोश्त में
फर्क करने के सारे सबूत मिटाकर
वह बिस्तर से खिड़की तक
फैलकर सो जाता है।[12]

धूमिल ने अपनी कविताओं में गृहस्थ नारी की बेबसी एवं लाचारी के कई चित्र खींचे हैं। धूमिल अनुभूति के कवि हैं और उनके काव्य में उनकी अपनी अनुभूतियाँ प्रकट हुई हैं। अपनी अनुभूति के माध्यम से नारी के पत्नी-रूप को वाणी देते हुए वे लिखते हैं

पत्नी का उदास और पीला चेहरा
मुझे आदत-सा आँकता है।[13]

गृहस्थी में नारी का महत्त्व कवि की दृष्टि में है, क्योंकि पति-पत्नी के मेल से ही परिवार का विकास संभव है। धूमिल ने अपनी कविताओं के माध्यम से नर-नारी के पारस्परिक वैध-अवैध संबधों को प्रस्तुत किया है। धूमिल का उद्देश्य नारी की अवहेलना करना न होकर उसकी दीन-हीन दशा का वास्तविक चित्र मात्र प्रस्तुत करना है

औरतें
योनि की सफलता के बाद गंगा का गीत गा रही हैं
देह के अँधेरे में
उड़द और अजवाइन के पौधों का सपना
उग रहा है।
मासिक धर्म रुकते ही सुहागिन औरतें
सोहर की पंक्तियों का रस
चमड़े की निर्जनता को गीला करने के लिए
नए सिरे से सोखने लगती हैं
उसका मर जाना पतियों के लिए
अपनी पत्नियों के पतिव्रता होने की

गारंटी है।[14]

धूमिल ने नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण अपने काव्य में किया है। उनका उद्देश्य किसी उपदेशात्मक वृत्ति को अपनाना नहीं हैं, वरन् सहज रूप में ऐसी स्थितियों को अभिव्यक्ति प्रदान करना है, जिनसे नारी की समाज में वास्तविक स्थिति का अनुमान हो। धूमिल नारी की अवहेलना तथा अपमान का ब्योरा नहीं देते, बल्कि उसकी विभिन्न समस्याओं को अभिव्यक्ति देते हैं।

नारी समाज में केवल भोग्य वस्तु बनकर रह गई है। उसका उपयोग केवल बच्चे पैदा करने का साधन के रूप में किया जाता है। धूमिल की दृष्टि में गृहस्थी में नारी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि पति-पत्नी के मेल से परिवार का विकास होता है। नारी के गृहस्थ जीवन की बेबसी का चित्र देखिए

पत्नी का उदास और पीला चेहरा
मुझे आदत-सा आँकता है
उसकी फटी हुई साड़ी से झाँकती हुई पीठ पर
खिड़की से बाहर खड़े पेड़ की
वहशत चमक रही है।[15]

समाज में नारी का पत्नी-रूप सबसे लाचार एवं पददलित है। नारी अपने ही घर में एक दासी बनकर रह जाती है। उसे कष्ट तो उठाने पड़ते ही हैं, मगर लैंगिक शोषण से भी मुक्ति नहीं मिलती है। कुछ अहंकारी कामुक पुरुष स्त्री को देह-मात्र समझते हैं। उनकी इसी वृत्ति पर धूमिल प्रहार करते हैं। औरत मात्र देह नहीं है। उसके भी आगे उसमें एक संवेदशील हदय होता है, उसकी अपनी आशाएँ-आकांक्षाएँ होती हैं, लेकिन गृहस्थी में उसका स्थान किसी दासी से बढ़कर नहीं होता। नारी की लाचारी का चित्र देखिए

चौके में खोई हुई औरत के हाथ
कुछ नहीं देखते
वे केवल रोटी बेलते हैं और बेलते रहते हैं।[16]

सन् 1945 में खत्म हुए द्वितीय महायुद्ध ने कई वैश्विक समस्याओं को जन्म दिया। उनकी चपेट में भारत और भारत जैसे अविकसित राष्ट्र बुरी तरह से फँस गए। हमें आजादी भी मिली, लेकिन भूखे पेट आजादी कहाँ रास आती? स्वतंत्रता के एक दशक पश्चात् ही देशवासियों ने महसूस किया कि आजादी के सपने मन लुभानेवाले महज रंगीन सपने थे, वास्तव में वे कागज के फूल निकले। लोगों ने अनुभव किया कि आजादी किसी खोटे सिक्के का नाम है। स्वातंत्र्योत्तर समकालीन परिस्थिति को कई रचनाकारों ने सामने रखने का काम किया। आजादी का मूल्य कितना बड़ा था, जिसमें भयानक हिंसा हुई, साथ-साथ देश का विभाजन भी हुआ।

आज आजादी के साठ साल बाद ऊँची-ऊँची इमारतें बनीं, विलासिता की सामग्री तैयार हो गई हैं, लेकिन इसके साथ-साथ बेघरों की संख्या में वृद्धि होती रही है। यह विषम स्थिति एक चिंतनशील व्यक्ति के सामने कई समस्याओं को रखनेवाली सिद्ध हुई। आखिर समस्या से कटकर भी तो जिया नहीं जा सकता।

धूमिल ने देश की संसद से कुछ ऐसे सवाल किए हैं, जिनका सीधा संबध जनसाधारण की विकराल समस्याओं से था। उन्होंने जो कुछ लिखा वह सब ख़ुद अपनी आँखों से आस-पड़ोस में देखा

था और भोगा भी था। धूमिल का काव्य यथार्थवादी है। यथार्थवादी कवि भाषा, शब्दों के उचितानुचित प्रयोग की ओर ध्यान नहीं देता, बल्कि वह जिस रूप में जिस घटना को देखता है, अनुभव करता है उसी रूप में अभिव्यक्त कर देता है।

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं में रोटी सर्वोपरि है। रोटी का अभाव मानव-जीवन में अकल्पनीय दुःख उत्पन्न कर देता है। भूख की महत्त्वपूर्ण समस्या को धूमिल ने अपनी कविता में स्थान दिया है। आज़ाद भारत की आर्थिक प्रगति को कोई नकार नहीं सकता, लेकिन इस प्रगति से मिलनेवाले लाभ चंद लोगों तक सीमित रहे। आम आदमी की रोटी की समस्या का समाधान न हो सका। जनसाधारण की समस्या आज तक वैसी ही रही। धूमिल के भूख विषयक सभी विचारों और तर्कों का एक ही आधार है

आज मैं तुम्हें वह सत्य बताता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है।
इस दुनिया में
भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क
रोटी है।[17]

धूमिल ने अभाव के साथ अतिरेक का चित्रण कर साबित कर दिया है कि देश में एक ओर लोग दाने-दाने के लिए मोहताज हैं और दूसरी ओर जघन्य विलासिता है। जब यह अहसास हो जाता है कि लुच्चे लफंगे मजे से जी रहे हैं, गुलगुल खा रहे हैं और ईमानदार को भूखा रहना पड़ता है। भूख की समस्या पर हमारी संसद मौन है। धूमिल ने अपनी कविता के माध्यम से जनसाधारण की प्रथम आवश्यकता रोटी पर संसद और जनतंत्र से जवाब माँगा है, मगर हर बार उसे निराशा ही हाथ लगी है।

धूमिल को लगता है कि भूख इस समस्या की जड़ ग़लत राजनीति में है। देशसेवा तथा सामाजिक समस्याओं से उनका कोई सरोकार नहीं। उन्हें रोटी माँगनेवाली जनता ही समस्या लगने लगती है। आम जनता की समस्या रोटी सिर्फ़ एक वायदा रहा, जिसे सत्ताधारी राजनेताओं ने पूर्ण करने का कभी प्रयास नहीं किया और पूर्ण करने की जरूरत भी महसूस नहीं की, क्योंकि वे जानते हैं

एक भुक्खड़ जब गुस्सा करेगा
अपनी ही अँगुलियाँ
चबाएगा।[18]

जनसाधारण की इसी लाचारी का फायदा भ्रष्ट स्वार्थी नेताओं ने उठाया है। उनकी स्थिति इतनी भयानक बन जाती है कि जब खाने को कुछ नहीं मिलता, तब पेट भरने के लिए वे खाद्य-अखाद्य का लिहाज न करके जो कुछ मिलता है, वही खाते हैं

लोग बिलबिला रहे हैं
पेड़ों को नंगा करते हुए
पत्ते और छाल
खा रहे हैं
मर रहे हैं।[19]

धूमिल समकालीन दयनीय परिस्थिति के मात्र द्रष्टा न होकर भोक्ता भी थे। धूमिल की

पारिवारिक स्थिति जनसाधारण से भिन्न न थी

भूख का जायका बदलने के लिए
आज कुम्हड़े की सब्जी पक रही है
पत्नी का उदास और पीला चेहरा
मुझे आदत-सा आँकता है।[20]

जीवित रहने के लिए रोटी का मिलना बहुत ज़रूरी है, मगर इसका मतलब यह नहीं कि नीति छोड़कर अनीति का, धर्म छोड़कर अधर्म का और सत्य को छोड़कर असत्य का मार्ग अपनाकर रोटी कमाई जाए। बेईमानी से कमाई रोटी मनुष्य के लिए अखाद्य है। धूमिल की कविता वैचारिकता की ठोस जमीन पर खड़ी है। उनके अनुसार जीने के पीछे कोई-न-कोई तर्क जरूर होना चाहिए इसीलिए तो वे मोचीराम से बिंदास कहलवाते हैं

और बाबूजी! असल बात तो यह है कि ज़िंदा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रंडियों की
दलाली करके रोज़ी कमाने में
कोई फर्क नहीं है।[21]

धूमिल के काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता हैसमकालीनता। धूमिल ने जो कुछ भी अपनी कविताओं में लिखा वह स्वयं अपनी आँखो से देखा और भोगा था। धूमिल का काव्य यथार्थवादी काव्य है अतः उन्होंने भाषा के मामले में शब्दों के औचित्य को देखने के बजाय जिस रूप में जिस घटना को देखा उसी रूप में अभिव्यक्ति दी है। कुछ आलोचकों को उनकी कविता में प्रयुक्त शब्दावली खटकती है। उनके शब्दप्रयोग एवं प्रतिमाओं से उन्हें आपत्ति है, जो धूमिल और उनकी कविता को बिना समझे अश्लील कवि का करार देते हैं, यह सरासर ग़लत है। धूमिल के काव्य में निम्नवर्ग की भावनाओं एवं संदेवनाओं को वाणी प्रदान की गई है। यह निम्नवर्ग की कविता होने के कारण निम्नवर्ग द्वारा प्रयुक्त भाषा को जैसे का तैसा कविता में रखा है। इसलिए धूमिल की कविता की भाषा पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह अश्लील है, भदेस है।

एक अच्छे कवि की यह विशेषता होती है कि वह अपने समकालीन परिवेश का कितना बखूबी चित्रण करता है। धूमिल ने जितना समसामयिक परिवेश को भोगा और अनुभव कर समझा है उसके आधार पर धूमिल समकालीन कविता के सर्वश्रेठ कवि ठहरते हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ रणजीत,हिंदी के प्रगतिशील और समकालीन कवि, 2001, पृ॰ 297
2. डॉ॰ पीहल, धर्मपाल, धूमिल के काव्य का सामाजिक संदर्भ, 2000, पृ॰ 28
3. सांळुखे, सर्जेराव, समाजशास्त्रीय मूलभूत संकल्पना, 1996, पृ॰ 68
4. वही, पृ॰ 68
5. वही, पृ॰ 68
6. धूमिल, संसद से सड़क तक, 2009, पृ॰ 10
7. डॉ॰ त्रिपाठी, श्रीराम,धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता, 2002, पृ॰ 114

8. धूमिल, संसद से सड़क तक, 2009, पृ॰ 104
9. वही, पृ॰ 38
10. वही, पृ॰ 41
11. वही, पृ॰ 48
12. वही, पृ॰ 7
13. वही, पृ॰ 28
14. वही, पृ॰ 52
15. वही, पृ॰ 64
16. वही, पृ॰ 29-30
17. वही, पृ॰ 125
18. वही, पृ॰ 31
19. वही, पृ॰ 91
20. वही, पृ॰ 44
21. वही, पृ॰ 40

5 **पार्वती आपार्टमेंट**
अयोध्या कॉलोनी
दातेनगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 **(महाराष्ट्र)**

हिंदी नुक्कड़ नाटकों में अल्पसंख्यकों का विचार

डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल
पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महा॰)

सृष्टि में सबको जीने का समान अधिकार है, पर सबकी एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि अपने से कम संख्या में भिन्न कोई कहीं दिखाई दे, तो उसे अपने आप अपना अस्तित्व महसूस होने लगता है। उसे अपना समूह याद आता है। समूह के माध्यम से वह एक स्वाभाविक एकता बनाता है। उससे दूसरे पर ताक़त के बल पर, कभी अधिकता के बल पर अधिकार-निर्माण करता है या उसे शिकार बनाता है। जो बलवान है, वह टिका है। शायद मनुष्य प्राणी भी इसी तरह विकसित हुआ होगा। उसने वर्ण तथा वर्ग के आधार पर अपना समूह बनाया होगा और उसके माध्यम से उसका अपना एक समाज अस्तित्व में आया। फिर समाज से उसकी वृत्ति तथा प्रवृत्ति बनी होगी। उस प्रवृत्ति से अपने कुछ नियम तैयार किए और उसे अपना एक धर्म मानकर कुछ सिद्धांत निर्धारित किए। यही सिद्धांत अपनाकर किसी धर्म की स्थापना कर भौगोलिक भिन्नता से, स्थानीयता से, वर्ण, वर्ग या कर्म से जातियाँ अपनाकर अपनी परंपराएँ, रूढ़ियाँ, गुण-दोष, रीति-रिवाज से, विभिन्नता से घृणा तथा हिंसा के ज़रिए संघर्ष कर एकाधिकार स्थापित किया होगा। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' अर्थात् एक-दूसरे पर राज्य अधिकार किया होगा। लेकिन जैसे-जैसे मानव-जीवन विकसित होता गया, उसने अपनी मूल प्रवृत्तियाँ नहीं छोड़ीं। इन्हीं प्रवृत्तियों ने बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक भेद को जन्म दिया। वर्तमान में बहुसंख्यकों तथा अल्पसंख्यकों को लेकर घृणा तथा हिंसा को बढ़ावा दिया। इसे लेकर असगर वज़ाहत कहते हैं, 'बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों के बीच का रिश्ता किसी भी समाज को समझने की एक महत्त्वपूर्ण कुंजी है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में यह स्वस्थ और बराबरी का होता है। एकाधिकारी और फासीवादी समाजों में यह रिश्ता घृणा तथा हिंसा से भरा होता है। आज से पच्चीस-तीस साल पहले यह कहा जाता था कि भारत में मुसलमानों का भविष्य इस बात पर निर्भर है कि देश में लोकतांत्रिक शक्तियाँ कितनी सुदृढ़ होती हैं। दुर्भाग्य से पिछले पच्चीस-तीस सालों में लोकतांत्रिक शक्तियाँ कमज़ोर हुई हैं, जिसके कारण आज बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के बीच अविश्वास और हिंसा का रिश्ता बन गया है। निश्चित रूप से यह रिश्ता नहीं बनेगा, जब तक देश में लोकतंत्र स्थापित नहीं होगा और धर्म तथा जाति की राजनीति का बोलबाला रहेगा।' कोई भी देश अपनी आम जनता की एकता तथा अखंडता के बल पर विकास करता है। लेकिन देश का इतिहास कई कारणों से सांप्रदायिक माहौल से गुज़रा है। इसके कई कारण हो सकते हैं। फिर भी देश सहिष्णुता, अहिंसा, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सद्भाव से समन्वयवादी रहा है। उसमें कभी-कभी घृणा तथा हिंसा से सांप्रदायिकता को

उजागर करने का प्रयास होता रहा है। इस संदर्भ में असगर वज़ाहत कहते हैं, 'इन तथ्यों को स्वीकार करने के बाद भी कि आज हमारे समाज में अबादी का बड़ा हिस्सा सांप्रदायिक नहीं है और कई स्तरों पर कई तरह से हिंदू-मुसलमानों के बीच अच्छे संबंध हैं, हमारे देश की मूल आत्मा सांप्रदायिक नहीं है, फिर भी इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच के रिश्ते कटु हैं। माहौल अविश्वास, घृणा, द्वेष और हिंसा का बना दिया गया है।....इसलिए सांप्रदायिकता को समाप्त करना केवल किसी संप्रदाय विशेष के लिए ही नहीं हैं, बल्कि देश की एकता, अखंडता, समृद्धि के लिए भी अत्यंत ज़रूरी है।' सांप्रदायिक शक्तियों ने दो धर्मों, दो समुदायों के प्रति घृणा और हिंसा फैलाने को एक उद्योग में बदल दिया है। परिणामस्वरूप अनेक घटनाएँ घटती हैं। प्राप्त आँकड़े और अध्ययन बताते हैं कि सांप्रदायिक दंगों में जानमाल का सबसे अधिक नुकसान अल्पसंख्यकों को होता है। यह देश की अर्थव्यवस्था, एकता तथा अखंडता को भी कमज़ोर करते हैं।

भारतीय अल्पसंख्यकों के बारे में कुछ दिलचस्प भ्रांतियाँ हैं। पहली भ्रांति तो यही है कि भारतीय अल्पसंख्यकों को विश्वबिरादरी का अभिन्न अंग मान लिया जाता है और पूरे संसार में अल्पसंख्यक जो कुछ कर रहे हैं, उसे अल्पसंख्यकों का स्वभाव या जातिगत विशेषता बताया जाता है। उदाहरण के लिए यह कहा जाता है कि ये जातियाँ जहाँ बहुमत में हैं, वहाँ तानाशाह हैं और जहाँ अल्पसंख्यक हैं, वहाँ वे बहुमत के लिए सिरदर्द बने हुए हैं। जिस समाज में मध्यवर्ग नहीं होता या कमज़ोर होता है, वहाँ सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया संभवतः कम ही होती है। यही कारण है कि आज भारत में जैन, इसाई, सिखों की तुलना में मुस्लिम समाज एक पिछड़ा हुआ समाज है। दस्तकारी के निर्यात आदि से या लघु उद्योगधंधों की बढ़ोत्तरी से जो कुछ पैसा मुसलमानों के पास आया है, उसने उन्हें धनाढ्य तो बनाया है, लेकिन मध्यवर्गीय संस्कार नहीं मिल पाए हैं, सामाजिक आंदोलन नहीं है, जिनके अभाव में मुस्लिम समाज की जितनी प्रगति होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हुई है।

देश में लोकतंत्र को मजबूत बनाने में अल्पसंख्यकों का बहुत योगदान रहा है। इसी के साथ मुसलमान पता नहीं क्यों राष्ट्रीय स्तर पर चलाए जानेवाले विकास-कार्यक्रमों से बहुत दूर हैं। इन्हें ब्लाक स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक चलने वाली आर्थिक, सामाजिक योजनाओं में सम्मिलित होने की आवश्यकता है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में केवल अपने परिवार, मोहल्ले, बिरादरी, धर्मावलंबियों तक ही अपनी चिंताओं को सीमित रखनेवाले लोग प्रायः मुख्यधारा से कट जाते हैं, जिसका उन्हें बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि देश की लोकतांत्रिक प्रणाली और राष्ट्रीय विकास-प्रक्रिया में यदि मुसलमान भाग न लेंगे, तो उन्हें बहुत अधिक नुकसान होगा। बहुसंख्यक समुदाय को यह लगना चाहिए कि लोकतंत्र को बचाने, बढ़ाने में उसके जो प्रयास हैं, उनमें अल्पसंख्यक पूरी तरह उनके साथ हैं। धार्मिक विश्वासों पर आधारित मुस्लिम सांस्कृतिक पहचान पर ज़ोर दिया जाना भी धार्मिक कट्टरता के लिए निकट ले जाता है। यह कहा जाता है कि अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता और कट्टरता आज के हालात में मुसलमानों में बढ़ रही है। किसी भी तरह धार्मिक कट्टरता को समर्थन बिल्कुल नहीं दिया जाना चाहिए। हर तरह की सांप्रदायिकता का बहिष्कार चाहिए, चाहे वह अल्पसंख्यकों की हो या बहुसंख्यकों की। दूसरे देशवासियों की तरह मुसलमानों का भविष्य भी इस देश की समृद्धि पर टिका हुआ है। यह तथ्य मुसलमानों के साथ-साथ उन लोगों को

भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, जो इस देश पर अपना हक़ जताते हैं।

आज देश में देशभक्ति के नाम पर हिंसा से अपराध होते हैं। लेकिन तरह-तरह के अपराधी और रक्तपिपासु लोगों ने देशभक्ति के पीछे अपना असली चेहरा छुपाने की कोशिश की है। क्या किसी के अपराध बस इसलिए माफ़ कर दिए जाने चाहिए कि वह देशभक्त है? क्या देशभक्ति इतनी आसान-सी चीज़ है? देशभक्त होने के लिए देश को समझना पड़ता है। देश बस एक नक़्शा, एक भूगोल नहीं होता। वह लोगों से बनता है, उनके साझा सपनों से बनता है, उनकी साझा हक़ीक़त में बसता है। देश का कोई ठहरा हुआ, जड़ रूप नहीं होता। वह लगातार बनता और बदलता रहता है। जब जोड़नेवाली ताक़तें मजबूत होती हैं तो देश मजबूत होता है, तोड़नेवाली ताक़तें हावी होती हैं तो देश कमज़ोर पड़ता है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में प्रजातंत्र की स्थापना के साथ, संविधान के माध्यम से जनता के प्रजातांत्रिक-जनवादी अधिकारों को क़ायम रखने तथा जनवादी मूल्यों से संरक्षण के शासन स्तर पर प्रयत्न किए गए। स्वाधीन आम जनता को आश्वासन मिला कि अब शोषण और असमानता, ग़रीबी पर आधारित समाज-व्यवस्था समाप्त होकर हर नागरिक, फिर चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, वर्ण या संप्रदाय को माननेवाला क्यों न हो, वह अपनी विषम सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति पा सकेगा। देश की आम जनता के स्वतंत्रता को लेकर यही सपने थे, लेकिन सबका मोहभंग हुआ और सब सपने चूर-चूर हो गए।

मुस्लिम समाज भी अगड़े (अशरफ जातियाँ) और पिछड़े (पसमांदा जातियाँ) में बँट गया है। साठ साल से चल रहें लोकतांत्रिक प्रयोग के बाद भी इक्कीसवीं सदी के दौर मे ख़ुलेआम जातिगत अपीलें हो रही हैं। अल्पसंख्यकों की दृष्टि से ख़ासकर मुसलमानों की सुरक्षा और समृद्धि तथा सांप्रदायिकता की सामान्य समस्याओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। जैसे

1. मुसलमानों की सुरक्षा के लिए राज्य को सकारात्मक पहल करनी चाहिए।
2. सार्वजनिक वितरण प्रणालीबिजली तथा पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।
3. आमदनी के अनुसार परिवार नियोजन होना चाहिए।
4. रोज़गारसकारात्मक नीति अपनानी चाहिए।
5. उर्दू को बढ़ावा देना ज़रूरी है।
6. मुस्लिम महिलाओं के अधिकारविवाह, पैतृक संपत्ति, बराबरी का अधिकार मिलना चाहिए।
7. शिक्षा का समान अधिकार मिलें।

साहित्य और समाज

साहित्य समाज का वास्तविक दर्पण है। समाज का हित ही साहित्य का उद्देश्य होता है। समाज में जो कुछ घटित होता है, उसका प्रतिबिंब साहित्य के अनेक प्रकारों में अंकित होता है। इन्हीं साहित्य-प्रकारों में हिंदी की नुक्कड़ नाटक विधा आम जनता की दुख-दर्द, समस्याओं को व्यवस्था के बहरे कानों तक पहुँचाने तथा समाज के कर्णधारों को उकसाने में सफल हुई है। दुनिया में जहाँ-जहाँ आम जनता में यह स्थिति पैदा हुई, वहाँ-वहाँ नुक्कड़ नाटकों ने जनता की सामान्य भाषा में उनके

अधिकारों को लेकर आंदोलन कर सफलता हासिल की है। आज़ादी की लड़ाई में हिंदी नुक्कड़ नाटकों ने अहम भूमिका निभाई थी। आज़ादी के बाद मानवीय अधिकारों को बचाने के लिए जन-आंदोलनों के सांस्कृतिक हथियार के रूप में नुक्कड़ नाटकों का फिर से प्रारंभ हुआ। देश और दुनिया में इसके पूर्व भी जन-आंदोलनों को सही दिशा देने में नुक्कड़ नाटकों की अहम भूमिका रही है। यही आज़ादी के बाद जनता पर हो रहे हमले की प्रतिक्रिया में नुक्कड़ नाटककारों और रंगकर्मियों ने जनता को केंद्र में रखकर उनके संघर्ष में सच्ची भागीदारी की हैं, यानी कि जनता के बीच जनता की बात को लेकर गए हैं। इनमें सफ़दर हाश्मी, शिवराम, रमेश उपाध्याय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, स्वयंप्रकाश, राजेशकुमार, अरविंदकुमार, गुरुशरण सिंह, असगर वज़ाहत, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल आदि प्रमुख नाम हैं। इन्होंने किसानों की ख़स्ता-हालत, महँगाई, बेरोज़गारी, सांप्रदायिकता, जातिवाद, सामंतवाद, वैश्विक आतंकवाद, युद्धोन्माद तथा बाज़ारवादी पूँजीवाद जैसी समस्याओं को लेकर नुक्कड़ नाटकों के द्वारा जनआंदोलनों को प्रभावशाली बनाया है।

हिंदी नुक्कड़ नाटकों में अल्पसंख्यकों का विचार

नुक्कड़ नाटक ने पहली बार आदमी को वर्ग, वर्ण और जाति के जंजाल से बाहर कर यह सिद्ध किया कि नुक्कड़ या चौराहा वह जगह है, जहाँ आकर खड़ी भीड़ अपने सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक आदि सभी प्रकार के भेदभाव को भूल जाती है और अपनी अहम समस्या की जड़ क्या है, इसे प्रदर्शित नाटक के माध्यम से अनुभूत करती है। नाटक देखने वाली यह भीड़ एक वर्ग की हो जाती है। नुक्कड़ नाटक का उद्देश्य ही होता है, संगठन और एकता के लिए ज़मीन तैयार करना। दुनिया में जहाँ भी कहीं क्रांतियाँ हुई है, वहाँ नाटक और नुक्कड़ नाटकों का योगदान अधिक रहा है।

देश में अल्पसंख्यकों पर हुए अमानवीय अन्याय तथा अत्याचारों को लेकर जननाट्य मंच, दिल्ली ने इस दिशा में अखिल भारतीय स्तर पर अनेक नुक्कड़ नाटक समूह बनाकर सांप्रदायिक फासीवाद के ख़िलाफ़ नुक्कड़ नाटकों का मंचन किया। प्रो॰ मालिनी भट्टाचार्य ने कहा है कि जाति तथा लिंग की समानता तथा धर्मनिरपेक्षता जैसे हमारे संविधान के मूलभूत सिद्धांत उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष में महिलाओं, दलितों और धार्मिक अल्पसंख्यकों के योगदान पर आधारित हैं। इसीलिए आगे जनता के तमाम जनवादियों से अपील करते हुए फासीवाद विरोध में नारा दिया।

फासीवादी हमले का प्रतिरोध

जनवादी लेखक संघ के सचिव तथ जननाट्य मंच राजस्थान के संयोजक राजेंद्र साईवाल के अनुसार, 'हमारे यहाँ राष्ट्रवादी या राष्ट्रीयता को लेकर जिस तरह से घालमेल किया जा रहा है उसी का यह परिणाम है कि सांप्रदायिकता इस रूप में सामने आ रही है। 1947 से पहले बाल गंगाधर तिलक हों या महात्मा गांधी, उन्होंने धर्म का इस्तेमाल राष्ट्रीय आंदोलन को बढ़ाने में किया, लेकिन 1947 के बाद धर्म का इस्तेमाल राष्ट्र विभाजनकारी तत्त्व अपने फ़ायदे के लिए कर रहे हैं। सबसे बड़ा ख़तरा यह है कि राष्ट्रवादी लोग जो देशाभक्ति को, राष्ट्रभक्ति को एक रूप में ढूँढ़ने की बात कर रहे हैं। भारत में नुक्कड़ नाट्य संस्थाओं ने देश में सही राष्ट्रवाद, भाईचारा, सदाचार, राष्ट्रीय एकता, अखंडता मजबूत करने के लिए तथा स्थानिक समस्याओं को लेकर हर जगह जाकर उनकी भाषा में नाटक-प्रदर्शन किए हैं।

जननाट्य मंच दिल्ली ने मुंबई और गुजरात के दंगों बाद हिंदी नुक्कड़ नाटकों के प्रदर्शन को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर तय किया कि देश की जो-जो नुक्कड़ नाटक मंडलियाँ हैं, उन्होंने इन नाटकों के माध्यम से आम जनता में राष्ट्रीय एकता तथा अल्पसंख्यकों के प्रति सहानुभूति दिखाकर मानवाधिकार को मजबूत करने की पहल की है। इसमें अपना नुक्कड़ नाटक 'आतंकवाद बहाना है' का सफल मंचन किया। मुखौटा कला मंच गुना (मध्यप्रदेश) ने 'अपहरण भाईचारे का' की प्रस्तुति की। जनवादी लेखक संघ हावड़ा ने सांप्रदायिक फ़ासीवादी विरोधी सप्ताह के दौरान फ़ासीवाद और इसके ख़तरनाक चेहरे को बेनक़ाब किया। अशोक नगर अंधेरी में जागर मंच ने 'बस अब और नहीं' तथा इंकलाबी ग्रुप ने 'पैगामे हिंद' नाटक की सांप्रदायिकता के ख़िलाफ़ प्रस्तुति की।

इसी तरह 'हत्यारे' नाटक 1974 में अलीगढ़ में हुए दंगों के बाद लिखा गया था और वहाँ के हालात पर तैयार की गई एक रिपोर्ट पर यह आधारित है। यह नाटक उत्तर भारत में स्कूल, कॉलेज और नुक्कड़ नाटक मंडलियों में बहुत लोकप्रिय हुआ। 'अपहरण भाईचारे का' (1978) नाटक दर्शाता है कि भाईचारे से ही देश की अखंडता तथा एकता बची हुई है। 'अब न चुप रहेंगे हम' नाटक को अंजुमन, दिशा मुंबई द्वारा सन् 1993 में बाबरी मस्जिद गिराने के बाद लिखा गया है। इसे 2002 में गुजरात की हिंसा के बाद फिर से तैयार किया गया। इसमें एक गीत है

ये सेठ, महाजन और नेता, दौलत का तीर चलाते हैं,
जनता की ताक़त कम करने, मजहब को बीच में लाते हैं।
ये ख़ुद ही आग लगाते हैं, फिर पानी लेकर आते हैं।

देश में राष्ट्रीय एकता तथा अखंडता को मजबूत होने से रोकने में कैसी खामियाँ हैं, इसे 'क्यों रोती है शाहबानो' (दयाप्रकाश सिन्हा) नाटक दिखाता है। इसमें चंपा और शाहबानो के द्वारा हिंदू और मुसलमान स्त्री का शोषण किस तरह धर्म के नाम पर होता है, इसे दर्शाया गया है। भारतीय विवाह कानून में किस तरह ख़ामियाँ है, इसे नेता नामक पात्र बताता है, हिंदू अगर एक पत्नी को बिना तलाक़ दिए दूसरी शादी कर ले, तो उसको सज़ा होगी, लेकिन मुसलमान को इसकी इजाजत है। इसीलिए भोलाराम हिंदू से मुसलमान बन जाता है, क्योंकि क़ानूनी तौर पर ऐसा क़ानून देश के हिंदू-मुसलमानों को एक नहीं होने देता है। इसकी जड़ राजनीतिक है, क्योंकि नेताओं को अपनी गद्दी की चिंता है। हिंदुओं से अलग करके ही इनको मुसलमानों के वोट मिलते हैं और पचास सालों तक यह गद्दी पर रह सके। इस तरह सभी धर्मनिरपेक्ष पार्टियाँ और वामपंथी इसे मानकर अल्पसंख्यकों की राजनीति करते हैं।

'वीर जाग जरा' जननाट्य मंच का मई 1984 तक के पंजाब के हालात पर लिखा गया नाटक है। पंजाब की स्थिति पर जनता और सरकार के बीच बातचीत को प्रधानमंत्री के माध्यम से इस तरह दिखाया है 'हम यह बात कबसे कह रहे हैं कि पंजाब की स्थिति को बिगाड़ने के लिए विपक्षी दल जिम्मेदार हैं।' इस समय पंजाब में प्रांतवाद, भाषावाद, पृथकतावाद किस तरह पनप रहा था, इसे दिखाया गया है। यहाँ बेकारी, ग़रीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार तथा किसान को बरबाद करने के लिए विपक्ष कैसा ज़िम्मेदार रहा है, इसे कहकर सरकार राजनीति करती है, तो पुरातनवादी कहते हैं, 'भारत माता की जय। भारत हिंदू राष्ट्र है, ग़ैरहिंदुओ भारत छोड़ो। यही है, धर्म का शत्रु, भारतीय सभ्यता

का शत्रु। मैं तुझे देश से निकालकर ही दम लूँगा दुष्ट।' नाटक का उद्देश्य ही इन सबके विरोध में वीरों को जगाना है।

'हिंसा परमो धर्म' जननाट्य मंच का जुलाई 1989 में मुंशी प्रेमचंद की इसी नाम की कहानी का नाट्य-रूपांतरण है। इसका पहला प्रदर्शन मुंशी प्रेमचंद के जन्मदिवस समारोह के अवसर पर किया गया था। यह नाटक सफ़दर हाशमी के मूल नाट्य रूपांतरण पर आधारित है। इसमें बनारस शहर का चित्रण है। यहाँ अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक हमेशा से मिल-जुलकर व्यवहार करते हैं, पर आज़ादी के बाद ऐसा क्या हुआ कि एक-दूसरे को संशय की नज़र से देखने लगते हैं। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के सामने सवाल है? सन् सैंतालिस और याद करो वो बँटवारा। कौनसा मजहब जीता था और कौनसा मजहब था हारा। वर्तमान में भी यही हालात है, इसलिए नाटक का संदेश है यह वक़्त की आवाज़ है मिल के चलो।

'मत बाँटों इंसान को' यह 7 नवंबर 1989 को दिल्ली में सांप्रदायिक सद्भाव समिति द्वारा आयोजित अवामी मार्च के मौके पर लिखा गया नाटक है। इसका नारा हैमिल के चलेंगे, एक रहेंगे, एकता है अपना धर्म,

ये है हिंदुस्तान नहीं ये टुकड़े में बँट पाएगा

'बल्ले मेरे देश के वीर नौजवान, यह जननाट्य मंच का 23 मार्च 1991 भगतसिंह की बरसी पर लिखा गया नाटक है। सन् 1931 को भगतसिंह को फाँसी दी गयी थी। उन्होंने क्या अल्पसंख्यक और बहुसंख्यकों के बीच के भेदभाव को देखकर अपना बलिदान दिया था, जिनमें हिंदू, मुस्लिम, सिख थे। नाटक का नारा है

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पे मिटनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा।

इस तरह शहीदों की याद में यह नाटक लिखा गया है, क्योंकि समाजवाद ही उनका आख़िरी मक़सद था, पर वर्तमान हालात क्या हैं, यह गौर करने की बात है।

'सब में साहिब भरपूर है जी' जननाट्य मंच का दिसंबर 1992 में अठारहवीं शताब्दी के संत कवि पलटू के जीवन और रचनाओं पर आधारित है। नाटक के गीत संत कवि पलटू के ही हैं। उन्होंने अँग्रेजों के समय के हालात सामने रखकर एक बड़ा सच कहा था कि मानव-जीवन का विकास ज़रूर हुआ, मगर ग़ुलामी का दस्तूर पुराना है। सांप्रदायिकता या दंगे-फ़साद दंगाइयों की वजह से होते हैं, न कि हिंदू या मुसलमान की वजह से। वे कहते हैं

हमने यह बात तहकीक किया
सबमें साहिब भरपूर है जी...।

उनका मानना था कि जब भाईचारा टूटता है, तब सांप्रदायिकता बढ़ती है, नहीं तो सबमें साहिब भरपूर रहता है। 'ये दिल माँगे मोर, गुरुजी' यह जननाट्य मंच द्वारा जून 2002 को मंचित नाटक नेशनल प्लेटफॉर्म ऑफ़ मास ऑर्गनाइजेशंज के आह्वान पर सांप्रदायिकता के ख़िलाफ़ देशव्यापी अभियान के लिए तैयार किया गया है। 'बस! अब और नहीं' यह जागर लोककला आघाड़ी, मुंबई द्वारा धर्म के ठेकेदारों पर लिखा गया है। इसमें सूत्रधार कहता हैलोग धर्म के नाम पर, जात

के नाम पर लड़ रहे हैं। लोग मारे जा रहे हैं, पर न ये हिंदू हैं और न ही मुसलमान। ये तो एक इंसान की लाश है। ...यह कब तक देखते रहोगे, क्या तुम्हारे अंदर का इंसान मर चुका है। नहीं ना, तो उठो और कह तो इन धर्म के ठेकेदारों से कि बस! अब और नहीं।' इसी प्रकार का 'आतंकवाद के बहाने उर्फ़ पोटो मेरा नाम' नाटक जनवरी 2002 को पोटा कानून पर लिखा गया है। सरकार के विरुद्ध बोलने वाले को पोटो बनाया जाता था। ऐसा ही 'पोटा मेरा नाम' (प्रिवेंशन ऑफ़ टेरिज्म एक्ट) जननाट्य मंच का नाटक जनवरी 2002 को गुजरात नरसंहार के बाद आतंकवाद के बहाने का परिवर्तन करके खेला गया है।

निष्कर्ष

इस तरह हिंदी नुक्कड़ नाटकों में अल्पसंख्यकों का विचार होता रहा है। उनके ख़िलाफ़ किए गए षड्यंत्र को उद्घाटित करने का प्रयास भी इन नाटकों के माध्यम से हुआ है। इसीलिए भारतीय समाज में जातिवादी राजनीति का यह आरोप सही लगने लगता है कि धर्म और मजहब के नाम पर फैलाए जा रहे सांप्रदायिक वैमनस्य के केंद्र में भी सत्ता-प्राप्ति के लिए किए जानेवाला जोड़-तोड़ सक्रिय है। वास्तव में धर्म और मजहब पर आए ख़तरों को दिखाकर सांप्रदायिक ताक़तें स्वयं को धर्मभीरु जनता का मसीहा बनना चाहती हैं। समय-समय पर बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों में भड़क उठने वाले सांप्रदायिक दंगों का नेतृत्व करनेवाले न तो हिंदू हैं, न सिख, ईसाई और न ही मुसलमान। इनकी एक ही जाति है सत्ता-प्राप्ति की जाति। उनका एक ही धर्म है सत्ता पर काबिज़ रहने का धर्म। साठ सालों में सत्ता जो चुनाव के दौरान अपनी उजली पाक छवि बनाकर जनता से धर्म और जाति के नाम पर अल्पसंख्यकों के वोट पाती है, सत्ता के इन ठेकेदारों के चेहरे इन नाटकों में साफ़ दिखाई देते हैं। अतः हिंदी नुक्कड़ नाटकों के द्वारा अल्पसंख्यकों के प्रति सहानुभूति तथा उनकी समस्याओं को लेकर गहरी संवेदना दृष्टिगोचर होती है। ये नुक्कड़ नाटक तथा नाटककार सदैव ऐसे शाषितों के पक्षधर रहे हैं।

संदर्भ

1. जनता के बीच जनता की बात : नुक्कड़ नाटक-संग्रह, डॉ॰ प्रज्ञा
2. नुक्कड़ जनम संवाद, पृ॰ 19
3. हंस, अगस्त 2003, पृ॰ 5
4. नवभारत टाइम्स, मुंबई

हिंदी विभागध्यक्ष
के॰टी॰एच॰एम॰ महाविद्यालय
गंगापुर रोड, नाशिक (महाराष्ट्र)
मो॰ 0985070866

डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला की कहानियों में कथ्यगत अध्ययन

डॉ॰ कृष्णकुमार
प्राचार्य , एस॰एस॰एम॰ कालेज आफ एजूकेशन
कलायत (हरियाणा)

डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला आधुनिक कहानीकार हैं इनकी कहानियों में वास्तविक घटनाओं को भली-भाँति देखा जा सकता है। इनकी कहानियाँ आज के समाज का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला आज एक कहानीकार के रूप में अपनी पहचान बना चुके हैं।

कथ्य : सामान्य अर्थ और परिभाषा

संस्कृत की 'कथ' धातु में 'यत्' प्रत्यय जोड़ने से कथ् शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। कथ का अर्थ है 'कहना' तथा कथ्य का अर्थ है 'कहने योग्य'।'[1] डॉ॰ वेट ने कथनीय शब्दों को इन अर्थों में प्रयुक्त किया है'कथन के लिए वैद्य' 'कथन के लिए उपयुक्त' तथा 'कथन के लिए अपेक्षित'। [2] अतः कथ्य का अर्थ हुआ 'जो कहा गया है' या कहने योग्य। जो कुछ लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से कहना चाहता है तथा जिन-जिन विषयों को उसमें सम्मिलित करता है, वे सब कथ्य के अतंर्गत आते हैं। किसी भी साहित्य में कथ्य अथवा विषयवस्तु का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि लेखक अपने जीवन की घटनाओं, अपने युगीन वातावरण, सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर लिखता है और इन्हीं सब विषयों को वह अपनी कथा में व्यक्त करता है। अर्नाल्ड ने एक स्थान पर कथ्य के साहित्यिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'उपन्यासकार के लिए संवेदित चित्र के साथ-साथ जीवन और जगत के यथार्थ का सूक्ष्म पर्यवेक्षक होना तथा अपने यहाँ के व्यक्ति और जनजीवन के सच्चे रूप को देखना अनिवार्य है। एक ओर उसका अनुभव अत्यंत व्यापक होना चाहिए, जिससे वह जीवन की क्रियाशीलता को बड़े से बड़े फलक पर देख सके, दूसरी और उसे जीवन की सूक्ष्मता और गहनता की परख करने वाला भी होना चाहिए।[3]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कथ्य रचनाकार का वह उद्देय अथवा 'सबजेक्ट मैटर' है, जो वह अपनी रचनाओं के माध्यम से कहता है, पल्लवित करता है। उसे चाहे कथ्य, वर्ण्य, तात्पर्य किसी भी नाम से अभिहित करें, कोई फर्क नहीं पड़ता। मूलतः कथ्य से तात्पर्य हैरचना का मूल उद्देश्य। विषयवस्तु की संरचना के लिए लेखक के आस-पास की परिस्थितियाँ उसके जीवन में आए लोग, उसके वातावरण ही उत्तरदायी हैं। प्रद्युम्न भल्ला की कहानियों में इन सब बातों का समावेश समग्र रूप से देखा जा सकता है। प्रद्युम्न भल्ला की कहानियों की कथ्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

यथार्थवाद

डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला की कहानियाँ यथार्थ के धरातल पर टिकी हुई हैं। इनकी कहानियों में सच्चाई का पूरा वर्णन किया गया है। इनकी कहानियों में काल्पनिकता का नाम भी नहीं है। इनकी कुछ कहानियों में स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ है। इस श्रेणी में 'होने न होने का दर्द', 'हम जरूर जीतेगें', 'काँटों के गुलाब' कहानियाँ शामिल हैं। 'एक महाभारत और' कहानी-संग्रह की कहानी 'होने न होने का दर्द' आज के युवावर्ग का चित्रण किया गया है, जिनमें ऐसे बेटों की कहानी को दर्शाया है, जो कि अपने माँ-बाप को भुला देते हैं व अंत में बुजुर्ग माता-पिता भी उनका नाम तक सुनने के लिए तैयार नहीं है वे उनके नाम से खीज उठते हैंहाँ, बस यही एक पाप है, जो इन्होंने किया। बेटों से बहुत प्यार किया, इतना कि शायद कोई कर ही नहीं सकता। सब-कुछ लुटा दिया और चाहा क्या--केवल इतनी सी ख़ुशी कि वो साथ रहें, मगर वह भी न मिली। ब्याह होते ही बदल गए दोनों बेटे, इन्होंने इतना जमाना देखा है कि पहली बार में समझ गए दोनों बेटे हाथ से गए।[4]

इसके अतिरिक्त 'हम ज़रूर जीतेंगे' कहानी में मानवीय शोषण का वर्णन किया गया है। जो आज के समय में एक अनूठा उदाहरण है, जिसमें मज़दूरवर्ग के साथ-साथ नारी-शोषण का यथार्थ वर्णन किया गया है

'काँटों के गुलाब' कहानी में नारी-चेतना को उजागर किया गया है'औरत को भगवान ने शायद बनाया ही इसलिए है कि मर्द उस पर हावी रहे, उसके अत्याचार सहती रहे, समाज में हँसी और शालीनता का मुखौटा पहनकर लगातार उसके संग डोलती रहे ओर रात को उसका बिस्तर गर्म करती रहे।'[5] इस प्रकार ये पंक्तियाँ नारी-चेतना को उजागर करती है और आज की नारी जाग उठी है। इसके अतिरिक्त कहानी 'चैन की नींद' का उदाहरण देखिए'औरत यदि ईर्ष्या की आग है तो करुणा और स्नेह का ठंडा पानी भी उसी से बहता है, वह अगर बर्बादी की जिम्मेदार है तो पूरी सृष्टि के विकास की पवित्रता भी उसी से प्रस्फुटित होती है।[1]

इस प्रकार प्रद्युम्न भल्ला जी की अन्य कहानियों के पात्र एवं घटनाओं तथा विषय आदि को पाठक अपने इर्द-गिर्द देख सकते हैं।

देशभक्ति की भावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका कर्तव्य बनता है कि वह भी समाज के लिए कुछ करे। क्योंकि प्रत्येक जीव को जहाँ का खाते हैं, उसके प्रति उसका प्रेम होना चाहिए। उसके प्रति भक्ति-भावना का होना जरूरी है। यह भावना 'एक मरे आदमी की डायरी' कहानी में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जिसका नायक कुमार एक आत्मा है जो मरने के बाद भी समाज का भला चाहता है, जो गोपनीय ढंग से समाजसेवा का कार्य करता है, जो समाज को अच्छा बनाने की कामना रखता है और उसकी पूर्ति के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करता है। यथा

'मैं कुमार इस धरती पर जितना कुछ कर रहा हूँ, सब दूसरों के लिए।'[6] इस प्रकार यहाँ भी लेखक की देशभक्ति की भावना उजागर होती है, जिसमें उसके नायक के मुँह से नेताओं पर अविश्वास जताया गया है। इसके अतिरिक्त 'रिसते रिश्ते' कहानी का एक उदाहरण देखिए, जिसमें लेखक ने अपनी देशप्रेम की भावना का अनूठा वर्णन किया है। यथा'मैं समाज के उन दुश्मनों का

इस पवित्र धरती से सफ़ाया कर देना चाहता हूँ, जो इंसानियत का दिन-दहाड़े खून कर रहे हैं।'[7] इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला की कहानियों में देशभक्ति की भावना का वर्णन मिलता है, जो आज के समय की एक अनूठी मिसाल है।

मध्यवर्गीय जीवन व ग्रामीण जीवन

डॉ॰ भल्ला द्वारा रचित दोनों कहानी-संग्रहों में संकलित कहानियाँ मुख्यतः मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण से भरी पड़ी हैं। इनके साथ-साथ ग्रामीण परिवेश के चित्र भी प्रस्तुत करती हैं। कहानी संग्रह 'रिसत-रिश्ते' में संकलित 'लौटते कदमों का सुख', दूर का रिश्तेदार, 'दीनदयाल लौट आओ', हम ज़रूर जीतेंगे', 'पुराना मकान', 'जूता' आदि कहानियों में व 'एक महाभारत और' की सभी कहानियों में कहीं न कहीं मध्यवर्ग अवश्य जुड़ा हुआ है। 'दूर का रिश्तेदार' कहानी का एक उदाहरण देखिए'पिता जी हताश' लुटे-लुटे से मोटे आदमी के पैरों में सिर दे रहे थे। मगर वह बारात लौटाने की बात कह रहा है। दीदी पछाड़ खाकर गिर पड़ी हैं। माँ भी बेहोश हो गई हैं। पल-भर में सारा पंडाल खाली हो जाता है। बारात सामान समेटकर बस में बैठ चुकी है।[8] इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन के साथ-साथ ग्रामीण जीवन का वर्णन काफी मिलता है जो आम आदमी के हदय को छूकर जाता है जो अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। 'हम जरूर जीतेंगे' कहानी मजदूरों पर होनेवाले शोषण को दर्शाती है, जिसमें गरीबी की पीड़ा को भली-भाँति महसूस किया जा सकता है। अतः प्रद्युम्न भल्ला जी की कहानियाँ मध्यवर्ग में जन-जीवन को छूकर निकलती हुई नज़र आती हैं।

सामाजिक जन-चैतन्य व सामाजिक बुराइयों का विरोध

डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक जनचेतना लाने का प्रयास किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरीतियों का भी अपने पात्रों के माध्यम से खुलकर विरोध किया है'एक महाभारत और' कहानी-संग्रह की कहानी 'छँटते हुए अँधेरे' नारी-जागरण का अलख जगाती है लेखक ने कामना के मुख से कहलवाया है यथा'पिताजी, क्या मैं कोई रसगुल्ला हूँ जो कोई खा जाएगा। मैं अपना भला-बुरा खुद सोच सकती हूँ। आपने मुझे अच्छी शिक्षा, संस्कार दिए है। मैं उन पर आँच नहीं आने दूँगी।[9] इन पक्तियों में लेखक ने कामना के माध्यम से नारीशक्ति को उजागर किया है। आत्मनिर्भरता का अन्य उदाहरण देखिए। यथा'मैं कुछ भी नहीं हूँ, कह सकती हूँ तो इतना कि थकी हूँ मगर टूटी नहीं हूँ, हारी हूँ। मगर बेचारी नहीं हूँ। [10] यहाँ लेखक ने एक नारी की जाग्रत चेतना को दर्शाया है'नहीं नीरज, यह दुनिया उगते सूरज को सलाम करती है, दुनिया का स्वभाव कुत्ते की तरह है जिसके सामने हड्डी फेंको तो वह दुम हिलाने लगता है, पर मैं तुम्हें सिखाऊँगा की हड्डी माँगी नहीं, छीनी जाती है। तुम किसी के पाँव पड़ो तो सिवाय ठोकर के कुछ नहीं मिलेगा मगर ठोकर मारोगे तो दुनिया तुम्हें सलाम करेगी।[11] इस प्रकार से इन कहानियों में सामाजिक जनचेतना को उजागर करते हुए समाज में फैली बुराइयों का डटकर विरोध किया गया है।

नैतिक मूल्यों में गिरावट

वर्तमान समय में युवापीढ़ी आधुनिकता की दौड़ में अपने नैतिक मूल्यों को पूरी तरह से खो चुकी है। आज का युवावर्ग किस प्रकार से अपने माता-पिता को भूल बैठा है, यह सब डॉ॰ प्रद्युम्न

भल्ला जी ने अपने चारों ओर के वातावरण में देखा और समाज में गिरते हुए नैतिक मूल्यों को इनकी कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'अजूबा' कहानी की कुछ पंक्तियाँ देखिए, जिनमें नैतिक मूल्यों की गिरावट का बड़े ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है'कैसा वातावरण है जहाँ ये आज की पीढ़ी बिगड़ते एक पल नहीं लगाती। यह तो मेरी मंझली है अजूबे जिसे तुम स्वीकार कर रहे हो। समाज ऐसी मँझलियों, कमियों और बड़कियों से भरा पड़ा है जो तंगदिल और सभ्यता के नाम पर अपने परिवारों की इज्जत-आबरुओं के परखच्चे उड़ाती फिरती हैं।[12] इस प्रकार यहाँ लेखक ने आज के युवावर्ग को बढ़ते फ़ैशन व वासना के वशीभूत होते दिखाया है। एक अन्य उदाहरण देखिए जहाँ नैतिकता के गिरते स्तर को दिखाया गया है'लगता है मैडम को सहारा चाहिए।' दूसरा बोला'भई रात के लिए हम सहारा दे सकते है। आइये ना, गाडी तैयार है' चौथे युवक ने कितनी स्टाइल से दोनों हाथ आगे कर बड़ी अदा से सिर झुकाते हुए कहा।[13] इस प्रकार भल्ला जी ने मानवीय जाति की छोटी सोच का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है, जिसमें नारी को केवल भोग की वस्तु ही समझा गया है। अतः यहाँ आधुनिक युवा पीढ़ी के गिरते नैतिक स्तर का वर्णन है। एक अन्य उदाहरण देखिए कहानी 'होने न होने का दर्द' जिसमें बेटों की नैतिकता समाप्त हो चुकी है तथा उनके माता-पिता अपने पुत्रों के दुख में कितने दुखी हैं। यथा'हाँ, बस यही एक पाप है जो इन्होंने किया। बेटों से बहुत प्यार किया...'।[14]

पारिवारिक संबंधों का चित्रण

डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला की कहानियों में पारिवारिक संबंधों में माता-पुत्र संबंध, पिता-पुत्र संबंध, सास-बहू संबंध, स्त्री-पुरुष संबंध आदि को भली-भाँति चित्रित किया गया है। माता पुत्र संबंध के अंतर्गत कहानी, 'चैन की नींद' में कहा गया है'माँ और बाप तो दुनिया में भगवान से भी बढ़कर होतें हैं और मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पूत कपूत हो सकता, मगर माता कुमाता नही हो सकती।'[15] इस कहानी में पुत्र अपनी माँ के लिए अपनी किडनी तक दे देता है। पिता-पुत्र संबंध में लेखक ने 'होने न होने का दर्द' कहानी में दर्शाया है'कभी-कभी सुधा अपने रिश्तेदारों या सुधीर अपने दोस्तों के बीच खुले तौर पर स्वीकारता भी था कि मेरे माँ-बाप मेरे माँ-बाप नहीं बल्कि मेरे दोस्त हैं।'[16] सास बहू के संबंधों के विषय में कहानी 'होने न होने का दर्द' में बड़ी मधुरता से चित्रण किया हैं'उसे लगता है कि लोग कितना ग़लत कहते हैं कि सास और बहू की कभी नहीं बन सकती। कोई आकर देखे तो सही उनके परिवार को माँ जी उसे किसी बात के लिए नहीं टोकतीं, उसका जब जी चाहे वह उठती, जी चाहे पकाती, खाती बल्कि जब वह लेट उठती तो सुधीर को बुरा लगता मगर माँ कहतीं, सोने दे बेटा बहू को अभी उसके खेलने-खाने के दिन है।'[17] इस प्रकार लेखक ने स्त्री-पुरुष के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है'आदमी न जाने कितने भ्रम अपने भीतर पाले रहता है। अपने आपको श्रेष्ठ और औरतहीन समझने में लगा रहता है। मगर उसे यह अहसास बहुत देर से जाकर होता है कि औरत तो उसकी परछाई है और उसके वजूद का हिस्सा है।[18] इस प्रकार यहाँ लेखक ने 'चैन की नींद' कहानी के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है।

नारी की विशालहृदयता

डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला जी की कहानियों में नारी की विशालहृदयता को भलि-भाँति से देखा जा

सकता है। उनकी कहानियों में नारी कहीं माँ बनकर अपने पुत्र की अच्छी ज़िंदगी की कामना करती है तो कहीं एक आदर्श पत्नी का उदाहरण भी प्रस्तुत है तो कहीं एक प्रेमिका बनकर त्याग की भावना दर्शाती है तो कही एकाकी जीवन व्यतीत करती हुई भी दिखाई देती है तो कहीं बहू बनकर अपनी सास की ज़िंदगी की सलामती के लिए अपने शरीर के अंग तक देने का तैयार हो जाती है। 'चैन की नींद' कहानी का एक उदाहरण देखिए जिसमें नारी की त्याग की भावना को दर्शाया गया हैराजेश भी सिर झुकाए बैठा रहा। 'तो इसका हल क्या है 'आख़िर रेणू ने ही निद्रा भंग की, 'हल, हल तो एक ही है कि मैं किडनी देकर माँ को बचा लूँ। 'सपाट स्वर में कहा लेकिन आप क्यों, मैं आप क्यों, मैं आप के लिए कुछ नहीं कर सकती? रेणू ने उसकी आखों में झाँकते हुए कहा। 'तुम' राजेश के मुँह से निकला हाँ मैं, मैं भी इसी घर का एक हिस्सा हूँ। मैं भी तो आपके दुःख-सुख की साथी हूँ मेरा भी तो फ़र्ज बनता है माँ जी के लिए'।[19] इस प्रकार देखा गया है कि रेणू जो सख्त हदय की स्त्री थी, लेकिन कहानी के अंत में वह त्याग व बलिदान की भावना से परिपूर्ण दिखाई देती है। 'पुराना मकान' कहानी का एक उदाहरण देखिए, जिसमें नारी अपने बच्चों को ही सब-कुछ सौंप देना चाहती है'आप समझते नहीं हैं, बच्चे बड़े हो गए हैं। इनकी अपनी भी कुछ इच्छाएँ और अरमान हो सकते है। उन्हें पूरा क्यों नहीं होने देतें।' 'सफ़र के साथी' कहानी का एक उदाहरण देखिए, जिसमें लेखक ने एक आजाद जीवन जीने वाली नारी का वर्णन किया है, जो एक कठोर हदय वाली नारी है लेकिन कहानी के अंत में वह भी एक शांत भाव के वशीभूत दिखाई देती हैमगर मैं बंधनों में बँधना नहीं चाहती आज़ाद जीवन जीना चाहती हूँ स्वछंद मुक्त। न कि किसी के अधीन होकर किसी पर निर्भर होकर।[20] 'जी हाँ, ज़रूर आप मेरे सफ़र के साथ रहे और यक़ीन रखिए अगले साल आप मिस्टर एवं मिसेज कामिनी को यहाँ देखेंगे। 'ऐसा कहते समय कामिनी की आँखें नम थीं और नागेश मंद-मंद मुस्कुरा रहा था।'[21] कहानी 'इला' में लेखक ने नारी-चरित्र के सबल पक्ष 'साहस' का भी यथार्थ चित्रण किया है। नारी त्याग और समर्पण की प्रतिमा के साथ ही साथ हक़ के लिए समाज से विद्रोह तक कर देने की इच्छाशक्ति की ओर संकेत किया है'नारी फिर नारी है। सब-कुछ त्यागकर उसी पर छोड दिया था। इला ने अक्सर कहा था'तुम हो तो मुझे दुनिया समाज का कोई डर नहीं, हम सबसे टक्कर ले लेंगे।[22] कहानी 'एक लड़की अजीब सी' का उदाहरण देखिए'औरत जो पत्थर है और मोम भी। औरत जो त्याग और तपस्या, संयम और धैर्य की मूर्ति है। कितने बड़े-बड़े तूफ़ान भी सँजो सकती है मन के भीतर।'[23]

अंतःकरण की पीड़ा

अंतरात्मा से निकली हुई पीड़ा अर्थात् आत्मा से निकली पीडा को अंतःकरण की पीड़ा कहा जाता है। डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला द्वारा लिखित कहानी 'दीनदयाल लौट आओ' में अंतकरण की पीड़ा की अभिव्यक्ति को भली-भाँति देखा जा सकता है'नहीं, मंत्री महोदय, मेरे प्राण तो इसी गाँव के छोटे-छोटे बच्चों की किलकारियों के बीच बसते हैं। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूँ कि आप ऐसी योजनाएँ बनाएँ एवं उनको क्रियांवित करें ताकि शिक्षा सही लोगों तक पहुँच सके व उसके मन में ज्ञान की लौ जगमगा सके।'[24] एक अन्य उदाहरण देखिए जहाँ अंतःकरण की पीड़ा को भली-भाँति देखा जा सकता है। 'तुम हार गईं अनु 'आप...'मैं हूँ तुम्हारा शैल', वह पागलों की भाँति चीखने लगी और आँसू थे कि थमने

का नाम ही नहीं ले रहे थे। 'तुम रो रही थीं' नहीं शैल आँसू क्या खुशी में नहीं आते।[25] इस प्रकार यहाँ व्यक्ति के अंतःकरण की पीड़ा को बड़ी मार्मिकता से देखा जा सकता है, जिसमें त्याग व बलिदान की भावना का पुट भी मिलता है। जब त्याग व बलिदान और पश्चात्ताप की भावना मनुष्य की आत्मा में घर करती है तो अतःकरण की पीड़ा की ही अभिव्यक्ति होती है। कहानी 'पिता जी बोलते रहे' का एक उदाहरण देखिए, जिसमें अतंःकरण की पीड़ा को देखा जा सकता हैं'कह पाता तो जरूर कहता कि भैया मै आपको कृतघ्न कहूँ या कमीना, मेरे पास आप जैसे पुत्र के लिए शब्द नहीं हैं। जिसमें पिता की लाश घर पर पड़ी है और उसे जायदाद की सूझ रही है। मगर मैं पीड़ा को पी गया। कई बार न चाहते हुए भी पीड़ा को पीना पड़ता है। न जीते हुए भी जीना पड़ता है।'[26] 'एक महाभारत और' कहानी-संग्रह की कहानी 'मंज़िल की चाह' में एक उदाहरण देखिए'मैं कितना स्वार्थी निकला रे। पार्क की एक बैंच पर बैठा नीरज सोच रहा था कि मैं आज तक उन्हीं की कमाई तो खाता रहा हूँ लेकिन उन्हें कुछ न दे सका। उन्होंने मुझसे क्या-क्या सपने देखे थे। लेकिन मैं, मैं कितना नीच और स्वार्थी निकला। उन्हें तो कुछ न दे सका बल्कि सारी ज़िंदगी उन्हीं पर बोझ बना रहा' ।[27] 'अजूबा' कहानी में भी एक बाप की अंतःपीड़ा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

दहेजप्रथा का चित्रण

कन्या के विवाह के समय कन्या के पिता द्वारा वरपक्ष को उपहारस्वरूप दी जाने वाली वस्तुएँ दहेज कहलाती हैं।[28] डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला की कहानियाँ समाज व समाज में रहने वाले लोगों के बीच से होकर गुजरती है। यही कारण है कि इनकी हर कहानी समाज की हर प्रथा, कुप्रथा, संस्कार व मान्यताओं को लिए हुए है। आज के युग की जो सबसे बड़ी व भयंकर प्रथा है वह दहेज-प्रथा। अतः लेखक ने अपनी कहानी ''दूर के रिश्तेदार' के माध्यम से इसको उजागर किया है। पिता जी को एक ओर ले गया है। न जाने क्या खुसर-फुसर कर रहे है ये लोग। अरे, पिता जी उसके आगे हाथ क्यो जोड़ रहे हैं? बड़े चाचा भी उसके सामने गिड़गिड़ा रहे है। उसका चेहरा मुझे राक्षस जैसा लगता है। पिता जी ने अपनी पगड़ी भी उसके पाँवों में रख दी मगर वह हँस रहा है।[29] बारात का घर से बिना विवाह के लौट जाना समाज में कन्यापक्ष के लिए बड़े शर्म की बात समझी जाती है। दहेज की माँग पूरी न हो सकने के कारण जब वर का पिता बारात को लौटा ले जाता है, तो कन्यापक्ष की क्या स्थिति होती है, उसका मार्मिक चित्रण लेखक ने 'दूर का रितेदार' में लिखा है'पिताजी हताश लुटे-लुटे से मोटे आदमी के पैरों में सिर दे रहे हैं। मगर वह बार-बार बारात लौटाने की बात कर रहा है। दीदी पछाड़ खाकर गिर पड़ी हैं। माँ बेहोश हो गई हैं। पलभर में सारा पंडाल खाली हो गया हैं। बारात सामान समेटकर बस में बैठ चुकी है। क्या दुल्हा भी चला गया है।[30] डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज को इस समस्या से अवगत कराने की एक सफल कोशिश की है।

सामाजिक आदर्शों का महत्त्व

आज जहाँ भारतीय समाज में चारों तरफ़ बुराइयों का जाल फैलता जा रहा है, वहीं कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपनी ईमानदारी व मेहनत के बल पर पूरे समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं व पूरे समाज को प्रेरणा देते हैं। 'रिसते-रिश्ते' कहानी-संग्रह की कहानी 'जूता' का नायक 'दीनदयाल' अपनी कमज़ोर आर्थिक स्थिति के बाद भी ईमानदारी की राह नहीं छोड़ता। यथा'दीनदयाल

ने अपनी ज़िंदगी में हज़ारों फ़ाइलें निपटाई थीं और वह भी बिना कोई पैसा लिए। लोग कुछ देना भी चाहते तो वे खीझ पड़ते। दफ़्तर वाले उन्हें समझाते तो बिफर जाते। यही कारण था कि उनकी अपनी जिंदगी की फ़ाइल कभी खटारा साइकिल, तीनचार जोड़ी कपड़ों व पुराने जूतों से आगे नहीं बढ़ी थी।'[31] इस प्रकार से डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला ने अपनी कहानी 'जूता' के माध्यम से यह दर्शाने की कोशिश की है कि किस प्रकार आर्थिक तंगी में रहने के बावजूद एक व्यक्ति अपने आदर्शों पर कायम रहता है व एक आदर्श पिता व पति बनकर रहता है।

बेरोज़गारी की समस्या पर प्रकाश

बेरोजगारी आज हमारे देश की मुख्य समस्याओं में से एक है। विशेषतः पढ़े-लिखे युवावर्ग की बेरोजगारी के बड़े भयंकर परिणाम निकलते हैं, जिनका यथार्थ चित्रण लेखक ने किया है। डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला के कहानी-संग्रह 'एक महाभारत और' की कहानी 'केशी लौट आओ', 'मंज़िल की चाह', कहानियॉ इसका सुंदर उदाहरण हैं। 'केशी लौट आओ' एक महत्त्वाकांक्षी युवक की कहानी है, जो कि इतना पढ़-लिख चुका है कि इसे मास्टर जैसी नौकरी तो उसे बेवजह और टाइमपास लगती थी यथा'माई फुट, मास्टर, कॉलेज में मास्टरी, सारी उम्र घिसते रहोगे--। [32] लेकिन बेरोज़गारी की समस्या ने उसे इस तरह से घेर लिया कि बाद में वह मास्टरी के लिए भी छटपटाता है व अपने दोस्त से कहता है'मास्टर, आई वांट टू ज्वायन जॉब, केन यू हैल्प मी?' [33] एक अन्य उदाहरण हम 'मंज़िल की चाह' को देख सकते हैं। यह एक ऐसे युवक की कहानी है, जो बी॰ए॰ प्रथम श्रेणी से पास कर चुका, लेकिन नौकरी की उम्मीद लगाए उसे इतने दिन हो चुके हैं कि वह टूट गया है। 'माँ हर सुबह यही आस लगा अपने बेटे को विदा करती थी कि आज उसका माँगी हुई मन्नतें अवश्य रंग लाएँगी। [34] डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला ने वर्तमान की बेरोज़गारी की समस्या का यथार्थ ढंग से चित्रण किया है।

संगति के प्रभाव का प्रदर्शन

डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला ने 'जैसी संगत वैसी भंगत' वाली कहावत को बहुत ही अच्छी तरह चरितार्थ किया है। उन्होंने अपनी कहानी 'दीनदयाल लौट आओ' के माध्यम से इस यथार्थ को उभारा है। 'कैसी बातें करते हैं हैडमास्टर साहब, आप जैसी सुलझी सोच और सहयोगी प्रकृति के चंद ही तो लोग बचे हैं अब इस शिक्षा विभाग में। आपके साथ काम करके जो नैतिक बल मुझे मिलता रहा उसे मैं शब्दों में बयान नहीं कर सकता।'[35] इस प्रकार से दीनदयाल के साथ रहकर अन्य अध्यापकों पर भी उनकी संगति का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। एक अन्य उदाहरण देखिए'अजी स्कूल चौकीदार, वही उनकी तनाह घर पहुँचा देता है, हाँ कलर्क जरूर यहीं पड़ा रहता है। बस सच पूछें कुछ कक्षाएँ लच्छू पढ़ाता है और कुछ जगना कलर्क स्कूल तो चल रहा है ना'चाय वाला हँसने लगा। [36] इस प्रकार से लेखक ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि किस प्रकार एक के बाद एक करके सभी अध्यापक घर रहने लगे यहाँ तक की तनख्वाह पहुँचाने का कष्ट भी उनके घर दूसरे ही करते हैं। लेकिन दीनदयाल की संगति में रहने के बाद सब में सुधार आ जाता है।

भ्रष्टाचार पर प्रकाश

कहानीकार ने मानवीय समाज में फैले भ्रष्टाचार की ओर कहानी 'रिसते-रिश्ते' में ध्यान दिलाया है। इसके माध्यम से लेखक ने शिक्षा में फैले भ्रष्टाचार को भी दर्शाया है। 'अजी स्कूल

चौकीदार, वह उनकी तनख्वाह घर पहुँचा देता है, हाँ कलर्क ज़रूर यहीं पड़ा रहता है। बस सच पूछें कुछ कक्षाएँ लच्छू पढ़ाता है और कुछ जगना कलर्क। स्कूल तो चल रहा है ना'चायवाला फिर हँसने लगा'।[37] इस प्रकार इस कहानी के माध्यम से लेखक ने शिक्षा के क्षेत्र के फैले भ्रष्टाचार को दर्शाया है। लेखक ने एक अन्य कहानी 'रिसत-रिश्ते' में कहानी के मुख पात्र शैल के मुँह से निम्न कथन कहलवाकर भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई है। 'मैं समाज के उन दुश्मनों का इस पवित्र धरती से सफाया कर देना चाहता हूँ, जो इंसानियत का दिन दहाड़े ख़ून कर रहे हैं।[38] लेखक ने अपनी एक अन्य कहानी 'हम जरूर जीतेंगे' में मजदूरवर्ग पर हुए भ्रष्टाचार को दिखाया गया है, जिसमें एक मजबूर व ग़रीब पिता की बेटी के साथ बलात्कार होता है और वह इतना मजबूर है कि अपना मुँह भी नहीं खोल सकता। यथा- 'अगर भीखू ने मुँह खोला तो वह सबको काम से हटा देगा'।[39] डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला ने आज की हर युगीन परिस्थिति चाहे वह भ्रष्टाचार ही हो पर भी आवाज़ उठाई है।

निष्कर्ष

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला द्वारा रचित सभी कहानियों की कथ्यगत विशेषताएँ वास्तविकता की परिपाटी पर रखी हुई है। आपकी कहानियों में जो समाज में घट रहा है तथा घटनेवाला है, उन्हीं घटनाओं को भली-भाँति समावेश मिलता है। आपकी अनेक कहानियाँ है, जिनमें मध्यमवर्गीय व ग्रामीण जीवन का वर्णन किया गया है। 'पुराना मकान' व 'दीनदयाल लौट आओ' तथा 'दूर का रिश्तेदार' आदि कहानियाँ हैं जिसमें ग्रामीण जन-जीवन को नया आयाम दिया गया है। इसके साथ-साथ आपकी 'छँटते हुए अँधेरें', 'एक लड़की अजीब सी','हम जरूर जीतेंगे' आदि कहानियाँ हैं जिसमें सामाजिक जनचेतना व समाज में फैली बुराइयों का विरोध किया गया है। 'दूर का रिश्तेदार' कहानी में दहेजप्रथा का विरोध किया गया है। इसके साथ-साथ 'हम जरूर जीतेंगे' कहानी में मानवीय शोषण के साथ-साथ नारी शोषण का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त आपकी कहानियों में नैतिक मूल्यों के गिरते स्तर को दिखाया गया है तथा बताया गया है कि किस प्रकार युवा पीढ़ी अपने संस्कारों को धूमिल करती जा रही है। आपकी कहानियों में पारिवारिक संबंधों का बड़ा ही अनूठा चित्रण किया गया है। इसके साथ-साथ आपकी कहानियों ने नारी की विशालहृदयता का चित्रण भी स्पष्ट रूप से 'चैन की नींद', 'सफ़र के साथी', 'इला', 'एक लड़की अजीब सी' तथा 'एक महाभारत और' आदि कहानियों में देखा जा सकता है। आपकी कहानियों में मानवीय अंतःकरण की पीड़ा को भी भली-भाँति देखा जा सकता है। 'दीनदयाल लौट आओ', 'रिसते-रिश्ते', 'पिता जी बोलते रहे', 'होने न होने का दर्द', 'अजूबा' तथा 'मंज़िल की चाह' आदि कहानियाँ हैं, जिसमें अंतःकरण की पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

संदर्भ

1. डॉ॰ कालिकाप्रसाद, वहिंदी हिंदी कोश, पृ॰ 242
2. डॉ॰ जे डी बेट, ए डिक्सनरी ऑफ दी हिंदी लैंग्वेज, पृ॰ 97
3. डॉ॰ पुष्पपाल सिंह, हिंदी साहित्यकार 68 वाँ दशक 78
4. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, होने न होने का दर्द, पृ॰ 23-24
5. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, रिसते-रिश्ते, पृ॰ 27
6. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, चैन की नींद, पृ॰ 55

7. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, एक मरे आदमी की डायरी, पृ॰ 39
8. वही, पृ॰ 40
9. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, दूर का रिश्तेदार, पृ॰ 39
10. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, छँटते हुए बादल, पृ॰ 76,77
11. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, एक लड़की अजीब सी, पृ॰ 46
12. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, मंज़िल की चाह, पृ॰ 56
13. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, अजूबा, पृ॰ 65
14. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, छँटते हुए बादल, पृ॰ 79
15. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, होने न होने का दर्द, पृ॰ 23,24
16. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, चैन की नींद, पृ॰ 36
17. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, होने न होने का दर्द, पृ॰ 19
18. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, पिताजी होता वह, पृ॰ 72
19. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, चैन की नींद, पृ॰ 55
20. वही, पृ॰ 55
21. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, सफर के साथी, पृ॰ 92
22. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, एक लड़की अजीब, पृ॰ 46
23. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, सफर के साथी, पृ॰ 95
24. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, एक महाभारत और, पृ॰ 96
25. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, दीनदयाल लौट आओ, पृ॰ 36,37
26. वही, प सं. 36,37
27. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, पिताजी बोलते रहे, पृ॰ 83
28. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, मंजिल की चाह, पृ॰ 54
29. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, रिसते-रिश्ते, दूर का रिश्तेदार, पृ॰ 23
30. वही, पृ॰ 54
31. वही, पृ॰ 77
32. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, एक महाभारत और केशी लौट आओ, पृ॰ 29
33. वही, पृ॰ 31
34. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, मंजिल की चाह, पृ॰ 53
35. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, दीनदयाल लौट आओ, पृ॰ 31
36. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, रिसते-रिते और दीनदयाल लौट आओ, पृ॰ 34
37. वही, पृ॰ 34
38. डॉ॰ प्रद्युम्न भल्ला, रिसते-रिश्ते, पृ॰ 40
39. वही, पृ॰ 60

मध्यकालीन भक्ति-चेतना

डॉ॰ अशोककुमार
सहायक प्रोफेसर हिंदी
राजकीय महाविद्यालय, सिधरावली
गुड़गाँव (हरियाणा)

हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन भक्ति-चेतना से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार एवं प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात हुआ। उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोकप्रचलित भाषाएँ भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गईं और कालांतर में भक्तिविषयक विपुल साहित्य की बाढ़-सी आ गई। परंतु यह भावना वैष्णव धर्म तक ही समिति न थी, शैव शक्ति आदि धर्मों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन संप्रदाय तक इस प्रवाह से प्रभावित हुए बिना न रह सके।

मध्यकाल में भक्ति-चेतना किसी क्षणिक भावावेग अथवा इंद्रियजन्य भावोन्माद की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, अपितु यह ठोस उर्वर धरातल की उपज है। भक्ति-भावना का सीधा संबंध व्यक्ति की आत्मा में विद्यमान अध्यात्म-चेतना से है। उसका लक्ष्य भौतिक जगत की जड़ता से छुटकारा पाकर अपनी आत्मा को सर्वोत्तम तत्त्व में तल्लीन कर देना या मुक्ति पाना है। मुक्ति से तात्पर्य जीवन-मरण के बंधन से छुटकारा पाकर आत्मतत्त्व का परमतत्त्व में विलय तो है ही, जीते जी समस्त भौतिक बंधनों एवं मनोविकारों से छुटकारा पाना भी है।'[2]

हिंदी साहित्य में भक्ति-चेतना के भाव के उदय एवं विकास के विभिन्न कारण माने गए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा डॉ॰ श्यामसुंदर दास जैसे विद्वान इसका उदय राजनीतिक पराजय के कारण एवं निराशा और पराजित मनोवृत्तियों को मानते हैं।[3] डॉ॰ गुलाबराय का मानना है कि 'मनोवैज्ञानिक लक्ष्य के अनुसार हार की मनोवृत्ति में दो बातें हैं। संभव है या तो अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाना या भोगविलास में पड़कर हार को भूल जाना। भक्तिकाल में लोगों में प्रथम प्रकार की प्रवृत्ति पाई गई है।[4] इसके विपरीत ग्रियर्सन, कीथ, बेवर जैसे अनेक पश्चात्य विद्वान भारत में भक्ति के उदय का मूल कारण ईसाई धर्म के मूल में खोजने का हठपूर्वक प्रयत्न करते हैं। दूसरी ओर कुछ मुस्लिम भक्तों एवं राष्ट्रीयता के अंध दुराग्रहों से जुड़े व्यक्तियों ने हिंदी साहित्य में भक्ति-चेतना के उदय को इस्लाम के उदय से जोड़ने तक का असफल प्रयास किया है, परंतु ये समस्त मान्यताएँ नितांत दुराग्रहपूर्ण एवं भ्रामक हैं।'[5]

हिंदी साहित्य में भक्ति-चेतना वास्तव में भारतीय चिरंतन-परंपरा का ही समन्वित एवं क्रमशः विकसित रूप है। यह चेतना संस्कृत से प्राकृतों एवं अपभ्रंशों के माध्यम से ही हिंदी में आई है। कई विद्वानों का मानना है कि वैदिक साहित्य में ही भक्ति-आंदोलन के तत्त्व विद्यमान थे। डॉ॰

सत्येंद्र ने भक्ति-चेतना का उद्‌भव दक्षिण के वैष्णवों से न मानकर द्रविड़ों से माना है। इनका कहना है कि 'भक्ति द्रविड़ी उपजी लाए रामानंद'।[6] आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी दक्षिण के अलवारों को ही मध्यकालीन भक्ति-चेतना का प्रमुख प्रवर्तक और प्रचारक मानते हैं। इसके बाद रामानुजाचार्य एवं रामानंद का इस दिशा में विशेष योगदान माना गया है।

आलवार भक्त तमिल भाषा में वैष्णव भक्तों को कहा जाता है। तमिल प्रांत में बौद्धों और जैनों का विरोध करने के लिए शैवों (नायनमारों) और वैष्णवों आलवारों ने मिलकर एक धार्मिक क्रांति की। आस्तिक भावों का प्रचार करके भक्ति-चेतना को जगाना इनका उद्‌देश्य था। आलवारों ने वेद, उपनिषद्, गीता से गृहीत भक्ति-भावों को गीतों के माध्यम से जनता तक पहुँचाया। 'ऐतिहासिक दृष्टि से आठवीं-नौवीं सदी तक दक्षिण भारत में भक्ति का प्रचार हो चुका था, इसीकारण श्रीमद्‌भागवत जैसे भक्ति पुराण की रचना दक्षिण भारत में हुई मानी जाती है।'[7] भारतीय धर्म-साधना में भक्ति की एक सुस्पष्ट एवं सुदीर्घ परंपरा रही है। महाभारत के भीष्म पर्व में, शांडिल्य भक्तिसूत्र एवं नारद भक्तिसूत्र में भक्ति का सैद्धांतिक विवेचन पहले ही हो चुका था। दक्षिण के आलवार संतों ने भक्ति-भावना की उच्चतम स्थिति को प्राप्त किया।

हिंदी साहित्य में भक्ति-चेतना के साहित्य में केवल भक्ति के कोरे उपदेश ही विकसित नहीं हुए, बल्कि भारतीय संस्कृति का उदात्त स्वर भी मुखरित हुआ है। 'इसमें काव्यतत्त्व की प्रौढ़ता के सहज दर्शन होते हैं। मध्यकालीन भक्ति-चेतना में मानवी दर्द में भक्ति की आत्मा और सरस मन को साँचे में ढालने का सफल प्रयास किया गया है। फलतः इस काल का साहित्य एक साथ हमारी समस्त चेतनाओं को संतुष्टि का आलोक प्रदान कर सकने की पूर्ण क्षमता रखता है। यहाँ एक ओर जहाँ इहलोक का सद्‌भाव है, वहीं परलोक का सद्‌भाव भी सहज ही देखा और प्राप्त किया जा सकता है।[8] अतः मध्यकालीन भक्ति-चेतना के साहित्य को भारतीय चिंतन-दर्शन की निरंतर धारा का ही सतत विकासशील प्रवाह कह सकते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में मध्यकालीन भक्ति-चेतना का प्रारंभ दक्षिण भारत के आलवार भक्तों की परंपरा से हुआ। उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियों ने उस भक्ति-चेतना के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योग दिया। मुस्लिम शासकों की धर्मांधता और इस्लाम के बलात प्रचार एवं क्रूर धर्मिक नीति ने भी उत्तर भारत में हिंदू जनता में भक्ति-चेतना को दृढ़ता प्रदान की। भक्ति-चेतना प्राचीन भारतीय मनीषा, ज्ञान एवं दर्शन की एक अविच्छिन्न धारा है, जो अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मध्यकालीन भक्ति-चेतना का वर्गीकरण दो धाराओं में किया है निर्गुण काव्यधारा तथा सगुण काव्यधारा। रामानंद ने उत्तर भारत में राम भक्ति-चेतना को विकसित किया। मध्वाचार्य, निंबार्क स्वामी एवं वल्लभाचार्य ने उत्तर भारत में कृष्णभक्ति की चेतना विकसित की। सिद्ध और नाथों ने कर्मकांड को कोरा आडंबर बताकर निर्गुण-निराकार रूप की उपासना का महत्त्व प्रतिष्ठित किया।

1. **निर्गुण भक्तिधारा**

इस भक्तिधारा के साधक कवि संत और सूफी कहे जाते हैं। इनका विश्वास है कि ईश्वर

एक है और वह निर्गुण निराकार है, उसे मंदिर, मस्ज़िद या काबा, काशी जाकर नहीं खोजा जा सकता, क्योंकि उसकी सत्ता तो सर्वत्र विद्यमान है। उसे अपने भीतर ही आत्मा और मन में अनुभूत किया जा सकता है। यह अनुभूति ज्ञान एवं प्रेम के द्वारा ही संभव है। ज्ञान एवं प्रेममूलक अवधरणा के आधार पर इसकी दो शाखाएँ हैं1. ज्ञानमार्गी शाखा एवं 2. प्रेममार्गी शाखा।

1. ज्ञानमार्गी शाखा

ज्ञानमार्गियों ने साधनापक्ष में ज्ञान को महत्त्व दिया। इनके विचार से आत्मज्ञान के बिना ब्रह्मज्ञान और आत्मा के परमात्मा से मिलन की अनुभूति संभव नहीं है। ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों का दृष्टिकोण 'संत' शब्द में संभवतः व्यक्त हो जाता है। अतः डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने इसे संतकाव्य परंपरा कहना उचित समझा है। संत काव्यधारा के प्रवर्तक नामदेव और कबीर जैसे संत माने जाते हैं।

'संत' शब्द की उत्पत्ति विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से भी है। पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने 'शांत शब्द से इसकी व्युत्पत्ति मान इसका अर्थ वैरागी या निवृत्ति मार्ग माना है।'[9] परशुराम चतुर्वेदी 'संत रूपी परम तत्त्व के ज्ञाता और तद्रूप होनेवाले व्यक्ति को संत मानते हैं।[10]

सत्य का उपासक और अपने साथ-साथ लोकहित का साधक व्यक्ति ही संत होता है। डॉ॰ रामसजन पांडेय का कहना है कि 'अरूप, निर्वच, निर्गुण, निराकार रूप की भावना-अराधना करनेवाले साधकों को संत, निर्गुण कवि, निर्गुणिए, भक्त आदि विविध अभिधानों से जाना-पहचाना जाता है। ऐसे कवियों में कबीर, दादू, नानक, रैदास, सुंदरदास, धनी धरमदास, पलटू, जगजीवनदास, भीखा साहब, चरनदास, गुलालसाहब, बुल्ला साहब, ग़रीबदास, दयाबाई, सहजोबाई, सदना, नितानंद आदि अनेक संतों का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।'

निर्गुण संतों ने ऐसे कल्पित ब्रह्म की कल्पना की है, जो रूपाकार रहित, लौकिक गुणों से परे है। वह बलवान, परम दयालु, परम कृपालु परम कारुणिक तथा परम भक्तवत्सल है। उसके लिए समस्त मानव ही नहीं, सारे जीव-जंतु बराबर हैं, क्योंकि सभी में एक ही आत्मा का वास है।

संतकाव्य की विशेषताएँ

इन्होंने एकेश्वरवाद में विश्वास किया है। इन्हें निर्गुण ब्रह्म में विश्वास है। गुरु की महिमा एवं नामस्मरण पर भी बल दिया है। प्रेमतत्त्व को आवश्यक माना तथा भाषा को भक्ति में बाधक माना है। इनमें रहस्यवादी भावना मुखर हुई है। इन्होंने जाति-पाँति और आडंबरों का विरोध किया है। शृंगार एवं विरह की भावना भी संतकाव्य में परिलक्षित होती है।

अंत में डॉ॰ तिलकराज के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'संतकाव्य मानव-जीवन की सहज अनुभूतियों का सहज-सरल उच्छलन एवं संकलन है। इसमें बरसाती नाले की नहीं, अपितु गंगा की कल-कल धारा की सी तीव्रता, गति और प्रकाश है। अच्छे साहित्य के सभी गुण इसमें शिल्प के स्तर पर न सही, पर भाव और सहज अभिव्यक्ति के स्तर पर अवश्य विद्यमान हैं।[12]

2. प्रेममार्गी अथवा सूफी काव्यधारा

मध्यकालीन भक्ति-चेतना में निर्गुण भक्तिधारा के अंतर्गत ज्ञानमार्गी संतों के बाद प्रेममार्गी कवि आते हैं। संत एवं सूफी कवियों की साधना-पद्धति में एक अंतर यह है कि ज्ञानमार्गी संतों की

साधना-पद्धति दांपत्य-भाव पर आधारित है अर्थात् वे लोग परमात्मा को पति और आत्मा को पत्नी मानते हैं, जबकि प्रेममार्गी (सूफी) परमात्मा को प्रेमिका (पत्नी) और आत्मा को प्रेमी (पति) मानते हैं। प्रेममार्गी कवियों ने हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयास किया है। सहज मानवीय सहानुभूति और विश्वप्रेम इनका प्रमुख स्वर है। प्रेम द्वारा ही ईश्वर से मिलन संभव हो सकता है, यह इनकी साधनात्मक प्रमुख मान्यता या मूल अवधारणा है।'[13]

प्रमुख कवि एवं कृतियाँ

कुतुबन (मृगावती), मुल्ला दाउद (चंदायन), ईश्वरदास (सत्यवती कथा), दामोदर (लक्ष्मनसेन पद्मावती कथा) मलिक मुहम्मद जायसी (पद्मावत) मंझन (मधुमालती), उसमान (चित्रावली), नूर मुहम्मद (इंद्रावती) आदि।

काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

सूफी कवियों ने अधिकतर मसनवी शैली का प्रयोग किया है तथा प्रेमगाथाओं का नामकरण नायिका के आधार पर किया है। इन्होंने लौकिक प्रेमकथाओं के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। इन्होंने अपने काव्य में लोकपक्ष एवं हिंदूसंस्कृति का चित्रण किया है। इन्होंने संतकवियों की तरह किसी विशेष संप्रदाय का खंडन-मंडन नहीं किया।

सगुण भक्तिकाव्य

चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी साहित्य के क्षेत्र में जो भक्ति-चेतना प्रारंभ हुई, उसके विकास में निर्गुण भक्तिधारा से भी बढ़कर सगुण भक्तिधारा का महत्त्व माना जाता है। निर्गुणवादी साधक संत कहलाए, जबकि सगुणोपासक साधक भक्त कहलाए। सगुण भक्तिधारा के विकास के मूलाधार के बारे में यह धारणा है कि मूल रूप में निराकार ब्रह्म, जो सर्वव्यापक तत्त्व और समूची संस्कृति का मूल कारण है, संसार में व्याप्त अनाचारों और अत्याचारियों का नाश करने तथा महान आदर्शों की स्थापना के लिए अपनी माया-शक्ति से संसार में रूप एवं आकार ग्रहण करता है, अवतार लेता है।'[14] निर्गुण ब्रह्म का मूर्त रूप अवतार है और अवतारवादी की भावना सगुण भक्तिधारा का मूलाधार है। इस धारा के कुछ साधकों ने अपनी साधना-पद्धतियों में माधुर्य-भाव को प्रमुखता दी, जबकि कुछ ने मर्यादा-भाव को। इसी के आधार पर इस धारा की दो शाखाएँ हो गईं। माधुर्य भाव को प्रधानता देनेवालों ने कृष्ण के लीलाबिहारी स्वरूप को अपना आधार एवं आराध्य बनाया, जबकि मर्यादावादियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम और लोकरक्षक रूप को अपनी साधना-आराधना का आधार बनाया। अतः सगुण काव्यधारा की 1. रामभक्ति एवं 2. कृष्णभक्ति शाखा हो गईं।

रामभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि रामचरितमानस के रचयिता तुलसीदास हैं। इसके अलावा प्राणचंद चौहान, हृदयराम, केशवदास, सेनापति, प्रियदास, कलानिधि, महाराजा विश्वनाथसिंह व महाराजा रघुनाथसिंह आदि हैं।

कृष्णभक्ति को सर्वाधिक आकर्षण और महत्व प्रदान करने का श्रेय श्रीमद्भागवत पुराण को है। जयदेव के गीतगोविंद का भी विशेष स्थान है। निंबार्क स्वामी, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, विद्यापति व सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भजदास व नंददास आदि कवियों ने कृष्ण काव्यधारा को बुलंदियों पर पहुँचाया।

सगुण काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

इन्होंने ईश्वर के सगुण-साकार स्वरूप को स्वीकार किया। अवतारवाद की भावना पर बल दिया। इन्होंने अपने काव्यों में प्रभुलीलाओं का गायन किया है। भक्ति के विविध दास्य, सख्य, नवधा भक्ति के रूपों का वर्तन किया है। निर्गुणियों के अनुसार गुरु को भी महत्त्व दिया है। जाति-पांति का भी विरोध किया है। समन्वय की भावना विकसित की है। वैदिक धर्म की स्थापना भी इन कवियों ने की है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि भक्तिकाल हिंदी साहित्य का एकल युग कहलाया है। इसके लिए निर्गुण एवं सगुण काव्यधारा के समस्त कवियों का योगदान है। यह साहित्य सामान्य जन से लेकर महलों तक समान व अबाध रूप से पहुँचा है। इसी कारण यह केवल हिंदीभाषा का ही नहीं बल्कि समग्र भारतीय साहित्य की अमर निधि है।

संदर्भ

1. डॉ॰ तिलकराज शर्मा, हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ॰ 8
2. डॉ॰ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 158
3. डॉ॰ तिलकराज, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 82
4. वही, पृ॰ 82
5. वही, पृ॰ 83
6. वही, पृ॰ 84
7. वही, पृ॰ 84
8. वही, पृ॰ 84
9. डॉ॰ पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी में निर्गुण संप्रदाय
10. डॉ॰ तिलकराज शर्मा, हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ॰ 45
11. डॉ॰ रामसजन पांडेय, निर्गुण काव्य प्रेरणा और प्रकृति, पृ॰ 120
12. डॉ॰ तिलकराज शर्मा, हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ॰ 103
13. वही, पृ॰ 113
14. वही, पृ॰ 131

385, **सेक्टर** 27
पो॰ गेलेरिया मार्केट
गुड़गाँव (हरियाणा) 122009
मो॰ 09811108079

नारी एक रूप अनेक
(दिनकर कृत उर्वशी के विशेष संदर्भ में)

डॉ॰ मंजुलता श्रीवास्तव
रीडर, (हिंदी विभाग)
डी॰एस॰एन॰पी॰जी॰ कालेज, उन्नाव

परमात्मा की कोमल और सुमधुर कल्पना का साकार रूप हैनारी। इस एक शब्द में यदि एक ओर माधुर्य का समुद्र लहरें मार रहा है, तो दूसरी ओर कोमलता की उत्ताल तरंगें अपनी उच्चतम सीमा तक सौंदर्य बिखेर रही हैं। नारी-मन ममता का अनुपमेय उपहार, वात्सल्य का अजस्र स्रोत और संस्कृति की अंतःसलिला है। अपने विभिन्न रूपों द्वारा पुरुष के अंतर्बाह्य व्यक्तित्व को विकसित और प्रेरित करने का दुःसाहसपूर्ण कार्य करनेवाली नारी सृष्टि की श्रेष्ठतम रचना है। अंतर्बाह्य सौंदर्य की प्रतिमूर्ति नारी अपने गुणों द्वारा मानव-समाज में सत्य, शिव और सौंदर्य का सामंजस्य स्थापित करती है।

मानव-सृष्टि के उद्‌भव के मूल में नारी का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। समाज में नारी आरंभ से ही मनुष्य-जाति के लिए कौतूहल और जिज्ञासा का वऋद्र रही है। साहित्य, कला और दर्शन सभी क्षेत्रों में व्यावहारिक जीवन के विभिन्न पहलुओं से नारी का गहरा संबंध रहा है। बिना नारी के सभ्यता के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में नारी को अवश्य ही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था, उसको देवी और लक्ष्मी के समकक्ष माना जाता रहा है। उस समय के समाज में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रयन्ते तत्र देवता' की उक्ति चरितार्थ होती थी। कारण था, अपने श्रेष्ठ गुणों के आधार पर पुरुषों के बीच सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना। यह तत्कालीन स्थितियों के अनुकूल था, परंतु धीरे-धीरे परिस्थितियों में परिवर्तन आया। समाज का अधःपतन होने लगा, नारी अपने पूर्व प्रतिष्ठित स्थान से वंचित होने लगी। नारी के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आया। वह देवी से मानवी बन गई। 'वैदिक युग में जहाँ नारी को गौरवपूर्ण महत्त्व मिला था, वहीं उसके बाद निरंतर नारी के गौरव का अवमूल्यन होता रहा। नारी जो कभी देवी थी, आगे चलकर मानवी बनकर रह गई।'[1]

उत्तरोत्तर परिवर्तित होती हुई नारी की इस स्थिति को हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में उकेरा गया है। कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक सभी विधाओं में भारतीय समाज में नारी की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मानसिक स्थितियों पर संवेदनापूर्ण ढंग से विचार किया गया है।

छायावादोत्तरकाल में भाव, कल्पना, विचार से परिपूर्ण 'उर्वशी' महाकाव्य रामधारीसिंह 'दिनकर' की कालजयी रचना है। कवि ने तत्कालीन समाज में स्त्रियों का अत्यंत सूक्ष्म आकलन किया है। आधुनिक भारतीय समाज में कुछ आधुनिक नारियाँ भी हैं। जिनका प्रतिनिधित्व 'उर्वशी' के कतिपय नारी-पात्र कर रहे हैं। वे प्रेम को मानवी की निधि और अपनी क्रीड़ा, मानवी की आकुल पीड़ा

को अपना स्वाद कहकर विश्लेषित करती है। आधुनिक सभ्यता से प्रेरित ये नारियाँ, अप्सराओं के रूप में काव्य में चित्रित हैं। उनके विचार से जिस मातृपद से नारी इस धरती पर पवित्र बन जाती है, वह क्लेश है, जो प्रथम ग्रास में ही यौवन की ज्योति निगल जाती है। इसके विपरीत इस महाकाव्य में प्रगतिवादी विचारधारा भी है। माँ बनते ही वह कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है। इन दो भिन्न विचारधाराओं के बीच का यह संघर्ष अंकित करते हुए दिनकर जी की सहानुभूति द्वितीय दृष्टिकोण के प्रति ही रही है। नारी को केवल विलासिता का साधन-मात्र न मानना, बल्कि उसको श्रमित जीवन का विश्राम-स्थल मानना भारतीय दृष्टिकोण है। अतः इस सृष्टि का महायज्ञ नारी द्वारा ही संपन्न होता है, यही विचारधारा उर्वशी का वक्रीय सूत्र है। इस संबंध में दिनकर जी लिखते हैं, 'नारी के भीतर एक और नारी है, जो अगोचर, इंद्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरुष जब पाता है, जब शरीर की धारा उछलते-उछलते उसे मन के समुद्र में फेंक देती है। जब दैहिक चेतना के परे वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँच निस्पंद होता है।'[2]

उर्वशी की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है यद्यपि इस महाकाव्य का कथात्मक आधार पौराणिक है, फिर भी इसमें वर्तमान युगजीवन की चेतना का महाघोष है। प्राचीन इतिवृत्त को नवीन संदर्भों में उद्भाषित करने का सार्थक और स्तुत्य प्रयास कवि की महान प्रतिभा का परिचायक है।

यह महाकाव्य मूलतः स्त्री-पुरुष के रागात्मक संबंधों की गौरवगाथा है। नर-नारी के इन्हीं पारस्परिक संबंधों का विवेचन करते हुए कवि ने अपने विभिन्न पात्रों द्वारा नारी के नाना रूपों का निरूपण किया है। काव्य में मुख्यतः नारी के तीन रूप उभरकर सामने आए हैंप्रेयसी, पत्नी और माता। प्रेयसी के भी दो रूप देखने को मिलते हैंपहला है उसका उच्छृंखल रूप और दूसरा संयमशील रूप।

प्रेयसी के उच्छृंखल रूप का प्रतिनिधित्व अप्सराएँ करती हैं। वे सौंदर्य की अपार निधि हैं। स्वर्ग की सुषमा, बिधु की प्रेयसियाँ, मनमोहिनी, अभुक्त प्रेम की जीवित प्रतिमाएँ और काम के मन की कामनामूर्ति हैं

मनमोहिनी, अभुक्त प्रेम की जीवित प्रतिमाएँ हैं
देवों की रण-क्लांति मदिर नयनों से हरने वाली
स्वर्गलोक की अप्सरियाँ, कामना काम के मन की।[3]

वे प्रेम के उन्मुक्त रूप की पक्षधर हैं। लौकिक बंधन उन्हें स्वीकार नहीं। प्रेम उनके लिए मात्र एक क्रीड़ा है, स्वाद है जो कि क्षणिक है। उनके जन्म का उद्देश्य मनोविनोद ही है

जनमीं हम किसलिए? मोद सबके मन में भरने को
किसी एक को नहीं, मुग्ध जीवन अर्पित करने को
सृष्टि हमारी नहीं संकुचित किसी एक आनन में
किसी एक के लिए सुरभि हम नहीं सँजोती मन में।[4]

वे कभी देव तो कभी मनुज का आलिंगन करती हैं। प्रणय और प्रेम की उत्तेजना पुरुष-हृदय में जाग्रत करती हैं। रसमय विनोद द्वारा भावों को उद्वेलित करती हैं

रचना की वेदना जगाती, पर न स्वयं रचतीं हम।[5]

ये अप्सराएँ प्रेम की पीर से अपरिचित हैं। प्रेम में समर्पण भाव उन्हें नहीं है। माता का रूप कुत्सित लगता है। परिणीता का आजीवन मिलन उन्हें घृणित लगता है

और मातृपद को पवित्र धरती, यद्यपि कहती है

पर माता बनकर नारी कदा क्लेश सहती है
तन हो जाता शिथिल, दान में यौवन गल जाता है
ममता के रस में प्राणों का वेग पिघल जाता है।[6]

उपर्युक्त अप्सराओं की मनोवृत्ति कतिपय आधुनिक नारियों के विचारों से मेल खाती है। ऐसी नारियाँ भौतिकता, विलासिता और स्वार्थपरता की प्रवंचनाओं से पूर्ण हैं। सामाजिक और पारिवारिक दायित्वों का वहन करना उन्हें रुचिकर नहीं लगता। आज शहर की अधिकांश नारियाँ अप्सराओं की भाँति उस सभ्यता से परिवेशित हो रही हैं। केवल कृत्रिमता की शिकार वे मातृ-सुख को निरुद्देश्य समझती हैं। माता की ममता पति की आस्था से विमुख केवल अपने शारीरिक गठन एवं शारीरिक सौंदर्य के प्रति ही आकर्षित रहती है। कवि ने इन उद्धरणों द्वारा ऐसे सांस्कृतिक मूल्यों का उद्घाटन किया है, जहाँ जीवन के पवित्र, परंतु आवश्यक मूल्यों को निष्कासित किया गया है। यह बात रंभा के नकारात्मक मूल्यदर्शन से स्पष्ट हो रही है

पहनेंगी कंचुकी क्षीर से क्षण-क्षण गीली-गीली
नेह लगाएँगी मनुष्य से, देहे करेंगी ढीली।[7]

परंतु मेनका द्वारा उच्चरित ये उद्गार जीवन के उच्चतम मूल्यों से साक्षात्कार करवाते हैं

माँ बनते ही स्त्रियाँ कहाँ से कहाँ पहुँच जाती हैं?
पर हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर?[8]

कहा जा सकता है कि अप्सराओं के संवादों द्वारा शृंगार के वह्रीय तथा अतींद्रिय पक्षों का विश्लेषण हुआ है। माँ बनना नारी-जीवन की पूर्णता है। इसी व्यक्तित्व की पूर्णता को भारतीय आधुनिका ने बोझ समझकर स्वच्छंद और अनियंत्रित जीवन व्यतीत करने का मार्ग प्रशस्त किया है।

इस काव्य में प्रेयसी नारी का दूसरा रूप उर्वशी का है। वह संयमशील, विचारशील और कर्म को महत्त्व देने वाली प्रणणिनी नारी है। उसके हृदय में प्रणय की उत्कट अभिलाषा, अपरिमित वासना, भोग की अत्यंत लालसा है। वह एक संवेदनशील नारी है। वह लौकिक जीवन के आकर्षण, यथार्थ के आग्रह के साथ ही जीवन के आदर्शों और आध्यात्मिक औदात्य को भी महत्त्व देती है। अतः कहा जा सकता है कि यदि एक ओर उर्वशी के व्यक्तित्व में अतींद्रिय सौंदर्य की मोहकता, अनिंद्य रूपजन्य अहंकार, उत्कृष्ट प्रणयातुरता, काम की उद्दाम उत्तेजना, भोग की अदम्य लालसा है, तो दूसरी ओर उसमें आदर्श का आग्रह, औदात्य का आलोक, संवेदना की अध्यात्म की आभा भी विद्यमान है।

सहजन्या उर्वशी के अतींद्रिय रूप-सौंदर्य का वर्णन कुछ इस प्रकार करती है

सुरपुर की कौमुदी, कलित कामना इंद्र के मन की
सिद्ध विरागी की समाधि में राग जगाने वाली
देवों के शोणित में मधुमय आग लगाने वाली
रति की मूर्ति, रमा की प्रतिमा तृष्णा विश्वमय नर की
जिस सुषमा के मंदिर ध्यान में मगन मुग्ध त्रिभुवन है।[9]

उसे स्वयं अपने अतींद्रिय सौंदर्य का अहंकार है। अपने विषय में स्वयं कहती है

मैं मनोदेश की वायु व्यग्र, व्याकुल चंचल
अवचेत प्राण की प्रभा, चेतना के जल में
मैं रूप-रंग-गंधपूर्ण साकार कमल।[10]

वह अपने इस आलौकिक सौंदर्य को मर्त्यलोक की सीमा से परे मानती है

मैं नाम, गोत्र से रहित पुष्प
अंबर में उड़ती हुई मुक्त आनंद-शिखा
इति वृंतहीन, सौंदर्यचेतना की तरंग
सुन-नर-किन्नर-गंधर्व नहीं
प्रिय मैं केवल अप्सरा।[11]

वह पुरुष-हृदय को प्रेम, उल्लास और आनंद से रससिक्त करने वाली सुंदर कल्पना के रूप में सामने आती है। जन-मन के मन में उजियाली कर बसने वाली मधुर अग्नि है। सनातन नारी की प्रतीक उर्वशी की झंकृति प्रत्येक मानव-मन के पटल पर असीम सुखाशाओं के स्वरों को बिखेरती है

जन-जन के मन की मधुर बहिन, प्रत्येक हृदय की उजियाली
नारी की मैं कल्पना चरम नर के मन में बसने वाली।[12]

वह अपरिमित कामना की साक्षात प्रतिमा है जो सनातन नारी का प्रतिनिधित्व करती है

मैं देशकाल से परे निरंतन नारी हूँ,
मैं आत्म तंत्र यौवन की नवीन प्रभा।[13]

उर्वशी वैभवशालिनी विश्वप्रिया है। अप्सरा होते हुए भी पुरुरवा के प्रति उसका प्रेम अनन्य है। हृदय की इस भावना से प्रेरित होकर वह तन-मन सहित पुरुरवा के प्रति समर्पित होती है, क्योंकि स्वर्ग की यह अप्सरा ऐंद्रिय सुख प्राप्ति-हेतु देवलोक से मृत्युलोक में आती है। देवसृष्टि का काम अतींद्रिय है, उसमें चेतना की सिहरन है, पर मन का परितोष नहीं। परितृप्ति की यही तन्मयता उर्वशी को मानवलोक तक खींच लाती है। भोग की अदम्य लालसा ही उसकी अंतः एषणा है। मिलन की यही सुखानुभूति विरह-व्यथा का कारण बनती है। वह चित्रलेखा से कहती है

यदि आज कांत का अंक नहीं पाऊँगी,
तो शरीर को छोड़ पवन में निश्चय मिल जाऊँगी
कहती हूँ इसलिए चित्रलेखे मत बेर लगाओ,
जैसे भी हो मुझे आज प्रिय के समीप पहुँचाओ।[14]

विरह की पीड़ा और पुरुरवा के मन में उर्वशी के प्रति आकर्षण, अंततः दोनों का मिलन करवाता है। प्रगाढ़-प्रेम में आबद्ध रहकर वे विहार करते रहे। प्रेम की इस प्रगाढ़ता में उन्हें समय का भी ध्यान नहीं रहता। फिर भी अतृप्ति बनी ही रहती है। लौकिक प्रेम की प्रबल अनुभूति उर्वशी में कामेच्छा जाग्रत करती है

वक्षस्थल पर इसी भाँति मेरा कपोल रहने दो।
कसे रहो, बस इसी भाँति, उर-पीड़क आलिंगन में।
मर्मांतक है शांति और आनंद एक दारुण है।[15]

शारीरिक मिलन की पराकाष्ठा में भी हृदय में अतृप्ति बनी होती है। पुरुरवा की अनाशक्तिपूर्ण विचारधारा से उर्वशी भयभीत है, क्योंकि लौकिक प्रेम ही उसे प्रेय है

अनाशक्ति तुम कहो किंतु द्विधाग्रस्त मानव की,
झाँकी तुमसे देख मुझे जाने क्यों भय लगता है।

बरसाकर पीयूष प्रेम का आँखों से आँखों में,
मुझे देखते हुए कहाँ तुम जाकर खो जाते हो?[16]

उसके अंतःकरण में पुरुरवा के प्रति समर्पण की भावना है। वह राजा को अपने प्रेमपाश में आबद्ध रखना चाहती है

आ मेरे प्यारे तृषित/श्रांत! अंतःसर में मज्जित करके,
हर लूँगी मन की तपन चाँदनी, फूलों से सज्जित करके।
रसमयी मेघमाला बनकर मैं तुझे घेर छा जाऊँगी,
फूलों की छाँह-तले अपने अधरों की सुधा पिलाऊँगी।[17]

पुरुरवा के आलिंगन-पाश में आबद्ध रहकर यह इच्छा आधुनिक नारी की स्वाभाविक है। मानसिक प्रेम ही स्त्री के मन को परितोष प्रदान नहीं कर पाता, उसे शारीरिक प्रेम की अभिव्यक्ति काम्य है

वह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है पाकर जिसे त्वचा की,
नींद टूट जाती, रोमों में दीपक जल उठते हैं।[18]

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर हम उर्वशी को एक वासनामयी नारी के रूप में देखते हैं, लेकिन उसका एक दूसरा रूप भी है, जिसमें वह उदात्त प्रेममयी नारी दिखायी पड़ती है। उसकी दृष्टि में पुरुष परमेश्वर का और नारी प्रकृति का प्रतीक है। वासना और भोगों में लिप्त नारी भी परमेश्वर को प्राप्त कर सकती है

किसने कहा तुम्हें, जो नारी नर को जान चुकी है,
उसके लिए अलभ्य ज्ञान हो गया परम सत्ता का।[19]

वह ज्ञानमयी नारी है। उस रूप में वह आधुनिक पढ़ी-लिखी विदुषी और तर्कशक्तिसंपन्न नारी से मेल खाती है। वैचारिक वैभव उसके व्यक्तित्व की एक अन्य विशेषता है, जो उसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बना रही है। तृतीय अंक के दस पृष्ठों में उसकी वैचारिक महानता दर्शनीय है

वर्तमान की कुछ मत पूछो, एक बूँद वह जल है,
अभी हाथ आया, तुरंत फिर अभी बिखर जाएगा।[20]

उर्वशी काम को नहीं मानती। उसकी दृष्टि में वही काम मनुष्य को आध्यात्म के धरातल तक पहुँचा सकता है

काम धर्म, काम ही पाप है, काम किसी मानव को
पहुँचा देता उसे किरण सेवित-अति उच्च शिखर पर।[21]

इस प्रकार उर्वशी की भूमिका में नारी के दो महत्त्वपूर्ण रूप सामने आते हैंपहला रूप है समष्टि अर्पण करके शरीर सुख की प्राप्ति के लिए व्यग्र कामातुर रूप और दूसरे रूप में वह आसक्ति पूर्ण कामुकता का त्याग कर काम-भावना के उदात्त रूप को ग्रहण करना चाहती है।

इस महाकाव्य की दूसरी नारी है 'औशीनरी'। वह राजा पुरुरवा की परिणीता थी। उसे सारे भौतिक सुख प्राप्त हैं, लेकिन राजरानी होते हुए भी पति द्वारा परित्यक्त नारी की हताशा, पराभव और हीनता का भाव उसके समस्त सुखों पर भारी पड़ता है। पति-प्रेमवंचिता नारी, जीवन में स्वयं को किस प्रकार असहाय और असुरक्षित महसूस करती है, यह औशीनरी की भूमिका में हम देख सकते हैं। इस पात्र द्वारा कवि ने समाज में शोषित और विवश नारी के मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्‌घाटन किया है।

पुरुष-प्रदत्त विभिन्न कष्टों को सहन करना ही नारी की नियति है। पति की प्रवंचना को सुनने का साहस रखते हुए वह कहती है

पगली! कौन व्यथा है, जिसको नारी नहीं सहेगी?
कहती जा सब कथा अग्नि की रेखा को चलने दे
जलना है यदि हृदय अभागिन का उसको जलने दे।[22]

कभी-कभी नारी की सहनशीलता भी उसका साथ छोड़ने लगती है। तब वह असहाय होकर मरण का वरण करने की इच्छुक हो जाती है। आधुनिक समाज में भी न जाने कितनी स्त्रियाँ इसी प्रकार के अत्याचार न सह सकने के कारण आत्महत्या के लिए विवश हो जाती हैं

आजीवन वे साथ रहेंगे तो अब क्या करना है?
जीते जी यह मरण झेलने से अच्छा मरना है।[23]

किंतु यह इच्छामृत्यु भी उसके वश में नहीं है, क्योंकि एक वर्ष बाद जब राजा गंधमादन पर्वत से लौटेंगे तो संततिप्राप्ति के लिए नैमिशेय यज्ञ करेंगे। उस यज्ञ में राजरानी की उपस्थिति अनिवार्य है। भारतीय समाज की यह कैसी विडंबना है कि पति द्वारा उपेक्षित होते हुए भी परिणीता पत्नी ही धर्मयज्ञ में मान्यता पाती है। इस निमित्त निपुणिका कहती है

इसी धर्म के लिए आपको भुवनेश्वरि जीना है,
हाय, मरण तक जीकर मुझको हालाहल पीना है।[24]

पुरुष का चंचल मन स्त्री के सुशुप्त प्रेम को जाग्रत तो कर देता है, लेकिन कालांतर में वह उससे ऊबकर किसी अन्य स्त्रियों के लिए सन्निध्य के लिए बेचैन होने लगता है

पुरुष चूमता हमें अर्धनिद्रा में हमको पाकर
पर हो जाता विमुख प्रेम के जग में हमें जगाकर।[25]

और भोली-भाली स्त्री उस प्रेम को अपने संपूर्ण जीवन का आधार मानकर एकनिष्ठ भाव से पूर्ण समर्पण कर देती है। अंततः छली जाने पर भी आजीवन उसी पुरुष की राह ताकती रहती है

और जगी रमणी प्राणों के लिए प्रेम की ज्वाला,
पंथ जोहती हुई पिरोती बैठ अश्रु की माला।[26]

पुरुष जब किसी अन्य स्त्री के संपर्क में आता है, उसके सौंदर्य, उसके गुणों, भाव-भंगिमाओं से प्रभावित होता है, तो वह अपने प्रेम की परवाह न करते हुए, अन्य के आकर्षण में निमग्न हो जाता है। परिणीता नारी के हृदय में पराजय की यह अनुभूति उसे जीवन के प्रति हताश और निराश बना देती है

गृहणी जाती हार दाँव, संपूर्ण समर्पण करके
संगिनी बनी अप्सरा, ललक पुरुष में भरके।[27]

स्त्री-प्रेम में समर्पण होता है। वह पुरुष के समक्ष अपना तन-मन-जीवन सभी समर्पित कर देती है। उसका अपना जीवन भी स्वयं उसका अपना नहीं रह जाता

प्रभु को दिया नहीं, ऐसा तो पास न कोई धन है।
न्योछावर आराध्य-चरण सखि! तन-मन-जीवन है।[28]

प्रिय के प्यार की लालसा निरंतर उसके हृदय में हिलोरें मारती है। प्रिय की स्नेहपूर्ण दृष्टि पत्नी को कहाँ से कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है वह नवीन ऊर्जा और उल्लास से भर उठती है

वह अवलोकन, धूल वयस की जिससे छन जाती है,
प्रौढ़ा पाकर जिसे कुमारी युवती बन जाती है।[29]

भारतीय समाज में पतिव्रता पत्नी के लिए पति के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं, दयनीय स्थिति औशीनरी की है

पति के सिवा योजित का कोई आधार नहीं है,
जब तक है ये दशा नारियाँ व्यथा कहाँ खोएँगी?
आँसू छिपा हँसेगी फिर हँसते-हँसते रोएँगी।[30]

औशीनरी अपनी भावनाओं को दमित अवश्य करती है, लेकिन नारी-सुलभ जिज्ञासा उसके अंतर्मन को झकझोरती है। अपनी उपेक्षापूर्ण स्थिति और पति की मनमानी के प्रति उसके हृदय में क्षोभ है। वह व्यंग्य से पूछती है कि सामाजिक व्यवस्था कब इतनी विचित्र हो सकती है कि पुरुष संतान-प्राप्ति के लिए किसी अन्य रमणी के साथ कुंजों में विहार करता रहे और उसकी परिणीता पत्नी बिना पति के सूने राजभवन में अकेली है, आराधना करती रहे। यह भारतीय परंपरा की अनोखी बात है कि पुत्र-प्राप्ति के लिए समस्त व्रत, उपवास, पूजा-पाठ स्त्रियों को ही करने पड़ते हैं

हाँ, अनोखी साधना है।
पुत्र पाने के लिए बिहरा करें वे कुंज वन में
और मैं आराधना करती रहूँ सूने भवन में।[31]

वह उपेक्षित-सा जीवन व्यतीत करने लगती है। विवाहिता होने पर भी वह पति-प्रेम से वंचित है। कुलवधू होते हुए भी वेदना, त्याग और आत्मोत्सर्ग ही उसका भाग्य है। आदर्श प्रेम के कारण लज्जा के वशीभूत होकर वह पतिप्रसादन में स्वयं को असफल मानती है तथा स्वयं को अप्सरा से हीन समझती है। यह कमजोरी भारतीय समाज में अनेक स्त्रियों में दिखाई देती है, जिसके चलते वे प्रगति के मार्ग पर विकासशील नारी की कोटि में नहीं आ पातीं

अश्रुमुखी माँगती एक ही भीख त्रिलोकभरण से,
कणभर की मत अकल्याण हो प्रभो कभी स्वामी का
जो भी आपदा, मुझे दो मैं प्रसन्न सह लूँगी
देव किंतु मत चुभे तुच्छतम कंटक भी प्रियतम को।[32]

उर्वशी काव्य में स्त्री को तीसरा रूप 'माता' का है। केवल भारतवर्ष में ही माँ के रूप में नारीत्व की पराकाष्ठा मानी गई है। माँ में विशिष्ट गरिमा के दर्शन होते हैं। नारी ने भी कहा है, 'सैद्धांतिक रूप से नारी अनंतकाल से समाज की मुख्य शक्ति तथा साहित्य का मुख्य प्राण रही है।' मातृत्वभाव का प्रदर्शन उर्वशी सुकन्या और औशीनरी तीनों के चरित्रों में दिखाई पड़ता है।

उर्वशी प्रेयसी होने के साथ ही पुरुरवा के संसर्ग से आयु को जन्म देने के कारण माँ भी है। वह पुत्रप्रेम में विह्वल होकर कह उठती है

अरी जुड़ाना कदा इसको? ला दे इस हृदय-कुसुम को,
लगा वक्ष से स्वयं प्राण तक शीतल हो जाती है।
आह! गर्भ में लिए इसे कल्पना शृंग पर चढ़कर
किस सुरम्य, अंतुंग स्वप्न को मैंने नहीं छुआ था? [33]

पुत्र को सुकन्या के पास छोड़कर जाने में उसे असहनीय पीड़ा हो रही है

'हाय, सुकन्ये! कल से मैं, जाने किस भाँति जियूँगी।'[34]

च्यवन ऋषि के माध्यम से दिनकर जी ने नारी का जननि रूप की भूरि प्रशंसा की है नारी ही वह महासेतु है जिस पर अहृदय से चलकर नए मनुज, नव प्राण दृश्य जग में आते रहते हैं।

नारी ही वह कोष्ठ देव, दानव-मनुष्य से छिपकर
महाशून्य चुपचाप, जहाँ आकार ग्रहण करता है।
कितना सह यातना पालती स्त्री भविष्य जगत का
कह सकता है कौन पूर्ण महिमा इस तपश्चरण की?[35]

औशीनरी अपने पति और अप्सरा के पुत्र को प्राप्त कर वात्सल्य-भाव से भर उठती है

किंतु नियति की बात! सत्य ही अभी राजमाता हूँ।
आ बेटा! लूँ जुड़ा प्राण छाती से तुझे लगाकर।[36]

औशीनरी का अतिशय स्नेह प्राप्त कर आयु भी स्वयं को तत्त्व के बंधन में बँधा अनुभव करता है'माँ! मैं पीछे नृपकिशोर, पहले तेरा बेटा हूँ।' [37]

ऋषिशाप के कारण पुत्र आयु को उर्वशी को पालन-पोषण के लिए च्यवन ऋषि की पत्नी सुकन्या के पास छोड़ना पड़ता है। सुकन्या निःसंतान होते हुए भी वात्सल्य-प्रेम के लिए विकल है। आयु को पाकर उसकी पुत्र की कामना की पूर्ति होती है'दो, उर्वशी! इसे मुझको, मैं इसको पालूँगी।' [38]

दूसरी स्त्री द्वारा जाया पुत्र भी सुकन्या को कितना अधिक प्रिय है। यहाँ पर नारीहृदय की विशालता और परंपरागत विचारधारा-निषेध के आधुनिक प्रगतिवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है

यह आश्रम की ज्योति, इंदु नन्हा इस पर्णकुटी का
सुखी! तुम्हारा लाल हमारी आँखों का तारा है।[39]

सुकन के चरित्र में कवि ने अगाध वात्सल्य, नारीसुलभ सहानुभूति, विद्वत्ता, उदारता, अहंकारशून्य अंतर्मन और कर्तव्यपरायणता का सन्निवेश किया है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दिनकर जी ने अपने इस काव्य के द्वारा नारी के विविध रूपों का वर्णन कर आधुनिकयुग के परिवेश, स्वरूप और सरोकार को उभारने का प्रसाय किया है। यह भागीरथ प्रयास कवि की सजग संवेदनशीलता और स्वतंत्र चेतना का परिचय देते हुए नारी की विविध भाव-भगिमाओं द्वारा परंपरित और प्रगतिशील संदर्भों में एक साधु नारी का स्वरूपविश्लेषण कर रहा है। उस संबंध में स्वयं दिनकर जी ने लिखा है'विकास के अवसर केवल नर को ही नहीं नारियों को भी मिलने चाहिए। यदि मन मिलता है तो ठीक है किंतु न मिलने पर पीयूष धार बनकर रहना क्या और हंस की पुरुष के अत्याचार सहने में कौनसी बड़ाई है। ऐसी स्थिति में तो नारी प्रेम के नकली सूत्र तो तोड़ देगी।'

अतः इस काव्य में आधुनिक समाज के संदर्भ में नारी की गौरव-गरिमा को प्रतिष्ठित कर स्वतंत्र चेतना से संपन्न करते हुए कवि ने उसे प्रगतिशील नारी की प्रासंगिकता प्रदान की है। भारतीय नारी का यह उभरता हुआ रूप निराशाजनक नहीं है। शिक्षा, बौद्धिकता और स्वस्थ मानवतावादी दृष्टिकोण लिए हुए वह पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए उत्सुक है।

संदर्भ

1. दिनकर और उनका काव्य, अजयसिंह, संपादकीय

2. दिनकर, उर्वशी, भूमिका
3. उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 07
4. उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 15
5. उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 15
6. उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 16
7. उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 19
8. उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 19
9. उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 13
10. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 94
11. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 95
12. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 96
13. उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 14
14. उर्वशी, चतुर्थ अंक, पृ॰ 127
15. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 65
16. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 47
17. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 57
18. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 47
19. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 77
20. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 82
21. उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 84
22. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 29
23. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 32
24. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 34
25. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 34
26. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 35
27. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 26
28. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 37
29. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 37
30. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 39
31. उर्वशी, द्वितीय अंक, पृ॰ 40
32. उर्वशी, चतुर्थ अंक, पृ॰ 157
33. उर्वशी, चतुर्थ अंक, पृ॰ 119
34. उर्वशी, चतुर्थ अंक, पृ॰ 120
35. उर्वशी, चतुर्थ अंक, पृ॰ 117
36. उर्वशी, पंचम अंक, पृ॰ 153
37. उर्वशी, पंचम अंक, पृ॰ 165
38. उर्वशी, चतुर्थ अंक, पृ॰ 129
39. उर्वशी, चतुर्थ अंक, पृ॰ 129

कला-संवेदनाशून्य समाज में कलासंस्कृति के कायल कलाकार की त्रासदी : नटरंग

प्रा॰ जयराम श्री सूर्यवंशी
हिंदी विभाग
श्री सं॰गा॰म॰महाविद्यालय, लोहा जि॰ नांदेड (महा.)

अनुवाद के माध्यम से विभिन्न भाषा समाज के अनुभव और चिंतन का आदान-प्रदान दो हजार वर्ष पूर्व से चल रहा है। अनुवाद की दुनिया के केंद्र में इन दो हजार वर्षो के दौरान विश्व की श्रेष्ठतम और शास्त्रीय रचनाएँ रही हैं। हिंदी हमारे देश की राष्ट्रभाषा होने के कारण देश के लगभग सभी राज्यों की प्रादेशिक भाषाओं से हिंदी में साहित्य अनुवाद का कार्य बड़ी तेजी से चल रहा है। इसी क्रम पर मराठी से हिंदी में अनुदित रचनाओं की संख्या भी विपुल है। मराठी की कई चर्चित रचनाओं को अनुवादकों ने हिंदी-पाठकों के लिए अनुदित किया है। मराठी दलित आत्मकथा 'अक्करमाशी', 'उचल्या', 'आठवणीचे पक्षी' आदि के हिंदी-अनुवाद को पाठकों ने बहुत सराहा और इन्हीं रचनाओं की प्रेरणा से हिंदी में दलित साहित्य सृजन का आरंभ हुआ। उपर्युक्त दलित आत्मकथाओं के अलावा मराठी के कई श्रेष्ठ उपन्यासों का हिंदी अनुवाद बड़ी मात्रा में हुआ है।

सन 1960 के बाद मराठी साहित्य में ग्रामीण साहित्य का प्रचलन बड़ी तेजी से हुआ और रचनाकारों ने ग्रामीण परिवेश, समाज तथा संस्कृति को बिना किसी आडंबर के ग्रामीण भाषा में अभिव्यक्त किया। मराठी के चर्चित ग्रामीण कथाकारों में रा॰रं॰बोराडे, दया पवार, सदानंद देशमुख, शंकर पाटिल, व्यंकटेश मांडगुळकर के साथ-साथ डॉ॰ आनंद यादव का नाम भी बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। डॉ॰ आनंद यादव ने मराठी ग्रामीण कथासाहित्य को अपनी रचनाओं के माध्यम से समृद्ध तो किया ही है, साथ ही ग्रामीण साहित्य आंदोलन को नई दिशा देने में भी अहम भूमिका निभाई है।

डॉ॰ आनंद यादव की प्रसिद्ध रचनाओं में आत्मकथा 'झोंबी' के साथ उपन्यास 'गोतावळा', 'माउली', 'तुकाराम', 'संतासखा ज्ञानेश्वर' और 'नटरंग' आदि हैं। इनके साहित्य की एक विशेषता यह भी है कि इन्हें मानवेतर प्राणियों के प्रति काफी गहरा लगाव है। उपन्यास गोतावळा और माउली में इस तथ्य की स्पष्ट झलक दिखाई देती है, साथ ही लेखक स्वयं महाराष्ट्र के ग्रामीण परिवार के सदस्य होने के कारण इनकी रचनाओं में ग्रामीण समुदाय, उनका जीवन, उनकी संस्कृति और उनके जीवन संघर्ष का बड़ी सूक्ष्मता से चित्रण मिलता है। प्रस्तुत आलेख के वऋद्र में डॉ॰ आनंद यादव की पुरस्कृत रचना 'नटरंग' को रखा है, जिसके माध्यम से लेखक ने कला-संवेदनाशून्य समाज की छिछली मनोवृत्ति के शिकार भारतीय कलासंस्कृति के कायल कलाकार की त्रासदी को पाठकों के सम्मुख रखा है, साथ

ही उपन्यास नटरंग में देहाती दलित जीवन की त्रासदी, दलित स्त्रियों के प्रति सवर्ण समाज की कुत्सित दृष्टि, आर्थिक विषमता की भयावहता, देहाती लोगों की संकीर्ण मानसिकता आदि को भी चित्रित किया है।

उपन्यास के वऋ में महाराष्ट्र के कोल्हापुर जिले के देहात कागल को रखा है। कागल ऐसा देहात है, जहाँ सवर्ण और दलित समुदाय सदियों से बसा हुआ है, सवर्णों के पास जमीन, संपत्ति होने के कारण वे समृद्ध है, किंतु कागल के मातंग सदियों से अभावग्रस्त जीवन जी रहे हैं। उनके पास न साधन हैं, न संपत्ति। मेहनत और मजदूरी के सिवाय कागल के मातंगों के पास और कोई विकल्प नहीं है। उपन्यास का प्रमुख पात्र गुणा ऐसे ही अभावग्रस्त मातंग परिवार का सदस्य है। गुणा ऐसा व्यक्ति है, जो आर्थिक विषमता से निरंतर जूझता है फिर भी कला के प्रति उसके मन में जबरदस्त समर्पण-भाव है। आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए गाँव में तमाशा मंडल स्थापित करने की ठान लेता है, किंतु कला के प्रति संवेदनाशून्य समाज के द्वारा उसके इस प्रस्ताव की समय-समय पर हँसी उड़ाई जाती है और वह है कि अंत तक अपना सर्वस्व समर्पित करके तमाशा मंडल को सफल बनाने में कामयाब होता है और इस सफलता की बहुत बड़ी कीमत समाज उससे वसूल करता है। समग्र उपन्यास गुणा के इसी संघर्ष की कहानी है।

उपन्यास का प्रमुख चिंतन-पक्ष है पारंपारिक कलाओं के कायल कलाकारों का जीवन-संघर्ष, आज भारतीय समाज में पारंपारिक कलाओं का लोप हो रहा है और इन पारंपारिक कलाओं से जुड़े कलाकारों को बहुत यातनाभरा जीवन जीना पड़ रहा है। उसके कई कारण हैं, जैसे समाज की पारंपारिक कलाओं के प्रति संवेदनहीनता और अनास्था, शासन का उदासीन दृष्टिकोण, कला का बाजारीकरण आदि। प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख पात्र गुणा भारतीय मध्यमवर्गीय कलाकार का प्रतिनिधि है। गुणा जिस मातंग परिवार में पैदा हुआ है, वह मातंग समुदाय भारतीय जातिव्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर है। परिवार का पालन-पोषण करने के लिए इस जाति के पास जितने भी पारंपरिक विकल्प थे, वे सभी वैश्वीकरण के चपेट में समाप्त हो चुके हैं, इसलिए यहाँ के कुछ मातंग गाँव छोड़कर शहर चले गए हैं, तो कुछ मातंगों ने चोरी और भीख को व्यवसाय बनाया है, किंतु इन सभी मार्गों को टालकर महत्त्वाकांक्षी गुणा कलाकार बनने की सोचता है, किंतु इस भीषण परिस्थिति में उसके कलाकार बनने की यात्रा बड़ी कठिन है। उपन्यास में गुणा के जीवन-संघर्ष के माध्यम से लेखक डॉ॰ आनंद यादव ने भारतीय कलाकार की त्रासदी को चित्रित किया है। गुणा के अंदर छिपे कलाकार को कई स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है। उसका पहला संघर्ष अपने परिवार के साथ है, क्योंकि परिवारवालों की मानसिकता रूढ़िग्रस्त है उनकी दृष्टि से तमाशा से कमाया हुआ पैसा खाना यानी हराम का खाना है, जो गुणा के रूढ़िगस्त बाप बालु मातंग को कतई मंजूर नहीं है। तमाशा में गुणा जब नचनियाँ की भूमिका के लिए अपनी मूँछें कटवा देता है, तब बालु मातंग कहता है, 'क्यों रे, माँ मर गई या बाप? मूँछें क्यों कटवा दीं।' परिवार के साथ-साथ उसे मातंग-समाज की रूढ़िग्रस्त मानसिकता के खिलाफ भी संघर्ष करना पड़ता है। जब वह तमाशा मंडल स्थापित करने के लिए प्रयास करता है, तब गाँव के सभी मातंग उसका विरोध करते हैं। इसके साथ ही गुणा को तमाशा निर्माण करते समय अपने सहयोगी कलाकारों की संकीर्ण मानसिकता के साथ भी संघर्ष करना पड़ता है, क्योंकि तमाशा मंडल के सभी कलाकार कला पर प्रेम करनेवाले शुद्ध कलाकार नहीं हैं। वे केवल इसलिए तमाशा में काम कर रहे हैं कि उन्हें एकमुश्त काम मिलेगा, देश घूमने को मिलेगा और पैसों की बरसात होगी। इतना

सीमित उद्देश्य रखनेवाले कलाकारों के साथ काम करना एक बड़ी चुनौती थी, बहुत बड़ा संघर्ष था, जिसे गुणा को भुगतना पड़ा। गुणा का तमाशा में नचनियाँ का काम स्वीकृत करना इसी संघर्ष का हिस्सा है।

उपन्यास में लेखक ने कलाकार के जीवन-संघर्ष के साथ ही भारतीय समाज की कला के प्रति संवेदनाशून्य और छिछली मानसिकता को भी चित्रित किया है। उपन्यास में कई प्रसंग ऐसे हैं, जिससे समाज की कला के प्रति संवेदनाशून्य और छिछली मानसिकता को बताया किया जा सकता है। उपन्यास के आरंभ में ही चायवाले के कथन नचनियाँ तो कोई नामर्द ही बने से इस बात को पुष्टि होती है कि होटल में बर्तन धोना ठीक है, लेकिन तमाशा में काम करना ठीक नहीं है। इसके अलावा उपन्यास का एक प्रसंग है जिसमें गुणा और किसन तमाशा में काम करने के लिए दो लड़कियों की व्यवस्था करने के लिए गाँव-गाँव घूमते हैं, लेकिन तमाशा में काम करने के लिए कोई भी लड़की तैयार नहीं है। अंत में तंग आकर वे सोचते हैं कि देवदासी, जोगतिन या बाजीगरों की लड़की मिले या फिर बिना माँ-बाप की, रखैल की, नहीं तो एकदम गरीब लड़की मिले जो पैसे के बल पर काम के लिए हाँ करे, किंतु ऐसा भी नहीं होता। अंततः उन्हें लोगों की गालियाँ खाकर खाली हाथ लौटना पड़ता है। लेखक के शब्दों में, 'मातंगवाडे में गुणवंत और किसन पर जूतों की, घूसों की, लातों की बौछार पड़ी। टोपी वहीं फेककर, खून थूकते हुए उन्हें जोर से भागना पड़ा। इसके साथ-साथ तमाशा खत्म होने पर नयना और शोभना के हाथ में थाली देकर उन्हें पैसे माँगने के लिए घुमाना, नचनियाँ का काम करने के लिए किसी का भी तैयार न होना, गुणवंत पर तमाशा देखने आए लोगों द्वारा 'शारीरिक अत्याचार करना समाज की कला के प्रति छिछली मनोवृत्ति के संकेत हैं।

उपन्यास नटरंग के नायक गुणा के माध्यम से लेखक डॉ॰ आनंद यादव ने कलाकार का कला के प्रति समर्पणभाव किस कदर होना चाहिए इस तथ्य को भी पाठकों के सम्मुख रखा है। गुणा के परिवार की आर्थिक परिस्थिति पर उपर चर्चा की गई है। दूसरों के खेत में काम करके जीवीकोपार्जन करने वाला यह युवक कला और कलासंस्कृति पर बेहद समर्पित है। उपन्यास के आरंभ में श्रीपति के खेत में काम करते समय ही सुलकुल में चल रहे मेले का चित्र गुणा के सामने उपस्थित होता है क्योंकि मेले में तमाशा चल रहा है और वह रात में ही तमाशा देखने कागल से सुलकूड पैदल जाता है। लेखक के शब्दों में, डफली की आवाज उसके कानों में गूँजी और उसके पैर अपने आप तमाशा-मंच की ओर मुड़ गए। इसके अलावा गुणा की कला के प्रति समर्पित भावना को और कुछ प्रसंगों के आधार पर समझा जा सकता है। गाँव में तमाशा मंडल स्थापित करने की सोच उसी की है, तमाशा की सफलता के लिए वह अपने कमर की चाँदी की करधनी सुनार को बेचता है और बदले में बाप की ढेर सारी गालियाँ खाता है। तमाशा में नचनियाँ की भूमिका निभाना, लावणी तथा पटकथा का निर्माण करना, अपने परिवार के साथ-साथ अपनी पत्नी और बच्चे का जीवन भी कला के लिए दाँव पर लगाना इन बातों से गुणा की कला और कलासंस्कृति के प्रति असीम प्रतिबद्धता जाहिर होती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि, डॉ॰ आनंद यादव मराठी ग्रामीण साहित्य के प्रतिष्ठित रचनाकार हैं अपनी रचनाओं के माध्यम से लेखक ने महाराष्ट्र के ग्रामीण मांतग समाज के युवक द्वारा पारंपरिक कला-संस्कृति को जीवित रखने की दृष्टि से किए गए संघर्ष को बिना किसी आडंबर के पाठकों के सामने रखा है। गुणा के बहाने लेखक ने एक आदर्श कलाकार को अपनी कलात्मक ऊर्जा बचाने के लिए किए गए संघर्ष को तो चित्रित किया ही है, साथ ही ग्रामीण

समुदाय की वेदना, अभावग्रस्त जीवनशैली को भी सूक्ष्मता से पाठकों के सम्मुख रखा है। डॉ॰ आनंद यादव कलात्मकता के प्रति काफी सजग हैं। जीवन की बेबाक सच्चाइयों को प्रस्तुत करते समय वे कलात्मकता के साथ किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करते हैं। इसी कारण इनकी रचनाओं की ओर पाठक आकर्शित होते हैं।

संदर्भ

1. नटरंग, डॉ.आनंद यादव, अनु.रामजी तिवारी

श्री संग्राम महा॰ लोहा
जि॰ नांदेड (महा॰) 431708
मो॰ 09960426038

कामायनी में हिमालयी (पर्यावरणीय) चेतना

प्रो॰ मृदुला जुगरान एवं
कु॰ प्रियंका घिल्डियाल, शोधार्थी
हे॰न॰ब॰ के॰ग॰वि॰वि॰ श्रीनगर (गढ़वाल)

कामायनी विश्व की एक महानतम काव्यरचना है, जिसमें प्रलय के मिथक के माध्यम से कवि प्रसाद ने मानव-जीवन के लिए अनेक तथ्यों का उद्‌घाटन करने में किसी प्रकार की कमी नहीं की। कोई भी रचना तभी प्राणवान बनती है जब उसमें मानव-जीवन संदर्भित आख्या विद्यमान होती है, जिसमें मूल्य, धर्म, संस्कृति, आत्मविकास का निदर्शन मिलता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि प्रसाद की कामायनी मानव-समाज के लिए एक प्रकाशस्तंभ है, जिसमें जो चाहे वैसा रत्न खोजकर अपने हिस्से में ले सकता है। पंद्रह सर्गों में रची गई यह कृति कभी आत्मवाद तो कभी आनंदवाद, कभी प्रकृतिवाद तो मानववाद, कभी विज्ञानवाद तो कभी नारीवाद, कभी पुरातन मूल्य तो आधुनिकतावाद का जयघोष करती हुई हिंदी के पाठकों को सर्वाधिक रुचि देने वाली रचना सिद्ध हुई है। आज विश्व-सभ्यता के जिस पायदान पर हम खड़े हैं वह हमसे प्रश्न कर रही है कि आने वाला समय कैसा होगा। भूमंडलीय समाज के लिए अपरिहार्य उस वैश्विक चेतना को कैसे स्थापित किया जाए, जिसमें मानवीय मूल्यों को किताबों से निकालकर मनुष्य के हृदय रूपी पन्ने पर स्वर्णाक्षरों में सदा के लिए अंकित कर दिया जाए, जिसमें मतभेद के स्थान पर सहमति, भिन्नता के स्थान पर एकात्म और हिंसा के स्थान पर अहिंसा की प्रतिष्ठा हो सके।[1]

हिंदी का छायावादी काव्य अपनी रचना के उदय के साथ प्रकृति के अनन्यतम विश्लेषण का काव्य रहा है। प्रायः हम इन छायावादी कवियों का विश्लेषण प्रकृति के विविध रूपों के रूप रूपांकन तथा छायावाद को एक विशिष्ट काव्य-शैली के आधार पर तोलकर ही करने के आदी हो चुके हैं। किंतु हम यह भूल गए कि प्रकृति के साथ तदाकार होने वाले प्रसिद्ध छायावादी कवियों में पर्यावरणीय दृष्टि एवं पर्यावरणीय चेतना का सर्वोत्तम विकास विद्यमान है। उनकी दूरंदेशी दृष्टि यह भाँप चुकी थी कि आनेवाला समय प्रकृति से अनावश्यक छेड़छाड़ एवं प्रकृति के अनावश्यक दोहन का समय होकर मनुष्य के लिए विनाश के दृश्य उपस्थित कर सकता है, कदाचित इसी कारण पंत ने प्रकृति के कोमल रूप को, तो प्रसाद ने उसके भयंकर रूप को दर्शाकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यह प्रकृति हमारे आचार-व्यवहार के कारण हमसे कहीं भी पृथक् नहीं है। यह हमारे अंतर्तम की ममता, प्रेम का प्रकाशन है, यह हमसे खेलती है, प्रेरणा देती है, आनंद में सराबोर करती है। अतः संसार की आकर्षणनुमा नारी तन में उलझने की अपेक्षा प्रकृति-सुंदरी के बाल-जाल में उलझना ज़्यादा आकर्षणमय है।

छोड़ द्रमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को

इन्हीं कवियों की प्रकृति चेतना का दूसरा रूप उसका रौद्रतम रूप है, जो कवि प्रसाद कवि पंत, तो कभी निराला की काव्य-लेखनी में स्थान-स्थान पर उजागर होता रहा है

हाहाकार हुआ क्रंदनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर।
हुए दिगंत बधिर भीषण रव
बार-बार होता था क्रूर।[2]

इसके द्वारा यह संदेश दिया गया है कि यदि हमने प्रकृति का प्राकृतिक सत्यों और मर्यादाओं के साथ दोहन किया तो वह हमारी हितकारी है, किंतु यदि हमने प्राकृतिक सत्यों की उपेक्षा कर प्रकृति का अनावश्यक विदोहन किया तो वह हमारे लिए विध्वंसकारी, क्रूर, तांडव, उपस्थित करने में समर्थ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अभी-अभी हमने 16 जून को उत्तराखंड में आए भयंकर प्रलय और विनाश के मंज़र के रूप में देखा है, जिसमें पर्यावरणविद् न केवल उत्तराखंड की परिस्थितिकीय के प्रति हमें सचेत कर रहे हैं, अपितु संपूर्ण विश्व को विनाश की विभीषिका की चेतावनी देते हुए दिखाई दे रहे हैं उन्होंने इस त्रासदी के लिए उत्तराखंड में प्रकृति से अनावश्यक छेड़छाड़ को ज़िम्मेदार ठहराया है। उन्होंने कहा कि पर्वतराज हिमालय प्रकृति की अनन्य व्यवस्था है। देश की हवा पानी और मिट्टी को लाभान्वित करने वाले दुनिया के इस सबसे ऊँचे पहाड़ को हमने सिर्फ भोग की वस्तु समझा है। वर्तमान त्रासदी हिमालय को समझने में हमारी भूल का परिणाम है। हमने इस शृंखला को सिर्फ जंगल, मिट्टी, चट्टान और हिमनदियों वाला पहाड़ ही समझा। हमने यह नहीं समझा कि यह मात्र हमारी संस्कृति और संस्कारों का स्रोत ही नहीं, बल्कि हमारे जीवन के तार एवं आधार सीधे इस महान हिमखंड से जुड़े हुए है।[3]

कामायनीकार को छायावादी काल में हिमालय संरक्षण की पर्यावरणीय चेतना प्रभावित करने लगी थी। छायावादी रचना कामायनी का श्रीगणेश हिमालय की ही पृष्ठभूमि से हुआ है

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।

कामायनी का उदय और कामायनी का अस्त भी हिमालय वर्णन से ही हुआ है। उसका एक छोर हिमालय है तो दूसरा छोर कैलाश मानसरोवर है। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता सेम्युल ने कहा है कि मनुष्य पृथ्वी तल की उपज है। पृथ्वी माता ने उसका पालन-पोषण किया है। वह उसकी हड्डी, मांस, मस्तिष्क और आत्मा में प्रवेश कर गई है।[4]

प्रसिद्ध कवि कालिदास ने हिमालय को पृथ्वी का मानदंड स्वरूप कहा है। कामायनीकार

ने भी हिमालय के शिखरों के सौंदर्य को निहारकर उसे भयभीत पृथ्वी का सहारा बताया है। यह उनकी पर्यावरणीय चेतना ही है

विश्व कल्पना-सा ऊँचा वह
सुख शीतल संतोष निदान
और डूबती-सी अचला का
अवलंबन मणिरत्न निधान।[5]
अचल हिमालय का शोभनतम
लता कलित शुचि सानु शरीर
निद्रा में सुख-स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर।[6]

कामायनीकार की श्रद्धा हिमालय के शिखरों में विहार करती हुई उस मनु तक पहुँची थी, जो प्रलयकाल में पृथ्वी के जलमग्न हो जाने पर हिमालय में आश्रय लिए हुए थे। इसी हिमालय ने प्रलयकाल में उनकी रक्षा की थी, हमें सचेत हो जाना चाहिए कि पृथ्वी के नष्ट हो जाने पर उसका मुकुट हिमालय बचा रहेगा। अतः हिमालय हमारी प्राथमिकता है। मनु की नौका भी प्रलयकाल में डूबती-उतराती उत्तरगिरि के शिखर हिमालय से जा लगी, जिसमें उसे सहारा मिल गया

किंतु उसी ने ला टकराया
इस उत्तर गिरि के शिर से
देवसृष्टि का ध्वंस अचानक
श्वास लगा लेने फिर से।[7]

आधुनिक पर्यावरणीय चेतना का नारा हैहिमालय बचाओ। फ्रांस में रूसो द्वारा नारा लगाया गया था कि हमें प्रकृति की ओर लौटना चाहिए।

प्रसाद जी ने काशी में बैठकर हिमालय पर चिंता की, जिसका कारण यही रहा होगा कि हिमालय की गोद से निकलने वाली सदानीरा नदी गंगा एक लंबी यात्रा कर मैदानी भागों को सींचती है। काशी-बनारस जैसे तीर्थों का आध्यात्मिक चिंतन प्रसाद के जीवन की विभूति बना। अतः उन्होंने कामायनी में हिमालय पर चिंता की। उसके महत्त्व को प्रदर्शित किया, नदियों पर चिंता की ओर उनके महत्त्व को प्रदर्शित किया। भारतीय संस्कृति को हिमालय एवं नदियों के साथ जोड़कर एक विराट दर्शन को समाज और मानवता के समक्ष रखा है। 'हिंदू पौराणिक मान्यता के अनुसार, हिमालय एक राजा है, जिसके पास रत्न, धन, ऐश्वर्य के समग्र साधन विद्यमान है संभवतः पुराशास्त्रों की ऐसी सोच पर्यावरणीय चेतना की प्रथम सोच हो सकती है। विशाल नदियों जल स्रोतों और पृथ्वी को जीवन देनेवाले तथा प्रलयकाल में भी नष्ट न होने वाले इस मिालय की सुरक्षा करना मानव जाति का पुनीत कर्तव्य है।[8]

यह हिमालय अपनी ही शोभा में नित्य नूतन स्वप्न देखा करता है। वह पृथ्वी पर अपनी कृपा-दृष्टि रखे हुए है। हिमालय बचेगा तो हम भी बचेंगे। यदि हिमालय ही नष्ट हो गया तो पूरे ब्रह्मांड में हलचल की आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता। हमारे दर्शन में प्रकृति को मूल कारण

कहा गया है। संपूर्ण ब्रह्मांड की उत्पत्ति उसी से मानी गई है। धरती के संरचनात्मक स्वरूप में पहाड़, घाटियों और भूगर्भीय विशिष्टताओं का योग मिलता है। हमारी यह पृथ्वी, उसके जीव-जंतु और पादप सब वातावरण के लिए एक आवश्यक अंग हैं। हमारे आस-पास जो कुछ भी है, जो हमें घेरे हुए है, वह पर्यावरण का अंग है। इसके अंतर्गत पृथ्वी, जल, जीवधारी, वायु, पेड़-पौधे, पहाड़-पर्वत, नदियाँ आदि सब-कुछ आ जाते हैं। इस पृथ्वी के ऊपर जीवन का संचार तीन अरब वर्ष पहले हो चुका है। कोई भी जीवधारी ऐसा नहीं है, जो पर्यावरण से अपनी किसी ज़रूरत को पूरा न करता हो। हर जीवधारी ऐसा नहीं है, जो पर्यावरण से अपनी किसी जरूरत को पूरा न करता हो। हर जीवधारी पर्यावरण से कुछ लेता है, और कुछ तत्त्व विसर्जित करता है। प्रत्येक जीवधारी के लिए पर्यावरण की कुछ शर्तें हैं, जब तक वह उनका पालन करता रहेगा तब तक वह जीवित रहेगा।[9]

डॉ॰ गोविंद चातक ने भी स्वीकार किया है कि उपभोग की संस्कृति जब नगरीकरण व औद्योगीकरण के द्वारा चरम स्थितियों तक पहुँच जाती है, तो आत्मिक संस्कृति उपेक्षित होकर रह जाती है। पुराकाल में देवसृष्टि का विनाश इसलिए हुआ। ग्रीस और मिस्र की महान सभ्यताओं का अंत भी इसी कारण हुआ है।[10]

कामायनीकार का हिमालयी संदर्भ जहाँ एक ओर मानवता का सही मूल्यांकन एवं संस्कृति का विराट दर्शन है, वहीं दूसरी ओर अखंड भारत एवं भारतीयता का निदर्शन भी हुआ है। आज के संदर्भ में पर्यावरणविदों ने भारतीय जाति को नहीं, अपितु पूरे विश्व को चेतावनी दे दी है कि भारत देश के 65 प्रतिशत लोग किसी-न-किसी रूप में हिमालय की नदियों, वनों और इनके उत्पादों से ही फले-फूले हैं। गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र जैसे बड़ी नदियों ने ही सभ्यताओं को जन्म दिया और हिमालय की बड़ी-बड़ी नदियाँ देश के प्राणों से जुड़ी हैं। इस आलौकिक हिमालय को मनुष्य ने अलग-थलग करके ही देखा। इसके संवेदनशील तंत्र को कभी समझने की कोशिश नहीं की।[11]

कवि प्रसाद को हिमालय से इसी कारण मोह है कि यह हमारी परिस्थितिकी का सबसे बड़ा तंत्र होने के साथ-साथ हमारी संस्कृति एवं आत्मविकास का वृहत्तम सोपान है, यह दुर्भेद्य है। आशा सर्ग में कवि ने हिमालय की सांस्कृतिक अस्मिता का जयघोष किया है

उमड़ रही जिसके चरणों में
नीरवता की विमल विभूति
शीतल झरनों की धाराएँ
बिखराती जीवन अनुभूति।[12]

कवि ने उसे प्रलयकाल में भी नष्ट न होने वाला बताया है

शिला-संधियों में टकराकर
पवन भर रहा था गुंजार
उस दुर्भेद्य अचल दृढ़ता का
करता चारण सदृश प्रचार।[13]

यही कारण है कि राष्ट्रप्रेमी प्रसाद के लिए या हिमालय इस देश की अखंडता का प्रतीक भी है। कामायनी की मुख्य पात्री है श्रद्धा। वह हिमालय के उन्नत, मौन, नैसर्गिक सौंदर्य पर मोहित

होकर उस हिम-प्रदेश में भ्रमण करती हुई मनु से मिलती है और हिमालय की महिमा तथा उसके गूढ़तम रहस्यों का प्रकाशन करती हुई मनु से कहती है

दृष्टि जब जाती हिमगिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर
धरा की यह सिकुड़न भयभीत
आह कैसी है? क्या है पीर?[14]

हिमालय सांस्कृतिक पर्यावरणीय दृष्टि से मानव-मात्र की आत्मिक उच्चता का प्रतीक है। प्रकृति ही ईश्वर है। प्रकृति के रहस्यों ने मनुष्यों ने मनुष्य-जीवन का आधार दिया है, हिमालय उनमें सर्वोत्तम तत्त्व है, जो जड़ एवं चेतन का प्रतीक है

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था, एक सघन
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।[15]

श्रद्धा इसी हिमालय के शृंगों में जीवन का रहस्य खोजने आई है

मधुरिमा में अपनी ही मौन
एक सोया संदेश महान
सजग हो करता था संकेत
चेतना मचल उठी अनजान।[16]
बढ़ा मन और चले ये पैर
शैल-मालाओं का शृंगार
आँख की भूख मिटी यह देख
आह कितना सुंदर संभार।[17]

पर्यावरणविदों के अनुसार हिमालय मात्र पर्वत शृंखला नहीं, बल्कि प्रकृति की एक अनन्य व्यवस्था है, जो ढेर सारे उत्पादों के साथ प्राणी जगत से भी जुड़ी है। इस बेजोड़ वस्तु को समझने की भूल के हुए परिणाम असीमित और असंशोध्य हैं। हिमालय एक अद्‌भुत तालमेल का ही परिणाम है। यहाँ के वन, नदियाँ, मिट्‌टी एक विशिष्ट संतुलन और पारस्परिक समन्वय में रहते हैं। किसी भी एक से छेड़छाड़ का परिणाम पूरे संतुलन को डगमगाता है, और यह संतुलन मात्र हिमालय से ही नहीं जुड़ा, बल्कि मैदानों से भी इसका सीधा रिश्ता है।[18]

पर्यावरण के अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। आधुनिक युग में जल-प्रदूषण भूमि एवं जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, सृष्टि नियामक पंचतत्त्वों में दोष, वृक्ष, वन, जीवमंडल, जनसंख्या भार, पर्यटन, सामाजिक पर्यावरण प्रदूषण आदि को निकटतम समय के ख़तरों के रूप में आँका जाने लगा है। पृथ्वी का भार बढ़ता जा रहा है, भाव-प्रदूषण, यौन-प्रदूषण की मार से तरह-तरह की व्याधियाँ जन्म ले रही हैं। जन, जर, जमीन सभी खतरे की भेंट चढ़ चुके हैं। ऐसे में भावात्मक पर्यावरण, सांस्कृतिक पर्यावरण, आध्यमिक पर्यावरण का कवच ही हमारी रक्षा कर सकता है। पर्वतों के सुरम्य नैसर्गिक जनजीवन से

जब हम भौतिक सभ्यता वाले नागर जीवन में प्रवेश करते हैं, तो बुद्धि के वैभव में उलझकर पर्यावरण को दूषित कर बैठते हैं। हिमालय भी हमारी भावात्मक एवं सांस्कृतिक चिरंतनता का प्रतीक होकर शंकर की तपस्थली माना गया है और प्रकृति का अतुलनीय वैभव उस पराशक्ति का अनिवर्चनीय गुंजन। भारतीय मत-मतांतर में पुरुष एवं प्रकृति के कण-कण में उसी महान चेतना एवं परासत्ता का संगीत सुनाई देता है। हिमालय इसके लिए संजीवनी का कार्य करता है। अतः कामायनीकार ने विज्ञान की विभीषिका से ग्रस्त मनु को सारस्वत नगर के यातनामय जीवन से मुक्त कराकर कैलाश पर्वत की मनोहर भूमि में ले जाने का विधान रचा है। उनके जीवन में यह पुनीत कार्य श्रद्धा द्वारा किया गया है। संकटापन्न स्थिति से उबारकर वह मनु को कैलाश पर्वत की उस भावभूमि पर स्थापित करती है जिसका सुंदरतम प्रतिबिंब मानसरोवर के निर्मल जल में पड़ रहा होता है। इस पुण्य सलिल एवं पावन प्रदेश के प्रभाव से मनु एवं श्रद्धा साक्षात् शिव एवं शिवा का स्वरूप बन जाते हैं। यह सब फलित होता है हिमालय एवं कैलाश मानसरोवर की भूमि में

मनु ने कुछ-कुछ मुसक्याकर
कैलास ओर दिखलाया
बोले देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया।[19]

प्रकृति एवं पुरुष का आह्लाद संपूर्ण जीव-जगत की दिव्यतम विभूति है। हमें प्रकृति के ही साथ चलना है, तब ही विश्व का कल्याणकारी वर्णन हो सकेगा

वह चंद्र-किरीट रजत नग
स्पंदित-सा पुरुष पुरातन
देखता मानसी गौरी
लहरों का कोमल नर्तन।[20]

हमने उत्तराखंड की वर्तमान जलप्रलय की त्रासदी को हिमालय से छेड़छाड़ व दूषित व्यवहार के परिणामस्वरूप भोगा है। कालजयी कवि प्रसाद ने इसे वर्षों पूर्व कवि की आँखों से देखकर हिमालय बचाओ का संकेत दे दिया था। पाषाणी हिमवती प्रकृति में रागतत्व की सृष्टि करना हमारा पुनीत कर्तव्य है, उसको भौतिकता की लपटों की आग से झुलसाना एक पैशाचिक कृत्य है। प्रसाद का हिमालय विश्वराग में स्नात शिव-शिवा का मोहक नृत्य संगीत है

मांसल-सी आज हुई थी
हिमवती प्रकृति पाषाणी
उस लास रास में
विह्वल थी हँसती-सी कल्याणी।[21]

निष्कर्षतः प्रकृति एवं हिमालय के साथ छेड़छाड़ समूची भारतीय संस्कृति के साथ खिलवाड़ है। आज पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण बद्रीनाथ, केदारनाथ जैसे धामों में तबाही के मंजर के पीछे मनुष्य-जीवन की भोगलिप्सा ही कारण मानी जा रही है। सच तो यह है कि प्रकृति विभिन्न अवसरों पर अलग-अलग तरीक़े से इंसान को उसके अंतर्गत हस्तक्षेप के निमित्त चेतावनी देती रही है।

इसीलिए भौतिक विकास के भ्रमजाल में पकड़कर पद और धन के मद में सत्ता पर काबिज जो कोई तथाकथित समर्थ लोग विधाता बनने का भ्रम पाल लेते हैं, सबसे पहले उन्हें सबक लेना है।[22]

संदर्भ

1. प्रो॰ मृदुला जुगरान, छायावादी काव्य : कुछ नए संदर्भ, पृ॰ 13
2. प्रसाद ग्रंथावली, चिंता सर्ग, कामायनी संपादक रत्नशंकर प्रसाद, पृ॰ 42
3. आलेख डॉ॰ अनिल प्रकाश जोशी, प्रसिद्ध पर्यावरणविद्, दैनिक जागरण 30 जून 2013
4. प्रफुल्ल करकेल, समाचार पत्र, हिंदुस्तान 1 जनवरी 1997
5. प्रसाद ग्रंथावली, आशा सर्ग, कामायनी, संपादक रत्नशंकर प्रसाद, पृ॰ 439
6. प्रसााद ग्रंथावली, आशासर्ग, कामायनी, संपादक रत्नशंकर प्रसाद पृ॰ 439
7. चिंता सग्र, कामायनी, संपादक रत्नशंकर प्रसाद, प्रसाद ग्रंथावलीपृ॰ 427
8. प्रो॰ मृदुला जुगरान, छायावादी काव्य : कुछ नए संदर्भ पृ॰ 60
9. डॉ॰ गोविंद चातक, पर्यावरण परंपरा और अपसंस्कृति, पृ॰ 11
10. डॉ॰ गोविंद चातक, पर्यावरण परंपरा और अपसंस्कृति पृ॰19
11. आलेख डॉ॰ अनिल प्रकाश जोशी प्रसिद्ध पर्यावरणविद, दैनिक जागरण 30 जून 2013
12. प्रसाद ग्रंथावली, आशा सर्ग, कामायनी, संपादक, रत्नशंकर प्रसाद, पृ॰ 439
13. वही, पृ॰ 439
14. वही, पृ॰ 461
15. वही, पृ॰ 413
16. वही, पृ॰ 461
17. वही, पृ॰ 461
18. आलेख डॉ॰ अनिल प्रकाश जोशी, प्रसिद्ध पर्यावरणविद् दैनिक जागरण 30 जून 2013
19. संपादक, रत्नशंकर प्रसाद, प्रसाद ग्रंथावली, आनंद सर्ग, कामायनी, पृ॰ 697
20. वही, पृ॰ 697
21. वही, पृ॰ 704
22. आलेख सुषमा जुगरान ध्यानी राष्ट्रीय सहारा रविवार 30 जून 2013

प्रगति विहार कॉलोनी
निकट राधा-स्वामी सत्संग व्यास
श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखंड) 246174
मो॰ 09536464562

उर्वशी में नारी-चेतना

कु॰ प्रियंका घिल्डियाल
शोधार्थी (हिंदी विभाग)
हे॰न॰ब॰ के॰ग॰वि॰वि॰ श्रीनगर (गढ़वाल)

रामधारी सिंह दिनकर जी ने 'उर्वशी' प्रबंध की कथा को पाँच अंकों में विभाजित करके हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। उर्वशी जो कि काव्य की मुख्य नायिका है, पर ही काव्यकथा आधारित है। 'उर्वशी' शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'उर में निवास करनेवाली'। अर्थ के अनुरूप ही कवि ने उर्वशी नायिका को प्रतीकात्मकता प्रदान की है, क्योंकि नारी विश्वमानव के हृदय में निवास करनेवाली काम-प्रेरणा है। इसलिए कवि ने उर्वशी को ज्वाला, वह्नि, तृष्णा, उजियाली आदि कई प्रकार की प्रतीकात्मकता प्रदान की है। उर्वशी दिनकर जी के सर्वश्रेष्ठ प्रबंधकाव्य की प्रमुख काव्य संचालिका, कथा का प्राण तथा संसार के मानस-हृदय में उत्पन्न काम की विस्तृत परिभूमि एवं नारी का अकाट्य प्रतीक है, क्योंकि उसमें वे सभी गुण, भावनाएँ तथा नारीसुलभ प्रवृत्तियाँ हैं जो एक सामान्य नारी में होती हैं।

सौंदर्य के प्रति आकर्षण

प्रत्येक साधारण के नारी के हृदय में यह कामना होती है कि वह अप्रितम सुंदरी हो और इसलिए प्रत्येक नारी अपनी सज्जा व बनावट पर हर समय ध्यान देती है। इसी सौंदर्य के कारण ही प्रत्येक नर नारी के प्रति आकर्षित होता है, जिसका वर्णन इस प्रकार है

साथ चलूँगा मैं सुगंध से खिंचे हुए मधुकर-सा
याकि राहु जैसे विधु के पीछे-पीछे चलता है।[1]

उर्वशी का सौंदर्य अतुलनीय है, जिसका वर्णन निम्नवत् निपुणिका करती है

कुसुम कलेवर में प्रदीप्त आभा ज्वालामय मन की
चमक रही थी नग्न कांति वसनों से छनकर तन की
अंग-अंग में लहर लास्य की राग जगानेवाली
नर के सुप्त, शांत शोणित में आग लगानेवाली।[2]

इसी सौंदर्य का वर्णन स्वयं भी उर्वशी करती है

पाषाणों के अनगढ़ अंगों को काट-छाँट
मैं ही निविडस्तननता, मुष्टिमध्यम
मदिर लोचना, कामलुलिता नारी
प्रस्तरावरण कर भंग

तोड़ तम को उन्मत उभरती हूँ।[3]

इसी सौंदर्य से आकृष्ट होकर ही पुरुरवा कहता है

तुम अनंत सौंदर्य एक तन में बस जाने पर भी
निखिल सृष्टि में फैल चतुर्दिक कैसे व्याप्त रही हो
तुम अनंत कल्पना, अंक चाहे जिस भाँति भरूँ मैं
एक किरण तब भी बाहों से बाहर रह जाती है।[4]

परिणय कामना–एक सामान्य नारी में भी सम्मानजनक परिणय की कामना होती है। जो उर्वशी में भी है, इसलिए उर्वशी नारी प्रतीक है। जैसे

पर, इस आने में किंचित भी स्वाद कहाँ उस सुख का
जो सुख मिलता उस मनस्विनी वामलोचनाओं को
जिन्हें प्रेम से उद्वेलित विक्रमी पुरुष बलशाली
रण से लाते जीत या कि बल-सहित हरण करते हैं।[5]

प्रेम–प्रत्येक नारी में प्रेम की कल्पनाएँ तथा उस प्रेम के स्वप्न आते हैं, जो समय से पूर्व उसके हृदय में स्थान ग्रहण करते रहते हैं और यह प्रेम का स्फुरण ही समय आने पर प्रस्फुटित होकर साकार रूप ग्रहण कर लेता है। ऐसा ही अवसर जब उर्वशी के जीवन में आता है तो वह भी सामान्य नारी-जैसी ही प्रतिक्रिया करती है, जिसे सहजन्य के शब्दों में प्रस्तुत किया गया है

पुरुषरत्न को देख न वह रह सकी आप अपने में
डूब गई सुरपुर की शोभा मिट्टी के सपने में
प्रस्तुत है देवता जिसे सब-कुछ देकर पाने को
स्वर्ग कुसुम वह स्वयं विकल है वसुधा पर जाने को।[6]

अतः यहाँ उर्वशी में प्रेम मानवी गुण स्त्रियोचित है। इसलिए यहाँ उर्वशी नारी प्रतीक रूप में आई है।

संयोग की उत्कट अभिलाषा–प्रत्येक सामान्य नारी के हृदय में अपने प्रेमी से मिलने की तीव्र इच्छा होती है और वह शीघ्रता तथा व्यग्रता से उससे मिलने के लिए कटिबद्ध रहती है और यही संयोग की उत्कट अभिलाषा दिनकर जी की उर्वशी में भी पाई जाती है। जैसे

आज सांझ से सखी उर्वशी को न रंच भी कल थी
नृप पुरुरवा से मिलन को वह अत्यंत विकल थी।
कहती थी, यदि आज कांत का अंक नहीं पाऊँगी
तो शरीर को छोड़ पवन में निश्चय मिल जाऊँगी।[7]

उपर्युक्त उदाहरण में उर्वशी में भी सामान्य नारी-जैसी प्रेम की भावना तथा संयोग की तीव्र इच्छा है। अतः इस आधार पर भी उर्वशी नारी का ही प्रतीक है। संयोग के आकर्षण के अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं

रोम-रोम में वृक्ष, तरंगित, फेनिल हरियाली पर
चढ़ी हुई आकाश-ओर में कहाँ उड़ी जाती हूँ?

रोम-कूप, जाने भर जाते किन पीयूष कणों से।
और सिमटते ही कठोर बाहों के आलिंगन में
चटुल एक पर एक उष्ण ऊर्मियाँ तुम्हारे तन की
मुझमें कर संक्रमण प्राण उन्मत्त बना देती हैं।[9]

कामसुख–प्रत्येक नारी में एक सामान्य कामसुख की लालसा होती है और यह कामसुख की लालसा किसी नारी में अंगों के संकेतों से प्रकट हो जाती है और अधिक लज्जाशील नारी इस काम-सुख की लालसा को प्रकट नहीं होने देती है। लेकिन यह लालसा होती सभी नारियों में है जिसे दिनकर जी की नायिका उर्वशी ने इस शब्दों में प्रकट किया है

जन-जन के मन की मधुर वहिन, प्रत्येक हृदय की उजियाली
नारी की मैं कल्पना, चरम नर के मन में बसने वाली।[10]

इसी प्रकार जब पुरुरवा संयोगावस्था में रहते हुए आध्यात्मिक लोक में पहुँच जाता है तो उर्वशी उसे कहती है

यह मैं क्या सुन रही? देवताओं के जग से चलकर
फिर मैं क्या फँस गई किसी सुर के ही बाहुवलय में[1]

अर्थात् उर्वशी कामसुख की लालसा के कारण ही सुरपुर से नरलोक में आई है। तभी वह पुरुरवा से कहती है

आ मेरे प्यारे तृषित! श्रांत! अंतःसर में मज्जित करके
हर लूँगी मन की तपन चाँदनी, फूलों से सज्जित करके।
रसमयी मेघमाला बनकर मैं तुझे घेर छा जाऊँगी
फूलों की छाँह तले अपने अधरों की सुधा पिलाऊँगी।[12]
पर मैं बाधक नहीं, जहाँ भी रहो, भूमि या नभ में
वक्षस्थल पर, इसी भाँति मेरा कपोल रहने दो।
कसे रहो, बस, इसी भाँति, उरपीड़क आलिंगन में
और जलाते रहो अधर-पुट को कठोर चुंबन से।[13]

उर्वशी काम-सुख की व्यापकता का वर्णन निम्न कथन में भी करती है

रूप का रसमय निमंत्रण
या कि मेरे ही रुधिर की वह्नि
मुझ को शांति से जीने न देती
हर घड़ी कहती उठो
इस चंद्रमा को हाथ से घरकर निचोड़ो
पान कर लो यह सुधा मैं शांत हूँगी
अब नहीं आगे कभी उद्भ्रांत हूँगी।[14]

इस प्रकार उपयुक्त उदाहरणों में सामान्य नारी के कामसुख की लालसा का लक्षण मिलता है, जो कि उर्वशी में भी है। अतः उर्वशी नारी प्रतीक है। इसके अतिरिक्त एक सामान्य नारी में वे सभी गुण जैसे पति के लिए सर्वस्व त्याग की भावना, माँ बनने की इच्छा, पति तथा संतान सुख एक

साथ भोगने की इच्छा तथा संतान के लिए सर्वस्व त्याग कर देने की भावना होती है, यही समस्त गुण उर्वशी में भी विद्यमान हैं। इनके एक-एक दृष्टांत देकर उर्वशी को नारी का अकाट्य प्रतीक सिद्ध किया जा सकता है। जैसे

सर्वस्व त्याग की भावना

प्रस्तुत है देवता जिसे सब-कुछ देकर पाने को,
स्वर्गकुसुम व स्वयं विकल है वसुधा पर जाने को।[15]

माँ बनने की अभिलाषा

लिया-दिया वह नहीं, मात्र वह ग्रहण किया जाता है।
और पुत्र-कामना कहो तो, यद्यपि वह सुखकर है।[16]
बेटी नहीं हुई तो क्या? अब माँ तो हूँ मानव की?
नहीं देखती रत्नमयी को कैसा लाल दिया है।[17]

पति एवं संतान सुख भोगने की इच्छा

कौन भामिनी है, जो अंगज पुत्र और प्रियतम में
किसी एक को लेकर सुख से आयु बिता सकती है
कौन पुरंधी तज सकती है पति के लिए तनय को
कौन सती सुत के निमित्त स्वामी को त्याग सकेगी?[18]

संतान हित के लिए अनुपम त्याग

अपना सुख तृणवत् नगण्य है, उसे छोड़ सकती हूँ
किंतु पुत्र का भाग्य भूमि पर रह कैसे फोड़ूँगी?
देना भेज, उचित जब समझो, मुझसे जनित तनय पर
जभी पड़ेगी दृष्टि दयित की, वज्र आन टूटेगा
टूट जाएँगे अकस्मात् वे सुख जिनके लालच में
जबसे आई यहाँ, कल्प-कानन को भूल गई हूँ।[19]

इस प्रकार नारी-सुलभ सभी भावनाएँ उर्वशी में परिलक्षित होती हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दिनकर जी की उर्वशी में नारी-चेतना के विभिन्न आयाम विद्यमान हैं। इन सबसे ऊपर उर्वशी एक मिथक काव्य की पौराणिक पात्री होने पर भी आधुनिक नारी-मनोविज्ञान का सार्थक प्रतिनिधित्व कर रही है, उसे दुख है कि पुरुष उसे धनुष की नोंक पर बल से हरण कर न ला सके अपितु पुरुरवा के आकर्षण से खिंचकर नारी होने पर भी उसे ही स्वयं पृथ्वी पर आने को विवश होना पड़ा वह इसे यह नारी-जीवन का असंगत पहलू स्वीकारती है

वह धन्य जो मानमयी प्रणय के बाहुवल्य में
खिंची नहीं, विक्रम तरंग पर चढ़ी हुई आती है।[20]

नारी-जीवन की अनन्य संभावनाओं एवं समस्याओं को अभिव्यक्त करनेवाली दिनकर की उर्वशी काव्य-रचना नारी-जीवन का अनुपम दस्तावेज़ है। यह वह गुलदस्ता है, जिसमें नारी अपने जीवन के मनचाहे पुरुष एवं सुगंधि का चयन करने में स्वतंत्र है।

संदर्भ

1. रामधारी सिंह दिनकर, उर्वशी तृतीय अंक, पृ॰ 80
2. उर्वशी द्वितीय अंक, पृ॰ 20
3. रामधारीसिंह दिनकर उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 77
4. वही, पृ॰ 71
5. वही, पृ॰ 33
6. वही, पृ॰ 8
7. रामधारीसिंह दिनकर उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 13
8. वही, पृ॰ 56
9. वही, पृ॰ 59
10. वही, पृ॰ 75
11. रामधारीसिंह दिनकर उर्वशी, तृतीय अंक, पृ॰ 34
12. वही, पृ॰ 44
13. वही, पृ॰ 50
14. वही, पृ॰ 36
15. रामधारीसिंह दिनकर उर्वशी, प्रथम अंक, पृ॰ 8
16. वही, तृतीय अंक, पृ॰ 68
17. वही, चतुर्थ अंक, पृ॰ 92
18. वही, पृ॰ 95
19. वही, पृ॰ 97
20. उर्वशी, तृतीय अंक

द्वारा प्रो॰ मृदुला जुगरान
प्रगति विहार कॉलोनी
निकट राधास्वामी सत्संग व्यास
श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखंड) 246174
मो॰ 09536464562

अंधायुग : आधुनिकता का संदर्भ

ममता सेमवाल, शोध छात्रा
हे॰न॰ब॰ग॰, केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर

'अंधायुग (1954) एक युग का लेखा-जोखा नहीं, अपितु युगांतर 'गीतिनाट्य' है। आज मनुष्य की वेशभूषा अवश्य परिवर्तित हुई है, किंतु उसके विचार और व्यवस्थाएँ जस की तस हैं, वैज्ञानिक आविष्कारों ने हमारा जीवन सुविधाजनक बना लिया, किंतु कहीं न कहीं मनुष्य और मनुष्यता के ह्रास में ये आविष्कार अतिसुविधाजनक बन गए हैं। दूसरे सप्तक के यशस्वी कवि डॉ॰ धर्मवीर भारती जी ने अंधायुग में महाभारत युद्ध की युद्धोत्तर परिस्थितियों (अनास्था, निरर्थकता, पराजित की ग्लानि, विजित का पाश्चात्ताप) को लेखन का आधार बनाया, किंतु भारती जी के समय, द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-40) के बाद ठीक ऐसी पीड़ा पूरे विश्व को द्रवित कर रही थी और आज तो यह आम बात हो गई पलक झपकते ही विश्व में एक युद्ध की संभावना बन जाती है। भारत-पाक, उत्तरी कोरिया-दक्षिणी कोरिया, जापान-चीन, ईरान-ईराक, लेबनान, सीरिया, इजाइल इत्यादि देशों के बीच बैर क्रोध का आचार या मुरब्बा बन रहा है। लेकिन इस सबका परिणाम युगों तक समान ही होता है। स्वयं भारती जी के शब्दों में

युद्धोपरांत
वह अंधायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं।[1]

वस्तुतः भारती जी गांधी जी की अहिंसा-नीति से प्रभावित थे। उनका मानना था कि युद्ध की तांडवलीला मानवमन में व्याप्त सत्य, शिव और सुंदर को कुचल देती है, और शेष बचती हैअनास्था, निराशा, प्रतिशोध, त्रास, स्वार्थपरता, रक्तपात, बर्बरता एवं पशुतारूपी भावना। धृतराष्ट्र और गांधारी का अंधापन आधुनिक सभ्यसमाज का अंधापन है। हमारे राष्ट्राधिकारी प्रतिशोध की आड़ में भूमा के मधुमय दान इस सुंदर सृष्टि को विनाश की ओर ले जा रहे हैं। यथा

पर शेष अधिकतर हैं अंधे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अंतर की अंधगुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अंधों की है
या कथा ज्योति की है, अंधों के माध्यम से।[2]

पाँच अंकों के इस गीतिनाट्य में द्वितीय अंक पशु का उदय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें संजय की लाचारी, तटस्थ विवेक की लाचारी है। अश्वत्थामा में पशुता का उदय के चित्र मिलता है,

युधिष्ठिर का नर या कुंजर वाला अर्धसत्य उसके मूल में है। यथा

नर या कुंजर
मानव को पशु से उन्होंने पृथक् नहीं किया
उस दिन से मैं हूँ पशुपात्र, अंधबर्बर पशु।[2]

मनुष्य में पशुता का उदय आदिमानव और आधुनिक मानव में समानता लाता है। आज का मानव अपनी ही कोख को टुकड़े-टुकड़े कर रहा है। इसका ज्वलंत उदाहरण आरुषी हत्याकांड है। बित्तेभर जमीन की चाह में हजारों जवानों से खून की होली खिलवाई जा रही है, अंततः उन्हें शहीद का जुमला पहनाकर मनुष्यता के साथ छलावा किया जा रहा है, पर इनकी सुनने वाला कौन है? वहीं अश्वत्थामा वध करने के पश्चात् अपनी मांस-पेशियों के तनावों को खुला हआ पाता है, इसे व्यंग्यात्मक स्तर पर अनासक्ति कहा गया है। वस्तुतः आज भी प्रत्येक मानव अपने राष्ट्र के युद्ध या अपने ही जीवन के युद्ध में प्रतिशोत की भावना से विगलित है, और वह धर्म-अधर्म में भेद नहीं कर पा रहा। वह निर्दोष पर भी अपने बल का प्रयोग कर रहा है। यथा

इसी तरह
इसी तरह
मेरे भूखे पंजे जाकर दबोचेंगे
वह गला युधिष्ठिर का
जिससे निकला था
अश्वत्थामा हतो हतः।[4]

आज राजलोभ का मोह पुत्रमोह से बढ़कर है। सब समाप्त होने पर भी अपनी संतान को अनीति-अधर्म की राह वरण हेतु प्रोत्साहित किया जा रहा है। धतृराष्ट्र का स्वार्थ तो देखिए-अपने 99 पुत्रों की हत्या होने पर भी युद्ध में बचे अकेले पुत्र युयुत्सु को किस प्रकार कीचड़ में धकेल रहा है

वत्स, तुम मेरी आयु लेकर भी जीवित हो
अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र यदि गिरा है
उत्तर पर तो कौन जाने एक दिन
युधिष्ठिर सब राजपाठ तुम्हें ही सौंप दे।[5]

अंधायुग की गांधारी आधुनिक विक्षिप्त स्त्री का प्रतीक है। आज हमारा समाज शिक्षित होकर भी वास्तविकताओं से दूर है। गांधारी अंधत्व का वरण किए हुए हैं। वह पाप-पुण्य के सत्य का सामना नहीं करना चाहती, किंतु पुत्रमोह में इतनी लिप्त है कि आवेश में आकर प्रभु कृष्ण को शापग्रस्त कर देती है। इस संबंध में डॉ॰ इंद्रनाथ मदान ने सत्य ही कहा हैइस नगरी में गांधारी के लिए नैतिकता झूठी है, नीति आडंबर है, विवेक बेमानी है। इन सब पर प्रश्नचिह्न लगाकर उन्हें जब वह संदेह की आँख से देखने लगती है तो आधुनिकता का बोध उजागर होने लगता है।[6]

वर्तमान समय में अनाचार का बोलबाला सत्य-अहिंसा और ईमानदारी का वरण मनुष्य के लिए कष्टदाई बन गया, स्वयं हमारे राष्ट्रनायक महात्मा गांधी की भी अंततः इसी कारण हत्या की गई भारती जी के अनुसार इस युद्ध और विनाश के अंधेयुग में चाहे सत्य का वरण करो या असत्य

का, अंततः पीड़ा का भागी सभी बनते हैं। धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक युयुत्सु ने अपने कौरव भाइयों के अधर्मी मार्ग को छोड़ पांडवपक्ष में रहकर धर्म का साथ दिया, पर उसे क्या मिला? गांधारी का तिरस्कार, भीम के द्वारा अपमान, सबकी लांछना तथा आत्महत्या की विवशता। युद्ध के बाद विचारमग्न युधिष्ठिर युयुत्सु की इस स्थिति के बारे में सोच रहे हैं

भोगी है उसने ही यातना
अपने ही बंधुजनों की के विरुद्ध
जीवन का दाँव लगा देना
पर अंत में विश्वास टूट जाना
लांछना पाना।[7]

महाभारत के प्रमुख पात्र अश्वत्थामा को विक्षिप्त अवस्था में समस्त धरा की वनस्पति को नष्ट करने हेतु आकुल दिखाया गया है। व्यास जो स्वयं लेखक का प्रतीक पात्र है, अश्वत्थामा के बर्बर हाथों पर लगाम कसते हुए कहता है

'मैं हूँ व्यास।
ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का?
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ और नरपशु।
तो आगे आने वाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जाएगी
जो कुछ भी ज्ञान संचित किया है मनुष्य ने
सतयुग में त्रेता में, द्वापर में
सदा-सदा के लिए होगा विलीन।[8]

व्यास के ये शब्द खौफनाक उपकरणों की रोकथाम हेतु असल में भारती जी के ही शब्द हैं। भारती जी हिरोशिमा एवं नागासाकी के परमाणु-प्रयोगों के प्रत्यक्ष द्रष्टा है। वहाँ की पीड़ा लेखक के सीने में दरक रही थी, अभिव्यक्ति की सच्चाई तो देखो आज भी उस स्थान पर बहरे, लँगड़े, गूँगे, बौने व्यक्ति पैदा होते हैं। और यह समस्या आज बूँद से समुद्र बनकर आए दिन मौत का कहर बनकर मँडरा रही है। भारती जी ने स्पष्ट कहा आज जो अस्त्र बाह्य शक्तियों से बचाव हेतु बन रहे हैं, वह कल अपने ही घर में प्रयोग किए जाएँगे। यथा

प्रहरी 1अस्त्र रहेंगे तो
प्रहरी 2उपयोग में आएँगे ही
प्रहरी 1अब तक वे अस्त्र
प्रहरी 2दूसरों के लिए उठते थे
प्रहरी 1अब वे अपने ही विरुद्ध काम आएँगे। [9]

वस्तुतः युद्ध जिन जीवनमूल्यों की स्थापना के लिए लड़ा जाता है, उनका ह्रास ही युद्ध में

होता है। यहाँ पराजित और विजित दोनों पक्ष दुःखी हैं, क्योंकि विजित भी अपने आत्मीय जनों को इस नरसंहार में खो बैठता है। दिनकर के कुरुक्षेत्र में भी युद्ध की निस्सारता बताई गई है। लेखक के अनुसार पांडवों की असहिष्णुता, द्वेषभाव एवं महत्त्वकांक्षा ने ही संपूर्ण देश में युद्ध की विनाशलीला फैलाई

पाँच ही असहिष्णु नर के द्वेष से।
हो गया संहार पूरे देश का।[10]

जिस सत्य की खोज में, देश की रक्षा में, अन्याय-अनाचार के विनाश हेतु महायुद्ध लड़े जाते हैं, सामान्य जनता उसी भाव की अनुभूति करती है। शासक भले ही बदल जाय, व्यवस्था जस की तस रहती है। प्रजा के लिए तो दो वक्त की रोटी ही शांति के लिए काफी है। स्पष्ट है कि युद्ध सिर्फ शासकों की शासननीति के स्वार्थ के लिए होते हैं, जिसमें मारी जाती है सामान्य जनता। वर्तमान समय में लोकतंत्र का जुमला सरकार ने अवश्य पहन लिया किंतु प्रधानमंत्री का बेटा प्रधानमंत्री बनने की दौड़ में है। सामान्यजन का व्यक्तित्व दबा-कुचला ही है। भ्रष्टाचार, अकाल, हत्याएँ युद्ध सब राजनीतिक अस्थिरता का परिणाम है। निश्चय ही युद्ध और विनाश के हर युग में अंधायुग प्रासंगिक रहेगा। युद्ध की निस्सारता इस रचना के मूल में है।

संदर्भ

1. डॉ॰ धर्मवीर भारती, अंधा युग, किताब महल, पृ॰ 02
2. वही, पृ॰ 2
3. वही, पृ॰ 25
4. वही, पृ॰ 27
5. वही, पृ॰ 77
6. लक्ष्मणदत्त गौतम, धर्मवीर भारती : अनुभव और अभिव्यक्ति, पृ॰ 14
7. वही, पृ॰ 87
8. वही, पृ॰ 75
9. वही, पृ॰ 89
10. वही, पृ॰ 75

द्वारा श्री पी॰एन॰ बंगवाल
राजश्री विहार
अपर भक्तियाना, निकट तहसील
श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखंड) 246174

पहाड़ की पीड़ा के पर्याय : विद्यासागर नौटियाल की औपन्यासिक कृतियाँ

रेखा, शोधछात्रा
हे॰न॰ब॰ग॰ केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर

विद्यासागर नौटियाल जी का जन्म 29 सितंबर 1933 को टिहरी रियासत के अंतर्गत भागीरथी के तट पर बसे माली देवल म. वनाधिकारी राजगरु नारायणदत्त नौटियाल के घर म. तीसरी संतान के रूप म. हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती 'रत्ना नौटियाल' था। प्रारंभिक शिक्षा गाँव म. ही हुई। बाद म. टिहरी, देहरादून और काशी में इन्होंने उच्च शिक्षा पाई। वे छात्रजीवन से ही राजनीति म. सक्रिय हो गए थे। टिहरी रियासत सामंतशाही शासन के विरुद्ध मात्र चौदह साल की उम्र म. उन्ह. 1947 टिहरी जेल जाना पड़ा और तत्कालीन समय म. टिहरी के प्रताप इंटर कालेज से भी निष्कासित किए गए। वर्ष 1952 से 1959 तक छात्र आंदोलन म. सक्रिय, 1958 म. ऑल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन के अध्यक्ष निर्वाचित, 1953 में बीएचयू छात्र संघ म. महामंत्री 1957 म. विश्वविद्यालय छात्र संसद म. प्रधानमंत्री निर्वाचित, 1958 म. वियना विश्वयुवक समारोह म. भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व, 1980 म. देवप्रयाग से उ॰प्र॰ के लिए कम्युनिस्ट पार्टी प्रत्याशी के रूपा. म. निर्वाचित हुए हैं।

अंततः 79 वर्ष की आयु म. 12 फरवरी 2012 को बंगलुरु के एक अस्पताल म. महाप्रयाण हो गया।

कम्युनिस्ट कभी रिटायर नहीं होता...।' विचारा. के पुरोधा साहित्यकार विद्यासागर नौटियाल भले ही संसार म. नहीं रहे, लेकिन उनके कुछ विशिष्ट विचार हमेशा ही समाज में अलख जगाने का कार्य अवश्य ही करेंगे। क्या.कि उनकी रचनाआ. म. धड़कता है पहाड़ और पहाड़ की संस्कृति, बोली-भाषा, रहन-सहन, जल-जंगल, ग्रामीण की जिंदगी के लिए संघर्ष और उनकी जिजीविषा को उन्हा.ने तमाम मिथका. और प्रतीका. के साथ सृजित किया। पहाड़ के प्रेमचंद के नाम से विख्यात विद्यासागर नौटियाल जी ने टिहरी राजशाही के विरुद्ध संघर्ष का झंडा बुलंद करने के साथ अपनी कथाआ. म. उकेरा है। चूँकि वे साहित्यकार के साथ-साथ कम्युनिस्ट एवं स्वतंत्रता सेनानी भी रहे हैं, इसीलिए कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (सीपीआई) के समर्पित कार्यकर्ता के रूप म. हमेशा कार्यरत रहे। उत्तराखंड सामाजिक आंदोलना. की उर्वरा भूमि रहा है। आज़ादी से पहले और बाद म. बृहत्तर सोच के साथ हुए ऐसे आंदोलना. के ज़रिए ख़ुद को राष्ट्रीय फलक से बखूबी जोड़े रखा है। ख़ासकर पहाड़ के प्रति उनकी पीड़ा को समझने की ज़रूरत है। सुविधाआ. की ललक और भौतिकता की चकाचौंध म. दुर्गम क्षेत्रा. की कठिनाइया. को चुनौति की तरह लेकर उनसे निपटने का जज्बा हाशिए पर ठेला जा रहा है, यही दंश उनकी रचनाआ. की कथा है।

साहित्य, समाज और राजनीति के आपसी सरोकारा. म. गहरा विश्वास रखनेवाले विद्यासागर नौटियाल ने जो कुछ लिखा उनम. पहाड़ के जीवन के प्रति उनका गहरा लगाव दिखाई देता है। पहाड़ के

जीवन और समाज का जैसा सजीव चित्रण उन्होंने किया, वह अत्यंत दुर्लभ है। इनकी रचनाआ. म. कहानियाँ'मूक बलिदान : 'भ ा ैस का कट्या' (1954) 'फटजा पंचधार' (2007), और 'सोना' प्रमुख हैं। उपन्यासा. म. उलझे रिश्ते, मेरा जामक वापस दो, भीम अकेला (1994 वाणी प्रकाशन), सूरज सबका है, (1997 राधाकृष्ण प्रकाशन), उत्तर बायाँ है (2003 राधा कृष्ण प्रकाशन), यमुना के बागी बेटे (2006 सामायिक प्रकाशन) और झुंड से बिछुड़ा आदि हैं। कहानी संग्रहों म.'दस प्रतिनिधि कहानियाँ (2000 राजकमल, आधार प्रकाशन), और मेरी कथा-यात्रा तथा फुलियारी'। आत्माकथामोहन गाता जाएगा (2004 राधाकृष्ण प्रकाशन), कथाकार नौटियाल जी की प्रसिद्ध कहानी भैंस का कट्या का डॉ॰ वी॰ चेर्निशोव ने रूसी अनुवाद कर उसे अपनी लंबी टिप्पणी के साथ एक कहानी संकलन म. सम्मिलित किया।'[1]

विद्यासागर नौटियाल जी को पहल मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का अखिल भरतीय वीरसिंह देव सम्मान, इफ्को का प्रतिष्ठित 'श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफ्को साहित्य सम्मान दिया गया।

नौटियाल जी के उपन्यासा. के साहित्य म. गढ़वाल की आंचलिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि का अविस्मरणीय वर्णन मिलता है इससे पहले कि उपन्यासा. से रू-ब-रू हा. पहले आंचलिकता को परिभाषित करना आवश्यक है

आंचलिकता से अभिप्राय किसी क्षेत्र-विशेष के सत्य का उद्घाटन करते हुए, भौगालिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विशेषताआ., जीवन की सारी परंपराआ. का समूचा व्यक्तित्व है। अंचल या आँचल को अँग्रेजी के रीजन से स्पष्ट किया जाता है, जिसका अर्थ हुआ किसी क्षेत्र या ग्राम के सीमांत प्रदेश। इसकी परिभाषा को विभिन्न विद्वाना. ने अपने शब्दा. म. दी। डॉ॰ रामदरश मिश्र के अनुसार'आंचलिक म. अंचल अपनी संपूर्ण विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है। अंचल के जीवन की सारी परंपराआ., ऐतिहासिक प्रगतिया., शक्तियों, अशक्तियों, छविया., अछविया., को जितनी ही अधिक सच्चाई से लेखक पकड़ सकेगा, अंचल-जीवन के चित्रण में उतना ही सफल होगा....।[2]

विश्वंभरनाथ उपाध्याय के अनुसार'आंचलिक उपन्यास उन उपन्यासा. को कहते हैं, जिनम. किसी विशेष अंचल के जनजीव का समग्र चित्रण हो।[2]

साहित्य अकादमी से पुरस्कृत डॉ॰ काशीनाथ सिंह ने कहाजब पहाड़ का साहित्य लिखा जाएगा विद्यासागर नौटियाल का योगदान कोई भुला नहीं पाएगा। इस बात म. कोई दो राय नहीं कि ये अल्फाज सत्य हैं, क्या.कि उनके उपन्यासा. का अवलोकन करनेवाला ही यह सिद्ध कर सकता है। विद्यासागर नौटियाल ने अपने उपन्यासों व कहानिया. के माध्यम से 1948 के विभिन्न यथार्थ घटनाआ. को समाज के सामने उकेरा है। टिहरी राजशाही की मुखालफत और आमजन की खुशहाली के लिए उन्हा.ने सिर्फ कलम से ही नहीं, बल्कि सड़का. पर भी संघर्ष की धार दी। उत्तराखंड सामाजिक आंदोलना. की उर्वरा भूमि रहा। आजादी से पहले और बाद म. वृहत्तर सोच के साथ ऐसे आंदोलना. के जरिए इस क्षेत्र ने खुद को राष्ट्रीय फलक से बखूबी जोड़े रखा।

'उत्तर बाँया है', 'सूरज सबका है' और 'भीम अकेला' उपन्यास के ख्यातिप्राप्त लेखक विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासो. म. इतिहास व आंचलिकता का मिला-जुला असर पाठका. को प्रभावित करता है। 'भीम अकेला' उपन्यास में लेखक का दो दिन की यात्रा का वर्णन है। 'बृहस्पतिवार 1 फरवरी 1984' को वें कम्युनिस्ट पार्टी से यूपी सरकार म. विधानसभा सदस्य थे उसी दौरान उन्ह. भरदार पट्टी (टिहरी जिले) का क्षेत्र भ्रमण का मौका मिला। इसी का वर्णन भीम अकेला उपन्यास म. किया। उपन्यास म. तत्कालीन समय की छोटी-छोटी समस्याआ. एवं जातीय स्मृतिया. को उकेरा है। उन्हा.ने स्वयं कहा'यह एक यात्रा है जो उपन्यास में ढल गई है, जाहिर है कि यात्रा म. सिर्फ रास्ते नहीं होते, यात्री के साथ चल रहा एक पूरा परिवेश

भी होता है, अनुभवा. के बदलते हुए रंग भी होते हैं और स्मृतिया. की एक पोटली भी होती है। इस उपन्यास म. भी एक स्मृति हैशहीद मोलाराम सरदार और तेजसिंह भरदार की स्मृति जिसके साथ कई पीड़ाएँ जुड़ी हैं। आजाद हिंदुस्तान म. शहीदा. को भुला देने का जो चलन चल पड़ा है, उसकी तकलीफ इस उपन्यास में है।' इस उपन्यास म. लेखक ने 11 फरवरी 1948 का कीर्तिनगर (श्रीनगर गढ़वाल) म. हुए टिहरी रियासत के विरुद्ध आंदोलन में नाग.द्र सकलानी एवं मोलाराम भरदार शहीद हो गए थे। मोलाराम भरदार की पत्नी उस समय चौदह वर्षीय थीं, तभी विधवा हो गई थीं, ये सभी सरकार ने भुला दिया था। शहीदा. के परिवार को कोई सहायता न कर उनकी ओर ध्यान देना ही छोड़ दिया।

'उल्लेखनीय है कि 11 जनवरी 1948 को नागेंद्र सकलानी और मोलाराम भरदारी की शहादत के बाद विद्यासागर नौटियाल क्रांतिकारी बन गए। टिहरी इस जनक्रांति से प्रभावित होकर श्री नौटियाल वामपंथी विचारधारा म. शामिल हो गए थे।'[6] और अंत तक वामपंथी ही रहे। श्री नौटियाल जी की रचनाआ. म. जो कुछ भी पाठका. को दिखता है, वह सब यथार्थ घटनाआ. का चित्रण है, क्या.कि लेखक ने वह सब सहा है।

'उत्तर बायाँ है' उपन्यास म. जब भारत स्वतंत्र हुआ था सन् 1947 को उस समय का अत्याचार का वर्णन व टिहरी राजशाही के सामंतवादी शासन का वर्णन देखा जाता है। उस समय घूमंतू जाति गूजर एवं पालसिया. का चित्रण किया गया है। घुमंतू जाति गूजर अधिकतर मुस्लिम जाति के होते हैं। भारत ज्या.ही स्वतंत्र हुआ गूजरा. पर अनाचार का सिलसिला शुरू हुआ। उनकी बहू-बेटियाँ, पशु एवं बच्चे-बूढ़े हज़ारा. बेगुनाहा. को मारा-काटा, लूटा गया। यह बड़ी त्रासदीपूर्ण घटना थी। स्वयं लेखक ने इस उपन्यास के मुख भाग म. कहा है। अपने लोगा. की यह कथा, जिसे मैंने अनेक वर्षों तक अपने भीतर जिया है। टिहरी के पर्वत श्रृंग पर बसा भेड़पालका. के गाँव चाँदी और उसकी घाटों म . बसे रैमासी गाँव के निवासिया. के पेशा. ओर रीतिया., और प्रथाआ. का वर्णन साथ ही टिहरी रियासत के हुक्मराना. का बेगार करवाना व सीधे-सादे लोगा. का शोषण करना, जो पालसी करणू एवं सदरू जैसे ईमानदार, गरीब एवं नेक इंसाना. की मजबूरी का उदाहरण पेश करता है। दिन-रात अथक परिश्रम करनेवाले चंदवाला. की कमाई को सदिया. से निठल्ले रैमासी वाले हड़प करते आए हैं। सदरू, करणू, हुकम के जीवन म. खीजी कन्हैया, देवीप्रसाद, धनसिंह और रथी सेठ जैसे लोग हमेशा संकट पैदा करते आए हैं। इन निरीह चंदवाला. की कीमत पर राजकीय कर्मचारिया. अधिकारिया. की मौजमस्ती, बेकसूर लोगा. पर सत्ता के अत्याचार, न्यायालया. की हास्यास्पद भूमिका, भेड़पालको., ग्रामवासिया. गूजरा. के पशुवत् जीवन की झलकियाँ, अयशा, सकीना और हसीना (गूजर की बेटियाँ) की बेवस जिंदगी के चित्र हाशिए पर पड़े लोगा. के अनवरत संघर्ष, गरीबी, उनके सपने सभ्य तथा कथित विकसित समुदाया. द्वारा उनकी बाहरी-भीतरी विनाश 'उत्तर बायाँ है' में अपने मर्मांतक वर्णन से घुंमतू और सीमांत लोगों के जीवन का प्रामाणिक तथा जिंदगी से भरपूर संधान करते हैं।'[7] ये अल्फाज संबंधित उपन्यास में हम्माद फारूकी के थे।

'सूरज सबका है' उपन्यास 1997 में राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा॰लि॰ द्वारा प्रकाशित ऐतिहासिक एवं आंचलिकता से भरपूर कृति है। कथा का आरंभ टिहरी जिले के सोनी गाँव की दादी की पैणा (मिष्ठानों पकवानों की पाटली) बाँटनें की जीवेष्णा, 1804 से 1815 ई॰ तक गोरख्याणी अर्थात् गढ़वाल पर गोरखों का आक्रमण, जिसे सात वर्षीय छुन्ना (उपन्यास की बाल पात्र) ने भी सुना है साथ ही सन् 1635 ई॰ में आगरा के शहंशाह शाहजहाँ का मनसबदार नजावत खाँ का गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर पर आक्रमण, लेकिन रानी कर्णावती की बुद्धि-चातुर्य से मुगल सेना को जड़ से उखाड़ फेंकना और आजाद भारत के शुरुआती दिनों के उपजिलाधिकारी देवीदत्त की मानवता इस उपन्यास को उपयोगी बना देते हैं। क्योंकि लेखक जानता है कि सूरज सबका है। यह उपन्यास उन लोगों का भी जिक्र करता है, जिन्हें आजतक इतिहास में जगह नहीं

मिली। सूरज सबका है, ऐतिहासिक कृति से अधिक लोकमानस की कृति है। कथा की शुरुआत 1804-1815 में गोरख्याणा गढ़वाल पर गोरखों के आक्रमण से होती है, जो बीच-बीच में क्लेश की तरह सोनी गाँव की दादी की जीवेष्णा, गढ़वाल की तत्कालीन राजधानी श्रीनगर म. रानी कर्णावती के साहस, बुद्धि चातुर्य, दिल्ली की मुगल सल्तनत के मनसबदार नजावत खाँ की मूर्खतापूर्ण लोलुपता, ईस्ट इंडिया कंपनी की धूर्तता से गुजरते हुए आजाद भारत के शुरुआती दिनों में परगनाधिकारी देवीदत्त की सहृदयता को लक्षित करते हुए सोनी गाँव पर ही समाप्त होती है।'[8]

इसी तरह से झुंड से बिछड़ा हुआ ऐसी रचना है जिसमें पर्वतीय जीवन की त्रासदी को बड़ी मार्मिकता से उकेरा गया है। गढ़वाली ग्रामीणों की जिंदगी के लिए संघर्ष और उनकी जिजीविषा को उन्होंने तमाम मिथकों और प्रतीकों के साथ सृजित किया है। उपन्यास में सत्ता और नौकरशाही के आतंक को बाध के रूपक के रूप में चित्रित किया गया है।

'स्वर्ग ददा पाणि पाणि' उपन्यास में नौटियाल जी अपनी पूरी संवेदना के साथ मौजूद है। टिहरी बांध के विरोध और समर्थन की सियासत और सामाजिक सोच के अंतविरोध को बड़ी ही सहजता से उकेरा है। बाँध बनने से आनेवाली आपदा की तरफ भी उन्होंने इशारा कर दिया है।

टिहरी गढ़वाल की रियासत की जनता की आजादी के लिए अलकनंदा के तट पर 11 जनवरी 1948 के दिन सामंती शासन की गोलिया. को सहने वाले शहीद नागेंद्र सकलानी, मोलाराम भरदार और बांसी भरदार के जिंदा शहीद तेजसिंह जिसे स्वतंत्र भारत में आजीवन उपेक्षा मिलती रहीवे सब सामंती महलों में कैद हमारे आजादी के सूरज को मुक्त कराने के लिए संघर्ष कर रहे थे। जो लेखक अपनी जमीन से जुड़ा हो और उसी के लिए जीता हो, ऐसी रचनाओं में साक्षात् देखे जा रहे दृश्य और पढ़े गए शब्दचित्र में कोई अंतर नजर नहीं आता है।

इस तरह से कह सकते हैं नौटियाल जी के उपन्यासों में ऐतिहासिकता के साथ-साथ आंचलिकता भी पाठकों की जिजीविषा को बढ़ाती है। नौटियाल जी अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी रचनाओं का संसार हमारे बीच सदा रहेगा। अपनी कृतियों की जीवंतता में वह हमेशा हमारे बीच रहेंगे और सदा याद आते रहेंगे।

संदर्भ

1. 13 फरवरी 2012 दैनिक जागरण, पृ॰ 5
2. डॉ॰ नगीना जैन, आंचलिकता और हिंदी उपन्यास, पृ॰ 2
3. सुभाषिनी शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यास, पृ॰ 13
4. विद्यासागर नौटियाल, भीम अकेला, पृ॰ 5
5. विद्यासागर नौटियाल, भीम अकेला कवर पेज
6. राष्ट्रीय सहारा 13 फरवरी 2012, पृ॰ 5
7. विद्यासागर नौटियाल, उत्तर बायाँ उपन्यास का कवर पेज
8. विद्यासागर नौटियाल, सूरज सबका है, उपन्यास का कवर पेज

पत्नी श्री सुनीलकुमार
जिला विकास अधिकारी
रुद्रप्रयाग (उत्तराखंड)

फणीश्वरनाथ रेणु के कथासाहित्य में नारी-चेतना

डॉ॰ नम्रता सिंह

फणीश्वरनाथ रेणु ने हिंदी साहित्य में एक नयी धारा का सृजन किया, जिसे आंचलिक साहित्य कहा गया। गाँव तो हमेशा से ही साहित्य-सृजन का वज्र-बिंदु रहा है। इनसे पहले से ही समग्र रूप से गाँव और ग्रामीण जीवन पर साहित्यिक रचनाएँ होती रही हैं, पर रेणु जी ने गाँव को उसकी संपूर्ण विशेषता और विसंगतियों के साथ प्रतिबिंबित किया है। हम कह सकते हैं कि उन्होंने जिस क्षेत्र के गाँव को उठाया है, उस पूरे क्षेत्र को अपनी लेखनी से अपने पाठकों के समक्ष जीवंत कर दिया। इनका अनुसरण कई साहित्यकारों ने किया, उन्हें सफलता भी खूब मिली, पर रेणु जैसी प्रसिद्धि किसी को भी प्राप्त नहीं हुई। अंचल-विशेष को सचित्र उपस्थित कर देना, उनकी लेखनी की सर्वप्रमुख विशेषता है। इसके अलावा भी इनकी लेखनी की कई विशेषताएँ हैं, जो उन्हें साहित्यिक जगत में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

रेणु जी अपने समय से आगे चलनेवाले साहित्यकार थे। वर्त्तमान समय में होनेवाली आम घटना पर उन्होंने उस समय काफी लिखा है। ऐसा नहीं है कि उस समय ऐसी घटनाएँ नहीं घटती होंगी, क्योंकि पूर्णतः काल्पनिक घटनाक्रम कभी भी वास्तविकता की अनुभूति नहीं करा सकता है। इनकी लेखनी की एक मुख्य विशेषता हैमानवीय संवेदनाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति। इनकी लेखनी में क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या अमीर, क्या गरीब, सभी खुलकर अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं।

संसार के हरेक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताएँ एक समान हैं। एक समान परिस्थिति में सभी लगभग एक जैसा ही महसूस करते हैं। यह और बात है कि परिवेश और परिस्थितियाँ अलग होने के कारण कुछ लोग खुलकर प्रतिक्रिया देते हैं तो कुछ लोग दबी-ढकी; पर आकांक्षाएँ सबकी एक समान ही होती है। रेणु जी के साहित्य में हम इस समानता को खुलकर पाते हैं। इस विशेषता को इनकी रसिकता या खुलापन कहें या समदृष्टि।

इनके समय में इस तरह का खुलापन एक नवीन प्रयोग की तरह था। रेणुजी के साहित्य में हरेक पात्र पूर्णतः मनुष्य है। किसी को भी देवता या देवी की तरह पाषाणहृदय नहीं दिखाया गया है। यह मनुष्य किसी परिस्थिति में बेहद मजबूत है, तो कहीं बेहद लाचार दिखाई देता है। इनके समय के अधिकतर साहित्यकारों ने स्त्री को देवी की तरह पूज्य बनाया या पूर्णतः पथभ्रष्टा। रेणु जी के यहाँ एक ही मनुष्य अलग-अलग परिस्थिति में अलग रूप में दिखाई देता है।

इनके साहित्य में स्त्री को मनुष्य का दर्जा दिया गया है। यह संस्कारों से गढ़ी एक मूर्ति-मात्र नहीं है इनकी स्त्री पात्र, जीवित इंसान है, जिसके अंदर हर तरह की भावनाएँ हैं। कहीं वह आदर्श स्थापित करती है तो कभी अपनी इच्छाओं के वशीभूत हो, उसको तोड़ती हुई भी नजर आती है। 'मैला

आँचल' (1954) की लछमी कोठारिन धर्म, सेवा और साधना में लीन रहती है, पर वह कई स्थानों पर कमजोर भी दिखाई देती है। एक उदाहरण देखें

'हाँ! मैं कहाँ जाऊँगी? मेरा क्या होगा? महंथ की दासी बनकर ही मैं मठ पर रह सकती हूँ।' लछमी की आँखें भर आती हैं।

'नहीं लछमी, तुम रामदास की दासी नहीं। मैं तुम.... आप.....।'

'बालदेव जी!' लछमी पागल की तरह बालदेव जी से लिपट जाती है, 'रच्छा करो बालदेव जी!' तुम कह दो एक बार'तुम्हें रामदास की दासी नहीं बनने दूँगा! तुम बोलोचननपट्टी नहीं जाऊँगा। मुझे छोड़कर मत जाओ बालदेव! दुहाई।'

'लछमी!' बालदेव जी लछमी को संभालते हुए कहते हैं, कोई देख लेगा।"[1]

एक और उदाहरण देखें

लछमी का भी इस संसार में कोई नहीं!

....जी, मेरा कोई नहीं! ....लछमी सोचती है, उसका दिल इतना नरम क्यों है? क्यों वह डॉक्टर को देखकर पिघल गई है। यह अच्छी बात नहीं। सत्गुरु मुझे बल दो।'[2]

लछमी कोठारिन कहीं त्याग और संयम की मूर्त्ति तो कहीं आदिम जरूरतों के आगे बेबस एक साधारण मानवी के रूप में दिखाई देती है।

'एक श्रावणी दोपहरी की धूप' 1962 ई. में लिखी कहानी आज के लिए ज्यादा प्रासंगिक है। पंकज और झरना नामक एक प्रेमी जोड़ा शादी करते हैं। पंकज के दोस्त अक्सर उससे मजाक करते हुए कहते हैं"लव-मैरेज करनेवालों को यदि मौका मिले, तो सारा जीवन 'लव' और 'मैरेज' करने में ही गुजार दें।"[3]

इन बातों को सुनकर एक बार तो पंकज के मन में शंका भी हुई, पर शादी के बाद उसे अपनी बीवी पर पूरा विश्वास हो गया। वैवाहिक जीवन के सुखमय तीन वर्ष बिताने के बाद झरना को लगने लगता है कि पंकज उससे विरक्त सा होने लगा है। यह विरक्ति उसे पर-पुरुष की ओर आकर्षित करती है। वह अपनी इच्छा पर नियंत्रण नहीं रख पाती है, और एक पराए मर्द के साथ निकल भी जाती है। देखें एक उदाहरण'अब उसका मन रोने का बहाना ढूँढने लगा। इनके लिए, अपने पतिदेव पंकज के लिए, वह दाल-भात जैसी चीज हो गयी है। किंतु, झरना की एक झलक पाने के लिए अब भी लोग टकटकी लगाकर बैठे रहते हैं। ....यह पड़ोसी का लड़का जो अभी जोर-जोर से गीत गा रहा है, वह किसी और को सुनाने के लिए नहीं। झरना समझती है! करवट लेते समय वह बड़बड़ायीहाय रे पुरुष की जाति! ....अच्छा, वह भुट्टा लावेगा तो? नहीं, कभी नहीं। आकर कहेगा- दिखायी नहीं पड़ा कहीं बाजार में फार्म का भुट्टा। झरना की जीभ पनिया गयी। भुट्टे की सौंधी ... नींबू. ... हरी मिर्च!! अचानक कुछ सुनकर वह चौंक पड़ीअरे! यह तो गाड़ीवाला दादा की गाड़ी का हार्न है!'[4]

यह कहानी आज के युवाओं की मानसिकता पर ज्.यादा सटीक है। आज का युवावर्ग इतना विकल और धैर्यहीन है कि वह पल-भर भी अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं रख सकता है और किसी भी तात्कालिक प्रतिक्रिया को ही परिणाम मान लेता है। यह धैर्यहीनता तो आरंभ से ही पुरुषों का गुण रही है, पर वर्त्तमान समय में अधिकांश स्त्रियाँ (ग्रामीण, शहरी, शिक्षित, अर्द्धशिक्षित) भी पुरुषों के इस गुण को धारण कर चुकी हैं। गाड़ीवाला दादा के साथ जाते वक्त जब झरना अपने पति को भुट्टा खरीदते

देखती है तो झट से गाड़ी रुकवाकर उसके साथ हो जाती है।

छोटी-छोटी बातों पर बड़ा फैसला लेकर अपना घर-परिवार होम कर देना, आज के समय में बेहद आम बात हो गई है। उस समय इस तरह की घटनाएँ कम ही घटती होंगी। 1965ई॰ में लिखी गई कहानी 'नैना जोगिन' को ही देखें। कथा नायिका रतनी निम्नवर्ग की श्रमिक की बेटी है। अक्खड़, दबंग और अव्वल दर्जे की झगड़ालू इस रतनी ने पूरे गाँव वालों के नाक में दम करके रखा है। कोई इससे शादी करने को तैयार नहीं होता। तब गाँव के एक लड़के पर चोरी का इल्जाम लगाकर रतनी की माँ एक हाथ में सिंदूर की पुड़िया और दूसरे में फरसा लेकर खड़ी थी"छदोड़ी की सींथ में सिंदूर डालो, नहीं तो अभी हल्ला करती हूँ, घर में चोर घुसा है।"[5]

निमोछिया घरजमाई की क्या दुर्गति रतनी करती है। उसका एक उदाहरण देखेंरतनी ने आधी रात को इसको लात से मारा; घर से निकालकर चिल्लाने लगी, 'पूछे कोई इससे कि इतना दूध, मलाई, दही, मांस-मछली, कबूतर तिस पर 'घात-पुष्टई' दवा, तो अलान-ढेकान खाकर भी जिस 'मर्द' को आधी पहर रात को हफनी शुरू हो, उसको क्या कहा जाए?"[6]

यह स्त्री अपनी इच्छापूर्ति के लिए किसी भी हद तक जा सकती है। उसमें न तो समाज का भय है और न किसी तरह की आत्मग्लानि है। यही रतनी अपने गाँव के जमींदार के बेटे के पौरुष को ललकारते हुए उसे साफ शब्दों में आमंत्रित भी करती है।

इनके उपन्यास 'पल्टू बाबू रोड' की बिजली, छवि, पवित्रा, शकुंतला आदि स्त्रियाँ वर्त्तमान समय की अत्याधुनिक स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। जिनके लिए स्वयं का सुख, खुशी, संतुष्टि सर्वोपरि है। रेणु जी के साहित्य में आंचलिकता सर्वप्रमुख विशेषता है तो समदर्शन का भाव इनकी लेखनी की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यह समदर्शन शरत्चंद्र की लेखनी की भी मुख्य विशेषता है।

एक साहित्यकार होने के साथ ही इन्हें मानव मनोविज्ञान पर भी गहरी पकड़ है। इनके साहित्य में हम मानव-मन में चलनेवाले द्वंद्व को सरल और सहज रूप में महसूस करते हुए स्वयं को, अपने आस-पास के वातावरण को उससे जुड़ा हुआ पाते हैं। इनकी लेखनी में विषय विविधता तो इतनी है कि शायद ही कोई विषय इन्होंने अनछुआ छोड़ा हो। ऐसी कई विशेषताओं के मेल से फणीश्वरनाथ रेणु का लेखकीय व्यक्तित्व इतना विशाल और प्रभावशाली बन पाया है, जिसकी तुलना हम वट वृक्ष से कर सकते हैं।

संदर्भ

1. रेणु रचनावली, भाग-2 (मैला आँचल), सं॰ भारत यायावर, पृ॰ 210-211
2. वही, पृ॰ 58
3. रेणु रचनावली, भाग-1 (एक श्रावणी दोपहरी की धूप, 1962), सं॰ भारत यायावर, प॰ 345
4. वही, पृ॰ 349
5. रेणु रचनावली, भाग-1 (नैना जोगिन, 1965), पृ॰ 427
6. वही, पृ॰ 427

आदर्श कॉलोनी, साहेबगंज
टी.एन.बी. कॉलेज, भागलपुर 812007
मो॰ 09852661282

डॉ॰ मनोज सोनकरजी के काव्य का शिल्प-विधान

पाटील मनोहर हिलाल

डॉ॰ मनोज सोनकर साठोत्तरी हिंदी कविता में प्रगतिवादी कवि के रूप में विख्यात हैं। अब तक उनके तीस काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वे अपनी कविताओं में बाह्य और आंतरिक दोनों ही धरातलों पर गतिशील होते हैं। प्रधानतः बाह्य धरातल की है। उनकी कविताओं में प्रखर सामाजिक चेतना के साथ-ही-साथ मर्मस्पर्शी भावनात्मक तरलता भी विद्यमान है। वे प्रकृति के प्रेमी कवि भी हैं, उनकी कविताओं में प्रकृति की मनोरम झाँकी भी मिलती है। सशक्त व्यंग्य भी उनकी कविताओं में दृष्टिगोचर होता है।

सोनकरजी ने हिंदी कविता को निचले तबके से जोड़कर एक ऐतिहासिक कार्य किया है। 'शोषित नामा' उनका महाकाव्य है। सोनकरजी छंदहीन और छंदबद्ध दोनों ही प्रकार की कविताएँ लिखने में दक्ष हैं। इस दक्षता ने उन्हें पूर्ण कवि की कोटि में बैठा दिया है। उन्होंने देशी और विदेशी, छंदो में काव्य-सृजन में जैसेगज़ल गंध, गज़ल गूँज, गज़ल गहत, गज़ल गजर, गज़ल गंग, गज़ल गंज, गज़ल गुल का सृजनकर उन्होंने एक नई परंपरा का सूत्रपात किया है। हिंदी गज़ल हिंदी मासिक छंदो में लिखी जानी चाहिए। यह उनका विचार है। मराठी के अभंग छंदो में 'अभंगलोक' नामक काव्यकृति का सृजन किया है। मराठी के ओवी छंद में रचित 'ओवी-आँचल' नामक उनका कविता-संग्रह है। जापान के हाइकू छंद में रचित उनके छः हाइकु-संग्रहचितकबरी, खुर्दबीन, आर्ट गैलरी, रंगालय, अक्स, बूँदें प्रकाशित हो चुके हैं।

अँग्रेज़ी के छंद में लिखित 'बौलेड बज्म' नामक उनका काव्य-संग्रह है। कोरिया के सिजो छंद में उन्होंने 'सिजोसाज' नामक काव्यग्रंथ का सृजन किया है। जापान के ताका छंद में लिखित 'ताँका-तरंग' नामक उनका कविता-संग्रह है। विदेशी छंदों में काव्य-सृजन कर सोनकरजी ने निश्चित रूप से हिंदी काव्यधारा को अधिक समृद्ध किया है। इस बिंदु पर वे बधाई के पात्र हैं। उर्दू की रूबाई की छटा उनकी 'रूबाई रंग' नामक पुस्तक में विद्यमान है। छंदबद्ध कविता लिखकर उन्होंने कविता को गद्यमास से मुक्त कराया है।

मनोज सोनकर की भाषा सरल, सहज और प्रवाहमयी है। उनकी भाषा भावानुकुल है।

जैसे

कविता ना मुँह मोड़े, बढ़-बढ़ नाता जोड़े
मैं दूर भागता जाऊँ पीछे मौ उसके पाऊँ।[1]
रिश्वत का बाज़ार है, भब्रो की जागीर
चमचे दरबारी हुए, कौन हरे अब पीर।[2]

सोनकरजी के शिल्प विधान में अलंकार, बिंब, प्रतीकों का बहुत ही सटीक अंकन हुआ है। अलंकारों में मानवीकरण अलंकार का उदाहरण देखिए

सच तो गूँगा हो गया, झूठ बड़ा मुँहजोर
चोर गिनाएँ साहु में, साहु बताए चोर। [3]

सोनकरजी ने बिंब-विधान का भी ऐंद्रिय बिंब और मानसिक बिंब दोनों का प्रयोग अपने काव्य में किया है

हवा कुछ ऐसी बही
खट्टा ही लागे दही।[4]
हुई बपौती साँड है, क्षेत्र सभी चर जाय
गद्दी पर बोटे दिखे रहे अक्ल चकराय।[5]

सोनकरजी के काव्य में विभिन्न प्रकार के सटीक प्रतीक विद्यमान हैं। जैसेपोस्टर, पागल, लोभी, बादशाह, पड़ोसी, चोर, डाकू, माइक, चाचा, मामा, राजा, कुर्सी, वंश, रैली, अभिनेता आदि कई प्रतीक आपके काव्य में मिलते हैं

दलाल बहुत बड़े, हर दरवाजे खड़े
सैंध बहुत लगाए, दौलत खूब कमाएँ।[6]
मेढक तो राजा हुए, टर-टर करते रोज
गंध भरा कुआ बड़ा, होता जाए देश।[7]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विशाल शब्द समूह, सरल-सहज प्रवाहमयी भाषा, मुहावरों-कहावतों का सही प्रयोग, स्वाभाविक अलंकार, सुंदर बिंब-विधान, सटीक प्रतीक-योजना के कारण मनोज सोनकर का शिल्प बहुत ही समृद्ध और अत्यंत प्रभावशाली हो गया है। उनकी शैक्षिक क्षमता बहुत ही ऊँची है। इस कारण उनकी कविताएँ अधिक कलात्मक और अधिक आकर्षक हो गई हैं।

उनके शिल्प के बारे में डॉ॰ माधव पंडित ने लिखा है'सरल प्रवाहमयी भाषा, सृजनात्मक कल्पना की ऊँची उड़ान, प्रभावशाली मानवीकरण, सटीक प्रतीक, मौलिक उपमान और सुंदर बिंबात्मकता सोनकरजी के काव्य-शिल्प की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।' [8]

डॉ॰ मनोज सोनकर शिल्प के प्रति बहुत ही सचेत हैं। उनकी कविता शिल्पहीनता की शिकार नहीं है। ध्यातव्य है कि शिल्प तो कविता का आभूषण है।

संदर्भ

1. अंभगालोक, डॉ॰ मनोज सोनकर, पृ॰ 7
2. दोहांगन, डॉ॰ मनोज सोनकर, पृ॰ 14
3. वही, पृ॰ 17
4. वही, पृ॰ 34
5. वही, पृ॰ 15
6. वही, पृ॰ 64
7. गज़ल गश्त, पृ॰ 44
8. मनोज सोनकर की काव्यधारा, डॉ॰ माधव पंडित, पृ॰ 8

प्लाट नं॰1, पारिजात कॉलोनी, इंदिरा गार्डन जवल
देवपुर धुले, तह॰जि॰ धुले (महाराष्ट्र)
मो.09422262234
ई-मेल- Patilmh80@gmail.com

हिंदी साहित्य और दलित-समाज

श्रीमती कविता

दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देता है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवन यापन करने के लिए बाध्य जनजातियाँ और आदिवासी जरायमपेशा घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आती हैं। बहुत कम श्रम मूल्य पर चौबीस घंटे काम करनेवाले श्रमिक, बंधुआ, मजदूर दलित की श्रेणी में आते हैं।

दलित शब्द को बाईबिल में दुःखी, निसहाय, शोषित, पीड़ित, दीन-दरिद्र, दुर्बल, पापी शब्दों के आधार पर अभिव्यक्ति दी गई है। जिस प्रकार भारत में वर्ण और जाति के आधार पर शूद्रों को दलित की कोटि में रखा गया है, उसी प्रकार प्रभु यीशु मसीह के कार्यकाल में यहूदी, फरीसी, सदूकी अपने आपको उच्चेवर्ग का मानते थे जबकि दलित को कंगाल नाम से पुकारते थे।[2]

श्री सांभरिया अपने कथन में कहते हैं कि दलित शब्द का अर्थ हैदबा हुआ, कुचला हुआ, आत्मसम्मान और आत्मरक्षा की जिसमें कमी हो। अपमान, उत्पीड़न और प्रताड़ना को जिसने अपनी नियति मान लिया है। इस कथन पर गौर करने पर स्पष्ट हो जाता है कि शूद्र अपनी ऐतिहासिक और वर्तमान स्थिति के लिए स्वयं ज़िम्मेदार हैं।[3] किंतु हमें उन परिस्थितियों पर भी विचार करना होगा कि यदि एक व्यक्ति निम्नवर्ग का है और दूसरा आभिजात्य वर्ग का तो क्या सिर्फ पीड़ित होने के कारण उसकी सामाजिक स्थिति में भी समानता रहेगी? यदि एक ब्राह्मण पीड़ित है तो क्या समाज समान पीड़ा के आधार पर दोनों व्यक्तियों के साथ एक जैसा व्यवहार करेगा? अर्थात् ब्राह्मण पीड़ित या शोषित होने के कारण भी सम्माननीय स्थिति में ही रहेगा। यह भेद सामाजिक व्यवस्था का दोगलापन उजागर करता है।

इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है, जो समाज-व्यवस्था के तहत सबसे निचले पायदान पर है। वर्ण-व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा है।[4] संकुचित अर्थ में दलित शब्द को ग्रहण करने के क्रम में विद्वानों में सिर्फ वर्ण-विशेष के लोगों को ही स्वीकार किया गया है। हमारे समाज में दलित शब्द का आशय सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत निम्न जातियों के लिए ही प्रयोग होता है।

दलित साहित्य की पृष्ठभूमि का आरंभ संस्कृत वाङ्मय के अंतर्गत वैदिक साहित्य, उपनिषद, रामायण, महाभारत, स्मृतियों तथा पुराणों में स्पष्ट दिखाई देता है।[5]

संस्कृत साहित्य से चलकर पालि-प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में आई। बौद्धधर्म लगभग सभी सामाजिक विसंगतियों पर ध्यान आकृष्ट कराता है। महात्मा बुद्ध समाज में व्याप्त भेदभाव,

आडंबर तथा अनाचार को देखकर दुःखी रहते थे, इसलिए उन्होंने स्पष्ट कहा था कि जन्म से कोई भी व्यक्ति महान नहीं होता, यह मात्र कर्म है, जो व्यक्ति को महान बनाता है।[6]

सिद्ध एवं नाथ साहित्य को दलित साहित्य के रूप मे देखा जा सकता है, गोरखनाथ जी शूद्रों को भी शिक्षा देने के पक्षधर थे। गोरखनाथ के कई सिद्ध निम्नजाति के थे, इससे ज्ञात होता है कि नाथपंथ में जाति के आधार पर भेदभाव नहीं था।[7]

मराठी साहित्य में दलित चेतना का आरंभ 13वीं शताब्दी में हुआ। मराठी संतों में युग-युग की चिरवेदना व्यक्त होती है। ये मराठी संत तुकाराम, एकनाथ सभी सामाजिक समानता के पक्षधर थे। कबीरदास, रैदास, मलूकदास, नामदेव इत्यादि सभी संतकवियों ने दासता, अस्पृश्यता, शोषण सार्वजनिक स्थानों पर दलितों के प्रवेश इत्यादि पर व्यापक प्रकाश डाला है। संतों की दृष्टि में जाति-पाति मानव-मानव के बीच विषमता पैदा कर समाज को विभाजित करने का काम करती है।

परवर्ती हिंदी साहित्य में दलितों को जाग्रत करने का प्रयास किया गया है। प्रेमचंद गिरिराजशरण, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय आदि के साहित्य में दलितों को चिर निद्रा से जगाने का प्रयास किया गया है। प्रेमचंद की कहानियों में शूद्रों और सवर्णों की मानसिकता और सामाजिक स्थितियों का चित्रण हुआ है। ठाकुर का कुआँ उनकी दलित चेतना की सर्वोत्तम कहानी है। हिंदी दलित साहित्य के इतिहास में कुछ महान विचारकों ने भी अग्रणी भूमिका निभाई है। स्वामी विवेकानंद, विनोबाभावे, डॉ॰ भीमराव अंबेडकर, डॉ॰ राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, महात्मा गांधी इत्यादि मनीषियों ने भी जातीयता, शोषण इत्यादि पर काफी कुछ लिखा है। बाबा साहेब डॉ॰ भीमराय अंबेडकर ने तो अपने जीवन में इन सामाजिक विसंगतियों को काफी भुगता भी था। इन सबका एकमात्र उद्देश्य समतामूलक समाज की स्थापना कर दलितों को उचित न्याय दिलाना मात्र था।[8]

भारत में प्रथम बार महात्मा ज्योतिबा फूले द्वारा दलित जागृति दीप प्रज्वलित किया गया। पहली बार उन्होंने जाति बहिष्कृतों और अस्पृश्यों के लिए दलित शब्द का प्रयोग किया।[9] 1873 में सत्य शोधक समाज का निर्माण कर दलितों के मसीहा के रूप में चेतना को जाग्रत किया, जिसके प्रभाव में अंग्रेज सरकार ने सन् 1935 में पददलित अभिव्यक्ति को हटाकर अनुसूचित जाति का प्रयोग किया और सन् 1947 में स्वतंत्रता के बाद अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति शब्दों को भारतीय संविधान में समाविष्ट किया गया।[10]

मेरी समझ ये है कि समाज तभी आगे बढ़ सकता है, जब उसका प्रत्येक बच्चा स्कूल में जाकर शिक्षा ग्रहण करे। शिक्षित व्यक्ति ही अपने अधिकारों को समझ सकता है। भारतरत्न बाबा साहेब अंबेडकर के सिद्धांत शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो को अपने जीवन में उतारकर ही मनुष्य स्वयं को तथा समाज की उन्नति की ओर ले जा सकता है।

संत जाति के आधार पर किसी को भी छोटा या बड़ा नहीं मानते। उनका मानना है कि व्यक्ति अपने कर्मों से छोटा या बड़ा होता है। इसलिए मनुष्य को संतों की भाँति कर्मयोगी बनना चाहिए। सफाई जैसा घिनौना कार्य केवल दलित जातियों द्वारा ही नहीं किया जा रहा है अपितु सवर्ण जातियों के लोग भी इस कार्य को करने के लिए मजबूर हो रहे हैं। जिसका प्रमुख कारण है बेरोजगारी।

मेरा मानना है कि दलित समाज सफाई के काम को ईमानदारी से और पूजा मानकर करता है, लेकिन इसके बदले में जब उसे घृणा मिलती है तो ऐसे समाज की सफाई करने का और समाज में रहने का क्या औचित्य है? दलित शब्द को लेकर अलग-अलग विचारधाराएँ साहित्य-जगत में प्रचलित हैं, जिसमें एक वर्ग उन तमाम लोगों को दलितों की श्रेणी में रखता है, जो किसी भी प्रकार पीड़ित या शोषित हैं, फिर चाहे वे किसी भी वर्ग के क्यों न हों, किंतु एक दूसरा वर्ग केवल उन्हीं को दलित मानता है, जो शूद्र एवं अति शूद्रों की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि सामाजिक व्यवस्था के चलते हुए एक जैसी पीड़ा या शोषण की स्थिति में रहते हुए भी उच्चवर्गीय व्यक्ति समाज में सम्मान का पात्र है और निम्नजाति का व्यक्ति अनेक अच्छाइयों के होते हुए भी नितांत उपेक्षा का शिकार हो जाता है।

हमारे देश में शुरू से ही मनुवादी परंपरा का प्रचलन है और मनु ने समाज को चार वर्गों में विभाजित किया है। उसे ही दलित मानना उचित होगा, क्योंकि ये सामाजिक व्यवस्था में सदियों से निम्न स्थान पाए हुए हैं। उसे दलित नहीं माना जा सकता जो निम्न आर्थिक स्थिति वाला है, क्योंकि हमारे समाज में जो ऊँच-नीच की व्यवस्था या विभाजन है, वही जाति के आधार पर है, अर्थ के आधार पर नहीं।

आज हम सब जगह मंचों, मीडिया में देख-सुन रहे हैं कि दलितों के उद्धार के लिए ऐसा होना चाहिए कि वे समाज में सिर उठाकर चल सकें। सेमिनार भी केवल पैसा खर्च करने और मंचों पर खड़े होकर कहते की बात है लेकिन व्यावहारिकता ऐसी नहीं है कि वास्तव में दलितों का भविष्य आज भी कहीं दिखाई देता हो। सब कुछ अर्थ पर आधारित हो गया है। स्कूल कॉलेजों में डोनेशन के नाम पर अभिभावकों से पैसे ऐंठे जा रहे हैं, गरीब दलित लोग यह पैसा नहीं दे पाते और उनके बच्चे अच्छे स्कूल, कॉलेजों में पढ़ने से वंचित होते जा रहे हैं। ऐसा कब तक चलेगा, यह सोचकर मन थर-थर काँपने लगता है।

गांधी जी ने स्वतंत्रतापूर्व शूद्रों को हरिजन नाम दिया, जो कि इनकी दीनता-हीनता का परिचायक था। आज इन जाति के लोगों के रहन-सहन, आर्थिक स्तर में परिवर्तन हो रहा है, परंतु जो उच्च सवर्ण जाति के लोग हैं, वे इस बात को कभी नहीं स्वीकार कर पाते कि इन लोगों को समाज में किसी भी प्रकार का सम्मान मिले। आज हरिजन शब्द को छोड़कर दलित शब्द का प्रयोग हो रहा है। दलित एक सटीक शब्द है, क्योंकि यह न केवल उनकी स्थिति का निचोड़ है, बल्कि संघर्ष की भी प्रेरणा देता है। आधुनिककाल में दलित साहित्य लेखन अपने मुकाम को पा रहा है। दलित साहित्य सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं को चुनौती देते हुए सृजन में प्रवृत्त है। आधुनिककाल में दलित साहित्य लेखन सबसे पहले मराठी में हुआ। मराठी में यह 1950 के लगभग शुरू हो गया, लेकिन हिंदी में यह 1990 के आसपास आरंभ हुआ। दलित साहित्य मराठी में जितना समृद्ध रहा, उतना उत्तर भारत में नहीं। शिक्षा, औद्योगीकरण, धार्मिक, सामाजिक आंदोलन आदि अनेक ऐसे कारण रहे जिसके चलते मराठी में दलित साहित्य अधिक सशक्त रूप में उभरकर सामने आया। दलित साहित्य डॉ॰ अंबेडकर की विचारधारा को अपना मूल स्रोत मानता है।

दलितवर्ग की समस्या जहाँ एक ओर सामाजिक है, वहीं उससे ज्यादा सांस्कृतिक है। दलित

वर्ग की परंपरा से ही सांस्कृतिक उपनिवेश बनाया गया। देश के भीतर ही सांस्कृतिक उपनिवेश बना, दलित वर्ग आज अपनी अस्मिता पाने के लिए संघर्षरत है। अपनी पहचान कायम करने की दृष्टि से दलित साहित्यकार, दलित साहित्य को सबल हथियार के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। दलित साहित्य, समाज में सांस्कृतिक वर्चस्वशाली विचार को चुनौती देने वाला साहित्य है। यह मानव को प्रतिष्ठित करते हुए समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व एवं न्याय पर आधारित आदर्श समाज का निर्माण करना चाहता है। दलितवर्ग में आई चेतना के फलस्वरूप देश के कई भागों में दलित-आंदोलनों का उद्देश्य जातिविहीन समाज की स्थापना करके समाज में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की भावना का प्रसार करना है। जिससे एक आदर्श समाज की स्थापना हो। दलित-आंदोलनों का प्रभाव साहित्य एवं समाज पर पड़ा। दलित आंदोलनों के फलस्वरूप ही दलित-साहित्य प्रकाश में आना आरंभ हुआ। दलित साहित्यकार दलित-साहित्य के माध्यम से न केवल दलितवर्ग के जीवन से जुड़ी समस्याओं, कटु अनुभव, पीड़ा, दुःख, संत्रास का चित्रण करता है, अपितु दलितवर्ग में चेतना का संचार करते हुए अस्मिता के भाव भी पैदा करता है। दलित साहित्य का उद्देश्य वर्णवादी व्यवस्था एवं जातिप्रथा को समाप्त करके समतामूलक समाज की स्थापना करना है। एक ऐसा समाज, जिसमें व्यक्ति की पहचान उसके गुण एवं योग्यता के आधार पर हो न कि जाति के आधार पर। वर्तमान समय में दलित साहित्य ने समाज में अपना विशेष स्थान बना लिया है। साहित्य की अनेक विधाओं जैसे आत्मकथा, कहानी, कविता, उपन्यास के माध्यम से दलित साहित्य प्रकाश में आना शुरू हो गया है। दलित साहित्य नकार, वेदना और विद्रोह का साहित्य है। दलित साहित्यकार सवर्ण समाज की मान्यताओं को नकारने के साथ-साथ साहित्य की परंपरागत मान्यताओं को भी नकारता है। दलित साहित्य की अपनी अलग भाषा, प्रतीक, बिंब एवं मिथक है। हिंदी कथा-साहित्य में मुंशी प्रेमचंद ने ही सर्वप्रथम दलितवर्ग का चित्रण अपने साहित्य के माध्यम से किया। प्रेमचंद के बाद नागार्जुन, रामदरश मिश्र, रांगेय राघव ने भी अपने उपन्यासों में दलितवर्ग की स्थिति पर प्रकाश डाला। हिंदी में दलित उपन्यासों का लेखन 1994 से आरंभ हुआ। हिंदी में पहला दलित उपन्यास 1994 में जयप्रकाश कर्दम ने 'छप्पर' लिखा। इसके बाद प्रेम कपाडिया ने 'मिट्टी की सौगंध' और मोहनदास नैमिशराय ने 'मुक्तिपर्व' दलित उपन्यास लिखा। हिंदी साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दलित-लेखकों ने ही दलित-जीवन की समग्रता को चित्रित किया है। उनके द्वारा रचित साहित्य में ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ रोष है, लेकिन गैरदलित साहित्यकारों ने दलित पात्रों के प्रति दया एवं सहानुभूति ही प्रकट की है।

मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित 'मुक्तिपर्व' में देश की आजादी के बाद दलितों में उत्पन्न होती अस्मिता एवं आत्मसम्मान के भावों को दिखाया गया है। आजादी से पूर्व दलितवर्ग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रूप से गुलाम था। वह दोहरे शोषण का शिकार था, एक तरफ ब्रिटिश एवं मुस्लिम समाज द्वारा तथा दूसरी ओर हिंदू समाज द्वारा आजादी के बाद संविधान के माध्यम से दलितों को विशेष अधिकार एवं सुविधएँ दी गईं और वह गुलामी से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष करने लगा। आजादी से पूर्व बंसी, नवाब अली वर्दी खाँ की हवेली में नौकर था। नवाब उसका खूब शोषण करता है, लेकिन आजादी के बाद उसमें उत्पन्न हुई अस्मिता के भावों के कारण वह नवाब

का विरोध करना शुरू कर देता है और नवाब की गुलामी करना अस्वीकार कर देता है।

बंसी सामाजिक गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के साथ-साथ सांस्कृतिक गुलामी की जंजीरों को भी तोड़ डालता है। वह अपने पुत्र का नामकरण स्वयं कर पंडित को खाली हाथ लौटा देता है और सदियों से चले आ रहे ब्रह्मणवादी वर्चस्व को तोड़ डालता है। बंसी का पुत्र सुनीत भी प्याऊ पर बैठे पंडित द्वारा नलकी से पानी पिलाए जाने का विरोध करता है और सागर से पानी पीता है। लेखक ने दलित समाज को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। आजादी के बाद संविधान के माध्य से दलितवर्ग को विशेष अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान की गईं जिससे दलितवर्ग की स्थिति में कुछ सुधार हो और उनका जीवनस्तर ऊँचा उठ सके। निस्संदेह, आरक्षण नीति के कारण दलितवर्ग के बहुत से लोग ऊँचे पदों पर पहुँच गए। दलित वर्ग पहले से अधिक जागरूक हो गया है और वह अपने प्रति होने वाले अन्याय का विरोध करने लगा है, लेकिन यह भी सच है कि दलितवर्ग पर होते अत्याचार एवं उत्पीड़न में कमी नहीं आई है। भारतीय संविधान में किसी प्रकार के उँच-नीच, भेदभाव, असमानता भरे व्यवहार को दंडनीय अपराध माना गया है, फिर भी समाज में भेदभावपूर्ण व्यवहार जारी है। आज भी दलितवर्ग गरीबीरेखा से नीचे जीवनयापन करने पर मजबूर है और शोषण का शिकार है।

दलितों के साथ दिन-प्रतिदिन होनेवाली घटनाओं को देखकर कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में भी दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार जारी है। गृह मंत्रालय के अंतर्गत काम करनेवाली संस्था नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो की 2005 की वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया है कि हर 20 मिनट में दलित समुदाय के किसी व्यक्ति के प्रति अन्याय होता है। इस रिकार्ड के अनुसार 2005 में दलितों पर 26 हजार से अधिक उत्पीड़न के मामले दर्ज किए गए। इस वर्ष में लगभग 1200 दलित महिलाओं के साथ दुष्कर्म की घटनाएँ हुईं, 669 दलितों की हत्या हुईं, 257 लोगों का अपहरण किया गया, लगभग चार हजार दलितों को बुरी तरह घायल किया गया और आठ हजार से अधिक अन्याय एवं अत्याचार के मामले दर्ज हुए।

आजादी के साठ साल बाद भी सवर्ण समाज की मानसिकता में दलितों के प्रति कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। सवर्ण समाज के लोग आज भी दलितों को अपने से हीन समझते हैं। आज भी जाति एवं धर्म के नाम पर हजारों लोगों को मौत के घाट उतार दिया जाता है। महाराष्ट्र के भंडारा जिले के खैरलांजी गाँव में दलित प्रियंका, उसकी माँ और दो भाइयों की निर्ममतापूर्ण हत्या मानव की रूह को कंपा देने वाली है। उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के मौहम्मदपुर गौती गाँव में दलित प्रधान रामसखी, उसके बेटे ओर पति को गाँव के पूर्व प्रधान और उसके साथियों ने गोलियों से भून डाला। हरियाणा में गोहाना में दलितों के घरों में आग लगा दी गई। दलितों के साथ होते अन्याय एवं अत्याचार की घटनाएँ पूरे देश में देखी जा सकती हैं।

शोषण एवं अत्याचारों के बावजूद दलित-समाज अपनी अस्मिता को पाने के लिए संघर्षरत है। दलितवर्ग ने अपनी अस्मिता एवं अधिकारों को पाने के लिए मुहिम छेड़ दी है और उसके लिए उन्होंने कलम को अपना हथियार बनाया है। दलित साहित्यकार साहित्य के माध्यम से समाज में सांस्कृतिक वर्चस्वशाली विचार को चुनौती देता है और हिंदूधर्म-ग्रंथों द्वारा लगाई गई तमाम बंदिशों पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए उन्हें सिरे से नकारता है। दलितसमाज में जागृति एवं चेतना का संज्ञान

होने लगा है। उन्होंने अपनी समस्याओं के कारणों को समझना शुरू कर दिया है और इन समस्याओं को दूर करने का प्रयास भी आरंभ कर दिया है।

संदर्भ

1. डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दलित साहित्य सृजन के संदर्भ, पृ॰ 16
2. वही, पृ॰ 16
3. डॉ॰ एन॰ सिंह, मेरा चिंतन पृ॰ 31, 32
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ॰ 14
5. डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दलित साहित्य सृजन के संदर्भ, पृ॰ 22
6. वही, पृ॰ 23
7. वही,
8. वही, पृ॰ 25
9. वही, पृ॰ 134
10. वही

पत्नी श्री कुलदीप कुमार
कुलदीप मेडिसन सेंटर
शॉप नं॰ 1, **अग्रवाल धर्मशाला**
फतेहाबाद 125050 **(हरियाणा)**
मो॰ 09671109944

भारतीय साहित्यशास्त्र में बिंब-विधान

डॉ॰ दुर्गा अग्रवाल
अंशकालिक प्रवक्ता (संस्कृत)
वर्धमान पी॰जी॰ कालेज, बिजनौर

बिंब एक व्यापक शब्द है। समस्त मानवजीवन और उससे संबंधित प्रत्येक वस्तु का इस शब्द में समावेश हो जाता है। पृथ्वीतल के समस्त उपादान एवं क्रिया-व्यापार स्वतः एक बिंब है। ब्लैक के अनुसार वह प्रत्येक वस्तु जिस पर विश्वास किया जाता है, सत्य का बिंब है।[1]

साधारणतः बिंब का प्रयोग छाया, प्रतिच्छाया, अनुकृति आदि में होता है। अँग्रेजी कोश में भी इस शब्द का यही अर्थ दिया है। बिंब को किसी वस्तु की छाया, अनुकृति या सादृश्यता माना गया है। विश्वकोश में भी इसको प्रतिच्छाया के रूप में ग्रहण किया गया है। व्यक्ति या वस्तु के प्रतिबिंब को ही बिंब माना गया है। साहित्य कलाओं में इसका अर्थ सजीव या निर्जीव वस्तु की प्रतिच्छाया या उसके समान है।[2] यद्यपि बिंब शब्द से हमारे साहित्यशास्त्रियों ने छाया-प्रतिच्छाया का आशय ही लिया है, वह वास्तविक वस्तु नहीं परंतु उससे भिन्न होते हुए भी अयथार्थ होते हुए भी वह सत्य का आभास दिलाती है।

बिंब शब्द का बड़ा व्यापक प्रयोग होता है। मनोविज्ञान/दर्शन और साहित्य के क्षेत्रों में इसका विशेष महत्व है। मनोविज्ञान में बिंब शब्द से 'मानसिक पुनर्निर्माण' का अर्थ लिया जाता है।

विश्वकोश में मनोवैज्ञानिक बिंब को इन शब्दों के द्वारा व्यक्त किया है : बिंब चेतन स्मृतियाँ हैं, जो विचारों की मौलिक उत्तेजना के अभाव में उस विचार को संपूर्ण रूप में या आंशिक रूप में प्रस्तुत करती हैं।[3] यहाँ बिंब में उत्तेजना का प्रतिविधान करने पर बल दिया है। विश्वकोश के अंक 14 में ही मानसिक पुनर्निर्माण तथ्य को अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'यह बिंब-निर्माण पूर्णतः मानसिक व्यापार है तथा बिंब मस्तिष्क की आँखों से देखी जाने वाली वस्तु है।[4] मनोवैज्ञानिक फरलाँग ने कहा है कि जन्मांध व्यक्ति भी बिंब का विधान कर सकते हैं। यह पूर्णतः एक मन व्यापार अथवा मानसिक प्रक्रिया है। इंद्रियों से इसका कोई संबंध नहीं है।[5] मनोविज्ञान में बिंब का प्रयोग कई रूपों में किया गया है। उसका सर्वप्रथम प्रयोग पश्चात प्रतिमा के रूप में होता है। पाश्चात्य प्रतिमा को 'पश्च संवेदना' कह सकते हैं। प्रायः देखी-सुनी किसी वस्तु से मानसिक संवेदना का जन्म होता है, उस वस्तु के न रहने पर हम उसके बाद उत्तेजना में विचारों व भावों को ग्रहण करते हैं। प्रत्यक्ष का आधार न होने पर भी मानसिक संवेदना बनी रहती है। तब ऐसी स्थिति में हम जिस अप्रत्यक्ष से उत्तेजना ग्रहण करते हैं वह पश्चात प्रतिमा कहलाती है। पश्चात प्रतिमा में

हमारी इच्छा-शक्ति का महत्त्व कम होता है। प्रतिमा का दूसरा रूप 'काल्पनिक प्रतिमा या प्राथमिक स्मृति बिंब है'। जब किसी प्रत्यक्ष वस्तु के अभाव में जबकि पश्च संवेदना भी नहीं होती तब हम किसी पूर्वानुभूत को कल्पना में प्रत्यक्ष कर लेते हैं, वह काल्पनिक बिंब या काल्पनिक रूप विधान कहा जाता है।[1]

मनोविज्ञान में प्रयुक्त इन बिंबों से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान में बिंब का तात्पर्य है 'वास्तविक वस्तु के अभाव उसका मानस प्रत्यक्ष।'

साहित्यिक बिंब तथा मनोवैज्ञानिक बिंब में पर्याप्त अंतर है, वे समानार्थी नहीं है।

इन बिंबों में मानव-जीवन के सभी तथ्य, सभी चरित्र, सभी भावनाएँ आ जाती हैं। मानव-जीवन से प्रत्येक वस्तु इनसे अभिव्यक्त हो जाती है। गूढ़ विचारों को अभिव्यक्ति देने के कारण भावाभिव्यक्ति का साधन बिंब ही है। परमात्मा की भाषा को सभी दार्शनिकों, धर्मशास्त्रियों ने रूपकों अथवा बिंबों की भाषा बताया है।

आध्यात्म-शास्त्रियों का बिंब-विवेचन साहित्यिक बिंब के निकट है। इसे भाषा भाव के सूत्र रूप से समझा है, जिसको साहित्य में भी स्वीकार किया गया है। अध्यात्मवादी बिंब को ईश्वर के मनुष्यों से बोलने का एक माध्यम मानते हैं। भारतीय धर्म का अवतारवाद भी बिंब की अनिवार्यता को प्रकट करता है, धर्मशास्त्रियों का मत है कि ईश्वर ने अपनी रहस्यात्मक अनुभूतियों को शब्दों से नहीं वरन् बिंबों के माध्यम से प्रकट किया है। राम-सीता, कृष्ण-राधा उनके अमूर्त भावों के लिए चुने गये बिंब हैं।

साहित्य के अंतर्गत बिंब का बड़ा व्यापक महत्त्व है। भावों तथा विचारों का जितना सफल एवं सहज प्रकाशन बिंबों के द्वारा हो सकता है, उतना अन्य किसी साहित्यिक विधा से नहीं हो सकता है। पाश्चात्य समीक्षा में काव्य पर विचार करते हुए कल्पना और उसके बिंब-निर्माण के कार्य पर पर्याप्त बल दिया गया है। परंतु भारतीय साहित्यशास्त्र में इसका विवेचन नहीं मिलता। इसका कारण है पाश्चात्य साहित्य में काव्य और कवि को महत्त्व दिया गया है और कवि की दृष्टि से काव्य को परखा जाता है।

बिंब शास्त्र का नहीं, अपितु काव्य का शाश्वत तत्त्व है, जो सदैव विद्यमान रहता है। वह पाश्चात्य काव्य का जितना महान सत्य है, उतना ही भारतीय काव्य का।

साहित्य में बिंब

बिंब काव्य का मूलभूत तत्त्व है।

महाकवि वर्ड्सवर्थ ने समस्त काव्य को मानव या प्रकृति का बिंब कहा है।[7] अँग्रेजी विश्वकोश में कविता की परिभाषा करते हुए डंटन ने उसे 'चित्रमयी अभिव्यक्ति' कहा है। उनके अनुसार कविता मानव हृदय की चित्रमयी और कलात्मक अभिव्यक्ति है, जो भावनात्मक व लयपूर्ण भाषा में प्रकट होती है।[8] काव्यभाषा की चित्रमयता एक अनिवार्यता है। चित्रों की मोहकता से कवि पाठक को सहज ही उस भावभूमि पर ले जाता है, जहाँ वह कवि की अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण करने में समर्थ होता है, क्योंकि बिंबों का प्रयोग तथा ग्रहण मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

दिनकर के अनुसार'चित्र कविता का एक आवश्यक गुण है, प्रत्युत कहना चाहिए कि

यह कविता का एकमात्र शाश्वत तत्त्व है, जो उससे कभी नहीं छूटता।[9]

बिंबों की उत्कृष्टता उसकी प्रतिभा की समृद्धि की परिचायक है। अतः स्पष्ट है कि काव्य में बिंब का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समस्त विद्वानों आलोचकों ने बिंब को काव्य का मूल तत्त्व व कवि-प्रतिभा का परिचायक माना है।

संस्कृत काव्यशास्त्र की दृष्टि में बिंब का स्रोत

आचार्य मम्मट का शब्दार्थ का स्वरूप पूर्ण समन्वयवादी है। उन्होंने व्याकरणशास्त्र के शब्द तथा अर्थ के की काव्यपरक उपादेयता को सहजता से स्वीकृत किया है। मम्मट ने शब्द के 3 भेद किए हैंवाचक, लक्षक, व्यंग्य [10] इन तीन वर्गों के तीन अर्थ भी होते हैंवाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ व्यंग्यार्थ।[12] वाचक, लक्षक तथा व्यंग्य एक शब्द के अवस्था-विशेष के तीन नाम हैं, इसको 'गंगायां घोषः' के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। वाक्य का सामान्य अर्थ है 'गंगा में अहीरों की बस्ती है।' वाचकता अपने-अपने वाच्य अर्थों का अभिधान करके विरत हो जाती है, किंतु यह वाच्यार्थ किसी वाक्यार्थ को प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो पा रहा है। इस स्थान पर मम्मट लक्षणा का कथन करते हैंजहाँ वाचक शब्द द्वारा प्रस्तुत संकेतित अर्थ से वाक्यार्थ घटित नहीं हो पाता, वहाँ किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए अथवा रूढ़ि द्वारा मुख्य अर्थ सादृश्य अन्य अर्थ की प्रतीति होना लक्षण कहलाता है। यह शब्द का आरोपित व्यापार है।[12]

'गंगायां घोषः' में लक्षणा प्रवाहमय अर्थ न देकर तटमय अर्थ देता है। यदि 'गंगा तटे घोषः' कह दिया जाए तो गंगा से दो मील दूर तक का क्षेत्र भी 'तट' मान लिया जाएगा, जिससे वक्ता का अभिप्राय सिद्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि वक्ता उस तट को कहना चाहता है, जिसे नदी की लहरें छूती हैं जहाँ बड़ी शीतलता तथा पवित्रता है। 'गंगा तटे घोषः' कहने से उसकी प्रतीति कदापि संभव नहीं।'

यह जो शैत्य पावनत्व रूपी प्रयोजन है, यह लक्षणा का मुख्य उद्देश्य है परंतु इसे व्यक्त करने में यह शक्ति-समर्थ नहीं है। यह शक्ति गंगा शब्द के तट अर्थ की प्रतीति कराकर व्यापार शून्य हो जाती है। अतः साहित्यशास्त्री यहाँ एक अन्य व्यंजना-शक्ति का प्रादुर्भाव करते हैं, यह व्यंजना-शक्ति साहित्यशास्त्र की व्यक्तिगत उद्‌भावना है। मम्मट ने औचित्य समर्थ तर्कों से स्थापना की है।[13]

लक्ष्यार्थ रूपी प्रयोजन को प्राप्त करने की कामना से जहाँ लक्षणा शक्ति के माध्यम से शब्द का प्रयोग किया, वहाँ उस प्रयोजन की प्रतीति व्यंजना से होती है। यह संस्कृत काव्य शास्त्र की निजी विशेषता है। आनंदवर्धन व मम्मट ने एक स्वर से लक्षणता एवं व्यंजकता को शब्द का स्वभाव माना है।[14]

इसी लक्षकता एवं व्यंजकता में बिंब-विधान के अंकुर ढूँढे जा सकते हैं। बिंब का भी धर्म अनुरणनात्मकता है। वह अपनी प्रतीति के पश्चात पाठक के मन में चित्रों की संरचना करता है। वह चित्र संरचना श्रुत शब्दों में निहित लक्षकता व व्यंजकता का धर्म ही करता है।

मम्मट ने अर्थों के स्वरूप प्रतिपादन में ही संकेत किया है। प्रायः सभी अर्थों की व्यंजकता काव्य में होती है। अतः काव्य में कहीं भी व्यंग्यार्थ के बिना शब्दार्थ का कोई महत्त्व है ही नहीं।

भट्नायक के कथन को श्री आनंदवर्धन ने पुष्ट किया है कि जहाँ शब्द अथवा अर्थ उस व्यंग्यार्थ से अपना अर्थ समर्पित कर देते हैं वहाँ ध्वनिकाव्य होता है।[15]

बिंब से पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों का संकेत काव्य के जिस तत्त्व की ओर है, वह इन तीनों में ही समाविष्ट है। विशेषतया लक्षणा का बिंब की घटना में बड़ा ही उपयोग है, क्योंकि यह उन अनेक अलंकारों का मूल स्रोत है, जिनमें पूर्णतया बिंबात्मकता विद्यमान है।

शब्दार्थ ही काव्य का मूल है। कवि का अभिनिवेश उसको नाना बिंबों के माध्यम से व्यंग्य बना देता है। वस्तु की उद्भावना के पश्चात् बिंब उसको बाह्य सौंदर्य से नहीं, आंतरिक सौंदर्य से भी मंडित करते हैं

पश्य निश्चलनिष्पन्दा विसिनीपत्ते राजते बलाकाः।
निर्मलमरकत भाजन परिस्थिता शङ्रवशुक्तिरिव।

इसमें बलाका की निश्चलता का वर्णन करके उसकी निर्भयता को व्यक्त किया गया है और निर्भयता रूप व्यंगार्थ के द्वारा उस स्थान की निर्जनता की अभिव्यक्ति होती है।

प्रसंगतः सहृदयजन निर्जनता के दो अर्थ लेते हैं

1. संयोग पक्षनायिका उपनायक से कहती है यह निर्जन स्थल है। अतः यही उचित संकेत स्थल है।

2. विप्रभ पक्षजब नायक कहता है कि तुम यहाँ नहीं आयीं मैं तो यहाँ आया था, तब नायिका व्यंजना के माध्यम से कहती है बलाका की निर्भयता से यहाँ मनुष्य के आगमन का अभाव द्योतित हो रहा है। अतः तुम झूठ बोलते हैं।

उपर्युक्त अर्थ के परिप्रेक्ष्य में यदि इनके बिंब-प्रतिबिंब भाव को पृथक कर दिया जाये तो वस्तु के अतिरिक्त कुछ नहीं है, किंतु जब इन दोनों में परस्पर गुणात्मक आदान-प्रदान होता है, तब दोनों एक-दूसरे से मंडित होते हैं और करते हैंलक्षणा के भेदों में उपचार लक्षणा सादृश्य अतिशयता के कारण बिंब-विधान में बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है।

इस प्रकार बिंब के प्रादुर्भाव और उसके घटक तत्त्व भारतीय काव्यशास्त्र में बिंब विधान की गणना करते हैं। यहाँ बिंब का स्वरूप-निर्धारण स्वयं में अनेक तत्त्वों के मिश्रण के कारण इदमित्थं की भाँति नहीं किया जा सकता और न ही अँग्रेजी काव्यशास्त्र के समालोचक उसमें सफल हो पाए हैं। बिंब भेदों के संबंध में विवाद अद्यतन जीवित है।

काव्यशास्त्र में बिंब-योजना

भारतीय काव्य में विभिन्न तत्त्वों का वर्णन किया है, परंतु बिंब काव्य का अनिवार्य तत्त्व है। पाश्चात्य समीक्षकों ने बिंब को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। भारतीय आलोचनाशास्त्र ने इसे प्रच्छा रूप स्वीकार किया है। संस्कृत में विद्वानों ने काव्य की आत्मा को लेकर पर्याप्त विचार-विमर्श किया है। काव्य का मूल सौंदर्य सामंजस्य अथवा समुचित संगठन में निहित है। सम्यक् गठन, सम्यक् पृष्ठभूमि ही काव्याभिव्यक्ति में समर्थ है।

अधिकांश काव्य-समीक्षकों ने काव्य के अंतर्गत बिंब को प्रतिष्ठा दी है, परंतु इष्ट एक होने पर भी साधन की विविधता के कारण सब एक श्रेणी के नहीं कहे जा सकते हैं। कोई बिंब

तक अलंकारों के माध्यम से पहुँचा है, कोई रीतिमार्ग से, कोई गुणों द्वारा, कोई वक्रोक्ति तथा रस के माध्यम से।

अलंकार के प्रवर्तक आचार्य भामह हैं। भामह के साथ रुद्रट, दंडी, भोजदेव आदि ने भी अलंकार को प्रधानता दी है। अलंकार का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है'वस्तु को अलंकृत करने की कला'[16] उसका शोभाकारक धर्म स्पष्ट हो जाता है। भामह का कथन है कि अलंकारों में सौंदर्य-सृजन की इतनी सामर्थ्य है कि दुरुक्त भी रमणीय लगने लगता है।[17] भोजदेव ने भी निरलंकार कविता को काव्य का दोष कहा है।[18] वे अलंकार के शोभा-विधान के इस क्षेत्र में रस, गुण, रीति सभी तत्त्वों को समाहित कर लेते हैं। उन्होंने अलंकार को काव्य के प्राणतत्त्व के रूप में माना है। अलंकार प्रतिभा के आग्रह से स्वतः काव्य में प्रकट होता है, भावों के प्रवाह में स्वतः प्रवाहित होता है। अतः कवि को उसके लिए अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता न होनी चाहिये। जैसे-जैसे भावना समृद्ध होती जाती है अलंकार वाणी में स्वतः प्रकट होते जाते हैं।

सामान्य रूप से सभी विद्वानों ने अलंकार को आंतरिक सौंदर्य से एवं भावानुभूति में सहायक मानने का आग्रह किया है।

वस्तुतः अपने मूल रूप में अलंकारवाद की मान्यता बिंब के बहुत निकट है। बिंब का लक्ष्य है ऐंद्रियागम्यता के द्वारा मानस साक्षात्कार, जो बहुधा सादृश्य के द्वारा होता है। अलंकार जब केवल चमत्कार का पोषक हो जाता है, तब बिंब से उसकी दूरी बढ़ जाती है, किंतु जब वह रस का पोषक और भाव की सौंदर्य संपृक्त अभिव्यक्ति पर बल देता है, बिंब के बहुत निकट है। अप्रत्यक्ष रूप से अलंकारवाद की मान्यता बिंब का ही पोषण करती है।

'काव्यालंकार सूत्र' के लेखक आचार्य वामन 'रीति' के प्रवर्तक हैं।[19]

उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना है और उसका क्षेत्र इतना विस्तृत कर दिया कि काव्य के सभी गुण उसमें अंतर्भुक्त हो जाते हैं। गुणों के कारण पद रचना में जो विशिष्टता आ जाती है वही रीति है। रीतियों में काव्य इसी प्रकार निहित है जैसे -रेखाओं के अंतर्गत चित्र।[20] वामन से पूर्व रुद्रट ने भी रीति की चर्चा की थी उन्होंने काव्यशास्त्र में प्रथम बार रसौचित्य के आधार पर रीति का वर्णन किया।[21] राजशेखर ने रीति के साथ वृत्ति का संबंध जोड़ा और उसके अनेक विभागों की कल्पना की। वस्तुतः जैसे कामिनी के शरीर में सब अंगों का परस्पर अनुकूल संगठन सौंदर्य उत्पन्न करता है, उसी प्रकार पदों की संघटना रीति कहलाती है। वह रसादि काव्य सौंदर्य के उन्मीलन के लिए उपकार करने वाली होती है।

रीतिवादियों की रीति की कल्पना काव्य में सौंदर्य जाग्रत कर काव्य को जीवंत बनाती है। विशिष्टता बिंब से आ सकती है, परंतु रीति का विवेचन और क्षेत्र बिंबगत धारणा से किंचित भिन्न हो जाता है। विशिष्टता में काव्यविन्यास, शब्द-योजना, माधुर्य, ओज आदि गुणों पर ही बल दिया जाता है, जिनका बिंब से कोई संबंध नहीं। रीति, बिंब अपने सिद्धांतों व प्रयोग में भिन्न है।

काव्य-संप्रदायों में वक्रोक्ति संप्रदाय का विशेष महत्त्व है। वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुंतक हैं। वक्रोक्ति की परिभाषा देते हुए कुंतक ने कहा है'कविकर्म कुशलता से अद्‌भुत सौंदर्य पर आश्रित एक कथन प्रकार ही वक्रोक्ति हैं।[21] प्रसिद्ध कथन-शैली से भिन्न उक्ति, जो कवि

कौशलजन्य चारुता से युक्त हो वक्रोक्ति है। वह वक्रोक्ति शब्द और अर्थ दोनों में विद्यमान रहती है। यह प्रत्येक काव्यतत्त्व में निहित है। सम्मिलित रूप में उसी प्रकार प्रकट होती है जैसे तिल से निकला हुआ तेल।[22]

काव्यात्मा रूप में स्वीकृत वाग्वैदग्ध्य का लक्ष्य काव्य में वैचित्र्य चारुत्व का विधान करता है। वैचित्र्य भाव सदैव उपकारक नहीं होता न ही वह दृश्यता उत्पन्न करने में समर्थ हो सकता है। भावोत्पादन तथा दृश्यता बिंब का अनिवार्य धर्म है। वैचित्र्य प्रायः बाह्य चमत्कारक बनकर ही आता है, जबकि बिंब की सृष्टि संभव हो सकती है। सम्भवतः बिंब की संभावना वक्रोक्ति के मूल में निहित है।

औचित्य संप्रदाय ही वस्तुतः ऐसा संप्रदाय है, जिसने काव्य की अनिर्वचनीयता को सबसे सही रूप में समझा। क्षेमेंद्र ने औचित्य की परिभाषा करते हुए कहा है, 'उचित का भाव ही औचित्य है और यह उचित का भाव अनुरूपता का ही नाम है। रुद्रट ने क्षेमेंद्र के पूर्व औचित्य को विशेष महत्त्व दिया। सहृदय काव्य रस की प्रधानता देते हैं, पर काव्य के सभी तत्त्वों का उचित और सम्यक निरूपण ही उनकी दृष्टि में विशेष महत्त्व रखता है। उन्होंने काव्यगत तत्त्वों की सफलता का प्रमाण रमणीयता और मनोज्ञता को माना, जिसमें बिंब का स्थान अवश्य रहा होगा।[24] अलंकार और भावगत औचित्य बिंब की संभावनाओं को प्रकट करते हैं। औचित्य मार्ग यद्यपि बिंब का पूर्णरूपेण समर्थक नहीं है, पर सादृश्य अर्थात् बिंब के सुनियोजन पर उसकी दृष्टि अवश्य रही है।

ध्वनि संप्रदाय के आचार्य आनंदवर्धन काव्य में अभिव्यक्ति तत्त्व के पक्षपाती हैं। व्यंजना काव्य-सिद्धांतों का मूलाधार है, आनंदवर्धन ने काव्य की आत्मा 'ध्वनि' को स्वीकार किया है।[25]

यह ध्वनि व्यंजना का ही एक नाम है। ध्वनि काव्य की रमणीयता में तो वृद्धि कर ही देती है, साथ ही रागात्मकता का सन्निवेश भी कराती है। वह काव्य में 'क्षणे-क्षणे नवतामुपैति' वाली सुंदरता से समन्वित कर देती है। काव्य का ध्वनितत्त्व इतना सूक्ष्म एवं ग्राह्य है कि अन्य संप्रदायवादी भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सके। आनंदवर्धन के पश्चात्वर्ती मम्मट आदि ने भी ध्वनि की अनिवार्यता स्वीकार की है। व्यंजकता बिंब का एक आवश्यक गुण है। इस रूप में वह बिंब के निकट प्रतीत होता है, परंतु बिंब ऐंद्रियता पर बल देता है, वहाँ वह ध्वनि से भिन्न हो जाता है। बिंब की व्यंजकता के कारण ध्वनि-सिद्धांत उसके निकट है।

रस संप्रदाय के आदि आचार्य भरत हैं। रस शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है, 'जिसका रस लिया जाये वही रस है।'[26] जिस प्रकार सहृदय व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यंजनों से पके भोजन को खाते हुए रस का स्वाद प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार दर्शक अथवा रसिक भी नाना भावों के भावाभिनय से व्यंजित तथा वाणी अंग और सत्त्व से मिले स्थाई भावों का आस्वादन करते हैं।[27]

काव्यानंद अत्यंत सूक्ष्म तत्त्व है। किसी भी स्थूल तत्त्व से इसकी व्याख्या असंभव है। काव्य में यह अमूर्त तत्त्व मूर्त होकर आता है। रस की सूक्ष्मता और अरूप की प्रेषणीतया के लिए व उसके मूर्त और स्थूल रूप के लिए अभिव्यक्ति के ऐसे माध्यम की आवश्यकता होती है और ऐसी आवश्यकता की पूर्ति करता हैबिंब। बिंब भाव और रस का मूर्त रूप है। बिंब ही रस और भाव की व्यंजना करते हैं, इस रूप में बिंब रसवाद के अत्यंत निकट आ जाता है। इसके उपकरण जिनके

द्वारा रस आस्वादनीय बनता है, विभाव, अनुभव आदि सदैव बिंबात्मक होते हैं। दृश्य और ऐंद्रियगम्य वर्णनों के द्वारा ही भाव और रस अभिव्यक्ति पाते हैं। बिंब ही रस और भाव को अनुभवगम्य बनाता है। इस रूप में बिंब और भाव एक-दूसरे के पूरक हैं। बिंब सदैव भाव का उपकार उसकी अनुभवगम्य व्यंजना के द्वारा करता है और भाव सदैव रूपायित होने के लिए अथवा आस्वादनीय बनने के लिये बिंब के माध्यम से प्रकट होता है।

समष्टि में सभी भारतीय साहित्यशास्त्र के विभिन्न संप्रदायों की दृष्टि कल्पना और उसके व्यापार बिंब-विधान पर प्रत्यक्षतः नहीं गयी, पर अप्रत्यक्ष रूप से सभी ने कल्पना को स्वीकारा है। प्रच्छन्न रूप से बिंब को सभी ने स्वीकारा है, पर स्पष्ट रूप से उसका उल्लेख आधुनिक कवियों ने किया। जीवन मीमांसा उनके काव्य में प्रधान है, पर कला एवं अनुभूति की दृष्टि से इस युग में बिंब को विशेष महत्त्व मिला है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बिंब की धारणा को सदैव प्रश्रय मिला है।

संदर्भ

1. Everything possible to be believed is an image of truth. W. Blake quoted by Lewis, Poetic image Page 27
2. "Images are representation or likeness of an animate and inanimate object. Encyclopedia Britannica Vol. 14, Page 328
3. "Images are conscious memories which reproduce a previous perception in whole or in part in the absence of the original stimulus to the perception".....Encyclopedia Britannica Vol. 12, Page 103
4. The strictly Psychological use of the term image is for a purely mental idea which is taken as being observed by the eye of mind". Encyclo. Brita. Vol. 14 Page 328.
5. "His experience will have the qualities of constancy and coherence and presumable his mind will work rationally and non-rationally in a way similar to that of sighted man".
   E.T. Furlong, Page 74
6. "Such a representation of the object by an effort of the will, when the stimule ceased to act on the senses and when the excitation too no Iongar exit, is called a primary memory image". A critical study of Shelly's Imagery and revolution of his poetic arts' (Th) Dr. J.D. Singh, Page -3
7. Poetry is the image of man and nature - worods worth English Critical essays 19th century P.14
8. Absolute poetry is the concrete and artistic expression of the human mind in emotional and rhythmical language T.W. Duntton - Enc. Br. Vol. 18, Page 6
9. चक्रवाल भूमिका, पृ॰-72
10. काव्यप्रकाश सूत्र
11. काव्यप्रकाश सूत्र एवं वृत्ति

12. काव्यप्रकाश, 2/9
13. यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।
फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया।
द्वितीय उल्लास 14 कारिका
14. योऽर्थस्यान्यार्थधी हेतु र्व्यापारो व्यक्तिरेव सा।
का॰प्र॰ 3:32
15. ध्वन्यालोक-यत्रार्थः शब्दों वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।। 1/3
16. काव्यादर्श 2:1 - अलंकरोति अलंकार :
17. सन्निवेश विशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते, 1/54, काव्यांकार
18. वाक्यम् तदालंकारमलंकार विदो विदुः 1:14 - सरस्वती कंठाभरण।
19. रीतिरात्मा काव्यस्य - 112/61 काव्यालंकार सूत्र।
20. एताषु तिसृषु रीतिषु रेखा स्विव चित्रकाव्यं प्रतिष्ठितमिति, 14 काव्यालंकार सूत्र
21. भारतीय साहित्य शास्त्र, भाग-2, पं. बलदेव उपाध्याय, पृ॰ 162
22. उभावेतावलंकार्यौ तयौः पुनरलंकृतः।
वक्रोक्तिरैव वैदग्ध भंगीभणिति उच्यते। 1/10 वक्रोक्ति जीवितम्।
23. भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, पृ॰ 254
24. उचितस्य च वो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षतेः औचित्य विचार चर्चा।
25. काव्यस्यात्मा ध्वनि। 1/1-ध्वन्यालोक
26. रस्यते इति रसः।
27. यथा बहु द्वव्ययुतैवर्य जनैर्वहमियुतम्
आस्वादयति भुजाना भुक्तं भुक्तविदोजनाः। 6/32
भावभिनय संयुक्ता स्थायी भावोस्ततो बुधाः
आस्वादयंत्तिमनसा तस्मनाट्यरसा स्मृताः। 6:33 ना॰शा॰

म॰नं॰ 52, कुँवर बालगोविंद
बिजनौर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ रामविलास शर्मा का आलोचना-संसार

नीतू सारस्वत (शोध छात्रा)
जी॰एफ॰ कालेज, शाहजहाँपुर (उ॰प्र॰)

हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना में डॉ॰ रामविलास शर्मा का ऐतिहासिक महत्त्व है। यों भारत में प्रगतिशील लेखकसंघ की शुरुआत 1936 से होती है और उसके एक वर्ष बाद 1937 में शिवदान सिंह चौहान की आलोचना की शुरुआत होती है, जबकि डॉ॰ रामविलास शर्मा अपनी आलोचना की शरुआत सन् 1936 से दो वर्ष पूर्व ही सन् 1934 से करते हैं।

डॉ॰ रामविलास शर्मा का प्रथम आलोचनात्मक लेख सन् 1934 में 'चाँद' पत्रिका में छपा थानिराला जी की कविता। आलोचना में प्रवृत्त होने की चर्चा करते हुए डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि निराला को लेकर हिंदी में कितना संघर्ष हो चुका है, तब मुझे इसका पता न था। सन् 1934 में यह संघर्ष ही मुझे आलोचना के क्षेत्र में घसीट लाया और मेरा पहला आलोचनात्मक निबंध निराला के काव्य के समर्थन में प्रकाशित हुआ। संभव है, यह संघर्ष न होता, मेरे प्रिय कवि पर द्वेषपूर्ण आरोपों की वर्षा न की गई होती तो मैं आलोचना के क्षेत्र में आता ही नहीं।'[1] निराला पर लिखे गए इस निबंध के आरंभ में ही उन्होंने अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया थामैंने अभ्युदय (जुलाई 23, 1934) में श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' का उक्त कवि के ऊपर लिखा हुआ लेख पढ़ा। लेख एक पार्टी का प्रोपेगैंडा था, कवि की कविता का कोई विशेष निरूपण न था। इन पार्टियों में कौन सत्य पर, कौन असल पर है, इससे मुझे कुछ सरोकार नहीं। निराला जी की पार्टी-पॉलिटिक्स की और व्यक्तिगत नीति की मुझे यहाँ विवेचना नहीं करनी है, पर उनकी कविता पर दुरूहता, नीरसता, अर्थहीनता तथा छंदों के ऊटपटांगपन के आक्षेप नए नहीं है। एक हिंदी-प्रेमी और विशेषकर कविता-प्रेमी के नाते मुझे यह आक्षेप खटकते हैं।[2] अपने निबंध में डॉ॰ शर्मा ने निराला की कविताओं के उदाहरणों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करके इन आक्षेपों का उत्तर दिया। इस निबंध में साहित्य-समीक्षा के वैचारिक और सैद्धांतिक दृष्टिकोण को देखा जा सकता है।

1937 में रामविलास जी ने 'निराला के गद्य में व्यंग्य और परिहास' शीर्षक से एक लेख लिखा। इसमें उन्होंने व्यंग्य की प्रकृति और महत्त्व की चर्चा करते हुए साहित्य और समाज के लिए व्यंग्य की आवश्यकता प्रतिपादित की। शर्मा जी की आलोचना में धीरे-धीरे सामाजिक चिंताएँ स्थान लेने लगी थीं। 1937 में ही 'छायावादी कवियों की कहानियाँ' शीर्षक लेख में पंतजी की कहानियों की व्यक्ति और समाज के संबंध को ध्यान में रखकर समीक्षा की तथा 1939 में अमृतलाल नागर की पुस्तक 'नवाबी मसनद' की भूमिका लिखी। इस भूमिका से मार्क्सवाद की ओर उनका झुकाव प्रकट हुआ है। 1939-40 में रामविलास जी ने पहली आलोचना पुस्तक 'प्रेमचंद' लिखी, जो 1941 में

प्रकाशित हुई। उस समय प्रगतिशील साहित्य के संबंध में विवाद चल रहा था और प्रेमचंद के साहित्य की उपेक्षा की जा रही थी। शर्मा जी प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य तो नहीं थे, लेकिन 'हंस' में उनके लेख प्रकाशित होते थे। प्रेमचंद पर यह पुस्तक लिखकर डॉ॰ शर्मा ने प्रगतिशील साहित्य-संबंधी बहस में हस्तक्षेप किया। लिखा प्रेमचंद के विचार बहुत स्पष्ट नहीं थे, परंतु उनमें कलाकार की सच्चाई की कमी न थी। उन्होंने परिस्थितियों को घटाबढ़ाकर नहीं चित्रित किया, अपने युग की निर्धनता, दासता और पीड़ितों की आर्तवेदना को जैसा उन्होंने अनुभव किया था, वैसा दूसरे ने नहीं।[3]

हिंदी की प्रगतिशील परंपरा की व्याख्या की अगली कड़ी के रूप में डॉ॰ रामविलास शर्मा ने 1942 में भारतेंदुयुग पुस्तक लिखी, जो 1943 में प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने भारतेंदुयुग में विभिन्न विधाओं में लिखे गए साहित्य का विश्लेषण किया और भारतीय समाज तथा साहित्य की प्रगति में उसके योगदान को महत्त्वपूर्ण माना। 1943 से पहले डॉ॰ शर्मा मार्क्स, लेनिन, स्टालिन आदि की रचनाएँ नहीं पढ़ी थीं, लेकिन राजनीति के पाठ्यक्रम में शामिल मार्क्सवादी सिद्धांत तथा उपन्यास पढ़ चुके थे। कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होने के बाद मार्क्सवादी सिद्धांत की रचनाएँ पढ़ने का अवसर मिला जिनसे उनके साहित्य-चिंतन का नया चरण शुरू होता है, जो अपेक्षाकृत अधिक प्रखर और सुसंगत आलोचना-दृष्टि से संपन्न है। 'निराला' (1946) में निराला के जीवन और व्यक्तित्व के वर्णन के साथ-साथ उनके काव्य और कथा-साहित्य का परिचय दिया गया है। इस पुस्तक में निराला की छायावादोत्तर काल की रचनाओं पर विशेष तौर से विचार किया गया और नए साहित्य में उसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। 1952 में प्रेमचंद पर डॉ॰ शर्मा की दूसरी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक में प्रेमचंद के उपन्यासों की विशद व्याख्या करने के बाद एक अध्याय में प्रेमचंद की कहानियों का विश्लेषण किया गया। इस पुस्तक में कहानियों की तुलना में उपन्यासों को अधिक महत्त्व दिए जाने के कारणों को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ शर्मा ने अन्यत्र लिखा है कि 'बेशक प्रेमचंद ने बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। पर यदि वर्ग-संघर्ष पर ध्यान केंद्रित करें तो देखेंगे कि फ्रांस, रूस, इंग्लैंड, अमेरिका के बड़े-बड़े कथाकार उपन्यासों में ही वर्ग-संघर्ष का भरा-पूरा चित्रण कर सके हैं।[4] इस पुस्तक में डॉ॰ शर्मा ने सिद्ध किया कि प्रेमचंद का प्रत्येक उपन्यास किसान-जीवन की महान गाथा है और उसमें गाँधीवाद की सीमाएँ लाँघकर किसानों के संघर्ष और उत्पीड़न का चित्रण किया गया है।

1948 में संस्कृति और साहित्य नाम से डॉ॰ शर्मा का एक निबंध-संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें 1935 से 1947 की अवधि में लिखे गए विभिन्न निबंध संकलित किए गए थे। इस अवधि में डॉ॰ शर्मा के साहित्य-चिंतन के विकास को समझने की दृष्टि से यह संग्रह बहुत महत्त्वपूर्ण है। 1948 में डॉ॰ शर्मा का निबंध-संग्रह 'प्रगति और परंपरा' प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित सभी निबंध 1946-47 लिखे गए थे। इन निबंधों में देश की राजनीतिक उथल-पुथल, सांप्रदायिक दंगों और प्रगतिशील साहित्य-संबंधी विषयों पर विचार-विमर्श किया गया है। 1953 में भारतेंदु के जीवन और साहित्य पर डॉ॰ शर्मा ने 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' पुस्तक लिखी। उनका विचार था कि हिंदी साहित्य में जो अनेक समस्याओं पर तरह-तरह के विवाद हुआ करते हैं, उनके समाधान के लिए बहुत सी सामग्री भारतेंदु के साहित्य में मिलेगी। भारतेंदु हिंदी की जातीय परंपरा के संस्थापक हैं, मुख्यतः उनकी बताई

हुई दिशा में चलकर ही हमारा साहित्य उन्नति करेगा।[5] 1954 में 'भाषा-साहित्य और संस्कृति' निबंध-संग्रह का प्रकाशन हुआ। इन निबंधों में उर्दू-हिंदी के संबंधों और राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास की समस्याओं पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार किया गया। 1954 में 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ' पुस्तक का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक का संबंध प्रगतिशील लेखकों के विचारधारात्मक संघर्ष से था। 1955 में डॉ॰ शर्मा के निबंधों का एक संग्रह 'लोकजीवन और साहित्य' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में डॉ॰ शर्मा ने अपनी साहित्यिक मान्यताओं के पीछे छिपे हुए संघर्ष की पाठकों को जानकारी दी है।

1955 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' में डॉ॰ शर्मा ने शुक्ल जी द्वारा की गई हिंदी-साहित्य की समीक्षा का विश्लेषण करके उसमें विद्यमान रीतिकालीन साहित्य-मूल्यों के प्रतिरोध को उजागर किया। डॉ॰ शर्मा के अनुसार सामंती संस्कृति, साम्राज्यवादी शोषण, पश्चिमी व्यक्तिवाद और निराशावाद के विरुद्ध संघर्ष शुक्ल जी ने साहित्य-चिंतन के प्रमुख आधार हैं। डॉ॰ शर्मा ने उन आधारों को पहचान कर शुक्ल जी को हिंदी साहित्य की प्रगतिशील परंपरा का महत्त्वपूर्ण स्तंभ सिद्ध किया लिखा'हिंदी-साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्त्व है, जो उपन्यासकार प्रेमचंद और कवि निराला का। उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया, जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचंद और निराला ने। शुक्ल जी ने न तो भारत के रूढ़िवाद को स्वीकार किया, न पश्चिम के व्यक्तिवाद को। उन्होंने बाह्य जगत और मानव-जीवन की वास्तविकता के आधार पर नए साहित्य-सिद्धांतों की स्थापना की और उनके आधार पर सामंती साहित्य का विरोध किया और देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परंपरा का समर्थन किया।[6]

सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक मान-मूल्यों की समस्याओं से संबंधित डॉ॰ शर्मा की पुस्तक आस्था और सौंदर्य 1961 में प्रकाशित हुई तथा 1967 में निराला का जीवन-परिचय और उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए निराला की साहित्य-साधना का प्रथम खंड प्रकाशित हुआ। यहाँ निराला अपनी तमाम कमजोरियों और विशेषताओं के साथ उपस्थित है। 1972 में निराला की साहित्य साधना का दूसरा खंड प्रकाशित हुआ। इसमें निराला की कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, आलोचनात्मक लेखों और देश की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के बारे में उनके विचारों के आधार पर उनके भावबोध, कला तथा विचारधारा का सांगोपांग विवेचन किया गया है। पुस्तक के तीसरे खंड (1976) में डॉ॰ शर्मा ने निराला के लिखे हुए पत्र तथा निराला को साहित्यकारों, पारिवारिकजनों और उनके मित्रों द्वारा लिखे हुए पत्रों को संकलित किया है। ये सभी पत्र निराला के जीवन और व्यक्तित्व को समझने की स्रोतसामग्री है। निराला पर काम करते हुए डॉ॰ शर्मा को सरस्वती पत्रिका में महावीरप्रसाद द्विवेदी पर ऐसी सामग्री मिली, जिसके आधार पर 1977 में उन्होंने 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' लिखी।

1978 में प्रकाशित पुस्तक 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में छायावादोत्तर काल की काव्य-प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है तथा 1981 में निबंधों का एक संग्रह 'परंपरा का मूल्यांकन' प्रकाशित हुआ। 1981 में ही 'भाषा, युगबोध और कविता' नाम से नए-पुराने निबंधों का संकलन प्रकाशित हुआ। 1982 में 'कथा, विवेचना और गद्यशिल्प' नामक निबंध-संग्रह का प्रकाशन हुआ तथा

1984 में 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य' पुस्तक प्रकाशित हुई।

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने प्रगतिशील काव्य की मुख्यधारा की पहचान के लिए केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का चयन करते हुए प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल लिखी, जो कि 1986 में प्रकाशित हुई।

इसतरह डॉ॰ रामविलास शर्मा ने अपने आलोचनात्मक लेखन से हिंदी-साहित्य को समृद्ध किया। एक प्रकार से डॉ॰ शर्मा का आलोच्य-लेखन साहित्य का इतिहास ही है। इस इतिहास में व्यक्तिवादी, भाववादी, प्रतिक्रियावादी और जनविरोधी प्रवृत्तियों पर तीव्र प्रहार करते हुए इतिहास में वस्तुवादी, यथार्थवादी और प्रगतिशील प्रवृत्तियों को सकारात्मक दृष्टि से देखा गया है। 'यह सही है कि डॉ॰ शर्मा ने हिंदी साहित्य का इतिहास' नाम से कोई ग्रंथ नहीं लिखा। जो नाम से ही 'इतिहास' को पहचानने के आदी हैं उन्हें जरूर निराशा होगी, लेकिन उपर्युक्त कृतियाँ समग्रतः साहित्य का इतिहास नहीं हैं तो क्या हैं? साहित्य का इतिहास और होता क्या है?'[7] वस्तुतः डॉ॰ शर्मा का समस्त आलोचनात्मक कार्य साहित्य की कालगत प्रवृत्तियों को परखने में सक्षम है।

मार्क्सवादी आलोचक के रूप में डॉ॰ शर्मा ने साहित्य से संबंधित अनेक गंभीर प्रश्नों का सामना किया और उनके संबंध में अपना गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया। प्रगति-विरोधी विचारक प्रायः जनता को अशिक्षित भीड़ की संज्ञा देकर साहित्य को उससे ऊपर की बतलाते हैं।'[8] किंतु डॉ॰ शर्मा का साहित्य-चिंतन जनसामान्य के उत्थान की पैरवी करता है।'[9]

संदर्भ

1. रामविलास शर्मा, रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि, पृ॰ 13
2. रामविलास शर्मा, विराम चिह्न, पृ॰ 44
3. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद, पृ॰ 10-11
4. रामविलास शर्मा, अपनी धरती अपने लोग-2, पृ॰ 110
5. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चंद्र प्रथम संस्करण, भूमिका
6. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, पृ॰ 7
7. नामवर सिंह, वाद-विवाद-संवाद, पृ॰ 104
8. नंदकिशोर नवल, हिंदी आलोचना का विकास, पृ॰ 144
9. मधुरेश, हिंदी आलोचना का विकास, पृ॰ 44

द्वारा श्री दिनेशपाल, एडवोकेट
मकान नं॰ 239, मछली टोला
जल निगम आफिस के सामने
फतेहगढ़ (फर्रुखाबाद) उ॰प्र॰
मो॰ 09412064029

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' : जीवन और समाज

डॉ॰ नमिता जैन

युग प्रतिनिधि साहित्यकार जहाँ अपनी रचनाओं से युग को प्रभावित करता है; वहीं दूसरी ओर युग की चेतना एवं वातावरण से स्वयं भी प्रभावित होता है; तथा उसे ऐसा करना ही पड़ता है।[1] युग की व्यक्त-अव्यक्त आकांक्षाएँ और मान्यताएँ, क्रियाकलाप और चेष्टाएँ साहित्यकार के साहित्य में स्थान प्राप्त करती हैं। युग की सम-विषम परिस्थिति साँसों में रच-बसकर उसके व्यक्तित्व का निर्माण करती है। साहित्य में रचनाकार का युग जीवंत होता है। महाकवि 'प्रभात' जी ने जिस समय साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया, उस समय भारतीय समाज घोर अंधविश्वास, रूढ़ियों एवं परंपराओं की जंजीरों से बँधा था।

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' का जीवन उदात्त गुणों से परिपूर्ण, एक आदर्श हिंदू युवक का जीवन है, जिसमें वे अपने संपूर्ण परिवार की ज़िम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए अपने दायित्व की पूर्ति करते है। वे एक शिक्षित नवयुवक थे। अध्यापक से लेकर पुलिस विभाग में डिप्टी-उप महानिरीक्षक के पद के दायित्व को उन्होंने सच्ची कर्तव्यनिष्ठा के साथ निभाया। वे सच्चे कर्तव्यनिष्ठ, न्यायप्रिय, अनुशासित, राजकर्मचारी थे, लेकिन सच्चे राष्ट्रभक्त भी थे। इसलिए उनका मन अपनी विवशता को निम्न शब्दों में व्यक्त करता है

संख्यातीत छेद हैं
टूटे हुए हृदय के दोने में
छोटी सी है जीवन-कुटिया
तम है कोने-कोने में।[2]

तात्पर्य यह है कि जीवन संपूर्ण कहीं नहीं है। अंधकार और अवषाद उसमें सर्वत्र विद्यमान है। बड़ा उच्च पद जीवन की परिपूर्णता का द्योतक नहीं है। वहाँ अपने प्रकार के अभाव और अवसाद हैं, इसलिये जीवन कोई निश्चित उद्देश्य की ओर बढ़ने वाला लक्ष्य नहीं है। यह हर क्षण, हर पल समाज में घटित घटनाओं के आवृत में आलोड़ित-विलोड़ित होनेवाला ऐसा तत्त्व है, जो एक नया रूप लेकर समाज के अंतरिक्ष में जन्म लेता है। फलतः जीवन एक नयी रचना है। समय के रंगमंच पर प्रस्फुटित होने वाला नया जीवन-पुष्प है, जिसका संस्कार हमारे समीप का समाज करता है। व्यक्तियों के समूह में घटित होने वाली घटनाओं के परिवेश में नये-नये जीवन रूप में ढलने वाले जीवन का समाज विलग-विलग है। परिवार, परिवेश, प्रभाव, शिक्षा, तरंगित हवाओं का नाम है। इसलिए जीवन पृथक् है। समय, सीमा और स्थान-स्थान पर इसके नियामक तत्त्व हैं। इसलिये 'प्रभात' जी के जीवन पर इन सब तत्त्वों का व्यापक प्रभाव पड़ा है और उनका जीवन इन्हीं परिस्थितियों में तपकर कुंदन

बना है। अतः 'प्रभात' जी का जीवन एक दैदीप्यमान नक्षत्र-सा उज्ज्वल तारा है, जो निरब्ध आकाश रूपी समाज में अपनी अलौकिक प्रतिभा के साथ सदैव ही चमकता रहेगा।

1. **समाजिक परिवेश प्रभाव और परिस्थिति**

भारतवर्ष के इतिहास में सन् 1920 से 1936 तक का समय सामाजिक विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सामाजिक क्षेत्र में मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास हुआ, क्योंकि राजनीति ने उसे संघर्ष का आधार बनाया। इस समय तक अँग्रेज़ी का व्यापक प्रसार हो चुका था। इसलिये बड़े-बड़े नेता और विचारक सामाजिक व्यवस्था पर मनन करने लगे। गांधी जी के मानवतावादी दृष्टिकोण ने निम्नस्तर के लोगों की सामाजिक दशा में बड़ा परिवर्तन किया। अहिंसा, सत्याग्रह, हिंदू-मुस्लिम एकता, ग्रामोद्धार, ज़मींदारी-प्रथा का विरोध उनकी सामाजिक दृष्टि के ही प्रतिरूप हैं।[3]

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के काल में भारतीय समाज घोर अंधविश्वास, रूढ़ियों एवं परंपराओं में जकड़ा हुआ था। जातिवाद और वर्णव्यवस्था जैसी कुरीतियाँ समाज को खोखला कर रही थीं। परधीनता, अशिक्षा, विदेशी प्रभाव, अज्ञान और अंधविश्वास में रमे रहने वाले भारतीयों को सुधारवादी संस्थानों द्वारा निकाल पाना भी मुकिल था। उत्तरी भारत में आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज एवं रामकृष्ण मिशन के प्रयत्नों में समाजकार्यों को कुछ सीमित मात्रा तक सही दिशा प्राप्त हुई। हिंदूसमाज में उस समय जो घातक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गयी थीं, इस 'नवजागरण की स्फूर्ति ने भारत की आँखें खोल दी थीं, अतः मध्ययुगीन संस्कृति की कमियों से समाज भली-भाँति अवगत हो चुका था। जिन सामाजिक निर्बलताओं ने भारतीय समाज को युग-युग से पंगु बना रखा था, उससे वह धीरे-धीरे मुक्ति की ओर अग्रसर हो रहा था। देश ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी प्राप्त कर लिया था। नवचेतना की ये एकत्रित शक्तियाँ भारत-भाग्याकाश में कल्याणकारी सामाजिक क्रांति के मंगलप्रभात की पूर्व सूचना थीं।'[4]

2. **सामाजिक संघर्ष और समस्याएँ**

भारत की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन की स्पष्ट झलक दिखायी दे रही थी। भारतीय समाज में नवीनता के प्रति ललक थी ही, तो रूढ़ियों के प्रति प्रगाढ़ आग्रह भी था। इस समय भारतीय समाज द्विविधा की स्थिति में था। संयुक्त परिवार में रहने के कारण भले ही हृदय में समाज की रूढ़ियों से निकलने का मन हो, फिर भी प्रत्येक सदस्य को मुखिया की बातें मानना मजबूरी था। समाज नारी को प्रेम-विवाह, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह में जकड़कर स्वतंत्र वातावरण में साँस लेने की अनुमति नहीं दे रहा था।

मानव आशानुरूप उपलब्धि के अभाव में निराश हो जाता है। उस निराशा से बाहर निकलने के लिए संकल्प और साहस की आवश्यकता होती है। एक तरफ़ संकल्प और साहस का यह संघर्ष, दूसरी तरफ़ निराशा और असामर्थ्य, क्षोभ, व्याकुलता को जन्म देने का कार्य करता है। भारतीय व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ अँग्रेज़ी शासन की क्रूरताओं के कारण नींव की ईंट की भाँति दबकर रह गयी थीं, इसी कारण छायावादी कवि ने स्वतंत्रता की इस पुकार की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष न करके परोक्षतः की है। भारतीय समाज में स्वतंत्रता के पश्चात् जातिगत विद्वेष ने और भी प्रचंड रूप धारण कर लिया, जिसे सरकार ने कानून बनाकर जड़ से ही उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। नारी की स्थिति में

क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई दिया। उन्हें भारतीय शासन में ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन कर उनकी योग्यता को सामने लाया गया। इसके पश्चात शासन में बैठे उच्च अधिकारियों के निकम्मेपन और भ्रष्ट नेतृत्व के कारण आर्थिक दृष्टि के पिछड़े लोगों के लिए चलाये गए अंत्योदय और ग्रामीण तथा शहरी अशिक्षितों के लिए प्रौढ़शिक्षा कार्यक्रमों ने बीच में ही दम तोड़ दिया। रिश्वत, शराबख़ोरी, बलात्कार, दहेज लोभ में निर्दोष स्त्रियों को जलाना जैसी बुराइयों ने समाज को अपने शिकंजे में कस लिया था।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ और उन्नीसवीं के उत्तरार्द्ध में सांस्कृतिक नवजागरण की व्यापक पीठिका आर्यसमाज ने प्रस्तुत की। इस्लाम और ईसाइयत की प्रतिक्रियास्वरूप शक्तिशाली आर्यसमाज का उदय हुआ। हिंदूधर्म में व्याप्त अविश्वास, अशिक्षा, अंधविश्वास, जाति-भेद का विरोध किया और हिंदुओं को जाग्रत कर बुद्धिवाद के आधार पर स्वस्थ परंपराओं के प्रति आकर्षण एवं जीर्ण आस्थाओं के प्रति विकर्षण उत्पन्न किया। समाज-सुधार के अन्य आंदोलनों में भी प्राण-शक्ति का संचार हुआ। स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, राजा राममोहन राय आदि ने इस सांस्कृतिक जागरण को नवीन चेतना से युक्त किया, 'भौतिकतावादी युग में धर्म की सुरक्षा के लिये यह अनिवार्य आवश्यकता थी कि धर्म का रूप लोकसम्मत कर दिया जाए, अतः विवेकानंद ने वेद को आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत माना और अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा कर्मजीवन में की।'[5] प्राचीन भारतीय अध्ययन का नवीन आलोक नवयुग की चेतना, धार्मिक सहिष्णुता, अहिंसा, मानव-प्रेम, अहिंसा आदि को आधार बनाकर जगमगाने लगा। औद्योगिक प्रगति और आर्थिक विकास के कारण मानवतावादी विचारों में निम्नवर्ग को भी महत्त्व दिया जाने लगा। देश-विभाजन के समय धार्मिक सहिष्णुता के छिन्न-भिन्न होने से सांप्रदायिक दंगों की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो उठी।

भारतीय कृषि, कुटीर उद्योग एवं कला-कौशल सब अँग्रेज़-हिताय थे। इस आर्थिक शोषण के कारण भारतवासी दिन-प्रतिदिन निर्धनता से कंगाली की स्थिति में पहुँचते जा रहे थे। 'सोने की चिड़िया' कहलाने वाला भारत अँग्रेज़ों की शोषण अर्थनीति के कारण पूर्णतः दरिद्र और कंगाल बन गया। वर्षा पर निर्भर भारतीय कृषि किसान के लिए हराने वाला जुआ बन गयी। सिंचाई के पर्याप्त साधनों के अभाव में पेट पालने योग्य अनाज भी उत्पन्न नहीं हो रहा था, कभी अतिवृष्टि, कभी अनावृष्टि और कभी अकाल, भारतीय कृषि की यही नियति थी।

ज़मींदार और कारिंदे, महाजन, पुलिस, पटवारी सभी मिलकर जनता का शोषण कर रहे थे, पढ़-लिखे नवयुवकों को सरकारी विभाग में नौकरियाँ प्राप्त न थीं, अतः इन विषमताओं की प्रतिक्रिया मध्यम-वर्ग में होने लगी। 'प्रभात' भी उससे अछूते न रह सके। महँगाई और बेकारी दिन पर दिन बढ़ने लगी। द्वितीय विश्वयुद्ध ने देश को और भी जर्जरित हालत में पहुँचा दिया। स्वतंत्र भारत में गणतंत्र की स्थापना हुई। रियासतों का विलीनीकरण, जमींदारी-प्रथा का उन्मूलन, अर्थव्यवस्था को सँभलना, पंचवर्षीय योजनाएँ, उद्योगों की स्थापना, बड़े-बड़े कारख़ाने स्थापित होने लगे; जिससे प्रति व्यक्ति औसत आय में अपेक्षित वृद्धि न हो सकी। देशव्यापी सूखा पड़ने पर अन्न की कमी से अकाल की स्थिति आ गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के 'जय जवान, जय किसान' के नारे ने देश में बिजली सी दौड़ा दी और अन्न के क्षेत्र में आत्म-निर्भर होने के लिये 'हरित-क्रांति' हुई।

परंतु आत्मनिर्भर होने पर फिर एक समस्या उत्पन्न हो गयी। सन् 1971 में पाकिस्तान से युद्ध लड़ने पर पूर्वी पाकिस्तान से आए लगभग एक करोड़ शरणार्थियों को शरण देनी पड़ी। जिस कारण आर्थिक विकास के समस्त प्रयास असफल हो गए। बेकारी और महँगाई दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। व्यापारी-वर्ग ने भी स्थिति का लाभ उठाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि की, जिससे दैनिक उपभोग की वस्तुओं का कृत्रिम अभाव होने लगा। जनसंख्या-वृद्धि ने दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की की। आम चुनाव और उपचुनावों का भी अपरोक्ष रूप से सामान्य जनता को वहन करना पड़ा। परिणाम हुआ आर्थिक संकट। मुद्रास्फीति ने आर्थिक व्यवस्था को पूर्णतः ध्वस्त कर दिया। भारतीय जनता ने पैसा कमाने की खातिर नैतिक-अनैतिक साधनों का प्रयोग कर दिया। बेरोज़गारी के कारण नवयुवकों में आक्रोश उत्पन्न हुआ, जिससे वे कुमार्ग पर चलने को विवश हो गए।[6]

कविवर केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' जी को बीसवीं शताब्दी के इन सात दशकों की सामाजिक परिस्थिति ने पूर्णरूपेण प्रभावित किया है, जिसकी झलक उनकी रचनाओं में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। 'प्रभात' की 'सर्गांत', 'ऋतंबरा', 'राष्ट्रपुरुष' ऐसी ही कृतियाँ हैं, जिनमें उन्होंने अपने हृदय पर पड़े सामाजिक प्रभाव को अपनी ही लेखनी द्वारा शब्दों का रूप प्रदान किया है।

3. **समाजिक पर्व, मान्यता और मूल्य**

धार्मिक एवं राजनीतिक पर्व की भाँति ग्रामीण जीवन में सामाजिक पर्व का भी बड़ा महत्त्व रहा है। गाँव के सुदूर प्रांत में मेले, हाट, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में नौटंकी, नाटक अथवा लोक गीतों का आयोजन सामाजिक पर्व की परिधि में आते हैं। मेले वास्तव में किसी गाँव की मूल्यवान परंपरा अथवा विख्यात व्यक्ति की महानता के परिप्रेक्ष्य में आयोजित किए जाते थे। हाट में घरेलू सामान का क्रय-विक्रय तथा ग्रामीण बालाओं का परिभ्रमण एवं लेन-देन व्यक्ति जीवन के खुलेपन का परिचायक था। नौटंकी नाटक के माध्यम से ग्रामीण जीवन में नई सांस्कृतिक चेतना का उदय इन आयोजनों का मुख्य उद्देश्य था। 'सत्यवान-सावित्री' और वीर-अभिमन्यु का चक्र-वध ऐसे प्रहसन थे, जो न केवल व्यक्ति के मनोरंजन के साधन थे, अपितु लोकादर्श और ज्ञान-चेतना के अक्षय भंडार थे। 'सावित्री' का आदर्श नारी जगत के लिए प्रेरणाप्रद अनुभव था; तो वीर अभिमन्यु का संघर्ष अपने पिता के अधूरे कार्य को पूर्णता की ओर ले जाने का जागरूक प्रयास। निश्चय ही ये सामाजिक पर्व-जीवन के नैतिक उत्थान की पाठशाला थे। सत्य, अहिंसा, त्याग, उदारता, बंधुता एवं राष्ट्रभक्ति के अनुकरणीय उदाहरण थे। कविवर 'प्रभात' इन पर्वों के साँस्कृतिक के महत्त्व से प्रभावित भी थे और उन्होंने इन्हें अपने जीवन में उतारा भी। कविवर 'प्रभात' का जीवन भारतीय जीवन में घटित होने वाली घटनाओं से सदैव ही संवेध रहा। ये घटनाएँ नितांत विलग जीवन की व्यथा से परिपूर्ण होते हुए भी कहीं न कहीं जीवन के पौराणिक एवं सामाजिक संदर्भों से जुडी थीं; इन घटनाओं में व्यक्ति का जीवन विषाद, पीड़ा, अर्थ, विवशता, संत्रास और कुंठा कहीं न कहीं अर्थव्यंजित होती थी। इस व्यंजना को ही संवेदनशील कवि की प्रतिभा ने जाना और पहचाना तथा कालांतर में अपनी काव्यकृतियों में परिणत कर दिया। इसीलिए 'सर्गांत' से लेकर 'त्रसरेणु' तक की काव्य-यात्रा में भारतीय लोकजीवन की सांस्कृतिक चेतना की झाँकी प्रतिबिबिंत होती है।

भारतीय जीवन के लोकगीत और अन्य समाजिक पर्व 'पंचायत' आदि ने भी 'प्रभात' जी

को प्रभावित किया है। 'पंचायत' लोकधर्म की नैतिक पाठशाला थीन्याय और ईमानदारी सच्चाई और कर्त्तव्य-बोध, समानता और अधिकार की स्वीकृति के आदर्श और चेतन मूल्य इन सामाजिक पर्वों की ही देन हैं। 'प्रभात' जी इससे प्रभावित भी रहे हैं और इन मूल्यों को उन्होंने अपने जीवन में उतारा भी है।

मूल्य वास्तव में जीवन के वे सद्‌गुण हैं, जो हमें समाज में सिर उठाकर जीवन जीने का संदेश देते हैं। तात्पर्य यह है कि समाज में अपनी पहचान बनाते हुए नए आदर्श की स्थापना में अग्रणी होने की भूमिका निभानेवाला व्यक्ति ही आदर्श पुरुष है, प्रेरणा शिखर है। वास्तव में व्यक्ति में चरित्र के वे सद्‌गुण, जो उसे सभ्य समाज में अग्रिम पंक्ति में खड़ा करते हैं, मूल्य कहलाते हैं।[6] 'सर्गांत' में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का तेज राजर्षि विश्वामित्र के तेज से कहीं अधिक प्रभावी है। यह तेज उनके जीवन का विशिष्ट सद्‌गुण है प्रतिभावान मनःसंकल्प है। इसी भाँति 'प्रभास कृष्ण' में कृष्ण का तेज और ओज अन्य व्यक्तियों से अधिक प्रभावी है। अतः आसाधारणता को प्रदान करने वाले तत्त्व ही मूल्य है।

ये मूल्य 'प्रभात' के जीवन में सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। उनमें प्रभावशक्ति है, आकर्षण है। उनके काव्य में ये मूल्य नयी स्थापनाओं के साथ व्याख्यापित किए गए हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य ये पाँच सद्‌गुण व्यक्ति की जीवन-चेतना को मुखरित कर उसे एक नया रूप प्रदान करते हैं। सामाजिक पर्व ही व्यक्ति के जीवन के नियामक हैं। नए रूप में ढालने वाले सांस्कृतिक स्थल हैं। यही कारण है कि अनेक झंझावात आने के बाद भी 'प्रभात' अपने मूल उत्स से विलग नहीं हो सके। 'देशभक्ति' का वह भाव, जिसकी गंध उन्हें गाँव की माटी में मिली थी, अँग्रेज़ों की सेवा में रहने के बाद भी विस्मृत नहीं हो सकी है। निश्चय ही मूल्य मन की शिला पर घिसा गया चंदन है, जो घुलने के बाद भी अपनी गंध नहीं छोड़ पाता, इसीलिए सर्जनाकार व्यक्ति को पूर्ण बनाने का यत्न करता है। क्रीड़ाजगत का संपूर्ण सांस्कृतिक जीवन यही शिक्षा देता है कि जीवन में एक प्रतियोगिता है। प्रतियोगिता में हार-जीत का मूल्य है; प्रतिभागिता के साथ अग्रिमपंक्ति में प्रथम स्थान पाने का क्रीडा, प्रतियोगिता का सामाजिक पर्व-मन में ईर्ष्या और द्वेष नहीं जगाता, सद्‌भाव और स्नेह का भाव जगाता है। बंधुत्व और अपनत्व का भाव जगाता है। तात्पर्य यह है कि सामाजिक पर्व मूल्यों के जनक हैं, और इन मूल्यों को जीवन में आत्मसात कर अनुकरणीय बना देना मान्यताओं की स्थापना है। निश्चय ही 'प्रभात' जी ने सामाजिक पर्व, मान्यता और मूल्य के माध्यम से जीवन के प्रति नए आग्रह और उत्साह का संदेश दिया है।

'प्रभात' की काव्यकृतियों में गाँव और गली आँगन और चौबारे की माटी की महक विद्यमान है। फ़सलों के गीत, सावन की रिमझिम, बरसात के झकोरों के साथ सावनी हवाओं का सुखद स्पर्श, और जीवन के अस्ति पक्ष का अनूभूतिमय आनंद संचरण निहित है, जिसे वाणी अनुभव तो करती है, व्यक्त नहीं कर पाती। एक अनिर्वचनीय आनंद की उपलब्धि का आनंद-स्रोत उनके काव्य-ग्रंथों में दर्शनीय है। निश्चय ही सामाजिक चेतना का विषाद पटल 'प्रभात' जी के जीवन-आकाश को विविध रंगों में रंजित करने में समर्थ रहा है, जिसमें हास-विलास के साथ-साथ जीवन का कटु आस्वाद भी विद्यमान है; परंतु उनके मन के मनोरम स्थलों की सुरभित भूमि में ही अधिक रमा है। सत्य ही

सामाजिक पर्व ही जीवन का संस्कारकर्ता है; शिक्षक है; निर्माता है।

निष्कर्ष यह है कि व्यक्ति का जीवन समाज के ढाँचे में ढला हुआ वह व्यक्तिरूप है, जो एक नया आकर ग्रहण कर समाज में एक नयी पहचान बनाता है। स्वतंत्रता-संग्राम आंदोलन की क्रांति-चेतना और राष्ट्रप्रेम की भावनाओं ने कविवर 'प्रभात' के जीवन को एक नया व्यक्तित्व प्रदान किया। एक ओर वे पारिवारिक दायित्व की पूर्ति के लिए राजसंतों के कर्तव्यनिष्ठ अधिकारी का दायित्व निर्वाह करते हैं तो दूसरी ओर भारत की स्वतंत्रता के लिए चल रहे महापर्व में अपनी भागीदारी निभा रहे हैं। सत्यतः व्यक्ति परिस्थितियों का दास है। समय ही उसकी नयी पहचान बनाता है। 'कर्ण' हों अथवा 'प्रभास-कृष्ण', दधीचि हों अथवा कैकेयी, सबसे जीवन रूप और चारित्रिक विशेषताएँ 'प्रभात' जी के स्मृतिपटल पर उभरकर नए प्रश्नों को सुलझाने में सहयोगी रही है ये प्रश्न मौलिक हैं। पात्र भी आधुनिक समाज के हैं; लेकिन इनकी विशयभूमि आधुनिक होते हुए भी पौराणिक संदर्भों से समता रखती है। कैकेयी भारतीय समाज के प्रत्येक परिवार में रहनेवाली एक नारी है। दधीचि केवल मात्र महर्षि दधीचि ही नहीं, मानव भी हैं। मानव की दानवीर प्रवृति के प्रतीक हैं, जहाँ व्यक्ति परोपकार के लिए सर्वस्व सर्मपण करने के लिए कृतसंकल्प है। सर्गांत में 'प्रभात' जी ने समाज में अपनी प्रभुता को लेकर हो रहे जातीय संघर्ष में विनाश के भयावह दृश्य से व्यथित होकर शस्त्रदल और शास्त्रबल की समन्वयात्मक लय पर बल दिया है, जिससे समाज में सुख और शांति स्थापित हो सके। जीवन न केवल शास्त्र की शिक्षा में संपूर्णता को प्राप्त कर सकता है, और न केवल शस्त्रबल संपूर्णता का द्योतक है। एक अपूर्णता दोनों की प्राप्तियों के बाद भी अवशेष रहती है व्यक्ति खोखलापन अनुभव करता है। विश्वामित्र साधारण मानव के प्रतीक हैं, जो शस्त्रबल से सुख अर्जित करने के आकांक्षी है, लेकिन महर्षि वशिष्ठ के समक्ष अपने को कंगाल ही अनुभव करते हैं, अतः महर्षि वशिष्ठ की शक्ति का उपार्जन उनके लिए आवश्यक हो जाता है। संपूर्णताओं की ओर व्यक्ति का पलायन है उपलब्धियों की अजस्रता में अपनी महानता का चित्र देखता है इसलिए विश्वामित्र वशिष्ठ के तप और ओज के लिए साधनारत हैं। यह प्रत्येक सामाजिक के जीवन की नियति है अतः जीवन समाज की बहती हवा के संस्पर्श से जाग उठता है, सुलगता है और अपने स्वरूप को प्राप्त करने को लालायित रहता है, अतः समाज जीवन का नियामक है।

सामाजिक सांस्कृतिक चेतना और पर्व भी व्यक्ति के जीवन और चरित्र का निर्धारण करते हैं। वे मूल्यवान परंपराएँ स्वयं ही व्यक्ति के जीवन को नये ढाँचे में ढालती चलती हैं। प्राचीन पीढ़ियों के आदर्श, प्रेरणा और कर्मप्रणाली स्वयं व्यक्ति के जीवन में नए संस्कारों की स्वतः स्फूर्ति करती चलती हैं। सत्य, अहिंसा, आदर, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, कर्मनिष्ठा, समता और बंधुत्व, परोपकार और सहयोग की भावना सांस्कृतिक पर्वों एवं मान्यताओं के क्रियात्मक स्वरूप से ही मन में जन्म लेने लगती है। पत्थर की मूर्ति में भगवान की स्थापना करके उसे पूजने, भोग लगाने और दीया जलाकर आरती करने का पूजाकर्म आस्था, विश्वास और विनम्रता को स्वतः जन्म देता है। श्रद्धा का यह भाव ही मन को पवित्रता से भर देता है। यह व्यक्ति की सर्जना का क्षण है अतः सांस्कृतिक पर्व और मान्यताएँ व्यक्ति को भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों के साँचे में ढालकर उसे महान व्यक्ति बनाती हैं। कर्ण ऐसा ही व्यक्ति है जो दान को महतकर्म मानकर जीवन को जीत लेता है। उनके समक्ष देवराज इंद्र

भी पराजित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृति पदों की मूल्यवान जीवनशक्ति को व्यक्ति की सीमारेखा से अलग देवत्व की भूमि पर स्थापित कर देती है, नर में नारायण की संभावना का यह मंत्र की व्यक्ति की सांस्कृतिक चेतना के संस्कारों की देन है।

अतः केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने जीवन को नयी दृष्टि से मूल्यांकित किया है। जहाँ जीवन एक पीयूष स्रोत है, अमृत की धारा है, जिसका आचमन कर व्यक्ति अमित तोष का अनुभव करता है, जीवन का यह अभिनव प्रकाश ही कविवर 'प्रभात' के काव्य-सृजन की महान उपलब्धि है।

संदर्भ

1. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' : जीवन और काव्यतत्त्व : सूरजपाल शर्मा, पृ॰ 106
2. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' : राष्ट्रपुरुष, पृ॰ 36
3. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' : जीवन और काव्य तत्त्व : सूरजपाल शर्मा, पृ॰ 48
4. डॉ॰ विश्वंभर भट्ट, रत्नाकार : उनकी प्रतिभा और कला, पृ॰ 29
5. युग कवि पंत की काव्य-साधना : विनयकुमार शर्मा, पृ॰ 5
6. छायावादी कवियों का आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ॰ गजेंद्रसिंह, पृ॰ 99

45-**ए, डी॰डी॰ए॰ फ्लैटस,**
मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली 110032
ईमेल–namitashiv@yahoo.com
मो॰ 07838445282

भीष्म साहनी के उपन्यासों में आर्थिक मूल्य

संदीप कुमार, शोध छात्र
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास (चेन्नई)
डॉ॰ बिजेंद्रकुमार
सहायक आचार्य
आर॰के॰डी॰ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कैथल (हरियाणा)

अर्थ की परिभाषा एवं स्वरूप

जीवन अर्थ की धूरी पर चलता है। मनुष्य के जन्म होने से लेकर उसकी मृत्यु तक उसको धन की जरूरत पड़ती है, क्योंकि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनेक होती हैं। इनको पूरा करने के लिए धन की जरूरत होती है। सामान्य रूप से अर्थ का तात्पर्य धन से लिया जाता है, लेकिन गूढ़ अर्थ में जिसके द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वे सभी वस्तुएँ धन का रूप ले लेती हैं। समस्त कालों में धन का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। व्यक्ति अर्थ-प्राप्ति के लिए बड़े-से-बड़ा कष्ट भी सहन करने के लिए तैयार है।

'हिंदी शब्द सागर में धन से तात्पर्य है'धन, संपत्ति। अर्थशास्त्र के अनुसारमित्र, पशु, भूमि, धन-धान्य की प्राप्ति और वृद्धि।'[1]

'मानक हिंदी कोश में इसका तात्पर्य धन-संपत्ति से लिया गया है।'[2]

आचार्य कौटिल्य ने अपने 'कौटिल्शास्त्र' में अर्थ की परिभाषा इस प्रकार लिखी है'मनुष्य की जीविका को अर्थ कहते हैं।' आचार्य कौटिल्य ने इस प्रकार अर्थ की परिभाषा दो प्रकार से मानी है 1. जीविका एवं 2. भूमि। जीविका और भूमिका का संबंध मनुष्य से जोड़ा गया है, क्योंकि अर्थ और भूमि का लाभ मनुष्य के उपयोग और उपभोग के लिए ही होता है।[3]

एक अन्य परिभाषा में कौटिल्य कहते हैं'धर्म और काम का मूल 'अर्थ' ही है।'[4]

'मानव की समस्त चिंतन-प्रक्रिया, सामाजिक, संरचना एवं नैतिक मूल्यदृष्टि उसकी अर्थ-व्यवस्था के आधार पर रूपाकार ग्रहण करती है। देशकाल, भौतिक परिवेशगत भेद भी अर्थव्यवस्था के समक्ष गौण एवं अल्प प्रभावपूर्ण रह जाते हैं।'[5]

अतः हम कह सकते हैं कि अर्थ का मानव जीवन में वही महत्त्व है, जैसे शरीर में टाँगों और पैरों का। जिस प्रकार जब तक शरीर के टाँग एवं पैर चलने की क्रिया नहीं करेगी, तब तक शरीर स्थिर रहता है। इनके बिना शरीर में गति आए यह असंभव है। ठीक उसी प्रकार समाज में अर्थ की भी वही भूमिका है। अर्थ से समाज की अर्थव्यवस्था में गति आती है। लोग अपनी-अपनी इच्छाओं

को पूरा करते हैं। किसी समाज या देश का विकास करना या न करना उस देश, समाज की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। यदि आर्थिक स्थिति अच्छी है, तो वह विकसित होगा। आज के वैज्ञानिक युग में सभी कार्य अर्थ पर निर्भर करते हैं। छोटे-से-छोटा व बड़े-से-बड़ा कारोबार धन पर निर्भर करता है। जितने भी देश एक-दूसरे के साथ विदेशी नीतियों को लेकर समझौते होते हैं वह सब अर्थ को महत्त्वपूर्ण मानकर होते हैं। अर्थ की विश्व में मेल मिलाप बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अतः हम अर्थ की भूमिका को अपने जीवन में से नकार नहीं सकते।

भीष्म साहनी के उपन्यासों में आर्थिक मूल्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज में रहकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य को विनियम करना पड़ता है। जिन साधनों से वस्तुओं का विनियम किया जाता है, साधारण शब्दों में वह 'अर्थ' है। अर्थ का रूप कोई भी हो सकता है। अर्थ का महत्त्व तो अतीत काल से हमारे समाज में है। किसी भी देश या किसी भी काल में अर्थ की एवं आर्थिक मूल्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। देखा जाए तो, अर्थ अपने में कुछ नहीं अपितु सांसारिक सुख-साधनों को प्राप्त करने की शक्ति अथवा साधन है। अतः अर्थ प्राप्ति के लिए मनुष्य द्वारा की जाने वाली भागदौड़ अथवा संघर्ष स्वाभाविक रूप से निरंतर समृद्ध और सुविधा से रहने की इच्छा ही है। वास्तविक आर्थिक मूल्य वही है, जिससे सारे समाज का कल्याण हो और धन का यथासंभव समान वितरण हो।

डॉ॰ मोहिनी शर्मा के शब्दों में'समाज में अर्थ को महत्ता प्राप्त हो जाना एक बात है और आर्थिक मूल्यों का निर्माण एवं निर्वाह होना दूसरी बात। अर्थ प्राप्ति, आर्थिक योजनाएँ और अर्थ चेतना जहाँ तक समाज के लिए हितकारी हैं, वहाँ तक तो आर्थिक मूल्यों का निर्वाह कहा जा सकता है। किंतु जहाँ वैयक्तिक स्वार्थपूर्ति के लिए अर्थ प्राप्ति की जाती है और सामाजिक कल्याण को अपेक्षित कर दिया जाता है, वहाँ अर्थ संबंधी धारणाओं को मूल्य का दर्जा नहीं दिया जा सकता।'[6]

आर्थिक मूल्य वैयक्तिक मूल्य होते हैं। अर्थ से ही मनुष्य किसी सीमा तक पद और यश पा सकता है। इस दृष्टि से अर्थ और उससे संबंधित अभिवृत्तियाँ भौतिक मूल्यों तथा कल्याणकारी मूल्यों के अंतर्गत आ जाती हैं। अतः आर्थिक मूल्य जो नैतिकता से संयुक्त हो, भौतिक अभ्युदय में सहायक होते हैं। नैतिकता के अभाव में आर्थिक मूल्य विघटन के बहुत बड़े कारण बन जाते हैं। आर्थिक मूल्य, जिन्हें व्यावहारिक मूल्य भी कहते हैं, आत्मगत भाव प्रधान होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होते हैं। जिसे जो वस्तु अधिक उपयोगी लगती है, उस वस्तु को पाने के लिए उसके पास सामर्थ्य है, वह उसके लिए अधिक मूल्यवान बन जाती है अन्यथा उसके लिए वस्तु के मूल्य से कोई अर्थ नहीं रहता।'[7]

अतः भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों में आर्थिक मूल्यों का चित्रण किया है। उन्होंने समाज को यह दिखाने की कोशिश की है कि व्यक्ति, देश, समाज के लिए अर्थ एवं आर्थिक मूल्यों की क्या भूमिका है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस बात को भी उजागर करने की कोशिश की है कि हमें अपने आर्थिक मूल्यों को ध्यान में रखकर जीवनयापन करना चाहिए। जिससे देश, समाज की उन्नति एवं विकास होता है। भीष्म साहनी यह बताना चाहते हैं कि आर्थिक मूल्यों को नैतिकता से

अपनाना चाहिए।

आर्थिक सत्ता और मानव-जीवन

आज के भौतिकवादी अथवा सांसारिक सुख-सुविधा प्राप्ति के लिए स्पर्धा वाले युग में पैसे अथवा धन-लिप्सा के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। इसके महत्त्व को कम करके आँकना स्वयं को अंधकार में रखना है।

द्विवेदी जी के अनुसार'घर जोड़ने की अभिलाषा ही इस प्रवृत्ति का मूल कारण है। लोग केवल सत्य को पाने के लिए देर तक नहीं टिके रह सकते, उन्हें धन चाहिए, मान चाहिए, यश चाहिए, कीर्ति चाहिए। ये प्रलोभन सत्य कह जाने वाली बड़ी वस्तु से अधिक बलवान साबित हुए हैं तथा घर जोड़ने की माया बड़ी प्रबल है और संसार का बिरला ही कोई शिकार होने से बच सकता है। इसकी प्रबल शक्ति के यथार्थ को उल्टा नहीं जा सकता। उसको मानकर ही उसके आकर्षण से बचने की बात सोची जा सकती है। पैसे की शक्ति को समझकर ही इसके प्रभाव से बचने अथवा इसे सुनियंत्रित करने का उपाय सोचा जा सकता है। अन्यथा इसके प्रभाव से तथाकथित बड़े-बड़े व्यक्तित्व भी घुटने टेक गए। समाज व मान-प्रतिष्ठा का साधन पैसा है। जब चारों ओर पैसे का राज हो, तब इसके आकर्षण को काट सकना कठिन है। पंथ की प्रतिष्ठा के लिए भी पैसा चाहिए। जो लोग इस आकर्षण को न काट सकने वालों की निंदा करते हैं, वे समस्या को बहुत ऊपर-ऊपर देखते हैं।'[8]

समाज का संपूर्ण व्यवहार अर्थचालित होने के कारण दैनंदित कार्य अवश्यमेव रूप से आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। समाज की आर्थिक संरचना किस प्रकार की है, उसमें अर्थव्यवस्था का कौन-सा रूप अपनाया गया है आदि बातें न केवल आर्थिक संरचना को ही प्रभावित करती हैं, वरन् स्वयं भी प्रभावित होती हैं। आज के भौतिकतावादी युग में व्यक्ति के तमाम संबंध अर्थ आधारित हैं, वहाँ धनाभाव के कारण व्यक्ति का अस्तित्व असंभव हो जाता है। इस अर्थ की अभिलाषा के कारण ही व्यक्ति अपने कर्त्तव्य एवं ध्येय से विमुख हुआ है। आधुनिक युग में मानव मूल्यों की विशेष महत्ता है। बदलता हुआ राजनीतिक एवं सामाजिक परिदृश्य विश्व स्तर पर आर्थिक गतिविधियों से ही परिचालित होता है। इस युग में वही व्यक्ति विद्वान एवं सज्जन है जिसके पास धन है। संस्कृत के कवि भर्तहरि का कथन है, 'जिसके पास धन है, वही कुलीन है, वही पंडित है, वही विद्वान एवं गुणी है, वही वक्ता और दर्शनीय है। तात्पर्य यह है कि सभी गुण धन में रहा करते हैं।'[9]

बिना अर्थ के मनुष्य सांसारिक सुखों का भी उपभोग नहीं कर सकता। अतः जीवन में अर्थोपार्जन एक श्रेष्ठ एवं अनिवार्य भौतिक आवश्यकता है। अर्थ की महत्ता इन शब्दों से भी स्पष्ट होती है, 'यह संसार कर्मभूमि है। यहाँ कर्त्ता (जीविका) ही प्रधान है। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य तथा नाना प्रकार के शिल्पों का महत्त्व है। इन कर्मों का फल धन ही है। यदि धन नहीं रहता तो धर्म और काम का भी संवाद नहीं हो सकता। ऐसा सुना जाता है कि धन वाला व्यक्ति ही उत्तम धर्मों का पालन करता है।'[10]

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण हमें पंचतंत्र से मिलता है, जिसमें कहा गया है'धन मनुष्य का समीपस्थ संबंधी है। धन से भोज, विश्वास तथा सत्ता प्राप्त होती है। निम्नवर्गीय धनवान को आदर मिलता है जबकि उच्चवर्गीय निर्धन को लोग निरादर की दृष्टि से देखते हैं। निर्धनता

अभिशाप है और मृत्यु से भी बुरी है। बिना धन के सद्गुण भी बेकार हो जाते हैं। धन हीनता सभी बुराईयों की जड़ है। भिक्षुक का जीवन जीवित नरक के समान है।'[11]

भीष्म साहनी के उपन्यासों में भी आर्थिक समस्याओं का चित्रण मिलता है, परंतु बसंती में उस निम्नवर्ग की आर्थिक परिस्थिति अत्यंत शोचनीय रूप में उभर आती है। 'झरोखे' उपन्यास में नौकर तुलसी आर्थिक परिस्थिति से अभावग्रस्त नजर आता है। इसीलिए वह आर्यसमाज परिवार में पढ़ना-लिखना सीखने के बाद कहीं दूसरी जगह नौकरी कर अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाना चाहता है। उच्च मध्यवर्गीय पूँजीवादी लोग निम्नवर्ग के लोगों के साथ सहानुभूति जताना नहीं चाहते और उनकी आर्थिकता को बेहतर बनाना नहीं चाहते। 'झरोखे' में माँ तुलसी को ढूँढती है।

'घंटा भर से बैठा यहाँ किताब पढ़ रहा है और इसे ढूँढ-ढूँढकर मेरी टाँगे टूट गई हैं। नौकरों को पढ़ाई से मतलब? जो पढ़ना-मरना था तो यहाँ क्यों आया?'[12]

'माता जी', तुलसी धीरे से कहता है, 'क्या सारी उम्र मैं बरतन ही माँजता रहूँगा?' क्षण भर के लिए सभी का ध्यान तुलसी की ओर चला गया है। सभी चुप हो जाते हैं। पिताजी घूमकर उसकी ओर देखते हुए कहते हैं, 'बरतन नहीं माँजेगा तो क्या करेगा? सभी नौकर बरतन माँजते हैं या नहीं? तेरे हाथों पर मेंहदी लगी है?'[13]

भीष्म साहनी के उपन्यास 'नीलू-नीलिमा-नीलोफर' में आर्थिकता की कमी उन निम्नवर्गीय नौकरों में दिखाई देती है जोकि नीलिमा के घर के नौकर अमीरचंद में है। उपन्यासकार की हमदर्दी भी सामान्य जन-जीवन के साथ उभरकर आई है, परंतु इस कथाभूमि में उच्चवर्ग के लोगों की आर्थिकता की कमी कहीं पर नजर नहीं आती है। भीष्म जी के बहुत से उपन्यासों में उच्च मध्यवर्गीय लोगों की आर्थिकता की बहुत बेहतरीन स्थिति उभरी हुई है। वे निम्नवर्गीयों के जीवन से अपेक्षाकृत ज्यादा आधुनिक सुविधाओं के साथ सुखमय ज़िंदगी व्यतीत करते हुए नजर आते हैं, परंतु प्रगतिशील लेखक भीष्म जी निम्नवर्गीय संघर्षमय पात्रों को उजागर करते हैं, जो समस्याओं से जूझते हुए समाज का सामना कर संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हैं।

अर्थ की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को क्या-क्या करना पड़ता है, यह 'बसंती' उपन्यास में दिखाया है'राज-मिस्त्रियों को छोड़कर अन्य धंधों के लोग जैसे-तैसे फिर इसी इलाके में आकर अपनी रोजी का जुगाड़ करने लगे थे। गोविंदी ने रमेशनगर के बाहर, सड़क की पटरी पर ही एक कोने में चाय की दुकान लगा ली थी। पर फिर भी चाय बिकती थी और गोविंदी एक मुर्गी की तरह अपने दो बच्चों को पंखों तले समेटे अपना गुजर चलाने लगी थी।'[14]

रोजगार की तलाश में राज-मजदूर ही नहीं, धोबी, नाई, चाय-पान वाले और भी तरह-तरह के धंधे करने वाले लोग दिल्ली पहुँचने लगे। कहीं नए मकानों की नींवें खोदी जाने लगतीं, तो आस-पास के राज-मजदूरों की छोटी-छोटी अनगिणत झोपड़ियाँ खड़ी हो जाती, लोहा-सीमेंट-ईंट-पत्थर के ढेरों के बीच इन झोंपड़ियों में मोटी-मोटी रोटियाँ सेकी जाने लगतीं, बच्चे रेत मिट्टी के ढेरों पर खेलने-सोने लगते और मजदूरी के काम से निबटकर स्त्रियों की टोलियाँ आती हुई अपनी-अपनी झोपड़ियों में लौटने लगतीं।'[15]

इस प्रकार लेखक भीष्म साहनी ने दिखाया है कि मानवीय जीवन में आर्थिक सत्ता का महत्त्व

है। इसके अभाव में जहाँ मानव स्वयं को विवश, साधनहीन और असहाय महसूस करता है, वहीं मानव इसको प्राप्त करने के लिए बुरे से बुरा कार्य करने के लिए भी तैयार हो जाता है। इसलिए आवश्यकता है, धन को गौण तथा मानव को प्रमुख समझकर चलने की। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए दूसरों का बुरा न करके उनका भी हित करना चाहिए तथा मजबूरी में फँसे लोगों की आर्थिक सहायता करके आर्थिक मूल्यों को जीवित रखना चाहिए।

आर्थिक शोषण व दमन तथा वर्ग-संघर्ष

आज का युग भौतिकवाद की चकाचौंध का युग है। आज व्यक्ति के हृदय में स्वार्थपरता की भावना इतनी ज्यादा बढ़ चुकी है कि वह अपने हित के लिए दूसरे व्यक्ति का शोषण करने में जरा भी नहीं घबराता। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ताकतवर मनुष्य अपने से कमजोर का शोषण व दमन करता है। जो लोग शोषित होते हैं, वह अपने अधिकारों को माँगने के लिए वर्ग संषर्ष करते हैं। भौतिकवाद ने आज विश्व को दो परस्पर विरोधी शक्तियों में बाँट दिया है। एक ओर तो शोषित या सर्वहारा वर्ग है और दूसरी तरफ शोषक अथवा पूँजीपति वर्ग है। इनमें शोषित वर्ग का बाहुल्य है जोकि साधनहीन है, जबकि दूसरा वर्ग अल्पसंख्यक है, लेकिन वह साधन संपन्न है। वह शोषित वर्ग का आर्थिक शोषण व दमन करता रहता है, जिस कारण इन दो परस्पर विरोधी शक्तियों में संघर्ष चलता रहता है। साहित्यकार इसको अपने साहित्य में व्यक्त करता है। इस दर्शन को साहित्य के साथ जोड़ते हुए 'मानविकी परिभाषिक कोश' में कहा गया है'यही वर्ग-संघर्ष आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक परिस्थितियों का आधार है। इसीलिए साहित्य का मूलाधार भी वर्ग संघर्ष ही है, क्योंकि साहित्य समाज की सामूहिक चेतना है, साहित्यकार की वैयक्तिक चेतना नहीं।'[16]

कार्ल मार्क्स स्वीकार करता है कि श्रमिक अपनी आय से अधिक सरप्लस वैल्यू (Surplus Value) का भी उद्घाटन करता है। पूँजीवादी व्यवस्था में यही श्रमिक का शोषण है। मार्क्सानुसार पूँजीवादी व्यवस्था शोषण पर आधारित है। मजदूर को जो मजदूरी प्राप्त होती है, वह उसके किए गए श्रम के बराबर नहीं होती। अतः मजदूर जितने मूल्य का सृजन करता है और जितने मूल्य का वह दाम पाता है, उसके अंतर को कार्लमार्क्स अतिरिक्त मूल्य का सरप्लस वैल्यू कहता है। यह अतिरिक्त मूल्य भी मजदूरी द्वारा निर्मित हुआ है, क्योंकि मजदूर मूल्य की रचना करता है, मिल मालिक उस सरप्लस वैल्यू को अपना लाभ समझकर अपने पास रख लेता है। इस प्रकार कार्लमार्क्स ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पूँजीवादी व्यवस्था में यह स्वाभाविक है कि मिल मालिक मुनाफा करें और जिस धन पर मजदूर का नैतिक अधिकार है, उसे हड़प लें।'[17]

भीष्म साहनी ने अपने अधिकांश उपन्यासों में आर्थिक समस्याओं को उठाया है। प्रत्येक मनुष्य की आजीविका के लिए अर्थ की जरूरत अनिवार्य और आवश्यक है। निम्नवर्ग से लेकर उच्चवर्ग तक अर्थ का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। उच्चवर्ग के लोग अर्थ को अपनी आराम की ज़िंदगी जीने के लिए प्रयोग करते हैं। निम्नवर्ग के लिए अपनी रोजी-रोटी प्राप्ति के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। उनके पास आराम की ज़िंदगी बसर करने के लिए अर्थ या पूँजी नहीं होती। बसंती की कथाभूमि में उन गरीब मजदूरों की आर्थिक परिस्थितियों को दर्शाया गया है।

'बस्ती तोड़ दिए जाने के बाद से लोग इधर-उधर बिखर गए थे। आस-पास की बस्तियों

में अपने-अपने लिए काम की तलाश करने लगे, पर काम न मिलने पर कुछ ने फिर से रमेशनगर की राह ली। युवतियों और स्त्रियों की टोलियाँ, कभी पैदल चलकर तो कभी किसी बस या टैंपो की सवारी करके फिर रमेशनगर के घरों में चौका-बर्तन करने पहुँचने लगी।'[18]

लेखक ने दिखाया है कि किस तरह से अमीर व पूँजीपति लोग गरीबों का शोषण करते हैं और उन गरीब लोगों से कम वेतन या कम पैसे देकर अधिक कार्य करवाते हैं। कई बार तो गरीब को पैसों का लालच देकर गलत काम भी करवाए जाते हैं, जैसा कि 'तमस' में किया गया है। 'तमस' में नत्थू चमार की भी मजबूरी थी कि पाँच रुपयों के लिए उसे सुअर को मारना पड़ता है। नत्थू उस कड़कते हुए पाँच रुपए को देखते ही मुरादली की बात मान जाता है, क्योंकि नत्थू अभावग्रस्त है। नत्थू ने फिर एक बार अपनी जेब छूकर देखा। नोट चरमराया, उसे तसल्ली हुई। भला हो मुरादअली का जो पहले ही सारी की सारी रकम दे गया, वरना अगर अठन्नी हाथ पर रखकर बाकी रकम बाद में देने को कह जाता तो नत्थू चमार उसका कर ही क्या सकता था।'[19]

भीष्म साहनी के उपन्यास 'मय्यादास की माड़ी' में आर्थिक परिस्थितियों से अभावग्रस्त उन किसानों का परिचय मिलता है, जो लगान चुकाने के लिए सामंतवादियों और साहूकारों से ब्याज पर कर्ज लेकर लगान चुकाते हैं। उसके बाद फसल कट जाने पर साहूकार का कर्जा ब्याज समेत चुकता करते हैं

'एक तो यह कि साहूकार ब्याज की दर जितनी चाहे बढ़ा दे। साहूकारे में इसकी बड़ी मदद थी। मूल रकम तो लौटकर जल्दी आती नहीं, ब्याज बढ़ता जाएगा तो कुछ तो हाथ लगेगा। मूल रकम से तो ज्यादा ही वसूली होगी। दूसरे, अगर रकम मय ब्याज वसूल न हो तो साहूकार जमीन कुर्क कर सकता है। इन सहूलतों का पता देर से लगा, पर इसमें भी साहूकारे के काम में बरकत हुई। अदालत-कचहरी में जाओ, कागज पेश करो, छोटा-मोटा नजराना दो और कुर्की करवा लो। किसान नमक कहाँ से लेगा, तेल कहाँ से लेगा, कपड़ा कहाँ से लेगा। पहले जिंस देकर जुलाहे से कपड़ा ले लेता था, अब जिंस कहाँ है देने को? अब तो पैसे का बोलबाला है। सब काम नकद पैसे के बल पर चलता है और पैसा वह क्यों दे? इससे तो बेहतर है, साहूकार के पास से कपड़ा ले आए और ध ीरे-धीरे चुकता करता रहे। लाला गोविंदराम का सितारा चमकने लगा था। साहूकारे के बल पर उसने तरह-तरह के तरीके ढूँढ निकाले थे। काश्तकार से वह अनाज कम दाम पर खरीद लेता और बदले में विलायती तैयार माल ऊँचे दामों पर उसी को बेच देता। उस दिन गोविंदराम की पैड़ी पर दीवान मय्यादास भी बैठे थे, जब एक किसान स्त्री आई, बीस सेर गेहूँ की बोरी सिर पर उठाए हुए थी। लाला गोविंदराम ने पहले तो जिंस लेने से इंकार कर दिया। बोलाबेचेगी तो ले लूँगा, पर इसे लेकर बदले में तुम्हें भी कुछ लेना होगा। अठन्नी पंसेरी के हिसाब से गेहूँ खरीद लिया, जबकि मंडी में भाव ऊँचा था और विलायती छींट का कपड़ा दोगुने मोल पर उसे बेच दिया। औरत चली गई तो दीवान मय्यादास से रहा नहीं गया'सेठ, यह तो ठगी है।' 'ठगी नहीं दीवान जी, यह व्यापार है।'[20]

इस प्रकार लेखक ने बताया है कि पूँजीपति तथा शोषक-वर्ग किस प्रकार श्रमिकों तथा जनता का शोषण व दमन करते हैं। वे उनको उनका हक नहीं देना चाहते तथा न ही इन शोषितों पर उनको तरस आता है। यह शोषित वर्ग बेहाल ज़िंदगी जीने को विवश हो जाता है, जिस कारण वह विद्रोह कर बैठता है। इन दोनों में परस्पर संघर्ष होता रहता है। हम सबने मिलकर ऐसे शोषण व दमन करने

वाले लोगों के खिलाफ आवाज उठानी चाहिए एवं उन्हें समाज से बाहर निकालना चाहिए जिससे समाज में पुनः अमन, शांति व सुव्यवस्था बनी रहे।

निर्धनता

निर्धनता से अभिप्राय है धन का अभाव। साधनों की कमी और आय में कमी आदि सब निर्धनता ही है। निर्धनता के कारण व्यक्ति के विकास के सभी मार्ग बाधित हो जाते हैं। निर्धनता तो विद्वान को भी मूर्ख बना देती है। फिर मनुष्य को अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मजबूर, बेबस होकर धन कमाने के दूसरे तरीके अपनाने पड़ते हैं, जोकि समाज के अनुसार गलत तरीके होते हैं। निर्धनता के कारण पारिवारिक रितों में दरार व बदलाव आ जाता है। आज के पूँजीवादी युग में रुपया है तो सब कुछ है, तभी तो कहा गया है'दादा बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपया।'' लेखक भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों में निर्धनता का चित्रण बड़ी सहजता से किया है। लेखक ने दिखाया है कि 'बसंती' उपन्यास में जो राज मिस्त्री दूसरों के लिए महल बनाते हैं, निर्धनता के कारण उनके खुद के पास सिर छुपाने के लिए जगह नहीं है।

'हीरा ऊँची आवाज में बोल रहा था'हमने हाथ बाँधकर कहा, मालिक हम राज-मिस्त्री, हम ही घर बनावें और हमारे ही रहने को ठौर नहीं, लोगों को घर जुटावें और अपना सिर छिपाने के लिए जगह ही नहीं। इस मेंह-बरसात में तो हमें बेघर नहीं करो।'[21]

निर्धनता व्यक्ति को हर प्रकार से तोड़ देती है। यदि व्यक्ति कोई नया कार्य करना चाहता है, तो निर्धनता उसे नहीं करने देती। व्यक्ति को हर समय धन कमाने की चिंता सताने लगती है। उसका मन किसी भी कार्य में नहीं लगता, वह रास्ता भटक जाता है। निर्धनता के कारण मास्टर पंडित बच्चों को ठीक से पढ़ा भी नहीं पाता, उसे हर समय पैसे की चिंता है। कई बार तो बच्चों को भी बोल देता है पढ़ाते हुए'मुझे कुल मिलाकर ग्यारह रुपए तनख्वाह मिलती है।' पंडित जी हर दूसरे-तीसरे दिन यह वाक्य दोहरा दिया करते हैं।'[22]

निर्धनता के कारण एक बच्चा अच्छी शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकता, जिस कारण उसे अच्छा रोजगार नहीं मिल सकता और वह सारी उम्र निर्धनता में ही पैदा होता है और निर्धनता में ही मर जाता है। उसे दो रोटी कमाने का रोजगार भी नहीं मिलता है। तुलसी को लेकर माँ चिंता में है कि उसे रोजी-रोटी कमाने के लिए कोई नौकरी नहीं मिल रही थी। माँ पिताजी से कह रही है'तुम इसे अपने दफ्तर के लिए काम के लिए रख लो। इसे मुंशी के काम पर लगा लो।'

''फिर वही बात। यह दफ्तर का काम कर सकता है? अँग्रेजी का एक अक्षर नहीं आता। मेरी सारी डाक अँग्रेजी में या उर्दू में होती है।'

माँ कुछ देर तक चुप रहती है, फिर कहती है, जो इसके काम नहीं आनी थी, तो इसे हिंदी क्यों पढ़वा रहे हो? इसे भी उर्दू पढ़वा देते।'

'पर जी, ग्रंथों का क्या करें, अगर अपना पेट नहीं पाल सके तो?' मुंशी नहीं तो चपरासी के काम पर इसे रख लो। तुम्हारे व्यापारियों से मिल आया करेगा, उन्हें नमूने दिखा आया करेगा।'

'बस-बस रहने दे। कल से फिर यह घर का काम करे। यह और कोई काम नहीं कर सकता।'[23]

निर्धन व्यक्ति को अपनी दो वक्त की रोटी की चिंता सताए रहती है। वह दो वक्त की रोटी के लिए सुबह से शाम तक काम करने के लिए भी तैयार रहता है। भीष्म साहनी ने अपने उपन्यास 'मय्यादास की माड़ी' में यही दिखाया गया है

'हॉल में बैठक में मंत्री महोदय बता रहे थे'भारत बहुत बड़ा देश है और जैसा कि आप जानते हैं, उसके एक छोर से दूसरे छोर तक, ऊपर से नीचे तक रेलों का जाल बिछाने में बहुत खर्च हुआ है तथा अभी और होगा। पर जब इतना बड़ा काम, इतने बड़े पैमाने पर किया जाएगा तो खर्च तो होगा ही' कुछ हिस्सेदारों को खटका हुआ कि मंत्री महोदय इतने बड़े खर्च की दुहाई इसलिए दे रहे हैं कि बाद में फिर कह सके कि मुनाफा नहीं हुआ है। पहले से उन्हें इस बात का डर था।

'खर्च भी होगा और फिजूलखर्ची भी होगी। और हम यह भी भली-भाँति जानते हैं कि हिंदुस्तानी लोग कामचोर होते हैं, मुस्तैदी और ईमानदारी से काम नहीं करते। यह भी, एक तरह से हमारी मजबूरी है। पर साथ ही जितना सस्ता मजदूर हिंदुस्तान में मिलता है, उतना सस्ता अफ्रीका में भी नहीं मिलता। उसे थोड़ी-सी दाल-भात मिल जाए तो वह दिन में बारह-बारह घंटे तक काम करता रह सकता है।'[24]

गरीबी के कारण स्त्री को उसकी ससुराल वाले भी सताने लगते हैं, उसके साथ मार-पिटाई भी करने लगते हैं, जैसा कि लेखक ने 'कड़ियाँ' उपन्यास में दिखाया है। सतवंत अपनी सहेली के बारे में बताती है

'सतवंत की आँखें एकटक प्रमिला के चेहरे पर लगी थी। कितनी निरीह-सी है, यह मेरी सहेली। निरीह, गरीब और निःसहाय। महेंद्र का हाथ खुल गया है, क्योंकि प्रमिला के मायके वाले गरीब हैं। मायके का इसकी पीठ पर हाथ होता तो हिम्मत नहीं पड़ती। अब वह जानता है कि प्रमिला उसी पर निर्भर है, वह जो चाहे कर सकता है।'[25]

गरीबी के कारण स्त्री को समाज में रहकर दिन-रात घर से बाहर रहकर कार्य करना पड़ता है। यह गरीबी ही है, जो व्यक्ति को दर-दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर कर देती है। महेंद्र प्रमिला को सुषमा की निर्धनता के बारे में बताता है

'प्रमिला, कुछ समझा करो। सुषमा भी भले घर की लड़की है। उसके बाप को लकवा मार गया है। वह नागपुर में कहीं पड़ा है। रुपए जमा करके उसके इलाज के लिए भेजती है। इसने स्वयं शादी नहीं की, क्योंकि घर में कोई और कमाने वाला नहीं था। बुरी औरत नहीं। यह हम लोगों का दंभ है कि हम काम करने वाली स्त्रियों को बुरा समझते हैं, यहाँ मजबूरी में पड़ी है, वरना अपना घर छोड़कर कौन आता है?'[26]

इस प्रकार लेखक ने दिखाया है कि निर्धनता उस दुःस्वपन की तरह है, जो हमें न दिन में चैन लेने देता है और न रात को। इस निर्धन अवस्था में मनुष्य आर्थिक मूल्यों को ताक पर रख देता है। निर्धनता को दूर करने के लिए व्यक्ति को दिन-रात आर्थिक मूल्यों को ध्यान में रखकर कठिन मेहनत करने की आवश्यकता है। इस समस्या को दूर करने में जहाँ सरकार को निर्धन व्यक्ति के लिए रोजगार उपलब्ध करके उसकी मदद करनी चाहिए, वहीं पूँजीपतियों को भी चाहिए कि वे निर्धन तथा बेसहारा आदमी की निःस्वार्थ मदद करें ताकि निर्धनता को दूर किया जा सके।

समाज में नारी की आर्थिक स्थिति

आज के इस भौतिकवाद के युग में मानव की आवश्यकताएँ एवं इच्छाएँ असीम तथा बहुरूपी हो गई हैं, जिनकी पूर्ति के लिए अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं। यह अर्थ ही है, जो इच्छाओं को पूरा करता है। इसलिए अर्थ प्राप्त करने के लिए नारी को भी घर से बाहर निकलना पड़ता है। धन पाने के लिए एक असहाय नारी को किस तरह शोषण का शिकार होना पड़ता है तथा किस प्रकार दूसरों की दयादृष्टि का इंतजार करना पड़ता है। भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों में बड़ी सुंदरता से समाज में नारी की आर्थिक स्थिति का वर्णन किया है, जिसकी व्याख्या इस प्रकार हैनारी को अर्थ प्राप्ति के लिए घर, परिवार, राज्य, देश तक छोड़ना पड़ता है, जैसा कि सुषमा आर्थिक स्थिति के कमजोर होने के कारण धन कमाने के लिए अपना शहर छोड़कर दूसरी जगह जाती है

'सुषमा भी भले घर की लड़की है। उसके बाप को लकवा मार गया है, वह नागपुर में कहीं पड़ा है। रुपए जमा करके उसके इलाज के लिए भेजती है। इसने स्वयं शादी नहीं की, क्योंकि घर में और कोई कमानेवाला नहीं था। बुरी औरत नहीं है। यह हम लोगों का दंभ है कि हम काम करने वाली स्त्रियों को बुरा समझते हैं। यहाँ मजबूरी में पड़ी है, वरना अपना घर छोड़कर कौन आता है?'[27]

समाज में नारी को धन के लालच में बेचा जाता है। एक पिता अपनी बेटियों को बेचता है और एक पति अपनी पत्नी को बेचता है। बसंती बता रही है

'आपको पता है, बीबी जी?'

'क्या?'

'हमारा बापू बेटियाँ बेचता है?'

'क्या बक रही है?'

'सच, बीबी जी, मेरी बड़ी बहन का ब्याह भी गाँव में किसी बूढ़े के साथ कर दिया। उससे आठ सौ रुपए लिए। वह गाँव में बैठी घास छीलती है।'

'तुझे भी बूढ़े के साथ ब्याह रहा था?' यामा ने हँसकर कहा।

'मैं बूढ़े लँगड़े के साथ क्यों ब्याह करूँगी, बीबी जी?'

'अगर कर दिया तो?'

'करके तो देखे बीबी जी, मैं उसे करने ही नहीं दूँगी। मैं फिर से चूहे मारने वाली गोलियाँ खा लूँगी।' और बसंती सिर झटककर हँसने लगी।

'तू तो कहती थी वह बहुत बुरी होती है।'[28]

दीनू अपनी पत्नी बसंती को बरडू के हाथ बेच गया था।

'बरडू बोला था, 'तू किसी बात की फिक्र नहीं कर।' तभी बसंती को खटका हुआ था।

'तूझे दीनू कुछ कह गया है? क्या कहता था, कहाँ गया है?'

'दीनू अब नहीं आएगा, बोल जो दिया।'

'आएगा, नहीं आएगा, तुम्हें क्या?'

'मुझे क्यों नहीं?' वह अपने मैले-मैले दाँत दिखाते हुए हँसकर बोला, 'मैंने जेब से तीन सौ रुपए दिए हैं।'

''किस बात के तीन सौ रुपए?'

'तीन सौ रुपए देकर तुझे लिया है, और क्या?'[29]

लेकिन जब इस नारी के अंदर आत्मविश्वास, शक्ति तथा कार्य करने की हिम्मत आ जाती, तो यह समाज में न केवल अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर लेती है, बल्कि अपने परिवार का भी पालन-पोषण करती है। इस आर्थिक निर्भरता पर वह अपने पति की आवश्यक बातों पर भी अंकुश लगा सकती है तथा अपने शोषण होने से बचा सकती है।

कल तक बात-बात पर दीनू का मुँह जोड़ने वाली बसंती, आज अपने आप ही घर की मालकिन की तरह व्यवहार करने लगी थी, जैसे उसने अपने को पहचान लिया हो, जैसे उसने यह भी समझ लिया हो कि घर टूट नहीं सकता, इसे बनाए रखने में ही कुशल है। दीनू पप्पू को बहुत चाहता है। मैं पप्पू को उससे अलग क्यों करूँ? दीनू रूकमी को भी छोड़ सकता। वह उसे यहाँ लाया है तो कैसे छोड़ दे? रूकमी अब उसे सौत नजर नहीं आ रही थी, पर एक ऐसी औरत जो उस पर निर्भर थी, जो उसकी कमाई खाती थी। बसंती की नजर में एक संतुलन-सा आ गया था, और संतुलन आते ही अपनी स्थिति पर पकड़ मजबूत हो गई थी, दबती तो वह पहले भी नहीं थी, करती भी सदा मनमानी ही थी। पर अब मानो उसने अपनी स्थिति का भेद पा लिया हो और निस्सहायता, संशय और अनिश्चय का भाव, शरद के सूखे पत्तों की तरह झर गया हो। एक ही रात में यह सब हो गया था। वह अपना लड़कपन लाँघकर आई थी और घर में स्त्री की भूमिका निभाने लगी थी।'[30]

लेखक ने दिखाया है कि आर्थिक तंगी के कारण जयदेव और कुंतो को रेल में यात्रा करनी पड़ती है, पर रेल-मजदूर हड़ताल होने के कारण गाड़ी कई घंटे रुक-रुककर चलती है तो कुंतो मन में सोचती है कि यदि आर्थिक स्थिति अच्छी होती तो अपनी गाड़ी लेकर आती। इस सब मुश्किल का सामना करते हुए कुंतो भी अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करते हुए गाने लगी

कब लग गाड़ी के पहियन में
हाड़ हमारे चटखें
कब लग इंजन के धुएँ में
हमारी आहें भटके
कब लग पीने देंगे तुमको
अपने खून के प्याले
जालिम, अब न गाड़ी चाले
जून सत्ताईस को बैंथल का
ऐसा आसन डोले
हर अस्टेशन पर घंटी के
बदले उल्लू बोले
सीस झुके न इक सिगनल का
इक झंडी न हाले
जालिम, अब न गाड़ी चाले।'[31]

इस प्रकार लेखक ने दिखाया है कि जो नारी, पुरुष के शोषण का शिकार हो गई, समझो उसकी समाज में आर्थिक स्थिति विपन्न ही रहेगी, लेकिन जो नारी अपनी कार्यशक्ति तथा आत्मबल के आधार पर स्वयं को समाज में स्थापित करने में सफल हो जाती है और उसकी आर्थिक स्थिति भी समाज में अच्छी हो जाती है। जिस देश की नारी आत्मनिर्भर होगी, वह देश तरक्की के शिखर पर पहुँच जाएगा और उस समाज में आर्थिक मूल्यों को भी बल मिलेगा। जब नारी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चलेगी तो पुरुष के ऊपर जो परिवार, समाज तथा देश की भलाई एवं आर्थिक उन्नति का भार है, वह भी कम हो जाएगा। इसलिए पुरुष को भी चाहिए कि वह नारी का आर्थिक शोषण बंद करके एक अर्थशक्ति के रूप में उभरने में उसकी मदद करे। यही सच्चे आर्थिक मूल्य हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में निरूपित आर्थिक मूल्यों को बखूबी चित्रित किया है, उसकी पैनी दृष्टि हर क्षेत्र में दौड़ी है। उन्होंने मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलू शोषण, दमन, वर्ग-संघर्ष, निर्धनता, समाज में नारी की आर्थिक स्थिति आदि का विस्तृत विवरण किया है। हम देखते हैं कि आज के समाज में अनेक गत्यावरोधों और आंदोलनों के पीछे आर्थिक कारणों की ही अहं भूमिका है। आर्थिक विषमता के कारण ही वर्ग-संघर्ष की भावना पैदा होती है। आज भौतिकवादी युग के कारण मानव के जीवन में अनेक प्रकार से परिवर्तन हो रहे हैं। उनमें से आर्थिक मूल्यों का परिवर्तन भी एक है, जिस कारण आज मानव के संबंधों में टूटन तथा परिवर्तन हो रहा है। आज पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज में गरीबों के शोषण के अनेक तरीके शोषकों के सम्मुख प्रस्तुत कर दिए हैं। जमींदार गरीबों का शोषण करते हैं। इस शोषण के कारण गरीब निरंतर होता जा रहा है। उसकी निर्धनता उसके लिए शाप बनती जा रही है। वह अपने परिवार के लिए दो जून की रोटी का प्रबंध करने में भी असफल है, जबकि दूसरी ओर इन निर्धनों की खून-पसीने की कमाई पर पूँजीपति मौज करते हैं। भीष्म साहनी ने आर्थिक मूल्य के परिवर्तन व बदलाव को दर्शाया है। उन्होंने समाज को सचेत करते हुए कहना चाहा है कि अर्थ की आवश्यकता है, मगर नैतिकता के तरीके से। मूल्य अर्थ के क्षेत्र में भी सत्य के व्यवहार का उपदेश देता है।

संदर्भ

1. स॰ श्यामसुंदर दास, हिंदी शब्द सागर, प्रथम भाग, पृ॰ 1631
2. स॰ रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश (प्रथम खंड), पृ॰ 160
3. आचार्य कौटिल्य, कौटिल्य अर्थशास्त्र अधिकरण-15, अध्याय 1, श्लोक 1-2
4. आचार्य कौटिल्य, अर्थशास्त्र अर्थेमूलौ हि धर्म का भविति, अध्याय-7, श्लोक 1-2
5. शांति जोशी, नीतिशास्त्र, पृ॰ 546-547
6. डॉ॰ मोहिनी शर्मा, हिंदी उपन्यास और जीवन मूल्य, पृ॰ 260
7. सविता, हजारीप्रसाद द्विवेदी के ललित निबंधों में मानव-मूल्य शोधप्रबंध, पृ॰ 236
8. स॰ जगदीशनारायण द्विवेदी ग्रंथावली भाग-2, घर जोड़ने की माया, पृ॰ 204-205
9. भर्तृहरि नीति, छंद-32
   यस्यास्ति वित स नरः कुलीन, स पंडितः स श्रतवांगुणज्ञः।
   स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वोगुणा काचनमाश्रयति।

टीकाकार दामोदर धर्मानंद कौसंबी कृष्णामूर्ति षर्मणा।।
10. डॉ॰ भीखनलाल आत्रेय, भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, पृ॰ 160
11. B.G. Gokhle, Indian thought the Ages, P. 51
12. झरोखे, पृ॰ 69
13. झरोखे, पृ॰ 79
14. बसंती, पृ॰ 43
15. बसंती, पृ॰ 12
16. डॉ॰ नागेंद्र, मानविकी परिभाषिक कोश, पृ॰ 166
17. डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, पृ॰ 592
18. बसंती, पृ॰ 42-43
19. तमस, पृ॰ 99
20. मय्यादास की माड़ी, पृ॰ 151-152
21. बसंती, पृ॰ 8
22. झरोखे, पृ॰ 31
23. झरोखे, पृ॰ 80, 81
24. मय्यादास की माड़ी, पृ॰ 199
25. कड़ियाँ, पृ॰ 57
26. कड़ियाँ, पृ॰ 59
27. कड़ियाँ, पृ॰ 59
28. बसंती, पृ॰ 41
29. बसंती, पृ॰ 96
30. बसंती, पृ॰ 157-158
31. कुंतो, पृ॰ 305

गाँव छोटए पो॰ पाड़ला
तह॰ जि॰ कैथल (हरि॰)
मो॰ 09466520920

भीष्म साहनी के उपन्यासों में सामाजिक मूल्य

संदीप कुमार, शोध छात्र
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास (चेन्नई)
डॉ॰ बिजेंद्रकुमार
सहायक आचार्य
आर॰के॰डी॰ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कैथल (हरियाणा)

मूल्यों की मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उनका कार्य व्यक्ति को सामाजिक जीवन के लिए आदर्श रूप में प्रस्तुत करना है। मूल्य एक मानक है। यदि हमें किसी वस्तु के बारे में परखना होता है तो सबसे पहले हम उस वस्तु के मूल्यों का पता लगाते हैं। मूल्यों का पता लगाने के बाद ही हम किसी वस्तु की श्रेष्ठता बता सकते हैं। ठीक उसी प्रकार किसी व्यक्ति समाज के व्यवहार की श्रेष्ठता का अनुमान लगाना हो तो हम पहले मानवमूल्य का पता लगाने के बाद ही उन मूल्यों के आधार पर उस व्यक्ति व समाज का मूल्यांकन करेंगे। प्राचीनकाल से ही हमारे महापुरुषों ने मानव के जीने के कुछ मूल्य निर्धारित किए हुए थे। मानव उन मूल्यों को अपनाकर जीवन जीता तो उसके जीवन में पवित्रता, आदर्श, नैतिकता का समावेश सदा के लिए रहता था और मानवमूल्यों का मुख्य लक्ष्य मानव में पवित्रता, निर्मलता को बनाए रखना ही मानव मूल्य है।

मानवमूल्यों का बीज स्वरूप जिनका अंकुरण रामायण महाभारतकाल में हुआ। इस काल में मानव मूल्य का भाववाचक शब्द 'पुरुषार्थ' प्रयुक्त हुआ है। पुरुषार्थ की धारणा चतुर्मुखी हैधर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

धर्मे चार्थे व कामे च मोक्षे च पुरुषार्थ,
यदि हास्ति तदन्यत्रा यन्ने नतत् स्वचित।[1]

डॉ॰ धर्मवीर भारती का मत है'मानवीय मूल्य विराट मानव जीवन की अगणित शिराओं में संचालित होता है।'

बिना मानव के मूल्यों का कोई अस्तित्व नहीं। मूल्य चाहे सामाजिक हो, राजनीतिक, आर्थिक हो या सांस्कृतिक, दार्शनिक, सबका अंतिम लक्ष्य हैमानव।' [2]

शशि सहगल के मत में'वे मूल्य जो मानव के आंतरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं, मानव मूल्य कहलाते हैं।'[3]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार'जीवन मूल्यों की सार्थकता इसी में है कि वह जीवन को जीने योग्य बनाते हैं। अनुभूत सत्यों के आधार पर इन मूल्यों का विकास होता है। अतः जीवनमूल्य

शाश्वत् नहीं होते। अनुभव तथा विवेक द्वारा ही इन्हें ग्रहण किया जाता है।'[4]

'समाज' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'आज' धातु के 'धज' प्रत्यय जोड़ने से हुई है, जिसका अर्थ हैमंडल गोष्ठी संग्रह, समिति, समुच्चय दल आदि।

बृहद हिंदी कोश में समाज का अर्थ है'समूह, समान कार्य करने वाला समूह, विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए संघटित संस्था आदि।'[5]

अँग्रेजी में 'सोसायटी' समाज का पर्यायवाची है तो 'समाज' शब्द का सामान्य अर्थ हुआ'कुछ लोगों का समान हितों को प्राप्त करने के लिए मिल-जुलकर रहना।' [6]

Encyclopaedia of the Social Science os$ vuqlkj - "Society may be defined as the total complex of human relationship in so for as they grow cut of action in terms of the mean send relationship in trinsic or symbolic.[7]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज की प्रथम इकाई मनुष्य है। मनुष्य समाज में रहता है। लोकव्यवहार व्यक्ति की चेतना, उसका मस्तिक, उसकी बौद्धिक एवं शारीरिक उपलब्धियाँ भी समाज की ही देन हैं। समाज में रहकर ही व्यक्ति अपना विकास करता है। समाज से परे रहकर हम मनुष्य के विकास की कल्पना भी नहीं कर सकते। मनुष्य ने अपने विकास, तरक्की, वृद्धि करने के लिए समाज में रहना शुरू किया। समाज में मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एवं कार्यों को पूरा करने के लिए हज़ारों छोटे-बड़े संगठनों का जन्म हुआ है। इन संगठनों के संचालन के लिए उनके उद्देश्यों, मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों की एक सामाजिक स्वीकृति होती है। इसलिए चेतना दृष्टिकोण या विश्वदृष्टि का भी सामाजिक होता है। मनुष्य ने अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए जो नियम व मूल्य बनाए हैं, वे सभी सामाजिक मूल्य हैं। लेकिन आधुनिक युग की भौतिक चकाचौंध के कारण व्यक्ति की वृत्तियाँ दिन-प्रतिदिन बदलती जा रही हैं जिससे सामाजिक मूल्यों को ठेस पहुँचती है। आज मनुष्य 'स्व' केंद्रित हो गया है। इसी 'स्व' की रक्षा हेतु वह समस्त सामाजिक, धार्मिक, नैतिकता, दार्शनिकता और कलात्मकता आदि को उसके प्रति समर्पित कर देता है। उसके लिए व्यक्तिगत मूल्य ही सबसे महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। आज का मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार है, लेकिन कुछ मनुष्य आज भी समाज में ऐसे हैं जो दूसरों के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर देने के लिए तैयार रहते हैं। ऐसे ही लोग समाज के मूल्यों के सच्चे रक्षक बनकर समाज के सामने आते हैं, जैसे महात्मा गाँधी, सुभाषचंद्र बोस, शहीद भगतसिंह, शहीद उधमसिंह और आजकल के समय में अटलबिहारी वाजपेयी, अन्ना हजारे, मदर टेरेसा आदि। आधुनिक भौतिकवाद की लालसा एवं चकाचौंध के कारण मानव के हृदय में से परोपकार, सद्भावना, भाईचारे की भावना आदि सब भाव लुप्त होते जा रहे हैं।

भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों में बहुत सुंदर ढंग से चित्रित किया है, जिनका वर्णन इस प्रकार है

1. **स्वार्थपरता**

जब व्यक्ति अपनी कार्यसिद्धि के लिए दूसरों के हित की अनदेखी करता है, स्वयं को लाभ पहुँचाने के लिए दूसरों की हानि करता है, तो वह व्यक्ति का स्वार्थ होता है। इस स्वार्थपरता के अधीन होकर व्यक्ति किसी का भला नहीं कर सकता। जब व्यक्ति का स्वार्थ अपने हितार्थ न होकर समाज

या दोष के हितार्थ हो तो वह स्वार्थ निःस्वार्थता की श्रेणी में आता है, लेकिन आज का मनुष्य इस प्रकार के स्वार्थ से बहुत दूर जा चुका है। आज की भौतिकवादी चकाचौंध में व्यक्ति बहुत अधिक अंधा हो गया है। लेखक ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति की स्वार्थपरता को बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। 'बसंती' में लेखक ने एक बाप की पैसे के लालच की स्वार्थपरता को दिखाया है कि किस प्रकार चौधरी जैसे लोग पैसे के लालच व स्वार्थसिद्ध करने के लिए अपनी बेटियों को बेचते हैं।

'चौधरी सीधा चलता हुआ ढलान के नीचे लँगड़े दर्जी की दुकान पर जा पहुँचा। लँगड़ा दर्जी बुलाकर राम,आओ चौधरी आओ।'

'हमारी अमानत कब मिलेगी?'

'तेरी अमानत धरी है, जब ले ले। भले ही आज ले ले।'

चौधरी ने कहा, 'बारह सौ होंगे। चाहे तो आज ही ब्याह कर ले।'[8]

जब व्यक्ति के हृदय में स्वार्थपरता के भाव आवश्यकता से ज्यादा हो जाते हैं, तो व्यक्ति अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए दीन-ईमान, धर्म, नैतिकता, मानवता सबकुछ भूल जाता है। जैसा कि 'तमस' उपन्यास में मुरादअली ने अपने स्वार्थ के लिए एक सुअर मरवाकर मस्जिद के दरवाजे पर फेंकवा दिया था।

'मुराद अली ही केवल इस 'सुअर वाली घटना' के बारे में जानता है, तो क्या मुसलमान होकर वह किसी से कहेगा कि उसने यह बुरा काम करवाया है।'[9]

लेखक ने दिखाया है कि जब व्यक्ति की स्वार्थपरता बढ़ जाती है, तो वह गिरे-से-गिरा हुआ कार्य करने के लिए भी तैयार हो जाता है। आज के युग में पुरुषों के मुकाबले स्त्री कहीं ज्यादा आगे है। जहाँ कुछ भी तरीका नहीं चलता, वहाँ स्त्री अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए अपने शरीर की सुंदरता व सुंदर वक्षों का सहारा लेकर/हथियार बनाकर अपने स्वार्थ को पूरा करती है। जैसा कि 'कड़ियाँ' उपन्यास में दिखाया गया है। प्रमिला अपनी सहेली से अपने पति के दफ्तर की बातें बता रही है

'आजकल दफ्तर की लड़कियाँ भी तो इन्हें दम नहीं लेने देतीं। बड़ी तेज हैं मुइयाँ, हमारे घर को बर्बाद करने पर तुली हुई हैं। इतनी बेधड़क हो गई हैं, खुद मर्दों का हाथ पकड़ लेती हैं। इधर पीछे एक मुई रहती है, बंगालन है, न शक्ल, न सूरत। उसकी खिड़कियों पर दोहरे पर्दे चढ़े रहते हैं। वह भी किसी दफ्तर में काम करती है। जहाँ जाती है, टैक्सी पर। मुई के पास इतने पैसे कहाँ से आए? शर्म-हया बेच खाई है।'[10]

इस प्रकार आज के मानव के लिए अपना स्वार्थ सर्वोपरि है। जबकि मानव को अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर मानवता तथा विश्व के स्वार्थ को ध्यान में रखकर अपना स्वार्थ पूरा करना चाहिए तथा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उत्तम साधन अपनाने चाहिए।

2. **अपराध, अत्याचार, गुंडागर्दी**

आज का मानव इतना भावहीन, हृदयहीन और हिंसक हो गया है कि वह बड़े-से-बड़ा घिनौना अपराध करते हुए भी नहीं डरता। वह थोड़ी सी बात को लेकर हत्या तक कर देता है। 'तमस' उपन्यास में दिखाया गया है कि किस प्रकार खिजर बिना किसी कारण ही अनजान मासूम बच्चे की हत्या कर

देता है

'एक छोटा-सा लड़का जमीन पर बैठा खेल रहा था। बच्चे के पास से गुजरे तो खिजर ने आव देखा न ताव, बच्चे को उठाकर उसकी गर्दन मरोड़ दी।' 'यह क्या, यह क्या?' मूसा चिल्लाया, 'मासूम बच्चे को मार डाला।' पर खिजर चुप। खिजर ने फिर उँगली होठों पर रख दी और मूसा को चुप रहने का हुक्म दिया।'[11]

लेखक ने दिखाया है कि किस तरह से समाज में शरारती तत्त्व अत्याचार करते हैं। लूट-पाट, हत्या आदि घटनाओं को अंजाम देते हैं। कई बार लोगों के आपसी द्वंद्व या द्वेष के कारण भी इस तरह की घटनाएँ घटती हैं। आपसी बैर को लेकर घर जला देना अथवा अन्य का नाश कर देना। जैसे

'मंडी अभी जल रही थी। म्युनिसिप्लटी के फायर ब्रिगेड ने उनके साथ जूझना कब का छोड़ दिया था। उसमें से उठने वाले धुएँ से आसमान में कालिमा पुत रही थी, जबकि रात के वक्त आसमान लाल हो रहा था। सत्रह दुकानें जलकर राख हो चुकी थीं।'[12]

लेखक ने दिखाया है कि जब गुंडागर्दी, अत्याचार, अपराध ज्यादा बढ़ जाते हैं, तो प्रशासन के बेकाबू हो जाते हैं और उसका बहुत बुरा परिणाम होता है। जैसा कि अँग्रेज अधिकारी रिचर्ड अपनी पत्नी लीजा को बताता है'आजकल मुझे बहुत काम है लीजा, तुम्हें मालूम होना चाहिए, बहुत काम है। शहर में अनाज मंडी जल गई है और देहात में 103 गाँव जल गए हैं।'[13]

आज के मनुष्य को कुत्ते से भी बदतर समझा जाता है तथा उसको गाजर, मूली की तरह काटा जाता है। लेखक ने 'कुंतो' उपन्यास में दिखाया है, जब जयदेव अपनी मौसी के पास गया तो मौसी उसे बता रही थी'बड़ी देर के बाद, बेटा, तुमने मेरी सुधि ली। मैं कितनी देर से प्यासी बैठी हूँ।' मौसी ने किसी के मुँह से सुना था कि पिछली गाड़ी के सभी मुसाफिर इसी स्टेशन पर काट डाले गए थे। स्टेशन की दीवार पर भी शहालमी दरवाजे की आग की परछाईयाँ नाच रही थी।'[14]

आज इस प्रकार के अपराधों एवं अत्याचारों का बढ़ावा दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। चारों ओर गुंडागर्दी, आपाधापी, हिंसा आदि का माहौल बना हुआ है। मनुष्य को सहनशीलता एवं विवेक से काम लेना चाहिए ताकि ऐसे कुकर्मों से बचा जा सके।

3. **मानवता**

मानवता का आधार मानव धर्म है। मानव-धर्म का संबंध परमात्मा से न होकर मनुष्य से है। यह परलोक पर आधारित न होकर इस लोक पर आधारित है। दया, करुणा, संवेदना आदि मानवीय गुणों को विश्व में महत्त्व दिया जाने लगा है। मानवता के विशाल परिवेश में धर्म, जाति, वर्ग, संप्रदाय, राष्ट्र आदि की संकुचित सीमाएँ विशृंखलित हो चुकी हैं। सभी की सामुहिकता का समन्वय ही मानवता है, जिसका आधार मानव-मूल्य है। लेखक ने 'तमस' उपन्यास में दिखाया है कि समाज में मानवता के कल्याण के लिए सत्संग लगाया गया है। यज्ञ, हवन किए जा रहे हैं और मंत्रों का उच्चारण कर रहे हैं। वानप्रस्थी जी मंत्र बोल रहे हैं

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित् दुखः भागभवेत।'

फिर वानप्रस्थी जी ने शांति पाठ गाया, साथ में अन्य लोगों ने भी गाया

ऊँ द्यो शान्ति पृथ्वी, शांतिरापः,
शांतिरोषधयः शांति वनस्पतिः।'
'सब पर दया करो भगवान,
सब पर कृपा करो भगवान'[15]

मानवता धर्म से ऊपर कोई धर्म नहीं है। समाज में धर्म गुरु भी मानवता की सेवा करने का उपदेश देते हैं। जब 'श्यामा' बीबी के घर में व शरीर में कष्ट रहने लगता है तो वह आध्यात्मिक गुरु के पास जाती हैं। गुरु महाराज उसे कहते हैं

'एक दिन एक साधु महाराज ने अपना कृपालु हाथ श्यामा के माथे पर रचाते हुए कहा 'तेरी धुकधुकी खत्म हो जाएगी, बीबी। तू चिंता नहीं कर।'श्यामा ने हाथ बाँध दिए और सिर नवा दिया।

'सेवा में तेरी मुक्ति है बीबी। किसी एक मनुष्य की सेवा कर, तेरा कष्ट दूर हो जाएगा।'

'किस मनुख की सेवा करूँ, महाराज?'

'तुम्हें ढूँढना नहीं होगा। वह अपने आप तेरे सामने आ जाएगा। कल सवेरे घर से बाहर पाँव रखने पर जो मनुख तेरे सामने आए, वही तेरी सेवा का पात्र होगा। वह कोई भी क्यों न हो, तू उसकी सेवा करना।'

इस प्रकार मानवता का धर्म सभी धर्मों से ऊपर है और सभी वैयक्तिक मूल्यों में सर्वोच्च मूल्य है। हम हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि बाद में हैं, मानव पहले हैं। इसलिए हमें मानवता के धर्म को अपनाना चाहिए। इसको अपनाकर ही हम संसार में प्रेमपूर्वक रह सकते हैं। मानवता ही सच्चे मानव की पहचान हैं।

4. **विवशता/मजबूरी**

विवशता मानव जीवन के लिए बहुत हानिकारक होती है। विवश व्यक्ति किसी और का भला सोचना तो दूर, स्वयं का भला भी नहीं सोच सकता, क्योंकि उसकी बुद्धि और चेतना विवशता के कारण कुंठित हो जाती है। यह विवशता किसी भी स्वर पर हो, किसी भी प्रकार की हो, वह व्यक्ति, समाज और देश के विकास में बाधक बनती है। लेखक ने 'बसंती' उपन्यास में दिखाया है कि किस प्रकार व्यक्ति दूसरे के सामने दया की भीख माँगता है। जैसे राज मिस्त्री सरकारी अधिकारियों के सामने अपनी विवशता दिखाता है

'मालिक, हम राज-मिस्त्री, हम ही घर बनावें और हमारे ही रहने को घर नहीं। लोगों के घर जुटावें और अपना सिर छुपाने के लिए जगह नहीं। इस मेंह-बरसात में तो हमें बेघर नहीं करो।'[16]

नारी की सबसे बड़ी विशेता यह है कि वह किसी के सामने अपना दुःख कह भी नहीं सकती। वह अंदर ही अंदर घुटकर मरती रहती है। इसी विवशता के कारण नारी अपनी इज्जत तक देने को विवश हो जाती है, 'मुजाहिद सुनाने लगा'वक्त-वक्त की बात है। एक बागड़ी औरत को हमने गली में पकड़ा। हम कराड़ों के घर के अंदर से निकल रहे थे। ऐसा हाथ चल रहा था, जो सामने आता, एक बार में गर्दन साफ हो जाती। यह औरत सामने आई तो चिल्लाने लगी। हरामजादी कहे जा रही थी, मुझे मारना नहीं, मुझे तुम सातों अपने पास रख लो, एक-एक करके जो चाहो कर लो।

मुझे मारो नहीं।'[17]

कई बार तो स्त्री हो या पुरुष विवशता के कारण स्वयं अथवा परिवार को भी खत्म करने के लिए तैयार हो जाता है। जैसे 'तमस' में सिख समुदाय की महिलाएँ अपने आपको कुएँ में धकेलती हैं और मर जाती हैं।

लेखक ने दिखाया है कि जब व्यक्ति की विवशता बहुत अधिक बढ़ जाती है, तो व्यक्ति उस विवशता के कारण पागल भी हो जाता है, जैसा कि प्रमिला हो गई थी। जब डॉक्टर से मिलने प्रमिला का पिता जाता है तो डॉक्टर उसके पिता को बताता है

'यों डॉक्टर ने मुझे (पिता को) बताया है कि उनकी (प्रमिला की) हालत पहले से बेहतर है। यह वास्तव में पागलपन नहीं है, केवल एक प्रकार का दौरा है। किसी परेशानी या सदमे के कारण मन में गाँठ-सी पड़ जाती है, और व्यक्ति पागलों जैसा व्यवहार करने लगता है। वक्त बीतने पर धीरे-धीरे यह गाँठ अपने आप खुलने लगती है।'[18]

इस प्रकार लेखक ने नारी तथा पुरुष की विवशता का वर्णन किया है। यह विवशता मानव को घुट-घुटकर जीने पर मजबूर करती है। हमें इस विवशता पर पार पाने के लिए मन को संतुलित रखना होगा।

5. समाज में नारी की स्थिति

प्राचीनकाल से ही नारी देवीतुल्य रही है। नारी को भगवान के समान पूजा जाता था लेकिन आधुनिक युग में भौतिकवाद की चकाचौंध के कारण नारी की स्थिति समाज में समय के साथ-साथ बदलती जा रही है। लेखक ने दिखाया है कि भारतीय समाज में नारी की दशा दयनीय है। नारी का अनेक प्रकार से शोषण होता है। लोग पैसे के लालच में आकर अपनी बेटी, बीवी को भी बेच देते हैं। 'बसंती' उपन्यास में बसंती बताती है

'आपको पता है, बीबी जी?'

'श्यामा बोलीक्या?'

'हमारा बापू बेटियाँ बेचता है।'

'क्या बक रही है?'

'सच, बीबी जी, मेरी बड़ी बहन का ब्याह भी गाँव में किसी बूढ़े के साथ कर दिया। उससे आठ सौ रुपए लिए। वह गाँव में बैठी घास छीलती है?[19]

आज समाज में नारी भी अपने नियमों व मूल्यों को त्याग रही है। वह खुद भौतिकवाद की चकाचौंध में अंधी होती जा रही है। वह शराब पीने, डिस्को, लड़ाई-झगड़े, नाइट क्लबों में जाने जैसे काम हर रोज करती है।

आज नारी वेश्यावृत्ति का धंधा करती है। 'तमस' में नत्थू कहता है

'मैं आज घर नहीं जाऊँगा। रात होते ही मोतिया रंडी के पास जाऊँगा। वह एक रुपया माँगेगी तो मैं पाँच रुपए दूँगा। रात-भर उसके पास रहूँगा।'[20]

स्त्री आज अपनी वासना/कामेच्छा को शांत करने के लिए बिना अपनी लोक-लाज के डर से विवाहिता होते हुए भी घर से भागने के लिए तैयार है। जैसा कि 'नीलू नीलिमा नीलोफर' में लेखक

ने दिखाया है

'सेक्रेटरी की पत्नी कह रही थी, 'अगर मुझे कोई इतने कंप्लीमेंट दे तो मैं आज भी उसके साथ भाग जाऊँ।'

'क्यों सेक्रेटरी तुम्हें कंप्लीमेंट नहीं देते?'

'आदमी बोर होते हैं। मुझे चुलबुले लोग पसंद हैं। मुँह लटकाकर बैठने वाले किताबी लोग मुझे पसंद नहीं हैं। इन मीठी-मीठी बातों का भले ही कोई मतलब न हो, पर हैं तो मीठी।'[21]

इस प्रकार नारी को मात्र यौवन पूर्ति का साधन माना गया है, लेकिन आज इस मानसिक संकीर्णता से ऊपर उठकर नारी को सम्मान देने की आवश्यकता है, ताकि स्त्री-पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चले। ऐसा करने से न केवल परिवार, समाज और देश का ही भला होगा अपितु विश्व का भी कल्याण होगा।

निष्कर्ष

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि जिस समाज में हम रह रहे हैं, उस समाज की सामाजिक स्थितियों, रहन-सहन के तौर-तरीकों, रीति-रिवाज, पारिवारिक स्थितियों तथा तत्कालीन समाज में व्याप्त अच्छाईयों और बुराईयों का हमारे ऊपर प्रभाव पड़ता है। एक अच्छा लेखक उन सब परिस्थितियों का वर्णन अपने साहित्य में यथार्थ रूप में करता है और समाज को सच्चाई से अवगत करता है। वह अपने साहित्य में जहाँ मूल्यों का पतन दिखाता है, वहीं उनकी प्रतिष्ठा भी करता है ताकि आने वाली पीढ़ी अच्छाई और बुराई का अच्छी तरह से अध्ययन करे और यह महसूस कर सके कि अच्छाई ही अच्छी है जो हमें मानवीय मूल्यों की शिक्षा देती है। भीष्म साहनी जी ने भी अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज को यही दिखाया है और समाज को मानव-मूल्यों के प्रति जागरूक किया है।

संदर्भ

1. महाभारत आदि पर्व, चित्रशाला प्रेस, पूना 1929-33 तथा गीता प्रेस, गोरखपुर-1949, पृ॰ 52-53
2. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1960, पृ॰ 134
3. शशि सहगल, नई कविता में मानव-मूल्यबोध, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1976, पृ॰ 21
4. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1955, पृ॰ 1166
5. स॰ कालिकाप्रसाद, बृहद हिंदी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1977, पृ॰ 1202
6. डॉ॰ हरदेव बाहरी, अँग्रेजी-2, हिंदी शब्दकोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1957, पृ॰ 1032
7. Encyclopedia of the Social Science - ER, Macmillan Company, New York, 1957
8. भीष्म साहनी, बसंती, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1989, पृ॰ 15
9. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1993, पृ॰ 120
10. भीष्म साहनी, कड़ियाँ, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1980, पृ॰ 63
11. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ॰ 112-113
12. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ॰ 146
13. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ॰ 277
14. भीष्म साहनी, कुंतो, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1972, पृ॰ 327
15 भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1989, पृ॰ 70

16. भीष्म साहनी, बसंती, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1993, पृ॰ 35
17. भीष्म साहनी, बसंती, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1980, पृ॰ 8
18. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ॰ 258
19. भीष्म साहनी, कड़ियाँ, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ॰ 167
20. भीष्म साहनी, बसंती, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ॰ 48
21. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1972, पृ॰ 115
22. भीष्म साहनी, नीलू-नीलिमा-नीलाफर, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 1972, पृ॰ 115.

गाँव छोटए पो॰ पाड़ला
तह॰ जि॰ कैथल (हरि॰)
मो॰ 09466520920

दौलति उपन्यास में चित्रित जनजीवन का चित्रण

डॉ॰ कृष्णकुमार
प्राचार्य, एस॰एस॰एम॰ कालेज आफ एजूकेशन
कलायत (हरियाणा)

महाश्वेता देवी द्वारा रचित 'दौलति' उपन्यास सामंती प्रथा पर आधारित है, जो सन् 1997 में प्रकाशित हुआ। आदिवासी जनजीवन की त्रासदी के बीज विषैली राजनीति मे हैं। राजनीति की चालाक ने संगठित वर्ग-संघर्ष को विभाजित जाति-संघर्ष में तबदील कर दिया है। जमीदारों ने भूमिहीन आदिवासियों के बीच धर्मों और जातियों के बँटवारे का सहारा लेकर उन्हें संगठित वर्ग की शक्ल में कभी नहीं आने दिया। स्त्री का क्रय-विक्रय, देह-व्यापार की विषैली विवशताएँ, चुकी हुई वेश्याओं की तिरस्कृत वेदनाएँ और उनकी गुमनाम मौत और इन सबके लिए सांमती व्यवस्था के दाँव-पेंच आदि का चित्रण इस उपन्यास में किया गया हैं। इस उपन्यास में बिहार राज्य के पालामौ जिले के सेवरा गाँव में रहने वाले आदिवासियों का यथार्थ चित्रण किया गया है।

किसी भी देश की संस्कृति की मूलधारा वहाँ की सामाजिक व्यवस्था होती है तथा समाज-व्यवस्था आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। यहाँ पर 'दौलति' उपन्यास में चित्रित सामाजिक जीवन के अंतर्गत मुख्यतः समाज-व्यवस्था, सामाजिक प्रथाओं, एवं सामाजिक जीवन की विकृतियाँ, समाज में नारी की स्थिति एवं लोकोत्सवों पर विचार कर रहे हैं। 'दौलति' उपन्यास में चित्रित सामाजिक जीवन का चित्रण इस प्रकार है।

सामाजिक जीवन

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चार वर्णों एवं विभिन्न जातियों का उल्लेख हुआ है। ये चार वर्ण हैंब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। 'दौलति' उपन्यास में महाश्वेतादेवी ने भी वर्ण के आधार पर विभिन्न जातियों को कार्य करते हुए बताया है। 'दौलति' में चित्रित विभिन्न जातियाँ हैंब्राह्मण, राजपूत, लुहार, नागेसिया, दुसाद, धासी, मुंडा, भुलयाँ, चमार आदि। इस उपन्यास में राजपूत तथा ब्राह्मणों को सर्वोपरि माना गया है तथा चमार, नागेसिया, लुहार आदि उनके ग़ुलाम। ये दासप्रथा इन जातियों में परंपराओं से चली आ रही थी, जिसे निम्नवर्ग के लोग अपना भाग्य समझते थे। 'दौलति' उपन्यास में निम्नवर्ग के लोग अपना दैनिक जीवन चलाने के लिए कर्ज़ लेते हैं, लेकिन वह कर्ज़ बढ़कर इतना हो जाता है कि आजीवन अपने मालिक की मज़दूरी करने पर भी नहीं उतरता। 'दौलति' उपन्यास में नागेसिया, पारहाइया, मुंडा, चमार आदि जातियाँ इतनी दब चुकी हैं कि भूखे रहते-रहते वह भूख के अभ्यस्त हो गए हैं। उपन्यास में भूख की यंत्रणा से पीड़ित समाज का अंकन किया गया है। छोटे-छोटे किसान अपना जीवन चलाने के लिए कर्ज़ लेते थे। यथा 'यंत्रणा से पीड़ित इन लोगों को अत्यन्त कम पैसे में, कम अनाज में तथा कथित उच्चवर्ग के लोग अपना ग़ुलाम बना लेते थे।[1]

दासप्रथा का विस्तार सारे भारत में हो चुका था। विभिन्न राज्यों में इसे भिन्न-भिन्न नाम से पुकारा जाता है। आंध्र प्रदेश के मातंगी, जाग्गाली, माला-जांगम, माहार और दूसरी जाति के लोग 'गोठी' बनते हैं। बिहार के चमार, नागेसिया, पारहाइया, दूसाद 'कामिया' या 'सेवकिया' बनते हैं। गुजरात के चालवाड़ी, नालिया, ढोरी और दूसरे लोग हालपति बनते हैं। लाक्षाद्वीप के भूमिदास को 'नादापू' कहते हैं। इस प्रकार दास-प्रथा की परंपरा हमारे समाज में प्राचीनकाल से पनप रही है। लेकिन स्वेच्छा से कोई भी दास नहीं बनता। कर्ज़ के कारण ही उसे दास बनना पड़ता है। जो सामाजिक व्यवस्था टेढ़ा नागेसिया को दास बनाती है, वह पुरुषों के द्वारा ही बनाई गई व्यवस्था थी। दौलति, सोमनी, रेवाती आदि को पुरुषों की यौन-क्षुधा तृप्त करनी पड़ती है। आलोच्य उपन्यास में नारी का क्रय-विक्रय तथा वेश्याओं की वेदनाओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। निर्धनता मानव को बहुत ही घृणित कार्य करने के लिए मजबूर कर देती है। जो समाज एवं मनुष्य निर्धनता में फँस जाता है, उसका शारीरिक तथा मानसिक विकास नहीं हो पाता। निर्धनता के जबाड़े में जो मानव जकड़ा जाता है, उसका जीवन नरक बन जाता है। इस उपन्यास में भी नारी-पात्रों की स्थिति अत्यंत शोचनीय है, जिन्हें अपने पिता का कर्ज़ चुकाने के लिए वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ती है। 'दौलति' इस उपन्यास की एक ऐसी पात्र है, जो अपना कर्ज़ चुकाने के लिए देह के व्यापारियों के आगे नंगी हो जाती है। न जाने कितने ही वासना के पुजारी दौलती के नग्न शरीर में मुँह मारकर अपनी काम-वासना तृप्त करते हैं। 'दौलति' उपन्यास में वर्णित जातियों की दशा अत्यंत शोचनीय है। सामाजिक विषमता के कारण सामान्यतः दो वर्ग शोषक एवं शोषित थे। शोषितवर्ग श्रम करने पर भी संपन्न नहीं हो सका, जबकि शोषकवर्ग श्रम किए बिना ही संपन्न था। शोषितवर्ग में नागेसिया, चमार, दुसाद, पारहाइया आदि निम्न जातियाँ आती हैं। पंडित तथा राजपूत अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए निम्न जातियों का शारीरिक तथा आर्थिक शोषण करते हैं।

समाजिक प्रथाएँ एवं सामाजिक जीवन की विकृतियाँ

तद्युगीन समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक प्रथाएँ एवं सामाजिक जीवन की विकृतियाँ पाई जाती थीं, जिनका 'दौलति' उपन्यास में यत्र-तत्र प्रसंग के अनुसार वर्णन उपलब्ध होता है। यथाबहुविवाह प्रथा, दासप्रथा, नारी का क्रय-विक्रय, वेश्यावृत्ति आदि।

बहुविवाह प्रथा

'दौलति' उपन्यास में बहु-विवाह प्रथा को चित्रित किया गया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र परमानंद न जाने कितनी ही शादियाँ कर चुका था। टेढ़ा नागासिया को मुनावर परमानंद के संदर्भ में कहता है'यथा देवता ऐसे खेल गाँव-गाँव में घूम-घूमकर खेलता रहता है। उसकी कितनी ही बीवियाँ हो गई हैं, अच्छे-अच्छे घर बनाकर सभी को कितना सुख दे रहा है यह।'[2]

नारी का क्रय-विक्रय

'दौलति' में नारी के क्रय-विक्रय का वर्णन किया गया है। उपन्यास का पात्र परमानंद निम्नवर्ग की लड़कियों को बँधुआ बनाकर लाता है और उनके शरीर का खेत जोतकर फसल काटता था। परमानंद न जाने कितनी ही लड़कियों का लाटिया से सौदा कर चुका था। यथा'निर्वस्त्र, हरिजन व रमणी के असहाय शरीर की ओर एक बार भी बिना देखे, बलात्कारी के साथ परमानंद ने पहले भी कई बार इस तरह लेने-देन का हिसाब किया था।'[3]

दासप्रथा

'दौलति' उपन्यास में दासप्रथा का यथार्थ चित्रण किया गया है। ब्राह्मण तथा राजपूत मालिक होते हैं तथा नागेसिया एवं चमार आदि निम्नजाति के लोग दास हैं। ऋण न चुकाने की स्थिति में स्त्री एवं पुरुष दोनों को गुलाम बना लिया जाता था। ऋण चुकाने के लिए नारियों को वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ती थी। यथा'बलवान अत्याचार करता है और दुर्बल सहते हैंयही तो नियम है। आप इस प्रचलित नियम को तोड़ देना चाहते हैं।'[4]

वेश्यावृत्ति

आलोच्य उपन्यास में वेश्यावृत्ति का भी वर्णन किया गया है। रामप्यारी ने वेश्यालय बना रखा है, जहाँ न जाने कितनी ही लड़कियों को वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर किया जाता है। जहाँ निर्वस्त्र होकर बैठे रहने से किसी को कोई आपत्ति नहीं थी। यथा'लाटिया काफी पैसे वाला था, ठेकेदारी करता था वह। पटना तक उसकी दौड़ थी और रामप्यारी की यह कोठी तो 'वेश्यालय' थी, यहाँ नंगा होकर बैठे रहने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती थी।'[5]

समाज में नारी की स्थिति

नारी जग-जननी है, फिर भी वह उपेक्षित है। नारी प्राचीनकाल से ही पुरुष-प्रधान समाज में दासी की तरह रही है। 'दौलति' उपन्यास में नारी की दशा अत्यंत शोचनीय थी। नारी को केवल भोग की ही वस्तु समझा जाता था। नारी को मज़बूरियों के कारण देह के व्यापारियों के आगे नंगा होना पड़ता था। आलोच्य उपन्यास में नारी का क्रय-विक्रय तथा वेश्याओं का अंतर्नाद सुनाई देता है। इस उपन्यास का पात्र मुनावर सिंह निम्नवर्ग की नारियों की देह से अपनी काम-वासना तृप्त करता था। यथा'मुकामी, दुसादिन, और राजवी धोबन के घरों में मुनावर के बच्चे पैदा होते। वे बच्चे भी मुनावर के बँधुआ बनते हैं। दौलति को देखकर मुनावर की हवस बढ़ गई थी।'[6] आलोच्य उपन्यास में परमानंद बहुत ढोंगी तथा कपटी साधु है। गाँव की सीधी-सादी लड़कियों को शादी का आश्वासन देकर और उनको बँधुआ बनाकर, वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर करता था। वेश्यालय की वेश्याएँ दिन-भर वासना के पुजारियों की तृप्ति करती थीं। उनसे जो रुपया मिलता था, वह सारा परमानंद का होता था, परमानंद न जाने कितनी ही लड़कियों का क्रय-विक्रय लाटिया से कर चुका था। लाटिया बलात्कारी था जो हर-रोज़ नई कुँवारी लड़की से अपनी वासना तृप्त करता था। नारी की शिक्षा-दीक्षा, संपत्ति तथा बीमारी के उपचार का कोई प्रबंध नहीं किया गया। परमानंद बहुत कम उम्र की लड़कियों को लाता था। उनसे अत्यधिक वेश्यावृत्ति करवाने से लड़कियाँ बीमार हो जाती थीं और उनका सारा यौवन बुढ़ापे में परिवर्तित होने लगा। रामप्यारी, कलावती, दौलति, सोमनी, रेवती तथा झालों आदि उपन्यास की नारी-पात्र यौन-क्षुधा से पीड़ित हैं। इन सभी का लाटिया ने यौन-शोषण किया है। ये सभी परमानंद की कामियाँ हैं। परमानंद इनके शरीर का खेत जोतकर रुपए कमाता था। लेकिन परमानंद इन्हें बीमारी का इलाज कराने के लिए भी पैसे नहीं देता था। कलावती लाटिया की यौन-क्षुधा तृप्त करती थी, जिससे उसे गर्भ ठहर जाता है। रामप्यारी देसी दवा पिला देती है, जिससे कलावती को रक्तस्राव हो जाता है। एक दिन लाटिया-कलावती के साथ जबरन यौन-संबंध स्थापित करता है। जिसकी असहनीय पीड़ा से कलावती की मृत्यु हो जाती है। कलावती की तरह रेवती का भी लाटिया तथा अन्य ठेकेदारों द्वारा यौन-शोषण किया गया था। रेवती का लड़का भी तो लाटिया का ही था। रेवती कहती है'उसके बाद

भीख माँगूँगी। देह में तो कुछ भी शेष नहीं। अब क्या मेहनत कर सकूँगी? चार-पाँच साल से रोज़ाना तीस-तीस ग्राहक। भीख माँगूँगी। गाँव नहीं लौटूँगी? कैसे लौटूँ? मरद ने तो फिर शादी कर ली है, वे दोनों ही देवता के बँधुआ हैं। मैं लौट जाऊँ तो ये बच्चे कहाँ जाएँगे? मरद लाटिया के बच्चों को क्यों रखेगा? खिलाएगा भी क्या? देश-घर में क्या दाना मिलता है?'[7] सोमनी की भी कलावती की तरह बहुत की कारुणिक कथा है। सोमनी के पति ने ज़मीन ख़रीदने के लिए परमानंद से दौ सौ रुपये कर्ज़ लिया था। वह बढ़कर चार हज़ार रुपये हो गया, जिसका ब्याज सोमनी को भुगतान करना पड़ता है। सोमनी परमानंद की बँधुआ बन जाती है। सोमनी भी लाटिया की ही काम-वासना तृप्त करती है। सोमनी लाटिया के तीन बच्चों को जन्म देती है, जो भीख माँगकर अपना गुज़ारा करते हैं। दौलति उपन्यास की नायिका है। उपन्यास के सभी प्रसंगों से दौलति जुड़ी हुई है। दौलति को भी परमानंद शादी का आश्वासन देकर ले आता है। दौलति के पिता का परमानंद कर्ज़ चुकाता है, जिसके कारण दौलति को बँधुआ बनना पड़ता है। बुखार में बेसुध हालत में दौलति चार दिन अस्पताल में रही। डाक्टर ने उनसे पूछा'माधपुरा से तोहरी आयी है? आयी कैसे? आश्चर्य।'' [8] नर्स ने भी होठ दाबे। यक्ष्मा से उसके फेफड़े बेकार हो चुके थे। यौन-रोग के घाव उसके तन पर सर्वत्र फैल चुके थे। स्राव में अत्यंत दुर्गंध थी। ये रंडियाँ क्या सिर्फ़ मरने के समय ही अस्पताल पहुँचती हैं?

आलोच्य उपन्यास में नारी की अत्यंत दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। बँधुआ प्रथा में कमनीय नारियों की प्रत्येक वस्तु पर उसके मालिक का हक़ होता है। आजीवन अपने मालिक का श्रम करने पर भी उनका कर्ज़ नहीं उतरता। बल्कि दिन-प्रतिदिन चक्रवृद्धि ब्याज की दर से बढ़ता ही जाता है। यथा : 'हूज़ूर, बाज़ारू रंडियों की भी कुछ आजादी रहती है। बँधुआ रंडियों को तो किसी चीज़ का हक़ नहीं। रुपये तो मालिक ले लेता है।'[9] कमनीय नारियों से सारा दिन उनके मालिक ज़बरन वासना के भेड़ियों की यौन-क्षुधा तृप्त करवाते थे। लेकिन उनसे जो रुपया मिलता था, वह स्वयं रखते थे। सारा दिन श्रम करने पर भी उन्हें बहुत कम खाने को दिया जाता था, जिसके कारण वह भीतर-ही-भीतर खोखली हो जाती थीं। यथा'गाय-भैंस को भी चारा देने पर ही वे दूध देती हैं। और औरतों को बँधुआ रंडी बनाकर न दाना न पानी। बस उन पर सवारियाँ लादते जाओ और पैसे कमाओ।'[10] बँधुआ वेश्याओं का ऋण कभी ख़त्म नहीं होता। उनका कर्ज़ बढ़कर इतना हो जाता है कि कभी भी चुकाया नहीं जा सकता। जब तक उनका देह भोग करने के काबिल रहेगा, तब तक कर्ज़ भी रहेगा। इसके बाद भिखारी बनकर अपना तथा अपने बच्चों का जीवन-यापन करती हैं। ये स्थिति है नारी की।

आर्थिक जीवन का चित्रण

'दौलति' उपन्यास में जनजीवन की दशा अत्यंत शोचनीय थी। समाज में आर्थिक दृष्टि से उच्चवर्ग एवं निम्नवर्गये दो वर्ग उपलब्ध होते हैं। उच्चवर्ग संपन्नवर्ग होता था, जो अपनी सुरक्षा तथा व्यर्थ की बेगार करवाने के लिए लठैत रखता था। उच्चवर्ग के लोग सुंदर भवनों में रहते थे। निम्नवर्ग के लोग झुग्गी-झोंपड़ी में रहते थे। वे कर्ज़ के नीचे इतने दबे होते हैं कि आजीवन अपने मालिक की मज़दूरी करने पर भी कर्ज़ से मुक्त नहीं हो पाते। भुनेश्वर कहता है कि 'ठीक ही कह रहा हूँ। इसका मतलब है कि बाप-माँ-बेटा सबके-सब मुनावर के बँधुआ बन गए। बुआ की देख-रेख के लिए कोई न बचा तो बुआ मर गई। उसके दाह-संस्कार और क्रिया-कर्म के ख़र्च की जुगाड़ में क्या वह खुद बँधुआ बने। जीवित लोग भी उसके बँधुआ, मरे लोग भी उसके बँधुआ।'[11] अपने शरीर से ज्यादा मेहनत मज़दूरी करने पर भी ज़मीदारों का कर्ज़ नहीं उतरता था। एक-एक रुपया ब्याज लगकर हज़ार-हज़ार

रुपये में परिवर्तित हो जाता था यथा' एक-एक रुपया हज़ार-हज़ार रुपयें में होता है तबदील। गनोरी का कर्ज़ तो कभी भी होगा ही नहीं वसूल, वह कर्ज़ बेटे पर लादकर वह मिट जाएगा एक दिन।'[12] आदिवासियों में दास-प्रथा परंपरानुसार चली आ रही थी। अगर बाप कर्ज़ नहीं उतार सका तो उसके बेटों को बँधुआ बनना पड़ता था। आजीवन अपने मालिक की मेहनत मज़दूरी करने पर भी उनका कर्ज़ नहीं उतरता था। पलामौ जिले के हर गाँव में कर्ज़ लेते और सेवकिया बन जाते थे। मूल ऋण के साथ आगे के सभी ऋण जुड़ जाते थे और चक्रवृद्धि ब्याज की दर से उस पर सूद लाया जाता। टेढ़ा नागेसिया, बनो, धानो आदि सभी पात्र कर्ज़ के नीचे दबे हुए थे। नागेसिया अपना कर्ज़ नहीं चुका सकता था, जिसकी सज़ा उसकी बेटी दौलति को भुगतनी पड़ती है। सोमनी, कलावती, रेवाती आदि उपन्यास की सभी नारी पात्र परमानंद की बँधुआ हैं। इन सारी लड़कियों के कमाई के सारे पैसे परमानंद लेता है। बँधुआ रंडियाँ आजीवन यौनपीड़ा सहती-सहती निढाल हो जाती थीं तो उन्हें भीख माँगने पर मजबूर कर दिया जाता। सोमनी दौलति से वार्तालाप करती हुई कहती है'उसके बाद भीख माँगूगी। देह में तो कुछ भी शेष नहीं। अब क्या मेहनत कर सकूँगी? चार-पाँच साल से रोज़ाना तीस-तीस ग्राहक। भीख मागूँगी।'[13]

'दौलति' में चित्रित धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन का चित्रण

'दौलति' उपन्यास में नागेसिया, चमार, मुंड, दुसाद, लौहार आदि जाति के लोगों के जीवन को चित्रित किया गया है। आलोच्य उपन्यास में धर्म एवं आध्यात्मिक जीवन की दशा अच्छी नहीं थी। फिर भी इस उपन्यास में धर्म की परंपराओं को सुरक्षित रखने के लिए संतों एवं साधुओं का प्रादुर्भाव हुआ। सेवरा गाँव के आदिवासियों पर होने वाले अत्याचारों को कम करने के उद्देश्य से दिल्ली का साधु सात दिन तक शब्द-कीर्तन करता है और अपने प्रवचनों से लोगों को लाभान्वित करता है। यह साधु धर्म में दृढ़ विश्वास रखने वाला तथा जाति-पाति का प्रबल विरोधी था। वह लोगों को यह उपदेश देता था कि राम-नाम से चित्त शुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त हनुमान जी मिश्र पाखंडी साधु था। जो वर्णाव्यवस्था को बनाए रखना चाहता था। हनुमान मिश्र कहते हैं कि 'वे अछूत आदिवासी बहुत पापी हैं। मेरे मंदिर में खर्च-वर्च देकर धूमधाम से प्रायश्चित पूजा का आयोजन कीजिए। सब ठीक हो जाएगा।'[14] दिल्ली का साधु पलामौ जिला के सेवरा गाँव में आकर लोगों को प्रवचन सुनाता था। साधु जाति-पाती का विरोध करता हुआ कहता है कि कोई भी व्यक्ति अछूत नहीं होता तुम, मैं, मुनावर सब एक ही माँ की संतान हैं। हम सब भारतवासी हैं। यहाँ कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

दौलति में चित्रित राजनीतिक जीवन

'दौलति' उपन्यास में तानाशाही राजनीति का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में 1962 के आम चुनावों में चलने वाली राजनीति का अंकन है। सेवरा गाँव के निम्नजाति के लोगों को अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों तक का ज्ञान नहीं है। राजनीति का ज्ञान तो कहाँ था। उन्हें अपने वोट की क़ीमत का भी पता नहीं। इस उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि गाँव का मालिक जिस प्रत्याशी को वोट डालने के लिए कहता, वह उसे ही वोट देते हैं। 1962 में आम चुनाव था। वोट क्या है, क्यों है, इस बारे में सेवरा गाँव के लोगों की धारणा क्या थी? मुनावरसिंह जिसे वोट देने को कहेगा वे उसे ही वोट देंगे। वोट या चुनाव का मतलब उन्हें नहीं मालूम था। मुनावरसिंह राजपूत था, चुनाव प्रत्याशी जयवंतसिंह भी राजपूत था। मुनावर ने अगर कह दिया कि उसके जात-भाई को वोट देना होगा,

तो वे वैसे ही करेंगे। मालिक का आदेश ही तो 'नहीं' नहीं कहा जा सकता। मुनावरसिंह चंदेला ने चुनाव से पहले ही विरोधी-पार्टी के उम्मीदवारों से कहा, 'इतनी तकलीफ़ क्यों उठा रहें हैं आप लोग? मैं जिसे वोट देने को कहूँगा, वे उसे ही वोट देंगे। मैं जिन लोगों को वोट दिलाना चाहूँगा, वोट उन्हें ही मिलेगा। जयवंतसिंह हमारे उम्मीदवार हैं, इस बार सभी लोग उन्हें ही वोट देंगे। किसलिए आप लोग इतनी दौड़-धूप कर रहे हैं? भाषण सुनने के लिए वे नहीं आते, वे तो तमाशा देखने के लिए आते हैं।'[15] इस उपन्यास में आम चुनावों की भ्रष्ट राजनीति का चित्रण किया गया है। सेवरा गाँव के लोग मानसिक तथा शारीरिक दोनों तरह से शक्तिविहीन हो चुके थे। अपना वोट तथा अपने वोट की क़ीमत के विषय में कुछ नहीं जानते।

निष्कर्ष

अस्तु, 'दौलति' उपन्यास में चित्रित जन-जीवन का चित्रण बड़े ही सजीव ढंग से किया गया है। महाश्वेतादेवी ने अपनी क़लम से जो साहित्य रचा, वह आज के सबसे बड़े लोकतंत्र और उस लोकतंत्र के ठेकेदारों, नेताओं, पूँजीपतियों व धार्मिक न्यायाधीशों आदि के नकली मुखोटों को उतारने का प्रयास है। उन्होंने दलित और छोटे लोगों की तस्वीर ही प्रस्तुत की है, जैसे कि कई और लेखक भी करते रहे हैं कि अथवा कर रहे हैं। इसके साथ ही उन्होंने अपने पात्रों, समाज के उन दबे, कुचले लोगों के जीवन को ऊँचा उठाने में स्वयं सक्रिय योग दिया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है'संक्रमण के इस दौर में हर ज़िम्मेवार लेखक को शोषित एवं दलितवर्ग का पैरोकार होना पड़ेगा अन्यथा इतिहास उसे कभी क्षमा नहीं करेगा।' दौलति' उपन्यास में चित्रित जनजीवन का चित्रण इन्हीं विचारों को दर्शाने का सच्चा दस्तावेज़ है।

संदर्भ

1. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 80-81
2. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 41
3. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 53
4. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 54
5. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 53
6. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 28
7. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 78
8. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 83
9. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 81
10. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 82
11. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 20
12. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 59
13. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 32
14. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 33
15. महाश्वेता देवी, दौलति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ॰ 24

समकालीन कविता में नारी-संदर्भ

प्रियंकासिंह (शोध छात्रा)
पश्चिम बंग राज्य विश्वविद्यालय
अंशकालिक शिक्षिका
जमशेदपुर वीमेन्स कॉलेज, जमशेदपुर

समकालीन युग के पूर्व नारी के प्रति कवि हमेशा एकांगी दृष्टि का परिचय देते रहे। 'नारी तुम श्रद्धा हो' के माध्यम से छायावाद में नारी जहाँ ऐंद्रियता से दूर जाती दिखी, वहीं प्रगतिवादियों के यहाँ 'श्याम तन भर बँध-यौवन/नित कर्मरत मन' के माध्यम से मार्क्सवादी सिद्धांतों से अनुप्रेरित संघर्षशील युवती के रूप में।

प्रयोगवादियों एवं नए कवियों के यहाँ नारी जहाँ नवीन उपमानों को आरोपित और व्यक्तिक अहं को तुष्ट करने का माध्यम बनती है, वहीं साठोत्तरी तक आते-आते अश्लीलता की सीमाओं को लाँघते हुए वासना की प्रतिमूर्ति बन जाती है। लेकिन समकालीन कविता में वह अपनी पूर्ववर्ती काव्यधाराओं से इतर सर्वांगीनता में चित्रित हुई है। राग-जगत में वह सकारात्मक एवं नकारात्मक स्वरूपों के साथ-साथ अपनी सारी संभावनाओं के साथ विवेचित हुई है। पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी बड़ी बेबाकी से अपने विचारों, अपनी इच्छाएँ, अपनी कामनाओं, अपनी व्यथा-कथा को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। वास्तव में स्त्री मनोदशा के प्रत्येक पहलू पर गहरी निगाह रखी जाती रही है।

नारी को लेकर समकालीन कवियों में मूलतः दो दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं। अशोक वाजपेयी जैसे आभिजात्य संस्कृति के कवि आज भी नारी को केवल 'सेकेंड सेक्स' के रूप में ही देखते हैं। अशोक वाजपेयी की कविताओं का विश्लेषण करते हुए अरुण लिखते हैं

'अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं में ....स्त्री-पुरुष संबंधों की खोजबीन नहीं है, न यौन-संबंधों का आख्यान। ये मूलतः देह-गाथा है, स्त्री देह का उत्सव मनाती कविताएँ।'[1]

वहीं रघुवीर सहाय जैसे कवि स्त्रियों के सामाजिक पिछड़ेपन को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। 'पढ़िए गीता' कविता में उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था में विषम जीवन स्थितियों के बीच विडंबनाओं की शिकार नारी को प्रतिबिंबित किया है

पढ़िए गीता
बनिए सीता
फिर इन सब में लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर बार बसाइए

होय कटीली
आँखे गीली
लकड़ी सीली
तबियत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली
भरकर भात पसाइए।[2]

'निम्न मध्यवर्गीय नारी की पूरी जीवनगाथा ही इस छोटी-सी कविता में कह दी गई है।'[3]

आलोक धन्वा की 'भागी हुई लड़कियाँ', 'छतों पर लड़कियाँ' कविताओं में सामाजिक कुलीनता की शिकार स्त्रियों की मनोदशा उनकी कुंठा, उनकी घुटन, नैतिकता-अनैतिकता के बीच की जद्दोजहद को रेखांकित किया गया है। वहीं मंगलेश डबराल 'अगले दिन' कविता में उसके दैहिक और मानसिक शोषण को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। जहाँ शादी भी वस्तुतः बलात्कार करने का लाइसेंस बनता जा रहा है। उदयप्रकाश की 'औरतें' कविता में स्त्री-यातना की क्रूरता को दर्शाया गया है। उसकी बेबसी, लाचारी, उसकी कमजोरी को उकेरा गया है

'वह और पर्स से खुदरा नोट निकालकर कंडक्टर से अपने घर जाने का टिकट ले रही है उसके साथ अभी जरा देर पहले बलात्कार हुआ है। उसी बस में एक दूसरी औरत अपनी जैसी ही लाचार उम्र की दो-तीन औरतों के साथ प्रोमोशन और महँगाई भत्ते के बारे में बातें कर रही हैं। उसके दफ्तर में उसके अधिकारी ने फिर मीमो भेजा है।[4]

कामायनी की श्रद्धा आज अद्धा बन गई है। वासनातृप्ति का साधन भर रह गई है। तभी तो कभी वह दामिनी जैसी बलात्कार की शिकार होती है, तो कभी मंडियों की शोभा बन वासनाजनित सामाजिक अराजकता का प्रतीक। सामाजिक नैतिकता इस कदर अधोपतित हो रही है कि धर्मिक स्थल भी आज वेश्यावृत्ति का अड्डा बनते जा रहे हैं। धूमिल की 'सच्चीबात' कविता में इस बात को रेखांकित किया गया है

स्नानघाट पर जाता हुआ हर रास्ता
देह की मंडी से होकर गुजरता है।[5]

21वीं सदी में भी लड़की के जन्म को अभिशाप माना जाता है। 'मगर तुमने यह क्या किया। लड़की को जना'[6] (देवी प्रसाद मिश्र यह एक पंक्ति पूरे इतिहास की त्रासदी का बयान करती है। कभी उसके जन्म से पहले ही 'भ्रूण के अँधेरे में उतरती है हत्यारी कटार'[7] (उदय प्रकाश) तो कभी दहेजलोलुप ससुरालवालों द्वारा आग के हवाले किया जाता है। विष्णु खरे की 'आग' कविता में इसका उल्लेख है।

स्त्रियाँ आज घर के घेरे से बाहर निकल रही हैं, लेकिन उनकी सामाजिक स्थिति आज भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। आज भी वह दोएम दर्जे की ही नागरिक है। सामाजिक पिछड़ेपन का शिकार है। पुरुष सत्तात्मक समाज में आज भी उसकी पहचान रबर स्टांप के रूप में ही है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। अनामिका शिव 'और कोई नाम दो' कविता जहाँ इस तथ्य को दर्शाती है, वहीं असद जैदी की कविता 'बहनें' भी इसी भाव द्योतक है

लकड़ियाँ हैं हम लड़कियाँ
जब हम गीली हैं धुआँ देंगी पर इसमें
हमारा क्या बस है?
हम पतीलियाँ हैं तुम्हारे घर की
भाई, पिता, माँ देखो हम पतीलियाँ हैं।'[8]

डॉ॰ हरि शर्मा लिखते हैं'गीलापन और स्वाद शरीर में भरकर सूखने वाली बहनों का कालिख और चिथड़ों में तब्दील होना उनके जीवन की बहुत बड़ी त्रासदी है।'[9]

आज उपभोक्तावादी संस्कृति में नारी केवल उपभोग की वस्तु बन चुकी है। कभी उसे बाजार में खड़ा कर उसकी बोली लगाई जाती है, तो कभी खुद अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु बाजार में 'युग-नंदिनी विज्ञापन सुंदरी' (नागार्जुन) बनकर बिकने को तत्पर दिखती है। वास्तव में नारी को स्वतंत्रता, समानता के नाम पर केवल शो-पीस बनाने की कवायत चल रही है। गोरख पांडेय केशब्दों में

नारी कानूनन समान है
वह स्वतंत्र भी है
बड़े-बड़ों की नजरों में तो
धन का एक यंत्र भी है।[10]

वास्तव में उसकी स्वतंत्रता पुरुष सत्तात्मक सामंती सोच की चाल है, जो उसे स्वतंत्रता के नाम पर उच्छशृंखल बनाना चाहता है। इस दौर की कविताओं में पश्चिम के नारी मुक्ति आंदोलन से प्रभावित हो 'नारी विमर्श' के नाम पर देह मुक्ति अर्थात् स्त्री देह मुक्ति को प्रश्रय दिया जाता रहा है। विजेंद्र की 'रेलवे पोस्टर' कविता में जवान मछुआरिन को सेक्स सिंबल के रूप में प्रस्तुत करना इसी मानसिकता का द्योतक है। रामकली सराफ इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए कहती हैं'नारी के प्रति इस प्रकार का कुत्सित दृष्टिकोण साहित्य को विशिष्ट वर्ग की सौंदर्यानुभूति तक सीमित कर देने का परिणाम है।'[11]

इस युग में शोषित और भोग्या रूप के अलावा स्त्री के उदात्त रूप का भी दिग्गदर्शन कराया गया है। मातृत्वबोध पर आधारित अनेकानेक कविताओं का सृजन किया गया है। विजेंद्र की 'सामने' कविता एवं राजेश जोशी की 'माँ' कहती हैं' कविता माँ की रागात्मकता को उद्घाटित करती है

सोने से पहले/माँ टुईयाँ के तकिये के नीचे/
सरौता रख देती है बिना नागा/माँ कहती है/
डरावने सपने इससे/डर जाते हैं।'[12]

शंभुनाथ मानते हैं 'कविता मानवीय संवेदना की ठंडी बैटरी को चार्ज करती है। उसका मुख्य लक्ष्य मानवीय संवेदना का पुनर्निर्माण है। उत्तर-आधुनिक सभ्यता में व्यक्ति पुनरुत्थानवादी झुंड का हिस्सा बन रहा है या उपभोक्ता समाज का। ऐसे माहौल में कविता एक बार फिर व्यक्ति के पास लौट आई है, जो न इतिहास के बाहर किसी 'दूसरे समय' में जीता है, न विचारधारा को अंतिम रूप से पराजित मानता है। कविता व्यक्ति के पास लौटी हैशब्द क्रीड़ा के रूप में नहीं, निरंकुश सभ्यता

से मुठभेड़ के मजबूत हथियार के रूप में।'[13]

अतः समकालीन दौर में कविता मनुष्य की प्राकृतिकता, नैसर्गिकता पर चढ़ाए जा रहे बाजारी रंगों को बेधने का कार्य करती है।

समकालीन कविता का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि यहाँ स्त्री के यथासंभव विविध रूपों को अपनी लेखनी में समेटा गया है। एक ओर जनवादी सोच के परिणामस्वरूप उसकी आर्थिक बदहाली, सामाजिक पिछड़ेपन, मानसिक उत्पीड़न, शारीरिक शोषण का बिंब उकेरा गया है, वहीं अभिजन संस्कृति के फलस्वरूप समानता के नाम पर उसकी स्वच्छंदता, स्वतंत्रता के नाम पर उसकी उच्छशृंखलता, दैहिक उन्मुक्तता के नाम पर भोगवादी दृष्टिकोण से संचालित होकर 'देह' का महिमामंडल जैसी मनोवृत्तियों को चित्रित किया गया है। वस्तुतः समकालीन कविता में स्त्रियाँ जहाँ एक तरफ सामाजिक रूप से शोषिता के रूप में चित्रित हुई है, तो दूसरी ओर तितली रूप का भी वर्णन किया गया है। साथ ही उसकी चारित्रिक उदात्तता को भी संघर्षों के मध्य दर्शाया गया है।

संदर्भ

1. कविता और समय, अरुण कमल, पृ॰ 146
2. सीढ़ियों पर धूप में, रघुवीर सहाय, पृ॰ 149
3. रघुवीर सहाय का कवि कर्म, सुरेश शर्मा, पृ॰ 54
4. कविता और समय, परमानंद श्रीवास्तव, पृ॰ 242
5. समकालीन कविता और सौंदयबोध, रोहिताश्व, पृ॰ 103
6. कविता का अर्थात्, परमानंद श्रीवास्तव, पृ॰ 229
7. वही, पृ॰ 242
8. बहनें और अन्य कविताएँ, असद जैदी, पृ॰ 24
9. हिंदी कविता का वर्तमान परिदृश्य, डॉ॰ हरि शर्मा, पृ॰ 86
10. जागते रहो सोने वाले, बंद खिड़कियों से टकराकर, शोरख पांडेय, पृ॰ 20
11. समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ, रामकली सराफ, पृ॰ 208
12. एक दिन बोलेंगे पेड़, माँ कहती है, राजेश जोशी, पृ॰ 12
13. संस्कृति की उत्तरकथा, शंभुनाथ, पृ॰ 88

निकट ए॰वी॰एन॰ हाईस्कूल
छोटा गोविंदपुर
जमशेदपुर (झारखंड) 831015

देवनागरी लिपि : भाषाई समन्वय एवं राष्ट्रीय एकता

प्रा॰ डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
हिंदी विभागाध्यक्ष, एन॰एम॰डी॰ कॉलेज,
गोंदिया (महा॰) 441614

भारतवर्ष का संविधान बनाते समय संविधान के निर्माता एवं जनप्रतिनिधियों ने भारत की राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी लिपि को मान्यता प्रदान की, 14 सितंबर 1950 में नागरी लिपि भारत देश की राष्ट्रलिपि बनी। वैसे देखा जाए तो 19 वीं शती के प्रारंभ से ही देवनागरी लिपि को भारत के जनसामान्य की लिपि बनाने के प्रयास जारी हैं, किंतु भारत की समस्त भाषाओं के लिए वैकल्पिक रूप में नागरी लिपि के प्रयोग के विचार को एक अभियान का रूप देने का श्रेय आचार्य विनोबा भावे को ही जाता है।

विनोबाजी चाहते थे कि प्रत्येक भारतीय अपनी भाषा की लिपि के साथ नागरी लिपि के प्रयोग को राष्ट्र की एकता के हित में स्वेच्छा से स्वीकार करे और उसे व्यवहार में लाए। इस उद्देश्य की पूर्ति में विनोबाजी की प्रेरणा से स्थापित संस्था नागरी लिपि परिषद् सतत् प्रयासरत है ।

राष्ट्रलिपि के रूप में नागरी लिपि की स्थापना के लिए 20 वीं सदी के आरंभ में बंगाल के राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्तियों ने अपनी आवाज़ बुलंद की थी। इनमें राजा राममोहन राय, बंकिमचंद्र अग्रणी थे। देवनागरी की सामर्थ्य को स्वामी दयानंद सरस्वती, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने पहचाना, यही कारण था कि राष्ट्रीय आंदोलन में सर्वसाधारण की लिपि का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण बनकर उभरा था। सन 1905 में कलकत्ता में जस्टिस शारदाचरण मित्र ने सभी भाषाओं के लिए एक लिपि विस्तार परिषद् की स्थापना की और देवनागर पत्र के माध्यम से नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के एक नए युग का सूत्रपात किया। हिंदी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग), नागरी प्राचारिणी सभा (वाराणसी), राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) आदि संस्थाओं के प्रयास भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत में नागरी लिपि के विकास और विस्तार की नई दिशा का सूत्रपात हुआ है, जबकि इसे राष्ट्रीय लिपि के रूप में स्वीकारा गया है। भारत के संविधान के भाग (17) राजभाषा के अध्याय (1) में संघ की भाषा के संदर्भ मे स्पष्टतः उल्लिखित हैसंघ की राष्ट्रभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। प्रथम पंद्रह वर्षों तक यह भी प्रावधान था कि भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का भी उपयोग हो सकेगा। फिर 1963 के राजभाषा अधिनियम में अंकों के देवनागरी रूप को आगे नहीं बढ़ाया गया। इस अधिनियम में हिंदी परिभाषा में देवनागरी की स्थिति पर विशेष बल दिया गया है। (हिंदी से वह हिंदी अभिप्रेत है, जिसकी लिपि

देवनागरी है।)

पिछले चार दशकों में देवनागरी के विकास का संबंध हिंदी, मराठी, और नेपाली के विकास के साथ विशेष रूप से जुड़ा है। इन भाषाओं के साथ-साथ देवनागरी लिपि भी विकसित होती रही है।

नागरी लिपि के संशोधनों को लेकर महात्मा गांधी और काका कालेलकर से लेकर स्वतंत्र भारत में शासकीय स्तर पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय, केंद्रीय हिंदी संस्थान आदि संस्थाओं ने इस दिशा में पर्याप्त कार्य किया है। इस प्रयास से देवनागरी वर्णमाला का एक सर्वसम्मत रूप भी तैयार किया गया है। इस दिशा मे सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि शासन द्वारा शैक्षणिक सामग्री और साहित्य से ही इनकी शुरुआत होनी चाहिए। तभी एकरूपता और सार्वजनीनता के स्तर पर संशोधनों का व्यापक लाभ मिल सकेगा और नागरी राष्ट्रलिपि की भूमिका का सही निर्वाह कर सकेगी।

देवनागरी लिपि मे अंतरराष्ट्रीय ध्वनि लिपि के रूप में अपार शक्ति और संभावनाएँ विद्यमान हैं। वस्तुतः नागरी में विश्व की समस्त उपलब्ध लिपियों की अपेक्षा अधिक वर्ण हैं। संसार की किसी भी भाषा-बोली में शायद ही कुछ ऐसी ध्वनियाँ होंगी, जिनमें मिलती-जुलती या समकक्ष ध्वनियों के लिए नागरी में वर्णों का अभाव हो। इसी प्रकार नागरी वर्णों में नुक्तायुक्त क़, ख़, ग़ आदि प्रयोगों के सदृश विशेष चिह्नों का प्रयोग कर यहाँ अनुपलब्ध ध्वनियों के लिए उपयुक्त वर्ण का निर्धारण किया जा सकता है। इस दृष्टि से देखें तो विश्व की किसी भी भाषा या बोली के समर्थ उच्चारण को सीखने के लिए देवनागरी लिपि सर्वाधिक महत्त्वूर्ण सिद्ध होती है। साथ ही चीनी और जापानी जैसी भाषाओं के लिए भी अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक अनुकूल लिपि बन सकती है।

आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित अँग्रेज़ी, फ्रेंच आदि भाषाओं की रोमन लिपि इन सभी संभावनाओं की कसौटी पर अनुपयुक्त सिद्ध होती है, क्योंकि, उसमें एक ओर समग्र ध्वनियों के लिए उपयुक्त चिह्न अपर्याप्त है, तो दूसरी ओर वर्ण एवं ध्वनि के बीच सुनिश्चित संबंध की भी कमी है। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारे देश की नहीं वरन् विदेश की जटिलतम भाषाओं को सीखने में नागरी लिपि रोमन या अन्य किसी भी लिपि से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस संदर्भ में सत्यकेतु विद्यालंकार का कथन दृष्टव्य है। 'देवनागरी लिपि बहुतपूर्ण है, उससे न केवल भारतीय भाषाओं के अपितु विदेशी भाषाओं के उच्चारण को भी भली-भाँति प्रकट किया जा सकता है।फ्रेंच का उच्चारण विदेशी विद्यार्थी के लिए बहुत कठिन है, यघपि देवनागरी लिपि में विदेशी भाषाओं के शब्दों को लिखा जाना भी अत्यंत सुगम नहीं है, फिर भी रोमन लिपि की अपेक्षा देवनागरी में इन उच्चारणें को अधिक सुगमता से स्पष्ट किया जा सकता है।

सारे भारत में एक लिपि रहे। हम नहीं कहते कि एक ही लिपि रहे। सब लिपियाँ भले ही रहें। साथ में यह नागरी लिपि भी चले। इसीलिए हमें नागरी 'ही' के स्थान पर नागरी 'भी' स्वीकार करना है। नागरी लिपि की वैज्ञानिकता और श्रेष्ठता को दृष्टिगत कर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नागरी लिपि में सीमित संशोधन से भारतवर्ष की सारी भाषाओं और जनजातियों सें संबंधित बोलियों को सरलता से लिपिबद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार नागरी लिपि को संपर्कलिपि के रूप में प्रयोग कर राष्ट्रीय एकता और सामरस्य के भाव को सबल आधार प्रदान किया जा सकता है।

नागरी लिपि उत्तर भारत के विभिन्न प्रांतों को ही नहीं जोड़ती, वरन् वह उत्तर एवं दक्षिण

भारत को भी आपस में जोड़ती है। नागरी लिपि के द्वारा सार्वदेशिक रूप में इसे विस्तार देने की आवश्यकता बढ़ती जार रही है। आचार्य विनोबा भावे ने नागरी लिपि की इस शक्ति को पहचाना था। उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर हम देश की भावनात्मक एकता को और अधिक सबल बना सकते हैं। नागरी परस्पर सद्भावना की लिपि है। वह विश्वएकता का पथ प्रदर्शित कर रही है।

भारत के संविधान अनुच्छेद 342 (1) के अनुसार हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसकी लिपि देवनागरी होगी, किंतु साथ ही यह भी कहा गया है कि 'संघ के शासकीय कार्यों के लिए प्रयोग होनेवाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप होगा।' इस प्रकार केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी की लिपि तो देवनागरी होगी, किंतु अंक देवनागरी के न होकर अंतरराष्ट्रीय रूप में प्रचलित अंक होंगे।

नागरी लिपि सीखने में किसी अन्य भाषाभाषियों को भी लाभ ही मिलेगा। मुस्लिम, पारसी अन्य भाषाभाषियों को भी फ़ायदा है, जैसे उर्दू भी चले उसके साथ हर व्यक्ति नागरी भी सीखें और सब भाषाएँ नागरी में लिखी जाएँ तो बाह्य युक्ति या प्रयत्नों से जो प्रेम और विश्वास साधने में दिक़्क़त होती है, वह लिपि की एकता से सधेगा। संस्कृति और परंपरा की बात लेकर भी नागरी लिपि को कोई दिक़्क़त नहीं है। वह एकता स्थापित करनेवाला एक अवरोधी शस्त्र और शास्त्र है। राष्ट्रीय एकता के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग अनिवार्य है।

सन 1946 में संत विनोबा भावे ने भी भारत की सभी भाषाओं को नागरी लिपि में लिखे जाने का प्रस्ताव रखा उन्होंने कहा है कि 'नागरी लिपि अगर हिंदुस्तान की सब भाषाओं के लिए अपना लें तो हम सब लोग बिल्कुल नज़दीक आ जायेंगे। उसी तरह सन 1936 ई॰ में महात्मा गांधी ने एक लिपि की आवश्यकता की ओर समूचे राष्ट्र का ध्यान आकृष्ट किया और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से एक लिपि के महत्त्व पर प्रकाश डाला है।'

सन 1961 में मुख्यमंत्री-सम्मेलन में राष्ट्रनायकों ने सिफ़ारिश की है कि भारत की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि अपनाना वांछनीय है। इतना ही नहीं यह सभी भाषाओं को जोड़नेवाली एक मजबूत कड़ी का भी काम करेगी और इसी कारण देश के एकीकरण में मददगार साबित होगी। भारत की भाषायी स्थिति में यह जगह केवल देवनागरी ले सकती है। उसकी तत्काल मंजूरी से कठिनाइयाँ सामने आ सकती हैं, किंतु उस पर ध्यान दिया जाना चाहिए और इस कार्य के लिए योजना बनायी जानी चाहिए।

देवनागरी लिपि विविध भाषाओं के साथ अनायास विविध भारतीयों को भी एक माला में पिरोती है। विभिन्न भारतीय भाषाएँ या प्रांतीय भाषाएँ नागरी लिपि में पूर्ण स्पष्टता तथा सुगमता से लिखी जाती हैं। इनके इस नागरी लिपि में लिखित रूप का ठीक उसी प्रकार उच्चारण किया जा सकता है, जिस प्रकार से स्वर भाषा लिपि में उच्चरित होते हैं। नागरी लिपि की यह विशेषता उसे राष्ट्रीय एकता निर्माण करने की पूर्ण क्षमता प्रदान करती है। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि भारतीय आधुनिक लिपियों में सर्वाधिक प्रचलित लिपि देवनागरी है और सर्वाधिक भारतीय भाषाओं को यह एक लिपि में बाँधती है। यदि भारतीय भाषाओं को उनकी मूल लिपियों के साथ नागरी लिपि में भी लिपिबद्ध करने की प्रक्रिया अपना ली जाए तो महान चिन्तकों का विचार एक हृदय हो भारतजननी चरितार्थ

होगा।

आचार्य विनोबा भावे ने इसी तथ्य को दृष्टिपथ में रखकर भाषाई एकता के लिए नागरी लिपि को भारतीय भाषाओं की वैकल्पिक लिपि के रूप में अपनाने का सुझाव दिया था। उनके अनुसार सभी भारतीय भाषाएँ उनकी अपनी लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि में भी लिखी जानी चाहिए। एक लिपि की माँग हमारे यहाँ बहुत पहले से उठायी जाती रही है। कलकत्ता हाइकोर्ट के न्यायाधीश श्री शारदाचरण मित्र को लिपिएकता-आंदोलन का प्रवर्तक माना गया है। बंकिमचंद्र चटर्जी, राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, स्वामी अय्यर, महात्मा गांधी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, डॉ॰ शंकरदयाल शर्मा तथा भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी आदि भी हिंदी भाषा तथा इसकी लिपि देवनागरी के समर्थकों में हैं।

भारतीय संविधान में जो देवनागरी को राष्ट्रलिपि की संज्ञा दी गयी है, उसके पीछे भी यही उद्देश्य विद्यमान था। राजभाषा हिंदी अपनाने का उद्देश्य तभी सफल हो सकता है, जब देवनागरी भी संपूर्ण राष्ट्र में अपना ली जाए। राजभाषा नियम के अंतर्गत राजभाषा के समुचित और प्रणालीबद्ध प्रसार के लिए देश को तीन क्षेत्रों में बाँटा गया है। क्षेत्र क-बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र। क्षेत्र ख-गुजरात,महराष्ट्र और पंजाब तथा अंडमान निकोबार एवं चंडीगढ़ संघ। क्षेत्र ग, क तथा ख क्षेत्रों के अतिरिक्त शेष राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र संविधान के अनुच्छेद 343 (1,2,3) से लेकर अनुच्छेद 351 तक राजभाषा अधिनियम दिए गए है, जिनमें यह भी प्रावधान है कि जब तक संपूर्ण राष्ट्र में लोगों को हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक हिंदी और अँग्रेज़ी के साथ-साथ प्रांतीय भाषा को भी स्थान दिया जाए। ऐसा करके सरकारी कामकाज में रोमन में लिखी हिंदी के साथ ही उस प्रांत विदेश की लिपि में लिखित वहाँ की भाषा को रखने का प्रयास किया गया था। इसका तात्पर्य है कि प्रांतीय भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा को सीखना। वह हिंदी जो देवनागरी में लिखी जाती है। यह एक तरह से देश को एक सूत्र में लाने की दिशा में बड़ा ही सशक्त क़दम था।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि हिंदी हमारी राजभाषा तथा संपर्क भाषा है और उसकी लिपि देवनागरी है। राष्ट्रलिपि देवनागरी को ही राष्ट्रलिपि क्यों बनाया गया? इसका प्रमुख कारण है इस लिपि की व्यापकता, क्षेत्र-विस्तार, ऐतिहासिकता। लिपि की वैज्ञानिकता के संबंध में भारतीय भाषाशास्त्री ही नही विदेशी विद्वान भी इसी तरह आश्वस्त हैं। उन्होंने मुक्तकंठ से इसकी प्रशंसा भी की है। डॉ. कुंजबिहारी वार्ष्णेय के अनुसार'नागरी लिपि अपनी अनेक मर्यादाओं के बावजूद दूसरी लिपियों की अपेक्षाकृत अधिक गुणयुक्त और वैज्ञानिक है।'

पाश्चात्य मनीषी मैकडानल, थामस, जोन्सन, आइजक टेलर तथा जॉर्ज ग्रियर्सन भी ऐसे ही विचार रखते हैं। आइजक टेलर का मत है'वैज्ञानिकता तो इसमें कूट-कूटकर भरी है और भूल तो इसमें हो ही नहीं सकती। संसार की सभी भाषाओं की ध्वनियों को उच्चरित करने की क्षमता देवनागरी ही रखती है। आशुलिपि के आविष्कारक आइजक पिटमैन तो यहाँ तक कहते हैं कि 'संसार की कोई लिपि यदि संर्वाधिक पूर्ण है तो वह एकमात्र देवनागरी लिपि है।'

आज देवनागरी लिपि को विश्व की सबसे श्रेष्ठ और वैज्ञानिक लिपि माना गया है। अमेरिका

में हुए शोध से यह सिद्ध होता है कि कम्प्यूटर के लिए सबसे अनुकूल देवनागरी लिपि है।

महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रनेता हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी के प्रयोग को उचित मानते थे। आचार्य विनोबा भावे देवनागरी लिपि को भारत की जोड़ लिपि के रूप में देखते थे। उनका मानना था कि 'भारत में दक्षिण की चारों भाषाएँ अलग-अलग होने से वे एक-दूसरे से दूर हैं। नागरी लिपि के प्रयोग से वे एक-दूसरे के समीप आएँगी।' उनका मानना था कि 'एशियाई देशों को देवनागरी लिपि एक-दूसरे के करीब ला सकती है।' प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू कहते हैं कि,'भारत की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि अपनाना वांछनीय है। इतना ही नहीं, यह भी भाषाओं को जोड़नेवाली एक मजबूत कड़ी का काम करेगी और इसी कारण देश के एकीकरण में मददगार साबित होगी। भारत की भाषाई स्थिति में यह जगह केवल देवनागरी लिपि ले सकती है। उसकी तत्काल मंजूरी से कठिनाइयाँ सामने आ सकती हैं, किंतु उस पर ध्यान दिया जाना चाहिए और इस कार्य के लिए योजना बनाई जानी चाहिए।' इसी तरह देश के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि 'देवनागरी लिपि ही भारतीय भाषाओं के लिए सर्वोत्तम लिपि है, जिसके माध्यम से राष्ट्रीय एकता की सुप्त भावना को जाग्रत और चेतन किया जा सकता है।'

भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी भाषा जितनी उपयोगी रही है। उससे बढ़कर नागरी लिपि सब भाषाओं को एक सूत्र में बाँध देने में अधिक सक्षम है। अतः भारत की सभी भाषाएँ नागरी लिपि में लिखना अधिक लाभदायक है। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रांतीय लिपि का स्थान नागरी लिपि ले लेगी। दोनों लिपियाँ साथ-साथ चलेंगी। लिपि एक होगी तो कई भाषाएँ सीख सकेंगे। जो लोग अँग्रेजी भाषा सीखना चाहते हैं, वे पहले नागरी लिपि के द्वारा अँग्रेज़ी सीख लें तत्पश्चात् रोमन लिपि सीख सकेंगे। भारत की विविध भाषाओं के बीच में एक संम्पर्क लिपि, जोड़ लिपि या सहलिपि के रूप में नागरी लिपि बहुत हद तक एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसे जोड़ लिपि स्वीकार करने पर भारतीय भाषाओं के बीच निकटता का संबंध बढ़ सकता है। राष्ट्रीय एकता बढ़ सकती है।

नगरी लिपि में प्रकाशित उर्दू साहित्य बहुत लोकप्रिय हुआ है। आजकल भारतीय भाषाओं के बीच में आदान-प्रदान का कार्य हो रहा है। भाषा आपस में एक-दूसरे के निकट आ रही है। उत्कृष्ट साहित्य को नागरी लिपि के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास हो रहा है। प्राचीनकाल में भी पल्लव और चोल राजाओं के शिलालेखों में नागरी लिपि का प्रयोग देखने को मिलता है। तेलुगु में श्री वारणासि राममूर्ति 'रेणु' ने नागरी लिपि में तेलुगु महाभागवत्, जिसका सृजन पोतन्ना जी किया है, लिखा है।

सभी विद्वान, चिंतक सारी भाषाएँ या लिपियाँ जानें या सीखें। हर व्यक्ति किसी एक भाषा में रचित साहित्य की किसी एक विधा का संपूर्ण साहित्य भी नहीं, एक-एक रचना को भी नागरी लिपि में अनुवादित करने का प्रयत्न करता है, तो हमारे नागरीप्रेमी पूर्वजों द्वारा निर्देशित मार्ग जनमार्ग बनकर जन-जन तक पहुँच जाएगा और भारतवासी न केवल बाहरी दृष्टि से अपितु दिल से भी जुड़ जाएँगे।

आचार्य विनोबा भावे का स्वप्न था कि नागरी लिपि पूरे विश्व की लिपि बनेगी। राष्ट्रीय एकता में नागरी लिपि अपना योगदान दे रही है। अतः हमारा कर्तव्य है कि नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार में अपना संपूर्ण योगदान प्रदान करें तथा नागरी लिपि में ही हम लिखने का प्रयास करें।

निष्कर्ष

1 विश्व के अधिकतर लोग नागरी लिपि को सीखने का प्रयास कर चुके हैं।
2 अधिकतर राष्ट्रों के अंतर्गत नागरी लिपि में लिखने का क्रम शुरू हो गया है।
3 नागरी लिपि विश्व की दूसरी लिपियों की अपेक्षा अधिक गुण-युक्त और सरल है।
4 नागरी लिपि विविध भाषाओं के बीच संपर्कलिपि के रूप में कार्य कर रही है।
5 नागरी लिपि भाषाई समन्वय करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी कर रही है।
6 नागरी लिपि राष्ट्रीय एकता निर्माण करने का भी अहम कार्य कर रही है।

संदर्भ

1. नागरी संगम, संपादक : डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल, त्रैमासिक, नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली, मार्च 2003
2. नागरी संगम, त्रैमासिक, संपादक डॉ॰ परमानंद पांचाल, नागरी लिपि परिषद्, दिल्ली, अप्रैल-जून 2005
3. नागरी संगम, त्रैमासिक, अप्रैल-जून 2006
4. नागरी संगम, त्रैमासिक
5. नागरी संगम, त्रैमासिक, जुलाई-सितंबर 2011
6. नागरी संगम, त्रैमासिक, जनवरी-मार्च 2012
7. नागरी संगम, त्रैमासिक, अक्टूबर-दिसंबर 2011

हिंदी-व्यंग्य का आधुनिककाल

पंकजकुमार डी॰ पटेल
एम॰ए॰एम॰फिल, शोध्छात्र

भूमिका

हिंदी साहित्य के इतिहास के आधुनिककाल का प्रथम चरण 'भारतेंदुयुग' में हुआ। भारतेंदुयुग से लेकर द्विवेदीयुग, शुक्लयुग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में व्यंग्य-विधा का क्रमशः विकास होता चला। अँग्रेजों की रीति-नीति के परिणामस्वरूप भारतवासियों के जीवन में अनेक समस्याएँ घर करती जा रही थी। अतः इन साहित्यकारों के पास ऐसे भीषण समय में व्यंग्य ही एक ऐसा सशक्त माध्यम था, जिसके द्वारा अपने हृदय की पीड़ा और आक्रोश को व्यक्त किया जा सकता था।

भारतेंदुयुग

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने देश की पराधीनता और कुप्रथाओं पर अपने व्यंग्यों से ज़ोरदार प्रहार किया। जब उन्होंने देखा कि भारतीय स्वाभिमान तथा धर्म की गरिमा को भूलकर साधारण से स्वार्थ के लिए अँग्रेजों की स्तुति करते हैं तो उन्होंने 'लेवी प्राण लेवी' में तीखा व्यंग्य किया है। जैसे'कोई तो दूर से ही हाथ जोड़े आए और दो एक ऐसे थे कि एडीकांग के बदन झुककर इशारा करने पर भी उन्होंने सलाम न किया तो एडीकांग ने पीठ पकड़कर उन्हें धीरे से झुका दिया।'[1]

भारतेंदुयुगीन साहित्यकारों में पं॰ बालकृष्ण भट्ट का विशेष रूप से उल्लेखनीय स्थान है। भट्ट जी स्वभाव से परम धार्मिक होते हुए भी धर्म के नाम पर व्याप्त अंधविश्वासों और रूढ़ियों से उन्हें अत्यंत चिढ़ थी। फलस्वरूप उनकी लेखनी पाखंडियों पर निरंतर व्यंग्य वर्षा करती रही। उनके लिए धर्म न तो मठ-मंदिरों में था, न पूजा-पाठ में और न तीर्थ-प्रवास में। तीर्थों के अनाचार, पंडे-पुरोहितों की लालची प्रवृत्ति, धर्म के नाम पर फ़िजूलख़र्ची, बाह्याडंबर, जाति-पाँति, छुआछूत आदि कोई भी ऐसी धार्मिक विसंगति नहीं, जिसे उन्होंने व्यंग्य की बारीक नोंक से न कुरेदा हो। 'अकील अजीरन', 'गदहे में गदहापन क्या है', 'ईश्वर क्या ही ठिठोल है', 'पुलिस, वकील, हाकिम चलन की गुलामी', 'इंग्लिश पढ़े सो बाबु होय', 'नाम निगोड़ों भी बुरी बला है' आदि निबंध व्यंग्य-विधा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र के व्यक्तित्व में निराला का आकर्षण था। इनके चुलबुले प्राण इनकी रचनाओं मुखरित हैं। भट्ट जी ने अपने निबंधों में धर्म से संबंधित असंगतियों-विसंगतियों को छोड़ा नहीं। इसका उदाहरण 'धोखा' नामक निबंध में मिलता है। जैसे'इन दो अक्षरों में भी न जाने कितनी शक्ति है कि इनकी लपेट से बचना यदि निरा असंभव न हो तो भी महाकठिन अवश्य है, जबकि भगवान रामचंद्र ने मारीच राक्षस को सुवर्ण मृग समझ लिया था, तो हमारी क्या सामर्थ्य है जो धोखा न खाएँ?'[2]

श्री राधाचरण गोस्वामी 'यमपुर' की यात्रा कराने वाले प्रखर व्यंग्यकार के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। आपने भारतेंदु की स्त्रोत शैली को भी स्वीकार किया है। 'नापित स्तोत्र', 'मूबक स्तोत्र', 'रेलवे स्तोत्र', 'वैद्यराज स्तोत्र' आदि स्तोत्रों के अतिरिक्त 'होली', 'तुम्हें क्या मिस्टर बूट' आदि रचनाओं में भी सहज व्यंग्य-प्रवाह देखा जा सकता है। गोस्वामी जी प्रगतिशील चिंतक हैं। 'यमपुर की यात्रा' राजनीतिक उत्पीड़न, सामाजिक पाखंड और धार्मिक अंधविश्वासों पर भीषण और गहरा आघात करने वाला शक्तिशाली व्यंग्य निबंध है।

बालमुकुंद गुप्त को भारतेंदुयुगीन साहित्यकारों में प्रौढ़ रचनाकार के रूप में पहचाना जाता है। इतना ही नहीं बीसवीं शताब्दी के पहले व्यंग्यकार के रूप में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। 'एक दिन शिवशंभु खटिया पर पड़े बसंती बूटी की लहरों का आनंद ले रहे थे कि कानों में 'चलो चलो आज खेलें होली, कन्हैया घर' गीत की पंक्तियाँ उनके कानों में पड़ीं और उनका चिंतनशील मन अँग्रेजी शासकों के साथ प्राचीन भारतीय राजाओं की तुलना करने में व्यस्त हो गया। वे सोचने लगे'क्या भारत में कभी ऐसा भी समय था, जब प्रजा के लोग राजा के साथ होली खेलते थे और राजा-प्रजा मिलकर आनंद मनाते थे? क्या इसी भारत में राजा लोग प्रजा के आनंद को किसी समय अपना आनंद समझते थे? अच्छा यदि आज शिवशंभु अपने मित्रवर्ग सहित अबीर गुलाल की झोलियाँ भरे रंग की पिचकारियाँ लिए अपने राजा के घर होली खेलने जाएँ तो कहाँ जाएँ? राजा दूर सात समुद्र पार है। राजा का केवल नाम सुना है। न राजा को शिवशंभु ने देखा है न राजा ने शिवशंभू को। खैर राजा नहीं, उसने अपने प्रतिनिधि को भारत में भेजा है। क्या उस राजप्रतिनिधि के घर जाकर शिवशंभु होली नहीं खेल सकता?'[3]

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भाषा और शब्द-प्रयोग के द्वारा व्यंग्य उत्पन्न करने में माहिर थे। आलसी आदमियों पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं'बहुतेरों का जीवन भारभूत-सा हुआ रहता है। दिन-रात जँभाते बीतता है। इनकी दीर्घसूत्रता और दिन-रात के बर्ताव को देखने से यही जान पड़ेगा मानो ये अपने को अमर समझे हुए हैं। बहुतेरे खूब खाकर पेट पर हाथ फेरते पान कूचते तकिया का आश्रय ले पंलग पर जा सो जाते हैं और बारह-चौदह घंटा अपना समय नींद में खोते हैं।'[4]

द्विवेदीयुग

भारतेंदुयुग का अगला चरण द्विवेदीयुग है। इस युग में व्यंग्य ने हास्य को छोड़कर प्रहारात्मकता और करुणा को भी अपनाया। हास्य के साथ इस युग में रचित व्यंग्य में गंभीरता का विकास हुआ।

महावीरप्रसाद द्विवेदी उस युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार थे। आधुनिक हिंदीगद्य के जनक रूप में विख्यात द्विवेदीजी का महत्त्व सर्वविदित है। 'दंडदेव का आत्मनिवेदन' एक ऐसा सशक्त निबंध है जिसमें स्वार्थपूर्ति के लिए बल-प्रयोग करने, लाठी को आजीविका बनाने और दंड को अनुशासन का मूलमंत्र मानने वाले शक्तिजीवियों पर अच्छा करारा व्यंग्य किया गया है। इस निबंध की कुछ पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं'भारत में ऐसे हज़ारों आदमी हैं, जिनकी जीविका के आधार एकमात्र हम हैं, थाना नाम के देवस्थान में हमारी ही पूजा होती है। हमारी कृपा और सहायता के बिना हमारे पुजारी, पुलिसमेन एक दिन भी अपना कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकते।'[5]

धर्म के प्रति अत्यंत उदार दृष्टिकोण रखने वाले गुलेरीजी के निबंधों में अनेक स्थानों पर धर्मगत संकीर्णता और रूढ़िवादिता का तीव्र विरोध देखने को मिलता है। व्यंग्य की उद्भावना में गुलेरी जी ने शिष्ट और परिस्कृत रुचि का परिचय दिया है। गुलेरी जी का व्यंग्य पाठक को केवल हँसाता और गुदगुदाता ही नहीं है, अपितु उन्हें सोचने, समझने और विचार करने के लिए भी मजबूर कर देता है।

गुलाबराय के निबंधों में वैयक्तिकता और भावात्मकता का आधिक्य है। वस्तुतः बाबू गुलाबराय के निबंधों का अपना ही रंग है। जीवन के हल्के-फुल्के प्रसंगों को लेकर लिखे गए ये निबंध मध्यमवर्गीय अभावों, सीमाओं और विवशताओं की ऐसी सहज व्यंजना करते हैं कि हँसी के बीच करुणा की लीक भी अचानक खिंच जाती है। उदाहरणार्थ 'मेरा मकान' एक मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी की जीवन के उत्तरकाल में मकान बनाने की अभिलाषा और उसकी पूर्ति के मार्ग में आने वाली मुश्किलों का व्यंग्यपूर्ण लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। दलाल सस्ते दामों का लालच देकर लेखक को गड्ढे वाला प्लाट दिला देते हैं। जिसकी प्लिंथ भरते-भरते ही उसका सारा पैसा समाप्त हो जाता है। निबंध की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं'दो सौ रुपयों में गड्ढा भर जाने की बात में आ गया और बात की बात में बयनामा कर लिया। बयनामा के समय कचहरी का सच्चा अर्थ मालूम हो गया'कचं केश हरतीति कचहरी।' जो कुछ जोड-बतौड, काढ मूसकर रुपये ले गया था, सब उठ गए। हक के भव्य नाम से पुकारी जाने वाली रिश्वत भी दी।'[6]

शिवपूजन सहाय के ललित निबंधों में भी व्यंग्य का हास्यसंवलित रूप आकर्षक बन पड़ा है। उनका प्रसिद्ध निबंध 'मैं हज्जाम हूँ' इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। उक्त निबंध की इन पंक्तियों में दूसरों को ठगकर अपना उल्लू सीधा करने वाले व्यावसायियों की निबंधकार ने अच्छी हजामत बनाई है। शिवपूजन सहाय लिखते हैं'(आदमी में नौआ, पंछी में कौआ) इस प्रसिद्ध कहावत के अनुसार मेरी धूर्तता भी जगजाहिर है। इसलिए वर्तमान युग में सर्वत्र मेरी जाति का बोल-बाला है। सभी देशों और क्षेत्रों में मेरी जाति के लोग पाए जाते हैं, भले ही वे जन्मणा हज्जाम न हों, पर कर्मणा तो निश्चय ही हैं। मेरे छुरे से छूटी हुई दाढ़ी तो पनपती भी है, पर कर्मणा हज्जाम और व्यवसायी (मुंडन मर्चेंट) जिनकी हजामत बनाते हैं, उसकी चाँद गंजी कर डालते हैं। उनके मुँडे हुए सिर सदा के लिए रुंडमुड बन जाते हैं।'[7]

हरिशंकर शर्मा यों तो उस युग के हास्य-लेखकों में माने जाते हैं, किंतु उनके निबंधों में हास्य गुदगुदी के बीच कहीं-कहीं व्यंग्य की सूक्ष्म-सी रेखा उद्दीप्त होकर उन्हें अर्थवत्ता दे जाती है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'संपादक जंतु' में यही विशेषता दृष्टिगोचर होती है। निष्ठावान् पत्रकार की नियति का यथातथ्य चित्रण इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है, 'यों तो यह जंतु मुल्क के हर हिस्से में पाया जाता है। मगर शहरों की सड़ी-बुसी बस्तियों में बहने वाली नरक गलियों की बदबूदार हवा सूँघकर अपनी किस्मत को कोसना इसे बहुत पसंद है।'[8]

शुक्लयुग

सन् 1921 से भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति से पूर्व का समय हिंदी-निबंध की विकास-यात्रा में 'शुक्लयुग' के नाम से जाना जाता है। शुक्लयुग में आकर निबंध-रचना के प्रति साहित्यकारों का दृष्टिकोण पूरी तरह परिवर्तित हो जाता है।

द्विवेदी युग के बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल की अगुवाई में हिंदीगद्य विशेषतः निबंध-साहित्य प्रगति-पथ पर अग्रसर था, तो दूसरी ओर पश्चिमी साहित्य की निकटता के कारण छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों का प्रचलन भी बढ़ा। प्रस्तुत युग के प्रेरणास्रोत शुक्ल जी रहे। शुक्लयुग में भी व्यंग्यात्मक निबंध प्राप्त होते हैं। शुक्लजी आचार्य वामन के मत का समर्थन करते हुए गद्य को कवियों की कसौटी मानते रहे। आपके निबंध चिंतामणि भाग1 में संगृहीत हैं। आचार्य शुक्ल जी 'लोभ और प्रीति' निबंध में देशप्रेम की डींगभरी गर्वोक्ति करने वाले के संदर्भ में कहते हैं कि'प्रेम हिसाब-किताब की बात नहीं है, हिसाब-किताब करने वाले भाड़े पर भी मिल सकते हैं, पर प्रेम करने वाले नहीं।'[9]

हजारीप्रसाद द्विवेदी गंभीर, चिंतन-प्रधान निबंधों के लिए जाने जाते हैं। व्यंग्य उनकी प्रकृति का अंग नहीं है, किंतु भारतीयता के प्रति उनका गहरा लगाव कहीं-कहीं विरोधी दृष्टि के प्रति प्रहारक हो उठा है और ऐसे प्रसंगों में उनका व्यंग्य अत्यंत तीक्ष्ण, नुकीला और मर्मभेदी बन गया है। 'फिर से सोचने की आवश्यकता है' निबंध में तो अँग्रेज़ी भक्तों के प्रति उनका आक्रोश व्यंग्य की उन कलात्मक ऊँचाइयों तक पहुँचा है, जिन्हें बहुत कम व्यंग्यकार छू पाए हैं। वे लिखते हैं'यह क्या भारतवर्ष का परम सौभाग्य नहीं है कि उसकी आधी फ़ीसदी जनता इस संसार की सर्वश्रेष्ठ भाषा से परिचित है? इस महामहिमामयी भाषा की तुलना में देशी भाषाओं में क्या धरा है? सिर गिनने से देश का काम नहीं चलता, हमें दिमाग़ गिनना है। तुम कहते हो देश की जनता सौ फ़ीसदी देशी भाषा जानती है, यह केवल सिर गिनना मात्र है।'[10]

प्रस्तुत युग में माखनलालजी के व्यंग्यात्मक निबंध प्राप्त होते हैं। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'साहित्य देवता', 'अमीर इरादे ग़रीब इरादे', 'समय के पाँव', 'चिंतक की लचारी' आदि है, 'साहित्य देवता' निबंध में समालोचक की कार्य-प्रणाली पर मार्मिक प्रहार किया गया है। जैसे'समालोचना के जगत् में इस बात का ख़्याल नहीं रखना पड़ा। यहाँ तो अनेक बाल-लेखकों का संहार कर, समालोचन की छाप जमानी होती है।'[11]

बख्शी जी का नाम समर्थ निबंधकार के रूप में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। आपके निबंधों में जीवन, समाज, साहित्य, संस्कृति, धर्म की विविध समस्याओं पर विचार किया गया है। जाति-भेद, अंधश्रद्धा, समाज, धर्म, रूढ़ियाँ, जहाँ-तहाँ विसंगति दिखाई दी, उन्होंने व्यंग्य अवश्य कसा है।

शुक्ल जी के साथ श्री सियारामशरण गुप्त, श्री वियोगी हरि, श्री हरिशंकर शर्मा और श्री बेढब बनारसी आदि रचनाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग में व्यंग्य की दृष्टि से श्री जे॰पी॰ श्रीवास्तव का नाम भी उल्लेखनीय है। जे॰पी॰ श्रीवास्तव की रचनाओं में हास्य की प्रधानता है। श्री हरिशंकर शर्मा भी इसी पथ का अनुगमन करते हैं। सियारामशरण गुप्त ने 'घोड़ाशाही' में व्यंग्य-शैली का सजीव एवं आकर्षक वर्णन किया है। बेढब बनारसी ने राजनीति को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने आपबीती 'मुझे मेरे मित्रों से बचाओ' में प्रस्तुत की है। 'मेरी हिमाकत' नामक रचना में इनका व्यंग्य विनोद का सहचर बनकर आता है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

स्वातंत्र्योत्तर काल में हम व्यंग्य के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण मोड़ पाते हैं। व्यंग्य

अन्य विधाओं के कोने में आश्रय तलाश करने की बजाए स्वयं एक विधा बन जाता है। व्यंग्य का वर्तमान स्वरूप प्रकृति और बनावट में पूर्ववर्ती व्यंग्य से सर्वथा भिन्न है। यह सात्त्विक आक्रोश को कलात्मक अभिव्यक्ति है और जन-चिंतन को उद्‌बुद्ध करता है। विषय-व्यापकता इसकी सर्वोपरि विशेषता है। आज के व्यंग्यकार की दृष्टि में अद्‌भुत समग्रता आई है, जो समस्त परिवेश को अपने फोकस में समेट लेती है।

हरिशंकर परसाई का लेखन अनुभवों की व्यापकता और विचारों की गहराई दोनों से संपन्न है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, निबंध, लघुकथा आदि विभिन्न साहित्यरूपों में प्रचुर मात्रा में व्यंग्य लिखा है। 'भ्रष्टाचार नियोजन आंदोलन' भ्रष्टाचार की सर्वव्यापकता पर व्यंग्य करता है। हालत यह है कि हमारे देश में जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का राज्य है। जहाँ नहीं है, वहाँ किसी आदर्श या नैतिकता के आग्रह से ऐसा हो, यह बात नहीं अपितु कारण यह है कि वहाँ भ्रष्टाचार के लिए अवसर या गुंजाइश नहीं होती। हरिशंकर परसाई ने भ्रष्टाचार की जाँच करने वाली संथानम कमेटी की सिफ़ारिशों के संदर्भ में यह व्यंग्य लिखा था। वे कहते हैं'गेहूँ, शक्कर आदि की तरह भ्रष्टाचार भी हमारी जनता के एक बड़े भाग को उसका लाभ नहीं मिल पाता। समाजवाद सबका समान हित देखता है, पर हमारे यहाँ कुछ मुहकमे और कुछ वर्ग तो इसका पूरा लाभ उठाते हैं और कुछ वंचित रह जाते हैं।' वे आगे लिखते हैं कि'संथानम समिति को सि फ़ारिश करनी थी कि हर शिक्षक गर्मी की छुट्टियों में एक्साइज़ मुहकमे में काम करेगा। पोस्ट ऑफ़िस का बाबू हर इतवार को रेलवे स्टेशन पर टिकट कलेक्टर का काम करेगा। कॉलेज के लेक्चरर गर्मी की छुट्टियों में लोककर्म विभाग में काम करेंगे।'[12]

महानगरीय जीवन के विरूप यथार्थ व्यंग्य की कलात्मक तीक्ष्णता प्रदान करने वाले हिंदी-व्यंग्यकारों के बीच श्रीलाल शुक्ल ही एक ऐसे व्यंग्यकार हैं, जो ग्रामीण जीवन के प्रश्नों से अधिक रूबरू हुए हैं। वैसे जहाँ तक राजनीतिक दुःस्थितियों का सवाल है, उन्हें नगरों, उपनगरों या गाँवों की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। ग्रामीण यथार्थ के तो एक-एक पहलू का साक्षात्कार 'रादरबारी' में वे करा ही चुके हैं, नागरी जीवन की अन्यान्य स्थितियों से भी उनका खासा परिचय है। उपर्युक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त उनके अनुभवजगत् में अँग्रेज़, अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ीयत पर फिदा होने से भी उनका खासा परिचय है। उपर्युक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त उनके अनुभवजगत् में अँग्रेज़ों (आह, वे दिन) से लेकर पूजा-पाठ और कर्मकांड में लीन किंतु आधुनिकता के आग्रही कुत्तों के शाक़ीनों (कुत्ते और कुत्ते) तक; छात्रों की अनुशासनहीनता का रोना रोने वाले भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और उनके पिट्ठू शिक्षाशास्त्रियों (छात्रों में अनुशासनहीनता) से लेकर किसी भी मौत तक का स्वार्थ-सिद्धि के लिए इस्तेमाल करने वाले अवसरवादियों तक अनेक प्रकार के चरित्र मौजूद हैं।

लतीफ़ घोंघी के व्यंग्य का दायरा बहुत व्यापक है। व्यापक इस अर्थ में कि उन्होंने जीवन के छोटे-से छोटे प्रसंगों से लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं तक सैकड़ों विषयों को उसमें समेट लिया है। बीच-पच्चीस संग्रहों में संकलित चार सौ से अधिक व्यंग्य रचनाएँ इस व्यापकता का प्रमाण हैं। लतीफ़ घोंघी ने भारतीय राजनीति के अनेक पहलुओं पर लिखा है। साहित्य जगत् की विकृतियों से भी घोंघी का खूब साबका पड़ा है। 'नवोदित, बल्कि नौसिखिए', 'कवियों की कुछ सुनाने की तीव्र लालसा' उनमें से एक है। एक बार व्यंग्यकार एक ऐसे ही साहित्यकार बुद्धिजीवी के चंगुल में फँस जाते हैं। प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं'मैंने कहाकष्ट के लिए क्षमा करें। मैं चलता हूँ। वे

बोलेबैठिए भी! इतनी जल्दी भी क्या है? अब परिचय हो गया है, तो दो-चार आंचलिक चीज़ें ही सुनते जाइए और इसके पहले कि मैं बाहर जाने की कोशिश करता, उन्होंने उठकर दरवाज़े की सिटकनी लगा दी। मैंने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा तो लगा जैसे एक युग बीत गया। रीतिकाल, भक्तिकाल, वीरगाथाकाल और आपातकाल सभी गुज़र गए इस बीच।'[13]

यदि व्यंग्य को बाह्य अथवा आंतरिक धरातल पर स्वानुभूत संवेदनाओं की प्रतिक्रिया माना जाए, तो बालेंदुशेखर तिवारी हिंदी व्यंग्य में अपना सानी नहीं रखते। उनके व्यंग्य उस दुनिया से सीधे जुड़े हैं, जिसमें वे रहते हैं। 'रिसर्च गाथा' की भूमिका में वे लिखते हैंजिस इलाके में मैं रहता हूँ, उसकी कुल पाँच समस्याएँ हैंकापियाँ जाँचकर उसके बिल को चेक रूप में प्राप्त करना, तरक्की पाना, पाठ्यक्रम में पुस्तकें लगवाना, समितियों में सदस्य बनना और सहकर्मियों के कार्यकलापों की शास्त्रीय समीक्षा करना इन्हीं पाँच समस्याओं से बँधे विश्वविद्यालय के सुधी विद्वानों के बीच खाकसार को भी रहना पड़ता है।'[14]

शंकर पुणतांबेकर ने विपुल मात्रा में व्यंग्य लिखा है। उनके व्यंग्य का फलक भी काफ़ी व्यापक है। उसमें भ्रष्ट नेता है, दुष्ट अफ़सर हैं, शोषक पूँजीपति हैं, पाखंडी धर्मगुरु हैं और वे सब लोग हैं, जो हमारी भ्रष्ट व्यवस्था के अंग हैं। दूसरी ओर व्यवस्था के शिकार शोषित-पीड़ित इंसान हैं, जो मूल्यों से चिपके न केवल अभावग्रस्तता की पीड़ा झेल रहे हैं, अपितु प्रतिष्ठा के नए अर्थाधिष्ठित मानदंडों ने जिन्हें बिल्कुल ही बौना बना दिया है। एक मृत अध्यापक जब नरक के स्वामी यमराज के सामने पेश होता है, तो वह सहज स्वीकार नहीं करता कि नरक के मालिक यमराज हैं। वह उनसे प्रश्न करता है, 'आप कबसे नरक के मालिक बन गए? नरक के मालिक तो ये आपके जैसे नहीं, दूसरी तरह के कपड़े पहनते हैं। बाल भी इस तरह लंबे और फैले हुए नहीं होते। सिर पर उनके टोपी होती है।'[15]

प्रेम जनमेजय के व्यंग्य के पीछे एक व्यापक जीवन-दृष्टि है, जो पूँजीवाद, आडंबर और रूढ़िवादिता की विरोधिनी होते हुए भी किसी नारेबाज़ी में विश्वास नहीं रखती। 'राजधानी में गँवार' प्रेम जनमेजय की एक बहुचर्चित और बहुप्रशंसित रचना है, जो एक ग्रामीण व्यक्ति आत्मा की विपन्नताओं के माध्यम से महानगर की वंचक शक्तियों को बेपर्द करती है। राजनीतिक विडंबनाओं पर प्रेम जनमेजय ने सशक्त व्यंग्य रचनाएँ दी हैं। 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' अध्ययन और अनुसंधान के लिए अध्यापकों को जो सवैतनिक छुट्टी देता है, उसे 'स्टडी लीव' कहा जाता है, परंतु अनुभवी विद्वानों ने इसे 'पढ़ाई से अवकाश' बना दिया है।

हिंदी व्यंग्य के 'गुलेरी' अशोक शुक्ल की व्यंग्य-रचना 'किस्सा किस्मत बदलाई के केस का' हिंदी-व्यंग्य में वही स्थान पाने की अधिकारिणी है, जो हिंदी-कहानी में 'उसने कहा था' का है। प्रशासनिक जगत् की सबसे भीषण बीमारी है रिश्वत जिसके संक्रामक कीटाणु अब विश्वविद्यालय के कक्षों में भी जा घुसे हैं। बकौल अशोक शुक्ल, 'हर कमरे में, हर दफ़्तर में चश्मा लगाए ऑटोमेटिक मशीनें बैठी थीं, जो सिक्के डालने पर अपने आप काम करने लगती थीं। सौदागर ने एक कमरे में घुसने की कोशिश की, लेकिन दरवाज़े के पास स्टूल पर बैठी मशीन ने हाथ बढ़ाकर उसे अंदर जाने से रोक दिया। सौदागर बड़ा गुनी, जादू जाने, मंतर जाने। उसने पहने तो अपने गुरु का स्मरण किया, फिर पढ़ा झुक-झुककर तीन बार असली चपरासी स्तवन मंत्र और चढ़ा दी मशीन के चरणों पर एक

कंचन अशर्फी! मशीन पिघलकर कुत्ता बन गई। दुम हिलाने लगी।'[16]

अजातशत्रु के व्यंग्य यदा-तदा पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे हैं, किंतु पुस्तक रूप में उनका एक ही संग्रह देखने में आया है'आधी वैतरणी'। 'आधी वैतरर्णी' में प्रशासनिक भ्रष्टाचार की कथाएँ हैं। 'चमड़े के सिक्के' भी इंस्पेक्टर स्तरीय भ्रष्टाचार की कहानी है, जो यथाप्रसंग शिक्षा-जगत् की भी कलाई खोलता है।

प्रच्छन्न व्यंग्य के नुकीले सर्जक और विसंगतियों पर सार्थक आक्रमण करने वाले व्यंग्यकारों में डॉ॰ नरेंद्र कोहली ने अपनी पहचान हिंदी-व्यंग्य के क्षेत्र में बना ली है। इनका व्यंग्य सोददे्श्य है अतः वे विशिष्ट सोच को लेकर भारत को जगाने का प्रयत्न अपनी रचनाओं द्वारा करते रहते हैं। डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी कोहली के व्यंग्य साहित्य संदर्भ में कहते हैं'नरेंद्र कोहली का व्यंग्य साहित्य इस देश की विभिन्न विसंगतियों पर तीखा प्रहार करने में अग्रणी है और इसी कारण व्यावहारिक सच के एकदम निकट है। आज के वातावरण की स्वस्थ भर्त्सना कोहली ने की है और स्वरूप मानसिकता को कौशलपूर्वक जगाया है।'[17]

इंद्रनाथ मदान ने अपने आस-पास के परिवेश को काफ़ी गहराई से देखा-परखा है, अतः उनकी रचनाएँ व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर पल्लवित तथा पुष्पित हुई हैं। राजनीति-नेताओं, चुनावों के हथकंडे आदि को किसी को भी मदान ने नहीं छोड़ा, राजनीति को पेशा समझने वाले नेताओं पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि'यह भी एक नया धंधा है, जो देश में पनप गया है। लोकतंत्र की देन है। देश की सेवा का दम भरने के बाद वे अपनी सेवा में लग जाते हैं। उनकी नौकरी कच्ची होती है, उन्हें कभी भी बरखास्त किया जा सकता है। इनके पास न तो पेंशन का सहारा होता है और न ही प्रोविडंड फंड का भरोसा। वे कुछ ही समय में अपनी ज़िंदगी का इंतज़ाम करना चाहते हैं और अगर हो सके तो अपनी संतान की ज़िंदगी का भी, और लोग इन्हें बुरा-भला कहना शुरू कर देते हैं। आख़िर राजनीति भी तो एक पेशा है, जिसमें कमाने के अपने तौर-तरीके हैं।'[18]

डॉ॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी व्यंग्य में हास्य की हाज़िरी आवश्यक मानते हैं'शुगर कोटेड पिल्स' की तरह हास्यमय व्यंग्य को अच्छा मानते हैं। इस संबंध में वे कहते हैं'हाँ, इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाए कि हास्य की मात्रा इतनी अधिक न हो जाए कि व्यंग्य का प्रभाव ही नष्ट हो जाए। व्यंग्य में जितनी अधिक मात्रा वक्र उक्तियों की होगी, जितनी इसमें वचनविदग्धता होगी, जितनी अधिक प्रेषणीयता होगी उतना ही वह प्रभावी होगा।'[19] चतुर्वेदी जी ने अपने व्यंग्य-प्रहारों के लिए साप्ताहिकों, पाक्षिकों और मासिक पत्रिकाओं जैसे सशक्त माध्यमों को पसंद किया। उनकी रचनाएँ सोद्देश्य हैं।

श्री के॰पी॰ सक्सेना हास्य के तरकस से व्यंग्य का लक्ष्य-वेध करने में बड़े ही माहिर हैं। गद्य-व्यंग्य को मंच पर प्रस्तुत करने वाले अब अकेले बादशाह हैं। श्री सक्सेना जी का व्यंग्य बहुआयामी और बहुविध कथ्य से युक्त है। श्री के॰पी॰ सक्सेना जी के खट्टे-मीठे व्यंग्य को हर किसी ने पसंद किया है, तारीफ़ की है। व्यंग्यकार स्वयं अपनी अनुभूति को इन शब्दों में व्यक्त करता है'समाज के हर वर्ग को अपने ढंग से उघाड़ा है मैंने। कहीं-कहीं परत-दर-परत दर्द की तहें हैं, तो कहीं-कहीं सैलाब-ए-तबस्सुम।'[20]

अपने जीवनकाल में श्री राधाकृष्ण ने 500 से अधिक हास्य-रचनाएँ और 100 से अधिक व्यंग्य-रचनाओं का लेखन किया और धीरे-धीरे व्यंग्य की धार को भी पैनापन दिया है। लेकिन दुर्भाग्य

की बात है कि उनके जीते जी तो क्या मरणोपरांत भी उनके व्यंग्य का कोई संकलन अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। राधाकृष्ण ने हास्य की मनोरंजन योजना की अपेक्षा अपनी ताजी व्यंग्य रचनाओं में व्यंग्य की प्रहारक शक्ति का प्रयोग किया है। शाब्दिक हास्य के स्थान पर गर्भित व्यंग्य को अपना लक्ष्य बनाते हुए उन्होंने पौराणिक एवं पंचतंत्रात्मक कथाओं को नई नज़र से देखा है और नए अंदाज़ में प्रस्तुत किया है।

श्री केशवचंद्र वर्मा ने व्यंग्य को पुरानेपन से मुक्त कराकर उसे आधुनिक बोध से संपृक्त कराने का प्रयास अपने विशिष्ट अंदाज़ में पूरी सफलता के साथ किया है। साहित्य-साधक, चिंतक, विचारक के रूप में विख्यात केशवचंद्र वर्मा ने अपने साहित्य-सृजन द्वारा हिंदी गद्य-व्यंग्य से समृद्ध किया है। किस्सा-गोई शैली और परिस्थितियों की सूक्ष्म पड़ताल के साथ व्यंग्य की प्रस्तुती वर्मा जी के व्यंग्य की विशेषताएँ हैं। 'अफलातूनों का शहर' वर्मा जी की साहित्यिक व्यंग्य चेतना का सुंदर उदाहरण है। लेखकीय परिवेश का कोई कोना इस संकलन की रचनाओं में अछूता नहीं बचा है। इलाहाकाद के साहित्यकारों और हिंदी के आम साहित्यकारों की सारी खोखली मान्यताओं और सैद्धांतिक लफ़्फ़ाजियों का उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता के साथ विवेचन किया है।

सुदर्शन मजीठिया बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न स्वातंत्र्योत्तर काल के सशक्त और सफल व्यंग्यकार है। मजीठिया जी की व्यंग्य-रचनाओं में 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'पब्लिक सेक्टर का साँड', 'इंडीकेट बनाम सिंडीकेट' आदि प्रमुख हैं। 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' में अपने व्यंग्य-कर्म संबंधी अपनी मान्यताएँ इस प्रकार प्रस्तुत की हैं'यदि शहर में जितने ज्यादा डॉ॰ हो मतलब उतने ही प्रमाण में रोगियों की संख्या भी बढ़ रही है। व्यंग्यकारों की संख्या बढ़ रही है तो समाज अपने ही ग़रीबाँ में झाँककर क्यों नहीं देखता?'[21]

शरद जोशी और रवींद्रनाथ त्यागी का नाम हिंदी-व्यंग्यकारों की मूर्द्धन्य त्रयी में हरिशंकर परसाई के साथ लिया जाता है। उनके व्यंग्य में स्पृहणीय सहजता और सुबोधता है, जो उन्हें आम पाठकों के करीब लाती है। उन्होंने विपुल मात्रा में व्यंग्य-लेखन किया है और सामाजिक जीवन के प्रायः हर पहलू का स्पर्श किया है। हाँ, जहाँ तक राजनीति का प्रश्न है, त्यागी जी ने उस वर्ग की विकृतियों पर अपेक्षाकृत कम लिखा है और जोशी जी ने ज्यादा लेखन राजनीति विसंगतियों पर किया है। 'एक भूतपूर्व मंत्री से मुलाकात' में देखिए शरदजी ने कितनी ठंडक से खिल्लियाँ उड़ाई हैंमंत्री पद छोड़ने पर कैसे हाल हैं? पूछने पर नेताजी बताते हैं'उसी तरह मस्त हैं जैसे पहले थे। हम पर कोई फर्क नहीं पड़ा। हमने पहले से ही सिलसिला जमा लिया था। मकान, ज़मीन, बंगला कर लिया। किराया आता है। लड़के को भैंस दुहना आ जाए, तो डेरी खोलेंगे और दूध बेचेंगे : राजनीति में भी रहेंगे और बिजनेस भी करेंगे। देश के भविष्य की सोचते थे, तो क्या अपने भविष्य की नहीं सोचते। छोटे भाई को ट्रक दिलवा दिया था। ट्रक का नाम रखा है देश-सेवक। परिवहन की समस्या हल करेगा। कृषि-मंत्री था, तब जो खुद का फार्म बनाया था, अब अच्छी फ़सल देता है। जब तक मंत्री रहा, एक मिनट खाली नहीं बैठा, परिश्रम किया, इसी कारण आज सुखी और संतुष्ट हूँ। हम तो कर्म में विश्वास करते हैं। धंधा कभी नहीं छोड़ा, मंत्री थे तब भी किया।'[22] यह कहने में संकोच नहीं कि शरद जोशी और रवींद्रनाथ त्यागी हिंदी साहित्य में हरिशंकर परसाई के बाद के महान व्यंग्यकार हैं।

भारतेंदुयुग के बाद द्विवेदी युग तथा शुक्लयुग में क्रमशः हिंदी व्यंग्य साहित्य का विकास होता चला। स्वातंत्र्योत्तर काल के कुछ प्रमुख व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाने का भागीरथ कार्य किया और आज भी व्यंग्य क्रमशः विकास की यात्रा को पार करता हुआ निरंतर आगे बढ़ रहा है। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में व्यंग्य आरंभ से लेकर स्वाधीनता-प्राप्ति के काल तक हिंदी साहित्य के विकास के साथ आगे बढ़ रहा है। लगभग सभी युगीन व्यंग्यकारों ने इस क्षेत्र में अपनी कलम चलाई है और उसे और भी अधिक संपन्न एवं समृद्ध बनाने में अपना अमूल्य योगदान देते रहे हैं।

संदर्भ

1. भारतेंदु ग्रंथावली (भाग 3), सं॰ ब्रजरत्नदास, पृ॰ 851
2. हिंदी के प्रतिनिधि व्यंग्य निबंधकार, डॉ॰ राजकिशोर सिंह, डॉ॰ उषा यादव, पृ॰ 45
3. शिवशंभू के चिट्ठे, बालमुकुंद गुप्त, पृ॰ 27
4. हिंदी व्यंग्य बदलते प्रतिमान, डॉ॰ तेजपाल चौधरी, पृ॰ 84
5. वही, पृ॰ 91
6. हिंदी व्यंग्य बदलते प्रतिमान, डॉ॰ तेजपाल चौधरी, पृ॰ 92
7. वही, पृ॰ 94
8. वही, पृ॰ 94, 95
9. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गद्य में व्यंग्य, डॉ॰ हरिशंकर दुबे, पृ॰ 45
10. हिंदी व्यंग्य बदलते प्रतिमान, डॉ॰ तेजपाल चौधरी, पृ॰ 93
11. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गद्य में व्यंग्य, डॉ॰ हरिशंकर दुबे, पृ॰ 46
12. हिंदी गद्य-लेखन में व्यंग्य और विचार, सुरेशकांत, पृ॰ 66, 67
13. हिंदी व्यंग्य बदलते प्रतिमान, डॉ॰ तेजपाल चौधरी, पृ॰ 159
14. वही, पृ॰ 161
15. वही, पृ॰ 169
16. सारिका (1) मार्च 1979, अशोक शुक्ल, पृ॰ 30
17. हिंदी-व्यंग्य के प्रतिमान, डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी, पृ॰ 27
18. हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी, पृ॰ 220, 221
19. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, डॉ॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी, भूमिका
20. हिंदी व्यंग्य के प्रतिमान, डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी, पृ॰ 31
21. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सुदर्शन मजीठिया, पृ॰ 14
22. जीप पर सवार इल्लियाँ, शरद जोशी, पृ॰ 50, 51

'वृंदावन'
ग्राम पोस्ट बालीसणा, तहसील प्रांतिज
जि॰ साबरकांठा 383205 **गुजरात**
मो॰ 9879079353

मीडिया का बदलता चेहरा

डॉ॰ ओमप्रकाश सैनी
एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
आर॰के॰एस॰डी॰ कॉलेज, कैथल (हरियाणा)

सूचना क्रांति के विस्फोटक युग में मीडिया के सम्मुख बाज़ार भी है, मौसम भी है, संभावनाएँ भी हैं और चुनौतियाँ भी। भारत जैसे देश में क़रीब एक लाख पत्र-पत्रिकाएँ पंजीकृत हैं। महानगरों से लेकर छोटे-बड़े क़स्बों तक फैले इन अख़बारों पर किसका मालिकाना हक़ है अर्थात् इनका प्रबंधन, संचालन कौन करता है? ये प्रश्न बड़े अजीबो-गरीब हैं। यूं कहिए कि देश के दो-चार अख़बारों को छोड़ बाकी पर बड़े-बड़े पूँजीपतियों एवं राजनेताओं का कब्ज़ा है। वास्तव में प्रेस, प्रौद्योगिकी, पूँजी और पोलिटिक्स के बिना नहीं चल सकती।

वर्तमान पत्रकारिता में पूँजी का अहम रोल है। यही वजह है कि पूँजी के अर्थशास्त्र में उलझी प्रेस बुराईयों को चुनौती देने की ताक़त खोती जा रही हैं। वह उद्योग का दर्जा अख्तियार कर रही है। वह भी एक ऐसा उद्योग, जो केवल मुनाफ़ा देने वाला हो। यही वजह है कि पत्रकारिता अपना दायरा फैलाने के लिए ऐसे सरोकारों का निर्माण कर रही है, जहाँ से पीछे मुड़कर देखने की उसे कतई आवश्यकता नहीं है। अब ऐसे अख़बार और दुर्लभ हैं, जिनमें विज्ञापन, राशिफल और भविष्यवाणियाँ न छपती हों। ऐसा इसलिए है कि ये जनता की माँग को पूरा करने के साथ-साथ औद्योगिक विकास में भी सहायक है। प्रसिद्ध पत्रकार प्रभु जोशी ने जनसत्ता की बढ़ती माँग पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि'अब और नहीं आप जनसत्ता मिल बाँटकर पढ़िए। इस तथ्य की ओर संकेत करता हैकि अब पत्रकारिता उद्योग बनने की होड़ में है। बदलती हुई परिस्थिति में संपादक और पत्रकार की स्थिति किसी संस्थान के प्रबंधक सरीखी हो गई है। आज अख़बार विज्ञापन छपकर बतौर कमीशन अच्छा-खासा धन बटारेते हैं। कहते हैं'कोयले की दलाली में सबका मुँह काला।' उपभोक्ता संस्कृति के खिलाफ आवाज उठाने पत्रकार, अख़बार स्वयं उपभोक्ता संस्कृति का झंडा बुलंद किए हुए हैं। वे बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयों (अख़बारों) के विपणन एवं विक्रय एजेंट बनकर अपने लक्ष्य से भटक रहे हैं। अख़बार अपने आपको किसी लजीज आकर्षक कमोडिटी की तरह प्रस्तुत करते हैं। मतलब वे अख़बार को प्रोडेक्ट बना रहे हैं तथा लुभावने उत्तेजक नारों के साथ उसे उपभोक्ता-पाठक के सम्मुख परोस रहे हैं। औद्योगिक उत्पादन में पैकेजिंग पर विशेष ध्यान केंद्रित किया जाता है जिससे बढ़ती हुई कीमत का भार उपभोक्ता को उठाना पड़ता है। पत्रकारिता में मुखपृष्ठ की साज-सज्जा रंगीन पृष्ठों की भरमार तथा अनावश्यक तस्वीरों की छपाई के पीछे यही फंडा काम करता है। आकर्षक शीर्षक तथा समाचार प्रस्तुति के नए-नए तौर-तरीक़े इसी प्रक्रिया के अभिन्न अंग है। अनेक बार शीर्षक इतना पैनापन लिए होते हैं कि सत्य धूमिल दिखाई देता है अर्थात् पाठक-समाज क्षणिक संतोष का अनुभव

करता है, किंतु अतृप्त रहता है। औद्योगिक उत्पादन की भूमिका भी ऐसा ही रोल अदा करती है।

बदलते परिवेश में आधुनिक टेक्नोलॉजी ने समाचार पत्रों तथा अन्य समाचार माध्यमों की क्षमता बढ़ा दी है। करोड़ों-अरबों लोगों की अभिव्यक्ति का ठेका एक समचार पत्र ले सकता है। परिणामस्वरूप पत्रकारिता एक विकसित उद्योग बन चुकी है, जिसमें पत्रकार नामक एक नए कर्मचारी वर्ग का उदय हुआ है। उद्योग चलाने वाला पूँजीपति इस उद्योग की कार्य संपन्नता के लिए प्रशिक्षु पत्रकार रूपी मजदूरों को तराशता है। मीडिया उद्योग के लिए यह शर्त है कि समाज में प्रतिबद्धता विहीन लेखक श्रमिकों का एक नया वर्ग पैदा किया जाए। यानी ट्रेनिंग के दौरान ही उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाए जो मालिकवर्ग के अनुकूल हो। नयी पीढ़ी का पत्रकार इस धर्म को बख़ूबी निभा रहा है। वह लेखक या विचारक के रूप में नहीं प्रशिक्षु पत्रकार के रूप में निखरकर सामने आता है। आज भी अनेक बुद्धिजीवी संपादक ठोक बजाकर यह दावा करते हैं कि उनके काम में किसी का बाहरी हस्तक्षेप नहीं हुआ है। ठीक है बड़े घरानों (अख़बारों) का संपादक चुने जाने के पीछे एक रहस्य यह भी है कि उसे अक्लमंद होना चाहिए ताकि मालिक को कोई दख़ल न देना पड़े। यदि भाग्यवश पत्रकार संस्कारवान है यानी समाज के प्रति प्रतिबद्ध है तो निश्चित रूप से उसके कार्य में दखल देना पड़ सकता है अन्यथा कभी नहीं।

भारतीय लोकतंत्र का चौथा पाया 'मीडिया' इस समय दिशाहीन होता जा रहा है। देखा जाए तो जीवन का हर पक्ष चाहे वह राजनीति है, व्यापार है, मनोरंजन है या समाज सभी मीडिया द्वारा संचालित है। 2008 फिक्की की सालाना रिपोर्ट के मुताबिक पिछले चार सालों में भारतीय मीडिया ने आठ करोड़ साठ हज़ार ऑडियंस का इजाफ़ा किया है, जोकि आगामी वर्षों में और ज्यादा बढ़ेगा। यानी धीरे-धीरे मीडिया एक बड़े वर्ग के सान्निध्य में आता जा रहा है। यह सान्निध्य लोगों की चेतना को विकसित करने की बजाय उसे गुमराह कर रहा है। ख़बरों को सनसनीखेज बनाने के लिए तथ्यों की बलि दी जा रही है। बी॰बी॰सी॰ के इंडिया अफ़ेयर्स के एडीटर संजय श्रीवास्तव ने कहा था कि अब पत्रकारिता मिशन न रहकर व्यावसायिक बनती जा रही है। अब इंडियन एक्सप्रेस के मालिक रामनाथ गोयनका जैसे जुनूनी मालिक और संपादक नहीं रहे। दरअसल, संपादकों की सत्ता अब मालिकों और मार्केटिंग वालों ने हथिया ली है, चाहे वे इसे सार्वजनिक तौर पर स्वीकार न करें, लेकिन सत्य यही है कि आज बाज़ार चैनलों को नियंत्रित कर रहा है।

भारतीय मीडिया ने मुनाफ़ाख़ोरी की जो राह पकड़ी है, उससे उसके पाँव जमीन से पूरी तरह उखड़ गए हैं। वह हवा में उड़ता है और ज़मीनी हकीकत से उसका कोई वास्ता नहीं है। इस दिशा में यदि कुछ ठोस किया जा सकता है, तो दर्शकों पाठकों को जाग्रत और सक्रिय बनाकर ही किया जा सकता है। हम न भूले कि मीडिया/कारोबार में दर्शक सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी है और चैनल उसकी रुचियों, कुरुचियों का हवाला देकर ऊल-जलूल छापतेदिखाते हैं। इसलिए इस कड़ी को ही कसना होगा। यह रास्ता लंबा और कठिन है, मगर आज की एकमात्र महाशक्ति बाज़ार और मुनाफ़ाख़ोरी के महालालच से टकराना भी तो आसान नहीं है।

भारत में अनेक प्रकाशनगृह एक साथ हिंदी और अँग्रेजी दोनों भाषाओं में समाचार पत्र निकालते हैं। यथाजनसत्ता और इंडियन एक्सप्रेस एक ही समूह से जुड़े हुए हैं। वहीं नवभारत टाइम्स और टाइम्स ऑफ इंडिया तथा द ट्रिब्यून, द हिंदू और हिंदुस्तान ऐसे ही एकल स्वामित्व पर आधारित

अख़बार समूह हैं। ऐसे प्रकाशनगृहों के लिए कर्म खर्च की दृष्टि से ही अनुवाद व्यवस्था उपलब्ध होती है। एक संवाददाता किसी एक भाषा में समाचार संगृहीत करता है और दूसरी भाषा में उसका अनुवाद कर लिया जाता है। ऐसी स्थिति में कई बार अनुवादक का द्विभाषिया होना भी ज़रूरी हो जाता है।

मीडिया (जनसंचार) की भाषा तथा ज्ञान-विज्ञान की भाषा में बड़ा अंतर है। रेडियो और टेलीविजन दृश्य-श्रव्य संचार माध्यम है। यहाँ मौखिक संप्रेषण पर बल दिया जाता है, जबकि प्रिंट मीडिया में लिखित भाषा का प्राधान्य है। मौखिक अभिव्यक्ति में तत्कालिकता की मात्रा अधिक होती है, विशेषकर जब चर्चा-परिचर्चा हो या समाचार आदि का तुरंत प्रसारण करना हो। इसके अलावा अगर किसी दूसरी भाषा में आए समाचार का अनुवाद करना हो तो वहाँ तत्त्काल अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है और पारिभाषिक शब्दों के लिए भी पर्याय ढूँढने पड़ते हैं। ऐसे अवसरों पर अनुवादक को तत्परता, सहजता एवं विवेकशीलता से कार्य करना होता है। सहज-बोधगम्यता जनसंचार माध्यमों की भाषा का प्रमुख लक्षण है। इसलिए किसी भी तथ्य को गैर-तकनीकी और बोधगम्य ढंग ये पाठक या श्रोता तक पहुँचना वक्ता या अनुवादक का ध्येय होता है। इलैक्टॉनिक मीडिया में दृश्य-श्रव्यता होने के कारण केवल शब्द ही नहीं, बल्कि वक्ता के हाव-भाव तथा आंगिक संकेत भाषा अभिव्यक्ति के पूरक होते हैं। दृश्य-विधान की रोचकता और चित्रात्मकता के कारण यह विधा अन्य सभी माध्यमों से अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावी सिद्ध होती है।

जनसंचार के क्षेत्र में विशेषकर प्रिंट मीडिया में अनुवाद बड़ी जल्दबाजी में किया जाता है। खबर मिलते ही उसे तुरंत अनूदित करके पाठक या श्रोता के सम्मुख परोसा जाता है। कई बार अनुवादक के पास इतना समय नहीं होता है कि विषय पर गंभीरता से चिंतन किया जा सके, क्योंकि विभिन्न पत्र-पत्रिकओं में एक तरह की व्यवासायिक होड़-सी बनी रहती है, लेकिन इसके मायने यह नहीं है कि पत्रकारिता के क्षेत्र में अनुवाद में अर्थ की दृष्टि से छूट ली जाती है। ऐसा करने से समाचार की विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है। कथ्य का सही प्रस्तुतीकरण जनसंचार माध्यमों का दायित्व है। अतः आशु अनुवाद के बावजूद तथ्यों की प्रामाणिकता पर आँच न आए, यह पत्रकारिता का मूलमंत्र है। साथ ही अनुवाद की भाषा में बोलचाल की भाषा से निकटता कायम करने का भरसक प्रयास किया जाता है। दूसरी ओर भाषा में तत्सम, तद्भव शब्दों से लेकर लोकभाषाओं के शब्दों तथा उर्दू, अँग्रेजी आदि के शब्दों का मिला-जुला रूप दिखाई देता है। भाषा में रवानगी लाने के लिए लोकप्रचलित एवं मुहावरों का खूब प्रयोग किया जाता है। यथा'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे', 'वही ढाक के तीन पात', 'आखिर प्रशासन के दामन पर लगे दाग' हिंदी समाचार पत्रों में अँग्रेज़ी के शब्दों और वाक्यों की छाया भी बहुतायात में देखने को मिलती है-हुडा, कॉन्फेड, मैनेजर, कंपयूटर, मोबाइल आदि। ऐसे हीडब्लयू॰ टी॰ओ॰, डब्लयू॰ एच॰ओ॰ आर॰बी॰आई॰, आई॰एम॰एफ॰, डी॰डी॰ए॰ एन॰जी॰ओ॰ आदि ऐसी अँग्रेज़ी संक्षिप्तयाँ हिंदी में प्रचलित हैं यथा मनरेगा, भाजपा, सपा, बसपा, इनेलो, सप्रंग आदि।

संक्षेप में केवल इतना कहा जा सकता है कि जनसंचार माध्यमों में भाषा का अपना प्रमुख स्थान है। यह कहीं अनुवादक की मनोवृत्ति के अनुकूल काव्यात्मक एवं चुटीली दिखाई देती हैं, तो कहीं स्थानीय परिवेश की रंगत में रँगी अर्थवत्ता को ग्रहण करती प्रतीत होती है।

सुपुत्र श्री रामजीलाल सैनी
मं॰नं॰ 589/16 **आउट साइड चंदाना गेट, कैथल** 136027
मो॰ 09466544566

श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण, एक तात्त्विक दृष्टि

कादंबरी मिश्रा
(शोध छात्रा) संस्कृत
डॉ॰ मोहिनी पांडेय, निर्देशिका
प्राचार्या गोकुलदास गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद

संपूर्ण श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के विभिन्न तात्त्विक स्वरूपों का निर्देश तत्त प्रसंगों में अनेक प्रकार से प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत के मंगलाचरण[1] और उपसंहार[2] में 'सत्यं परं धीमहि' कहकर जिस सत्य का अनुध्यान किया गया है, वह श्रीकृष्ण का ही निर्विशेष तत्त्व-रूप है। इसी को विवक्षा-भेद से अद्वयज्ञान, तत्त्व, ब्रह्म, परमात्मा या भगवान कहा जाता है।[3]

इस रूप में भागवत के श्रीकृष्ण, सत्तामात्र और संपूर्ण विशेषणों से रहित परतत्त्व हैं,[4] उनके इसी स्वरूप को 'ब्रह्म ज्योतिर्निर्गणं निर्विकारम्' भी कहा गया है।[5] वस्तुतः यह स्वरूप किसी नाम के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसका ख्यापन केवल निषेध-विधि से ही संभव हो पाता है, इसीलिए भागवतकार उसे 'निषेधशेष' तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं।[6] यदि वहन हो तो निषेध भी उपपन्न नहीं हो सकता।[7] श्रीमद्भागवत ने इस तत्त्व-स्वरूप को श्रुतियों की भाँति[8] इंद्रिय, मन, बुद्धि और वाणी से अवेद्य कहा है।[9]

यह निर्गुण, निर्विशेष, निष्कल, निष्क्रिय, अनादि, अनंत एवं अद्वय है। इसका न कोई जन्म है और न किसी निश्चित कर्म का ही आरोपण इसमें किया जा सकता, अतएव निश्चित नाम-रूप भी इसके नहीं कहे जा सकते और इसीलिए गुण और दोषों की कल्पना से भी यह असंपृक्त ही रहता है।[10]

इस तत्त्व को सद्रूप मान लेने का अर्थ है सत् चित् और आनंद रूप में उसे असद् भिन्न, जड़भिन्न एवं दुःखभिन्न स्वीकार करना; क्योंकि निषेध पद्धति से तो उसके विषय में कुछ कहा ही नहीं जा सकता, अतएव प्रतिपादन में कुछ कहा ही नहीं जा सकता, अतएव प्रतिपादन-सौकर्य-हेतु विधेय लक्षण रूप से वह सत् के साथ चित् और आनंद भी माना जाता है। सत्ता चेतनता और आनंदरूपता उसके गुण नहीं, अपितु साक्षात् स्वरूप हैं। उसको 'चित्' तत्त्व के रूप में अनेकत्र विविध ढंग से प्रतिपादित किया गया है। यथा

ज्ञान मात्रं परं ब्रह्मं।[11]
चिन्मात्रमेकमभयम।[12]
नमो विज्ञानपात्राय।[13]
ब्रह्मस्वयं ज्येतिरतो विभाति।[14]
स्वयं प्रकाशाय नमस्करोमि।[15]

इसी प्रकार आनंदरूपता का निरूपण करने वाले भी सैकड़ों स्थल हैं, जिनमें कुछ स्थलों का दिङ्निर्देश किया जा रहा है। जैसेकेवलानुभवानंदस्वरूपं [16] परमानंदमूर्त्तये[17] इत्यादि।

श्रीमद्भागवत ने इस रूप में श्रीकृष्ण को संपूर्ण सृष्टिप्रपंच का अधिष्ठान कहते हुए अपने सर्गादि-लक्षणलक्षित दसवें और अंतिम लक्षण 'आश्रय' के रूप में सिद्ध किया है। संपूर्ण भागवत में सर्गादि-नवलक्षणों की प्रवृत्ति इस दशम 'आश्रय' के विशुद्धिकरण (स्पष्टीकरण) हेतु ही है यह वहाँ स्पष्टतया कहा गया है।[18] जगत् की प्रतीयमानसत्ताआभास, और व्यष्टिगत प्रकृतिलय (ज्ञान) अथवा समष्टिगत प्रकृतिलय (प्रलय) रूप-निरोध ये दोनों तत्त्व जहाँ अध्यवसित होते हैं, वही 'आश्रय-तत्त्व' है। उसी को परब्रह्म और परमात्मा आदि नामों से शाब्दित किया जाता है।[19] द्वादश स्कंध में भी 'अपाश्रय' शब्द के द्वारा ब्रह्म को ही अधिष्ठान कहा गया है।[20] इस परब्रह्म में ही संपूर्ण जगत् अध्यस्त है।[21] इस अधिष्ठानसत्ता का सम्यक् विवेचन 'चतुःश्लोकी-'भागवत' में अच्छी प्रकार से व्यक्त हुआ है।[22]

इस प्रकार तो उनका तात्त्विक ब्राह्मस्वरूप है, किंतु वे ही सृष्टि-सापेक्षता से लीला के लिए अपनी माया-शक्ति को स्वीकार करके परम पुरुष (श्रीमद् भा॰ 1/2/23), मायापति (श्रीमद्भागवत 1/2/30) सर्वज्ञ, अखिल शुभगुणाश्रय बनते हैं। यही उनका पुरुषावतार है (श्रीमद् भा॰ 10/3/1-2), त्रिगुणमयी माया को स्वीकार करने के अनंतर ब्रह्मा-विष्णु-महेश रूप देवत्रयी में ये ही सत्त्वनिधि (10/4/26-27) पालयिता श्री हरि के रूप में प्रकट होते हैं। उनके इस पुरुष रूप और विष्णुविग्रह से अनेक प्रकार के कार्य-साधक अवतारों का प्रादुर्भाव हुआ करता है।

सत्त्वनिधि श्री हरि के ये अवतार असंख्य हैं,[23] जिनमें बाइस या चौबीस जो प्रधान माने जाते हैं, वे सभी उक्त पुरुष स्वरूप-आद्य-अवतार के ही अंश-कला आदि हैं, किंतु इन अवतारों की गणना में अंतर्भुक्त होने पर भी श्रीकृष्ण पुरुषावतार के अंश नहीं अपितु साक्षात् भगवान् है।[24] अतएव भागवत की कृष्णलीला साक्षात् भगवान् की ब्राह्म और ऐश्वर दोनों स्वरूपों से संबद्ध सहज लीला है। श्रीकृष्ण का यह भागवत्स्वरूप, ब्रह्म या परमात्मा का ही अपर पर्याय है। ये अकर्ता, अजन, हृत्पति (10/4/35) होकर भी चतुर्व्यूहात्म (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) के रूप में अंतर्यामी और उपास्य बनते हैं। ये श्रीकृष्ण ही सबके त्रेयोरूप आत्मा है, इस आत्मप्रेम की दिशा को स्पष्ट करने हेतु ही परम प्रेमास्पद के रूप में ये अपनी योगमाया का आश्रय लेकर मूर्तीभूत हुए हैं, क्योंकि सभी का परमप्रिय अपना आत्मा ही है, अतएव उसी से वास्तविक प्रेम संभव हो पाता है।[25]

संक्षेप में भागवतकार के मतानुसार यही श्रीकृष्ण का तात्त्विक स्वरूप है। भागवत के प्रतिपाद्य भगवान श्रीकृष्ण, केवल षडैश्वर्यविभूतिमत्ता तक ही सीमित नहीं है,[26] वह साक्षात् परमतत्व, ईश्वर, अंतर्यामी, अवतार एवं अवतारी सभी कुछ हैं। वे अंश भी हैं और सब भगवत्स्वरूपों के एकमात्र अंशी भी है। मनुष्य रूप में अवतीर्ण होने के कारण वे मानवोचित स्वभाव से संयुत होकर भी सर्वथा, दिव्य, अप्राकृत और अमर्त्य हैं। उनके विषय में इदमित्थमुकुछ कहना संभव नहीं, अतएव उनकी लीला का आयाम भी अत्यंत व्यापक और जटिल है। उनकी कथा का तात्त्विकस्वरूप, मानवीय सीमाओं से अत्यंत परे और दुरूह है, अतएव कौनसा चरित्र उनके किस स्वरूप की लीलेच्छा-संभूति है।

श्रीकृष्ण का तात्त्विक रूप

श्रीमद्भागवत का समग्र पर्यालोचन करने पर यह सुव्यक्त हो जाता है कि इस ग्रंथ का

प्रतिपाद्य ग्राम्यकथाएँ या मात्र मनोरंजनात्मक इतिवृत्त नहीं है। इसकी उद्‌भूति तो परम निवृत्ति-प्राप्ति-रूप महत् उद्देश्य को लेकर हुई है, अतएव इसमें पल्लवित कृष्णकथा भी उसी महदुद्देश्य की साधिका होनी चाहिए। संपूर्ण भागवत में मुख्यतः तीन वक्तृ-श्रोतृ-युग्म कल्पित किए जा सकते हैं। यथा

1. भावुक पाठकों अथवा श्रोताओं और ग्रंथकार (व्यास) का संवाद रूप प्रथम युग्म।

2. 'नैमिषारण्यवासी ऋषियों के प्रतिनिधि महर्षि शौनक तथा उग्रश्रवा सूत का संवाद-रूप द्वितीय युग्म।

3. परीक्षित शुक-संवाद रूप तृतीय युग्म।

श्रोता-वक्ता के क्रम से ये ही तीन संवाद संपूर्ण भागवत कथा के आधार हैं। व्यास-नारद, विदुर-मैत्रेय आदि के अवांतर-संवाद इन्हीं में अंतर्भुक्त हो जाते हैं। यों, इन तीनों में भी परस्पर अंतर्गर्भता की प्रणाली है। अर्थात् परीक्षित-शुक संवाद, शौनक-सूत संवाद के अंतर्गत तथा यह शौनक-सूत संवाद भी भागवत्कार की संहिता में अंतर्निहित हो जाता है। ये तीनों क्रम इस प्रकार हैं

1. भावुकों और भागवतकार का संवाद रूप प्रथम युग्म।

2. शौनक तथा सूत का संवाद रूप द्वितीय युग्म।

3. परीक्षित शुक-संवाद रूप तृतीय युग्म।

श्रीकृष्ण चरित का समीक्षण

यद्यपि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में, जिसे अवतारवाद का एक प्रमुख आधार-ग्रंथ माना जाता है, ईश्वर के अवतरण का मूल उद्‌देश्य साधुपरित्राण और दुष्टदलन रूप धर्म-संस्थापन ही माना गया है,[27] किंतु भक्तों की रसमयी विचारधारा में भक्तानुग्रह और आनंदवादी लीला-कल्पना को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया। श्रीमद्‌भागवत के कृष्णावतार प्रयोजन में इन दोनों प्रकार के सिद्धांतों की स्वीकृति प्राप्त होती है। अवतारवादी धारणा महाभारत, गीता, हरिवंश तथा अन्य पुराणों में स्पष्टतया देखी जा सकती है, इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य के कुछ स्थलों में भी विष्णु के प्रारंभिक अवतारों का संकेत मिलता है।

श्रीमद्‌भागवत में मुख्यतः तीन प्रकार के अवतार माने गए हैंपुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार।[28] इनमें पुरुषावतार, क्षीरसिंधुशायी नारायण कहे जाते हैं। इनका ही गुणभेद से अंगीकृत मूर्तित्रयात्मक रूप गुणावतार है, जिनसे सत्त्व-गुणाधिष्ठाता वैकुण्ठाधिपति विष्णु प्रधान है; प्रायः सभी लीलावतार इनसे ही होते हैं; किंतु अवांतरकाल में पुरुष से तादात्म्य मानकर ही इनको अवतीर्ण हुआ माना जाता है अथच सभी अवतार इस पुरुष-रूप के ही सिद्ध हो जाते हैं। लीला-अवतारों में भी परिपूर्णतम, पूर्णतम, पूर्ण, अंश, कला तथा अविशादि अन्य अवतार कोटियाँ अन्यत्र प्राप्त होती हैं, किंतु भागवत में सुव्यक्त रूप से 'अंश' और 'कला' इन दो शब्दों का ही उल्लेख प्राप्त होता है।

तत्तत् मन्वन्तरों में होने वाले हरि, यज्ञ, अजित आदि अवतारों को, जिन्हें व्याख्याकारों ने 'मन्वन्तरावतार' कहा है, भागवतकार ने भगवान् का अंशावतार ही स्वीकार किया है। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के चतुष्ट्यात्मक अवतार को भी, जिसे अन्यत्र युगावतार माना जाता है, श्रीमद्‌भागवत् साक्षात् ब्रह्म का अपने अंशांश से चतुर्भाव में अवतरित होना ही मानता है। पृथु, परशुराम, कपिल आदि अवतारों को, जिन्हें परवर्ती आचार्यों ने आवेशावतार सिद्ध किया, उन्हें भी

भागवत अंश-कलाऽवतार रूप ही स्वीकार करता है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत में लीलावतार में 'अंश' और कला इन दो विभागों की ही शब्दशः स्वीकृति प्राप्त होती है।

श्रीकृष्ण का स्वरूप

महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार शुद्ध अद्वय ब्रह्म श्रीकृष्ण ही हैं, उनका आवतरण संपूर्ण प्रणियों के उद्धार की भावना-रूप अनुग्रह-शक्ति से होता है। सृष्टिकाल में उत्पन्न की गई गुणमयी माया द्वारा आच्छन्न पूर्ण पुरुषोत्तम को साधारण व्यक्ति उसी प्रकार नहीं देख पाते, जैसे शैवाल से ढके हुए जल को सहज रूप से नहीं देखा जा सकता। जब जितने अंश में शैवाल हटाया जाता है, तब उतने अंश में जल दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम, जितने अंश में माया दूर कर देते हैं, उतने ही अंश में वे अभिव्यक्त होते हैं, इस अर्थ में व्यापक दृष्टि से कृष्ण को अंशावतार भी कहा जा सकता है। आचार्य का कथन है कि श्रीमद्भागवत के जिन स्थलों पर कृष्ण को अंशावतार कहा गया है, वहाँ यही तात्पर्य है। श्रीकृष्ण, साक्षात् भगवान् और अद्भुतकर्मा हैं। परमकाष्ठापन्न भागवततत्त्व ही जब कभी जगत् के उद्धार के लिए अखंड और पूर्ण रूप में प्रादुर्भत होता है, तब उसे कृष्ण कहा जाता है। उनके श्रीकृष्ण, भक्तजनों के हृदयरूप शेषशय्या पर शयन करने वाले, सहस्र लक्ष्मी की लीलाओं से सेव्यमान, चतुःषष्टि-कलानिधि पूर्ण पुरुषोत्तम हैं, अतएव क्षीराधिशायी-नारायण-रूप ईश्वर के एकदेशी-स्वरूप से उनका वैलक्षव्य है। परमानंद-स्वरूप भगवान् पृथ्वी के भारापनोदन और क्लेश-नाश के लिए अवतीर्ण होते हैं। जैसे सर्वव्यापक अग्नि जब तक किसी आश्रय को लेकर भौतिक रूप में प्रकट नहीं होता, तब तक उनके अंतर में स्थित हुआ भी वह ईंधनादि को जलाने में समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार सर्वगत-विष्णु भी जब तक प्रकट मूर्ति धारण करके अवतीर्ण नहीं होते, तब तक भजनीयता भगवत्ता और लीला का विस्तार नहीं हो पाता, इसीलिए श्रीकृष्ण मनुष्य रूप में अवतीर्ण होते हैं।

श्रीमद्भागवत की 'कृष्णकथा' अपनी अनेक विशेषताओं के कारण अन्य पुराण-वाङ्मय से व्यतिरिक्त, अथ च, अधिक स्पृहणीय है। पुराण-परवर्ती काव्य और नाटकों में, धार्मिक ग्रंथों में, वेदांत के अनेक संप्रदायों के रूप में विकसित होने वाले दर्शनों में तथा स्थापत्य, मूर्ति एवं चित्रकलाओं में, वंशीधर, त्रिभंग-सुंदर श्रीकृष्ण की जो ललित छवि परिगृहीत हुई, वह सर्वांशतः श्रीमद्भागवत की ही कृष्णकथा से उपरंजित है।

भागवतकार ने अपनी सरस काव्यात्मकता से श्रीकृष्ण को अनुरामूर्ति बनाकर जनसामान्य के कोमल-भावों के अत्यंत सन्निकट ला दिया, फलतः पूर्ण परब्रह्म परमात्मा होकर भी, वे जीवलोक से विप्रकृष्ट किसी उच्चलोक में निवास करने वाले असंग, दुर्लभ और अपरिदृश्यमान ईश्वर-मात्र नहीं, अपितु वृंदावन की वीथियों में भावुक भक्तों की चित्तवृत्तिरूपी गोपियों के साथ चुहल करने वाले नटखट गोपाल के रूप में भी सहज मानवीय बनकर कीर्तित हुए।

श्रीकृष्ण के जिस नवनीरदाभवपु ने वंशी-विलसित स्मेशनन श्रीसमन्वित माधुरी ने, शिखण्ड शेखरपीतकौशेयांबरधारिणी ललित भंगी और अत्यंत अनुरागमय स्वभाव ने मधुसूदन सरस्वती जैसे प्रकांड दार्शनिक को भी आकृष्ट कर लिया।[29] वह श्रीमद्भागवत की ही तात्त्विक भूमि से निःसृत होने वाली भाव-शवधि है, अन्य पुराणों के कृष्णचरित में यह मसृण मोहक आध्यात्मिकता प्राप्त नहीं होती। संस्कृत-भाषा और साहित्य को जनसामान्य से जोड़कर घर-घर में स्थापित कर देने का श्रेय, जिन दो-चार ग्रंथों को प्राप्त हुआ है, उनमें श्रीमद्भागवत को प्रथम स्थान दिया जा सकता है। आज भी

भारतीय सनातनधर्मी जीवन की वैयक्तिक आराधना और सांस्कृतिक समारोह में दृष्ट, भागवत-पाठ-प्रवचन तथा 'सप्ताह-यज्ञ' आदि इस मान्यता के अन्यतम निदर्शन हैं।

संदर्भ

1. श्रीमद्भागवत, 1/1/1
2. श्रीमद्भागवत, 12/13/19
3. श्रीमद्भागवत, 1/2/11
4. सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहम्। श्रीमद्भागवत 10/324
5. वही, श्लोक का पूर्वार्ध
6. श्रीमद्भागवत, 8/3/24
7. श्रीमद्भागवत, 11/3/36
8. केनोपनिषद् 13,4,5,7,8 तैत्तिरीय उपनिषद्2/9/1
9. नैतन्मनोविशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि य चथानलमर्चिषः स्वाः।
   शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयात्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः। (श्रीमद्भागवत 11/3/36)
10. श्रीमद्भागवत, 8/3/8
11. श्रीमद्भागवत, 3/32/26
12. श्रीमद्भागवत, 4/7/26
13. श्रीमद्भागवत, 6/16/19
14. श्रीमद्भागवत, 11/28/22
15. श्रीमद्भागवत, 8/3/16
16. श्रीमद्भागवत, 7/6/23
17. श्रीमद्भागवत, 6/16/19
18. दशमस्य विशुद्ध्यर्थ नवानामिहलक्षणम्। (श्रीमद्भागवत, 2/10/2)
19. आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
    स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शस्यते।। (श्रीमद्भागवत, 2/10/7)
20. व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रतस्वानसुषुप्तिषु।
    मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः।। (श्रीमद्भागवत, 12/7/19)
21. त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः। (श्रीमद्भागवत, 10/59/30)
22. श्रीमद्भागवत, (2/9/32, 33, 34, 35)
23. श्रीमद्भागवत, 1/3/26
24. श्रीमद्भागवत, 1/3/28
25. श्रीमद्भागवत, 10/40/50-55
26. कल्याणभगतांकात्वांक, पृसं132
27. श्री मद्भागवद् गीता, 4/7-8
28. वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीतांबरादरूणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
    पूर्णेन्दुसुंदरमुखादरबिंदनेत्रात् कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।

पुत्री श्री केशवदेव शास्त्री
रानीबाग सुभाष रोड, चंदौसी
जिला संभल 244412
मो॰ 09259742977

सप्तशती परंपरा की नायिकाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

दीपशिखा
शोध छात्रा संस्कृत
डॉ॰ एम॰डी॰ जोशी, निर्देशक
संस्कृत विभागाध्यक्ष (से॰नि॰)
हिंदू कॉलिज, मुरादाबाद

मानव-व्यवहार का मूल आधार मनोविज्ञान है। मानवीय पात्रों की विभिन्न मानसिक स्थितियाँ और उनकी चारित्रिक विशेषताएँ मनोविज्ञान पर आधारित होती हैं। यद्यपि प्राचीन भारतीय विद्वानों ने मनोविज्ञान नाम से किसी स्वतंत्र अध्ययन की स्थापना नहीं की है, तथापि इसका मूल क्षेत्र दर्शनशास्त्र ही है, जो मानव का सर्वांगीण दार्शनिक अध्ययन करता है। प्रायः भारतीय दर्शन की सभी शाखाएँ मन के अध्ययन को ही प्रकट करती हैं। उनका ही विश्लेषण न्यायशास्त्र, न्यायवैशेषिक, सांख्य आदि में किया गया है। सांख्यशास्त्र को तो आधुनिक मनोवैज्ञानिक, परामनोवैज्ञानिक के नाम से अभिहित करने लगे हैं। यह मनोविज्ञान काव्य की समस्त विधाओं का मूल आधार है। आचार्य मम्मट ने रस को परिभाषित करते हुए कहा है

कारणान्यय कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यदिः स्थायिनो लोकेक तानि चेन्नाटयकाव्ययोः।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभवो रसः स्मृतः।[1]

लोक में स्थायी रति आदि चित्रवृत्ति विशेष के जो कारण तथा कार्य रत्यादि जन्य कायिक, वाचिक तथा मानसिक भेद से अनेक प्रकार के कटाक्ष आदि सहकारी या सहायक निर्वेद आदि भाव हैं, वही यदि काव्य एवं नाट्य में वर्णित होते हैं, तो काव्यशास्त्रियों द्वारा उन्हें विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव कहा जाता है, उन विभावादि के द्वारा व्यक्त किया हुआ स्थायी भाव रस कहा गया है।

ये स्थायी भाव न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः समस्त प्राणियों में विद्यमान होते हैं। लता और वृक्षों में इन स्थायी भावों की अवस्थिति का कवियों ने वर्णन किया है। कालिदास ने लतादि पर भी इन भावों के प्रभाव को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है

लता बधूभ्यस्तरवोऽप्यावापुः विनम्र शाखा भुज बन्धनानि।[2]

इस पद्य में महाकवि कालिदास ने लतातरों के मध्य भी रतिभाव का वर्णन किया है, यद्यपि काव्यशास्त्रियों ने त्रिर्यक संबंधी रति को रस की कोटि में नहीं माना है। तथापि वनस्पतिविज्ञान के विद्वानों का कथन है कि समस्त वनस्पतियों में भी संवेदनाएँ कहीं-कहीं मूल रूप में, कहीं प्रसुक्ता-अवस्था में विद्यमान हैं। रघुवंश में कालिदास ने अनेक स्थानों पर वनस्पतियों की मानव के

साथ रसानुभूति का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है

विलपन्निति कोसलाधिपः करूणार्थग्रथितं प्रियां प्रति।
अकरोतपृथिवीरूहानपि स्रुतशाखरसवाष्पदूषितान।[3]

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदस ने वनस्पतियों के माध्यम से करूणा की अभिव्यक्ति की है। इसके अतिरिक्त त्रिर्यक योनि में भी तो कवियों ने समस्त मानवीय भावनाओं अनुभूतियों को पूर्णतया स्वीत किया है।

मधुद्विरेफः कुसुमैक पात्रै पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः।
श्रृँगेण च स्पर्श निमीतिताक्षीं मृगीमकण्डूयतकृष्णसारः[4]

जब रत्यादि स्थायी भावों की स्थिति उद्भिज और त्रिर्यक् योनि को अपने में समाविष्ट किए हुए हैं तो मनुष्यों में तो उसका प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। मनुष्य में रत्यादि भाव अपने स्वाभाविक एवं मौलिक रूप में पाए जाते हैं। कवियों ने इन्हीं भावों को आश्रय बनाकर काव्य की रचना की है।

मानवीय व्यवहार का वर्गीकरण करना भी आवश्यक है। प्रथम कोटि में वे मनुष्य आते हैं, जो अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। दूसरी कोटि में उन्हें रखा जा सकता है, जिनकी भावनाएँ केवल आत्मसुख तक सीमित रहती हैं। तीसरी कोटि में वे लोग आते हैं, जो आत्मसुख में बाधक होने पर दूसरे की हानि करने में संकोच नहीं करते। चौथी कोटि की मनःस्थिति वह है, जो अकारण ही परकार्य में बाधक होते हैं। इन्हीं कोटियों के आधार पर भारतीय काव्यशास्त्रियों ने धीरोदात्त आदि चार प्रकार के नायकों का भी वर्णीकरण किया है। अर्थात् धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशांत।

मनोविज्ञान के आधार पर काव्यशास्त्रियों ने नायिकाओं की विभिन्न मनःस्थितियों का वर्णन किया है।

भोज ने सरस्वती कंठाभरण में नायिका के भेदों को विस्तार में लिखा है। भोज का कहना है कि नायकों की तरह नायिकाओं के भी प्रीतिपूर्वा, उपपूर्वा, अनुनायिका तथा नायिका चार भेद होते हैं। नायिका कथाव्यापिनी एवं सर्वगुणयुक्ता होती है। गुणों के अनुसार नायिका के भेद तीन हैं उत्तमा, मध्यमा, अधमा। वय के अनुसार नायिका मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा होती है। धैर्य के अनुसार धीरा एवं अधीरा दो भेद हैं। परिगृह भेद से तीन भेद हैं स्वा, अन्या, सामान्या। स्वीकरण भेद से रूढ़ा, अनूठा दो भेद हैं। क्रम के अनुसार ज्येष्ठा और कनिष्ठा, व्यवहार भेद से नायिका के तीन भेद हैं सामान्या, पुनर्भू, स्वैरिणी। जीविका भेद से रूपा, जीवा, विलासिनी, गणिका। अवस्था के भेद से खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रेषितभृर्तका, विरहोत्कंठिता।

भोज ने कथावस्तु, गुण, वय, धैर्य, परिगृह, प्रेम, मान, वृत्ति, आजीविका और अवस्था इन दस आधारों पर ये भेद किए हैं। कामसूत्र रति रहस्य में भी इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। उनके अनुसार नायिकाएँ आठ वर्गों में आती हैं

1- जात्यनुसारपदिमनी, शंखिनी, चित्रिणी और हस्तिनी।

2- कर्मानुसारस्वकीया, परकीया और सामान्या।

3- देशानुसारमगधवधू, महाराष्ट्रवधू, पंजाबवधू आदि।

4- कालानुसारस्वाधीनपतिका आदि अवस्थानुसार आठ भेद।

5- प्रकृत्यनुसारवात, पित्त और कफ प्रधान।

6- सत्वानुसारदेव, गंधर्व, पिशाच, नाग आदि।

7- गुणानुसारउत्तम, मध्यम और अधम।

8- वयः क्रमानुसारमुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। [5]

मेरा प्रयास संक्षिप्त रूप से सोदाहरण इन भेदों को प्रस्तुत करने का होगा। सप्तशतीकारों ने अधिकांश मुक्तकों की कथावस्तु नायिकाओं के ही विभिन्न भागों को लक्ष्य करके निबद्ध की है।

स्वीया नायिका

आचार्य गोवर्धन ने अपनी आर्यासप्तशती में स्वीया का चित्र बड़ा ही मनोरम प्रस्तुत किया है। नायिका मुग्धा है परंतु मध्या की ओर उन्मुख है। लज्जाशीला है। सुरत के बाद अत्यंत कमनीय उसके नयन लग रहे हैं

अयि लज्जावति निर्भरनिशीथरतनिः सहांङि सुखसुप्ते।
लोचनकोकनदच्छदमुन्मीलयः सुप्रभातं ते।[6]

यह आर्या शृंगार के अविरल प्रवाह को सहृदयों के हृदय-पटल पर प्रवाहित करती है। नायिका की जिस स्थिति का वर्णन किया गया है, उसमें आलंबन, उद्दीपन, विभाव अपनी पूर्णता के साथ परिपुष्ट हो रहे हैं। अनुभाव और व्यभिचारी भावों की स्थिति भी पुष्ट है। अतः रति स्थायी भाव पूर्ण रसता को प्राप्त हो रहा है। स्वीया का ही एक अन्य रूप अवलोकनीय है

अतिपूजिततारेयं दृष्टिः श्रुतिलंघनक्षमा सुतनु।
जिन सिद्धान्तस्थितिरिव सवासना कं न मोहयति।[7]

इस आर्या में नायिका के युवावस्थाजन्य अंगों के सौंदर्यपरक सूक्ष्म विकास को अभिव्यंजित किया है। नायिका के नेत्रों का कानों तक व्याप्त होना नैनों के उन्मादक सौंदर्य की अभिव्यंजना करता है।

प्रिय संगम की उत्सुकता के बाद भी लज्जाजन्य बाधाओं का अत्यंत सुंदर वर्णन इस आर्या में किया गया है, जो मुग्धा नायिका के स्वरूप को चित्रित करता है

अलमविषयभयलज्जावंचितमात्मान भियमियत्समयम्।
नवपरिचितदयितगुणा शोचति नालपति शयनसखीः।[8]

नायिका मुग्धा है। लज्जाशील है। सुरतानंद में असमर्थ है। सखी द्वारा प्रेरणा के बाद भी वह प्रवृत्त नहीं होती।

इस आर्या में आचार्य ने एक साथ तीन-तीन नायिकाओं की मनःस्थिति का चित्रण कर दिया। एक नायिका इस कथा की प्रधान पात्र है, जिसको इसके द्वारा शिक्षा दी जा रही है। दूसरी नायिका को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तीसरी नायिका प्रथम नायिका की हितैषी सखी है। विवाहोपरांत संगम से प्राप्त होने वाला सुख इसका प्रतिपाद्य विषय है, उसमें होने वाली लज्जा भय आदि कारण जो बाधाएँ हैं, इसका खण्डनीय विषय है। आचार्य ने अपनी सूक्ष्म वर्णक्षमता से इस विस्तृत विषय को कुछ ही शब्दों में बड़ी सफलता से निबद्ध कर दिया। सप्तशतीकार विभिन्न प्रकार की मनःस्थितियों का चित्रण कर अपने मुक्तकों को अनुभूतिगम्य बनाने में अत्यंत कुशल है। यह तो निश्चित है कि प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित मनःस्थिति का होता है, परंतु लोकव्यवहार के कारण वह प्रत्येक प्रकार की मनोस्थितियों से परिचित हो जाता है।

स्वीया, प्रौढ़ा, परकीया, विषयक अनेक विशेषताएँ इन आचार्यों की रचनाओं में मिलेंगी।

सामान्य नायिका

आचार्य गोवर्धन ने सामान्य का अनेक स्थानों पर वर्णन किया है, और इससे बचे रहने का उपदेश भी दिया है

अविनिहितं विनिहितमिव युवसु स्वच्छेषु वारवामध्शः।
उपदर्शयन्ति हृदयं दर्पणविम्बेषु वदनमिव।[9]
त्रिमकनकेनेव प्रेम्णा मुषितस्य वारवनिताभिः।
लघु सखि वित्तविनाशक्लेशो जनहास्यता महती।[10]

खंडिता नायिका

रात्रिभर परांगना के साथ रहकर संभोगचिह्नों से युक्त आगत नायक को देखकर रुष्ट नायिका खंडिता कहलाती है।

अपराधादधिकं मां व्ययति तव कपटवचनरचनेयम।
शस्त्राधातो न तथा सूचीत्यधवेदना माददक।[11]
प्रातरूपागत्य मृषा वदतः सखि नास्य विद्यते ब्रीडा।
मुखलग्नयापि योऽयं न लज्जते दग्धकालिकया।[12]

विप्रलब्धा नायिका

संकेत स्थल पर नायिका द्वारा अनुपस्थित रहकर निराशा प्राप्त नायिका विप्रलब्धा कहलाती है। संकेतस्थल पर बहुत समय तक नायक की प्रतीक्षा कर घर वापस आ जाने पर नायिका की सखी उसे समझाते हुए कहती है

प्रथमागतसोत्कंठा चिरचलिवेयं विलम्बदोषे तु।
वच्यान्ति साङ्गरागाः पथि तरवस्तव समाधानम्।[13]

कलहान्तरिता नायिका

नायक के अनुचित आचरण आदि से कुपित नायिका जब प्रणय-कलह कर नायक का तिरस्कार करती है, तो उसे यह नाम दिया जाता है। प्रणय-कलह भी एक अनूठी अनुभूति है। ऐसी नायिका के कई चित्र इस परंपरा में उपलब्ध होते हैं। प्रणय, कलह और समाधान दोनों का चित्र अवलोकनीय है

करचरणेन प्रहरति यथा यथाऽगेषु कोपतरलात्ती।
रोषयति परुषवचनैस्तथा तथा प्रेयसी रसिकः।[14]

प्रणयकलह कर सखि से अथवा प्रिय से समाधान कराना, कभी कुपित हो जाना अपराध के गुरुतर होने के कारण नायक को दंडित करने पर भी संतुष्ट न होना आदि।

प्रोषित भर्तृका

प्रोषित भर्तृका के तीन भेद हैं1- प्रवसत्पतिका, 2- प्रवत्स्यत्पतिका, 3- आगतपतिका। आचार्य गोवर्धन ने अपनी आर्या सप्तशती के 260, 409, 679, इन तीनों पद्यों में उदाहरण प्रस्तुत किया है

त्वदगमनदिवसगणना वलक्षरेखाभिङकिता सुभग।
गण्ड स्थलीव तस्याः पाण्डुरिता भवनभित्तिरपि।[15]

हाल की विप्रलब्धा की एक अन्योक्ति अवलोकनीय है पहाड़ी नदी के एक भँवर में कदंब के पेड़ का पराग झड़ चुका है। उस पर चिपका हुआ भ्रमर प्रवाह के झोंक में कभी ऊपर आता है, कभी डूब जाता है, तब भी कदंब का मोह नहीं छोड़ पाता। विप्रलब्धा की अन्योक्ति

जलावर्तभ्रमाकुलखण्डित केसरो गिरिनधाः पूरेण।
दरमग्नोन्मग्ननिमग्नमधुकरो हियते कदम्बः।[16]

कलहान्तरिता नायिका

किसी अपराध के कारण क्रोध से प्रिय को तिरस्कृत कर पश्चात्ताप करती हुई नायिका कहती हैप्रेम ककड़ी के तंतु के समान कुटिल होता है, किसी समीप के आधार को पकड़ लेता है। अगर उसे हटाया जाए तो टूट जाता है

सखि ईदृश्येव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्वलित मुखचन्द्रम।
एतेषां बालक केटीतन्तु कुटिलानां प्रेम्णाम्।[17]

मुग्धा

नायिका मुग्धा है। गर्भजनित चिह्नों को नहीं जानती। जब सखियाँ उससे पूछती हैं, तुम्हें क्या रुचता है तो वह केवल प्रिय की ओर देखती है। सखियाँ गर्भ के दोहद के प्रति इच्छा रखती हैं, परंतु मुग्धा को कुछ भी पता नहीं है

किं किं ते प्रतिभासते सखोभिरिति पृष्टाया मुग्धायाः।
अथमोद्गतदोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः।[18]

प्रोषित पतिका

प्रिय परदेश चला गया है। आकाश में चंद्रमा अपनी 16 कलाओं से उदय हुआ है। नायिका का विरहतप्त हृदय प्रिय मिलन के लिए उद्विग्न हो उठा। वह कामार्त होकर चंद्रमा से प्रार्थना करती है कि वह जिन अमृत किरणों से प्रिय का स्पर्श करता है, उसी से उसका भी स्पर्श करे। क्योंकि चंद्रमा का वह स्पर्श उसे शीतलता न देकर दाह दे रहा है

अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चंद्र हे स्पृश।
स्पृष्टौ यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः।[19]

मध्या

कपोल पर चुंबन करने से रोमांच होने से पति की निद्रा का नाटक नायिका समझ गयी। फलतः कृत्रिम निंदा के अभिनय को समझते हुए वह प्रिय से उपहास करती हुई कहती है कि मुझे भी स्थान दीजिए भविष्य में देर नहीं करूंगी। वह पति को बता रही है कि घर की कार्यव्यवस्था मेरे विलंब का कारण है

अलीकप्रसुप्तक विनिमीलिताक्ष हे सुभग ममावकाशम।
गण्डपरिचुम्बना पुलकितांग न पुनाश्चेरयिष्यामि।[20]

धीराखण्डिता नायिका

परकीया के साथ शयन करके प्रातःकाल घर लौटे हुए नायक के अंगों पर विशेष चिह्नों

को पहचानकर नायिका कुपित हो गयी और उसे मनाने के लिए जब नायक संबोधन करता है तो गोत्रस्खलन हो जाता है। फलतः नायिका को पता चल जाता है कि मुझ पर इनका सच्च प्रेम नहीं है

अयं संभावित मार्गः सुभग त्वयैव केवलं निर्व्यूढ़ः।
इदानीं हृदयेऽन्यदन्यद्वाति लोकस्य।[21]

विरहोत्कंठिता नायिका

प्रिय प्रवास पर गए हैं। आगमन की आशा में संताप सह लिया गया किंतु जब उसे पता चला कि प्रिय किसी और गाँव में चले गए तो आशाबंध भी टूट गया। यह दुख मृत्यु से भी बढ़कर है, महाकवि कालिदास ने मेघदूत में लिखा है

आशाबन्द्ध कुसुमसदृशः प्रायशो ह्गनानां।
संद्यपातः प्रणय हृदय विप्रयोगे रुणधि।[22]

प्रवत्स्यत्पतिका नायिका

प्रिय परदेश जाने वाले हैं, ऐसा नायिका ने सुना है, फलतः वह रात्रि से प्रार्थना करती है कि हे रात्रि तू इतनी बढ़ जा कि कभी खत्म ही न हो

कल्यं किल खरहृदयः प्रवत्स्यति प्रिय इति श्रूयते जने।
तथा वर्धस्व भगवति निशे यथा तस्य कल्यमेव न भवति।[23]

स्वाधीन भर्तृका

स्वाधीन भर्तृका सखी से कहती है जिस अंग को मेरे प्रिय देखते हैं, मैं उसे आच्छादित कर लेती हूँ, पर यह भी चाहती हूँ कि वह उसे देखते भी रहें

यद्यत्स निर्ध्यायत्यंगावकाशं ममानिमिषाक्षः।
प्रच्छादयामि च तं तमिच्छामि च तेन दृश्यमानम्।[24]

विदग्धा

दाक्षिण्येनाप्यागच्छन्सुभग सुखयस्यस्माकं हृदयानि।
निष्केतवेन यासां गतोऽसि का निर्वृतिस्तासाम्।[25]

खण्डिता नायिका

हे सुभग, तुमने जो अपराध किए हैं, जो कर रहे हो, जो भविष्य में करोगे, उनमें से कोई क्षमा के योग्य है। क्या तुम्हारे पास इसका कोई उत्तर है

किं तावत्कृता अथवा करोषि करिष्यसि सुभगेदानीम्।
अपराधानामलज्जाशील कथय कतरे क्षम्यन्ताम।[26]

प्रौढ़ा नायिका

प्रौढ़ा नायिका स्वाभाविक सुख का वर्णन करती हुई विपरीत रति का वर्णन कर रही है। आलंबन श्रम है, संचारी भाव कंप, स्वेद संचारी भाव है, संयोग शृंगार रस है।

मुग्धा नायिका

मुग्धा का स्वाभाविक वर्णन करते हुए अमरूक की सखी कहती है कि तुम अपनी प्रणय पथ की भिज्ञता से परिचित नहीं हो। आलस्य से तिरछे, प्रीति से भीगे कुछ अधखुले नेत्रों से तुम किसे देख रही हो। वह कौन सौभाग्यशाली है।

अधीर प्रगल्भा नायिका और शठ नायक तो व्यापारों का वर्णन अमरूक ने रोचक ढंग से किया है

क्रोध से भरी नायिका कोमल बाहुपाश से बाँधकर क्रीड़ा मंदिर में सखियों के सामने लायी और मृदुवाणी से उसके कार्यों की सूचना देकर दोष छिपाने के लिए हँसते हुए नायक को लीलाकमल से ताड़ित करने लगी।

संक्षेप में सप्तशती परंपरा एक अमृतमय काव्य है। यहाँ कृत्रिमता रहित जीवन की सरस और मधुर घात-प्रतिघात तथा संलाप वचनों का एकत्र संयोग आकलनीय है। मुख्य रूप से रस शृंगार है। शृंगार अपने समग्र अस्तित्व में इन रचनाओं में जैसे फूट पड़ता है। संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्ष वर्णित हैं।

सप्तशती साहित्य में आर्द्रापराध नायक के प्रति, नायिका का मान स्नेहोद्गार, विरह, गोत्रस्खलन आदि यत्र-तत्र मिलते हैं। सप्तशती साहित्य में ऐसी नायिकाएँ बहुत कम मिलती हैं, जिनका अपने प्रिय पर विश्वास होता है और ऐसे नायक भी कम है जो अपनी पत्नी में ही एकांत अनुराग करते हैं। यहाँ दोनों पक्षों का सुंदर वर्णन हुआ है। मानव-हृदय में कविप्रतिभाप्रसूत काव्यकला से अधिक आनंदवर्धक कुछ भी तत्त्व नहीं है, क्योंकि मानव स्वभावतः आनन्दाभिलाषी है। मानव-हृदय कवियों की चमत्कृति से आकृष्ट होकर ही आनंद की अनुभूति अपनी-अपनी ग्राहकत्व शक्ति के अनुरूप अवश्य ही करता है। मुक्तक काव्य कवित्व का निकष माना जाता है। सप्तशती परंपरा मुक्तक काव्य की श्रेणी में ही आती है। इस परंपरा की समस्त नायिकाएँ और नायकों का विभाजन उनकी मानसिक स्थिति के आधार पर ही किया गया है। इस विभाजन में मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ

1. काव्यप्रकाश (4) 27, 28
2. कुमारसंभव-3(39)
3. रघुवंशम, 8, 60
4. कुमारसंभव, 3, 36
5. सरस्वतीकंठाभरण, 5(101-123) तक।
6. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य,19
7. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य,21
8. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य,22
9. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य, 1
10. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य, 2
11. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य
12. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य

13. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य
14. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य
15. आर्यासप्तशती, गोवर्द्धनाचार्य, 15
16. गाथासप्तशती, 1/3
17. गाथासप्तशती, 1/10
18. गाथासप्तशती, 1/15
19. गाथासप्तशती
20. गाथासप्तशती हाल, 1/19
21. गाथासप्तशती हाल, 1/32
22. मेघदूत
23. गाथासप्तशती हाल, 1/46
24. गाथासप्तशती हाल
25. गाथासप्तशती हाल, 1/85
26. गाथासप्तशती हाल, 1/900

पत्नी श्री जितेंद्रसिंह
ग्राम–ढकिया नरू
पोस्ट राजा का सहसपुर, तह॰ बिलारी
जनपद मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
मो॰ 09058547000

पुराणों पर आधारित शिव की दार्शनिक मीमांसा

वेदप्रकाश शर्मा
शोध छात्र, संस्कृत
डॉ॰ एम॰डी॰ जोशी निदेशक
संस्कृत विभागाध्यक्ष (से॰नि॰)
हिंदू कॉलिज, मुरादाबाद

संपूर्ण वैदिक वाङ्मय महाशिव की अनंत महिमा का व्याख्यान है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र द्वारा वर्णानुकूल आचरण एवं इहलौकिक व पारलौकिक सुखों से वैराग्यता विज्ञानानंदनघन परब्रह्मस्वरूप का ध्यान करके दुस्तर भवार्णव से निस्तारण, क्षुद्र सांसारिक विषयों का नियंत्रण जन्मजन्मातर के पापों को नष्ट कर उसको कल्मषहीन व मोक्षपद का अधिकारी बनाना यह संपूर्ण क्रियाएँ शिवजी की कृपादृष्टि से ही संभव हैं। वैदिक वाङ्मय शिवजी के आध्यात्मपरक आख्यान व दार्शनिक तत्त्व का चिंतन करता है तथा उसके स्वरूप निर्धारित करता है।

शिव के चरित्रों का गान नारदादि एवं बड़े-बड़े महामुनि भी किया करते हैं। साधु शिरोमणि योगीश्वर समाधिस्थ होकर आप ही का ध्यान करते हैं। शिव के ध्यान से ही अध्यात्म के रहस्य को व दार्शनिक तत्त्वों को समझा जा सकता है, अन्यथा नहीं। शिव की दयालुता निकलने पर उस कालकूट विष से त्रिलोक को नाश से बचने के लिए शिव ने वह हलाहल स्वयं पान कर लिया

'त्रैलोक्यमेतदखिलं सुरासुरंच
भस्मभिवेद्यदि न यो दययार्द्रदेहः
पीत्वाडहरद्वरलमाशु भयं तदुत्थं
विश्वावनैकेनिरताय नमोस्तु तस्मै[1]

वेद, पुराण, उपनिषद, आरण्यक, ब्राह्मण आदि वाङ्मय शिव के आध्यात्मिक व दार्शनिक तत्त्वों के रहस्यों का भंडार हैं। अध्यात्म के सुवर्ण सूत्र में निबद्ध ये कथाएँ शिव के अनेक रूपों को दर्शाती हैं। इस संबंध में शिव जी के अनेक रूपक मिलते हैं

चरितानि विचित्राणि, गुह्यानि गहनानि च।
ब्रह्मादीनांच सर्वेषां दुर्विज्ञेयोऽस्ति शंकर।[2]

अर्थात् ब्रह्मा आदि के चरित्र भी गुह्य तथा गहन हैं, परंतु शंकर के चरित्र तो अत्यंत दुर्विज्ञेय हैं।

शंकर के प्रत्येक नाम में कुछ न कुछ विशेषता है। महादेव के सदाशिव, गंगाधार,

कृत्तिवास, हर, शिव, मदनांतक, शंभु, पुरांतक, दक्षहा, महेश्वर ये दस नाम प्रमुख हैं। उनमें से शिव, सदाशिव, हर, शंभु व महेश्वर नाम परमेश्वर के ही हैं। उदाहरणार्थ

शं सुखं भावयति उत्पादयतीति शम्भुः,
अथवा शं सुखं अस्मात् भवतीति शम्भुः, अर्थात्

जो सुख को उत्पन्न करते हैं अथवा जिनसे सुख होता है, वे शंभु हैं। शंकर का अर्थ भी ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के सुख का कर्त्ता-दाता ही है।

शिवः कल्याणरूपः अकल्मषः निस्त्रैगुण्यः।
समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थात् सर्वकर्मसु।
शिवमिच्छान्मनुष्यमाणां तस्माद्देवः शिवः स्मृतः।[3]

शिव शंभु को श्मशानवासी कहा गया है। 'श्मशान' का अर्थ हैसंसार। वहाँ पर शंकर का वास होने से सांसारिक सब नीच मनोवृत्तियाँ भस्म हो जाती हैं। जैसे श्मशान में मृत शरीरों के भस्म हो जाने पर उनके गलकर दुर्गंध और रोग उत्पन्न करने का डर नहीं रहता, वैसे ही सांसारिक नीच मनोवृत्ति रूप पदार्थों के शंकर की योगाग्नि द्वारा भस्म हो जाने पर चित्त निर्मल हो जाता है और योगाग्नि की ज्वाला से योगी दिव्य शरीर धारण कर मोक्ष पद को प्राप्त करता है एवं उसमें ममत्व व नीच वृत्ति का लवलेश भी नहीं रहता।

भगवान शिव व सती के विवाह-प्रसंग में 'दक्ष की कथा' भी उनके आध्यात्मिक स्वरूप के संबंध में गूढ़ रूपक है। 'दक्ष' शब्द का अर्थ है 'निपुण'। किसी विद्या अथवा कला में प्रवीण मनुष्य को 'दक्ष' कहते हैं। दक्षता अथवा प्रवीणता प्रत्येक विद्या अथवा कला में होनी चाहिए, अर्थात् दक्षता से ही विद्या व कलाओं की प्राप्ति होती है। ऐसा इसीलिए कहा गया कि दक्ष (प्रजापति) की अनेक कन्याएँ (अनेक विधाएँ) थीं। सब विद्याओं में आध्यात्म विद्या श्रेष्ठ है और वह सदा 'एकमेवद्वितीयम्' परमेश्वर के ही साथ रहती है, इसलिए उसे दक्ष की ज्येष्ठ कन्या 'सती' कहा गया है। सती का विवाह मंगलस्वरूप परमेश्वर शिवजी से ही किया गया था।तमयुग में ब्रह्मवेत्ता, ऋषिगण यज्ञ किया करते थे। वे यज्ञ प्रेम प्रधान होते थे अर्थात् केवल ईश्वर पाने की कामना से ही नवीन स्तोत्र रचना पूर्वक किए जाते थे। ऐसे यज्ञों में शिव व सती का भली-भाँति मान-सम्मान होता था, परंतु आगे चलकर उनमें स्वार्थपरता उत्पन्न हो गई, यज्ञ व ईश्वर की आराधना प्रेम-प्रधान न रहकर धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, दीर्घायु, आरोग्य-प्राप्ति के अर्थ में होने लगी। ऐसे यज्ञों में स्वार्थपरक विद्याओं व उनके पतियों का सम्मान हुआ व ब्रह्मविद्या सती व उनके मंगलरूप पति शिव का भयंकर अपमान हुआ। इससे सती स्वयं अग्निकुंड में कूदकर भस्म हो गई अर्थात् ब्रह्मविद्या गुप्त हो गई। सती के नाश से 'यज्ञेश्वर' शिवजी को क्रोध आ गया और उन्होंने काम-प्रधान यज्ञों का नाश करके हविर्भाग लेने वाले देवों को दंड दिया, अनंतर सती हिमालय कन्या पार्वती के रूप में अवतीर्ण हुईं तथा उन्होंने शिवजी को पतिरूप में वरण किया, इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म विद्या संसार से नष्ट होकर हिमालय में स्थित ऋषि-मुनियों के पास चली गई तथा वहीं केवल परमेश्वर की सेवा में रह गई।

श्री शिवजी के मस्तक पर गंगा व चंद्रमा को धारण करने का कारण से उत्पन्न हुए दाह को शमन करना था एवं इसका अन्य कारण यह भी था कि जब गंगाजी आकाश से पृथ्वी पर अवतीर्ण

हुई, तब उनका प्रवाह इतना द्रुत था कि यदि शिवजी मध्य में उन्हें अपनी जटाओं में धारण न करते तो समस्त पृथ्वी जलमग्न हो जाती।

महादेव योगी कहे जाते हैं, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और मत्सर इन षड्विकारों की चिता दिन-रात जलती रहती है, उसका तृतीय नेत्र अर्थात् ज्ञान नेत्र खुला रहता है। तीव्र योग-साधना के लिए उसका व्याघ्र चर्म का ही आसन होता है। जिस समय सुप्त कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होने लगती है, उस समय योगी को हलाहल विषपान के समान प्राणांत वेदना होती है। उस वेदना का शमन करने के लिए वह मन के पुत्र चंद्रमा को और सहस्रदल से उत्पन्न हुई त्रिवेणी धारा (गंगा) को सिर पर धारण करते हैं।

शकुनी असुर के पुत्र वृकासुर ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन त्रिदेवों में शिवजी को शीघ्र प्रसन्न होनेवाला जान उनकी घोर आराधना की तथा उन्हें प्रसन्न कर यह वरदान प्राप्त किया कि जिसके सिर पर मैं हाथ रख दूँ वह भस्म हो जाए। शिव जी से यह वर पाकर उन्मुत्त उक्त असुर का नाम 'भस्मासुर' पड़ा तथा वह स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तीनों लोकों में उपद्रव मचाता हुआ शिव को ही भस्म करने की इच्छा रखने लगा, तदनंतर विष्णु जी द्वारा मोहिनीरूप में नृत्य द्वारा भस्मासुर को उसका हाथ उसी के ऊपर रखकर भस्म कर दिया।

इस कथा की आध्यात्मिक विवेचनास्वरूप यह कहा जाता है कि जो लोग कपटाचारी, विश्वासघाती, परपीड़क और अपने उत्पन्नकर्त्ता ईश्वर के वेद-प्रतिपादित नियमों का उल्लंघन करनेवाले होते हैं तथा जिनमें प्राणी के प्रति दया की भावना नहीं होती, वही लोग भस्मासुर हैं। जो नरदेह आत्मज्ञान द्वारा तारने वाला है उसे पाकर वे लोग पतनोन्मुख होते हैं। सत्कर्मों के लिए प्राप्त हुए वर का असत्यकार्यों में उपयोग करने के कारण जैसे भस्मासुर स्वयं अपने नाश का हेतु बना, वैसे ही अनेक सुकृतों के फलस्वरूप संसार से तरने के लिए मिले हुए इस मानव-शरीर को दुष्टकृत्यों में लगाने वाले पुरुष अज्ञान रूप माया से आवृत्त होते हैं और उनका अमूल्य नरदेह उन्हें सुअर, कुत्ते, बकरी आदि नीच योनियों में जाने का कारण बनता है।

तारक नामक असुर के तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमललोचन तीन पुत्र थे। उन्होंने घोर तप करके ब्रह्माजी और शिवजी को प्रसन्न कर अंतरिक्ष में तीन पुरों को प्राप्त किया। उन्होंने वरों से उन्मत्त होकर उपद्रव मचाना प्रारंभ कर दिया, जिससे तीनों लोक समाप्त हो गए। विष्णु भगवान की अध्यक्षता में शिव की शरण लेकर देवों ने युद्ध की तैयारी की, जिसमें पृथ्वी को रथ बनाया तथा चंद्र व सूर्य को रथ के दो पहिए, मदराचल पर्वत को धुरी व चारों वेद अश्व बने ब्रह्मा जी सारथी व षडशास्त्रों की लगाम बनी, सुमेरु धनुष व शेष नाग धनुष की प्रत्यंचा व विष्णु साक्षात शर बने। इस प्रकार महादेव ने दैत्यों सहित त्रिपुरों का नाश किया।

महाभारत में इसकी आध्यात्मिक व्याख्यास्वरूप कहा गया है कि स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीरी ही त्रिपुरासुर के तीन पुर हैं। 'शंकर' का अर्थ है 'वाद्य'। श्रवण, मनन, विदिध्यासन यह त्रिशूल हैं। काम, क्रोध, लोभादि असुर और शमदयादि देवतागण हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं के अभिमानी विश्व, तेजस और प्राश पुरत्रय के भोगने वाले त्रिपुरासुर हैं। 'त्रिपुर' आकाश में दीखने लगे, इसका अर्थ है कि वे अवस्थाएँ कारण-देह में प्रकट हुईं। अन्नमय कोष उनका सुवर्णकार है। यज्ञादि

कर्मों द्वारा असुरों ने इस पुरत्रय को प्राप्त कर लिया। इस नगरी में स्रक्, चंदन वनिताओं के कटाक्ष शस्त्र हैं। इनमें रहने वाले सूर्यनाथ और चंद्रनाथ चक्षु व मन हैं। मद्मत्सरादि अन्य अनेक सुर भी वहाँ हैं और वे श्रुतिकथित सदाचरण का मार्ग रोककर शमदभादि देवताओं को पीड़ा देते हैं। पीड़ित देवतागण महादेव की शरण होकर उनकी आज्ञा से तत्त्व चिंतनरूप उग्र तप करने लगे। उनके तप के प्रभाव से असुर क्षीण बल हो गये और भयभीत होकर हृदयाकाश में छिप गये। वहाँ पर वासना रूप से स्थित होकर वासना, परिपाक के समय की प्रतीक्षा करने लगे। परंतु पीछे कुभोग की क्षीण हुई वासनाएँ परिपाक के समय पुनः विजयी होने लगीं, जिससे देवतागण परेशान होकर महादेव की शरण में पहुँचे। तब श्री शंकरजी ने प्रणव धनुष पर चित्त बाण चढ़ाकर युद्ध प्रारंभ किया। ध्यान द्वारा प्रथम स्थूलाध्यास को भी निकाल दिया, तदनंतर महत्त्व नामक प्रदेश में असुर कष्ट देने लगे। तब 'रुद्र' ने 'प्रणव' रूपी धनुष के स्थान पर 'महावाक्य रूपी' अग्नि की स्थापना की और 'चरमवृत्ति रूप ब्रह्मास्त्र' के साथ 'चिदाभास 'रूप' दिव्य बाण छोड़कर मूल 'अज्ञान रूप त्रिपुर' का संहार कर दिया।[4]

श्री ज्ञानेश्वरी महाराज ने ज्ञानेश्वरी के 17वें अध्याय में त्रिपुर-संहार के आध्यात्मिक तत्त्व का वर्णन करते हुए सत्त्व, रज, तम त्रिगुणों को ही 'त्रिपुर' कहा है। त्रिगुणों द्वारा संत्रस्त जीवात्मा सद्गुरु शिव को स्मरण से मुक्त हई अर्थात् आत्मा शम्भु ने उसे मुक्ति प्रदान की

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्र च त्रयायुधम्
त्रिजयपापसंहारमेककबिल्वं शिवार्पणम्[5]

कर्म, उपासना व ज्ञान द्वारा इन तीन नेत्रों तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासन रूप त्रिशूल को धारण करने वाले शिव जी को सत्त्व, रज व तमरूप तीन दलों का बिल्व पत्र (चित्त) चढ़ाने से जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्था रूपी जन्मों का नाश होकर मुमुक्षु मुक्त हो जाता है। अविधाग्रस्त जीवों को देखकर श्री शिव को रोना आया। अतः आप जीवों को भागवत धर्म का उपदेश देकर अविद्या रूपी अंधकार को दूर करते हैं

त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशस्त्राणि कारय।[6]

यह शिव का आधिदैविक स्वरूप है शिव का आध्यात्मिक स्वरूप एकादश रुद्रगण व आधिभौतिक रूप 'ससर्जात्मसभाः प्रजाः'[7]

आधिभौतिका रुद्रसृष्टा रुद्राः आध्यात्मिका गणरुद्राः आधिदैविको नीलरुद्रो ज्ञातव्यः।

जो वस्तु सृष्टि के पूर्व ही वही जगत् का कारण है और जो जगत का कारण है वही ब्रह्म है। कहा है

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि।
यत् प्रयंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।[8]

वेदांती भी अथातो ब्रह्म जिज्ञासा कहकर 'जन्मांधस्य यतः सूत्र से ब्रह्म का लक्षण व जगज्जन्मादि कारणत्त्व बताते हैं। जगज्जमादिकारण 'न सन्न चासत्' इस श्रुति द्वारा शिव में बताया गया है, क्योंकि सृष्टि से पूर्व सत् व असत् जब नहीं था, तब केवल शिव ही था। वेदों में भी कहा है

नासदासान्नो सदासात्रदानी तम आसीत्तमसा गूहमग्रे गूहमग्रेऽप्रकेतम्।

अतः शिव शुभावह, सर्वशुभकारी, श्रेयस्कर है, शिव ब्रह्मवाचक जगत का कारण है। वेदांती ने शिव की परब्रह्म में मुख्य वृत्ति व त्रिमूर्ति के अंतर्गत देवता विशेष में गौण वृत्ति स्वीकार कर उसे संहारकर्त्ता माना है। अतः त्रिमूर्ति के अंतर्गत शिव मुख्य न होकर तन्मूलभूत ब्रह्म ही मुख्य शिव हैं, वह तो ब्रह्म ही हैं। कदाचित् जन त्रिमूर्ति के परे तुरीय तत्त्व को शिव कहते हैं।

शिवः शक्तियुतः[9] पर श्री 'सुबोधिनी' के अहंकाराभिमानेऽपीति इस वाक्य की व्याख्या करते हुए बल्लभ जी महाराज ने कहा अहंकाराध्यासोजीववन्नास्ति, किन्तु अभिमानमात्रमेव।

श्रीमद्भागवत में भी उन्हें तमोगुणावतार कहकर ईश्वर बताया हैअहंकाराधिष्ठातुर्जीत्वेऽपि गुणावतारस्येश्वर कोटित्वात्।[10] तथा श्री शिव को भगवदीय तमोगुण का अवतार कहा है

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः।
सर्गस्थिति निरोधेषु ग्रहीता मायया विभोः।[11]

इसकी व्याख्या श्री मद्वल्लभाचार्य ने की है'भगवान् भी त्रिविध सृष्टि के लिए आरंभ काल में संदेश में सत्त्व, सदंश, आनंदांश से रहित, क्रियाशक्ति प्रधान केवल चिद्रूप से रज और आनंदांश से तम की सृष्टि करते हैं। ये तीन भगवद् रूप हैं, इन तीनों में जो भगवान के आनंदांश से उत्पन्न शुद्ध भगवदात्मक नम है वही श्री संकर्षण कहा जाता है, वह परमशिव की प्रगति है। श्री शिव के इसी स्वरूप को भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूप से कहा गया है। श्री शिव को 'वेदः शिवः शिवो वेदः' कहकर वेदात्मक बताया है।

'शब्दब्रह्म परंब्रह्म ममोभे शाश्वती तनु'[12] अर्थात् संकर्षण स्वरूप वेद स्वरूप है, वही शिव के उपादान कारण है। अतएव 'विद्याकामास्तु गिरिशम्' इस वाक्य में ब्रह्मविद्या आदि विधाओं की प्राप्ति भी श्री शिव से होती है और ज्ञान-प्राप्ति श्री संकर्षण से। अतः शिव को सर्वविद्येश्वर भी कहते हैं।

श्री शिव वैष्णवाग्रगण्य हैं, क्योंकि श्रीमद्भागवत में 'वैष्णवानां यथा शम्भुः' कहा है। शिव तत्त्व का ही यह असाधारण स्वभाव है कि समग्र जीवों के अंतःकरण को अपनी ओर खींचे रखता है। इसका कारण 'अमरकोष' के अनुसार 'श्वः श्रेयसं शिवं भद्र कल्याणं मंगलं शुभम्' एवं 'विश्वकोश' के अनुसार 'शिवं च मोक्षे क्षेमे च महादेवे सुखे है। जिस कल्याण व आनंद की खोज में सारा संसार प्रवृत्त हो रहा है। 'छांदोग्योपनिषद' में उसके विषय में कहा है'तद्य इसे वीणायं गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः।' अर्थात् वीणा की झंकार में जो संगीत निकलता है, उसका लक्ष्य सर्वान्तर्यामी आनंद है, समस्त वेद भी शिव रूप आनंद के ही गीत गाते हैं। उनमें अद्वैत शिव तत्त्व का प्रतिपादन है।

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्युर्थ इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति संजुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः।[13]

एक ही रुद्र जो सब लोकों को अपनी शक्ति से अपने वश में करता है, उसी ईश्वर की हम उपासना करते हैं, वही संहारकारक भी है, वही ईश्वर है। वैदिक रूप से ईश्वर रूप में शिव का जगत के साथ 6 प्रकार का संबंध गीता में बताया है1. जगति ईश्वर, 2. ईश्वरे जगत्, 3. जगद् ईश्वर एवं 4. जगद् ईश्वरश्चभिन्नौ, 5. ईश्वरो जगतोऽतिरिच्यते जगत्तु ईश्वरान्नातिरिच्यते, 6. ईवराद् भेदेन अभेदेन वा अनिवर्चनीयं जगत।

ईश्वर ने अपनी इच्छा से जगद्रूप धारण किया है'एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायेय' वह जगत को बनाकर उसी में अनुप्रविष्ट होता है। 'तत् स्रष्टा तदेवानुप्राविशत्'[14]

ईश्वर के (शिव) तीन रूप हैं, सृष्ट, प्रविष्ट और विविक्त। 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।[15]

शैव दर्शन में शिव को पशुपति कहा गया है तथा जीव भाव में रहता हुआ जीव पशु श्रेणी में आता है। श्रुति के अनुसार सबका मूल तत्त्व एक है। जो मन और बुद्धि की पहुँच से बाहर है। यद्यपि गुण-धर्म से रहित होने के कारण उसका वाचक कोई शब्द नहीं हो सकता, तथापि व्यवहार के लिए उसे रस नाम से पुकारते हैं'रसो वै रसः' वह मुख्य आत्मा है, सबका आत्मा होने के कारण उसे 'परमात्मा' भी कह सकते हैं। यह निर्विकार होने के कारण जगत का कारण नहीं बन सकता, इसीलिए जो उसकी आत्मभूत 'शक्ति' सृष्टि, प्रलय और स्थिति के कारण रूप से मानी जाती है। वह 'बल' व 'शक्ति' प्राणरूप है और इससे आगे उत्पन्न होने बाले पुरुष, प्रकृति आदि सब पशु हैं। यह निर्विशेष 'क्षर', 'अक्षर' और 'अव्यय' तीनों पुरुषों से भी पर उनका भी आत्मा है, यही शिव का मुख्य दार्शनिक परमशिव रूप है।

दार्शनिक सिद्धांत के अनुसार विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत एवं द्वैत-प्रस्थानों में भी शिवपरता का निदर्शन श्रीकण्ठीय दर्शन, पाशुपतदर्शन, प्रत्यभिज्ञादर्शन आदि शैवदर्शनों में मिलता है।

संदर्भ

1. शिवांक-II
2. शिवांक, 304
3. महाभारत, रुद्राध्याय
4. महाभारत के सुप्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ चतुर्धर ने हरिवंश के 133वें अध्याय की टीका से उद्धृत।
5. शिवांक, 307
6. पद्मपुराण
7. श्रीमद्भागवत 3/12/14
8. तैत्तिरीयोपनिषद्
9. श्रीमद् भागवत 10/88/3
10. पुरुषोत्तम जी द्वारा रचित उत्सव प्रधान के मद्भागवत चतुर्थ स्कन्ध 1/2
11. श्रीमद्भागवत 2/5/18
12. श्रीमद्भागवत 6/16/51
13. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/2
14. श्रीमद्भागवत 6/30, 7/7, 8/20, 9/4, 7/25
15. श्रुति कथन

पुत्र श्री सूरजप्रकाश शर्मा
ग्राम-चेलापुर, पो॰ नंगली पथवारी
बिजनौर 246727 **(उ॰प्र॰)**
मो॰ 09627481309

भारतीय धर्म-व्यवस्था में ग़ैर ब्राह्मण जनता के उत्पीड़न का प्रसंग

डॉ॰ अनिलकुमार

प्राचीनकाल से विश्व में मानव-समाज को नियंत्रित करने वाली एक प्रमुख शक्ति 'धर्म' रहा है। धर्म मानव और मानव-समाज की एक सार्वभौम अपरिहार्य भावना है। समाज की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि सभी भौतिक जीवन-धारा धार्मिक विश्वासों एवं आचारों के द्वारा परिचालित होती रही है। यही कारण है कि धर्म के आदर्शवादी रूप में परंपरा से प्रवर्तित धर्म की प्रस्थापना मनुष्य के विशेषाधिकारों, कर्त्तव्यों, नियमों और आचार पद्धतियों के रूप में हुई, जिन्हें आज भी समाज में मान्य समझा जाता है। वास्तव में धर्म एक सर्वोपरि सामाजिक निर्देश है, जो व्यक्ति को कर्त्तव्य पालन की ओर प्रवृत्त करता है। यह व्यक्ति को स्वार्थ भावना से परमार्थ-भावना की ओर प्रवृत्त करता है। विश्व के समस्त धर्म-प्रवर्तकों एवं प्रचारकों ने अपने समय और स्थान की ज़रूरतों की दृष्टि से लोकहित को बढ़ावा देने के लिए अपने-अपने चिंतन-मनन के हिसाब से धर्म-संहिता का निर्धारण किया। इस प्रकार 'सामाजिक जीवन में सभी प्रकार के कल्याणकारी कार्यों के लिए 'धर्म' पद रूढ़ हो गया।'[1]

समाजशास्त्रीय दृष्टि से धर्म का विकास प्राकृतिक भय और दुश्चिंता से हुआ, लेकिन आज धर्म से आशय एक विशिष्ट जीवन-पद्धति या आचरण की संहिता से है जो व्यक्ति की वेशभूषा और अभिवादन आदि के तरीकों में स्पष्ट झलकती है, यह विशिष्ट जीवन-पद्धति ही व्यक्ति की क्रियाओं को समाज के एक सदस्य के रूप में नियंत्रित करती है। प्रत्येक धर्म और संप्रदाय का उद्‌भव मानव-मानव में परस्पर प्रेम एवं भाईचारे के विकास के लिए हुआ, लेकिन धीरे-धीरे कुछ लोगों द्वारा 'धर्म' को एक ऐसा धंधा बना दिया गया है जिसकी आड़ में तमाम तरह के कुकर्म या कुकृत्य किए जाते हैं। आम जनता को इतना धर्मभीरु और संकीर्ण सोच का बना दिया गया है कि जनता का आपसी प्रेम और सद्‌भाव धर्म के कारण परस्पर नफ़रत और संदेह में बदल जाता है।

व्यक्ति और समाज के जीवन में धर्म के महत्त्व एवं उपयोगिता की दृष्टि से आधुनिककाल के दो महत्त्वपूर्ण विद्वानों का जिक्र करना उचित प्रतीत हो रहा है। गांधी जी की धर्म में अगाध आस्था एवं श्रद्धा थी। वे मानव-समाज के लिए धर्म को आवश्यक मानते हैं। इसके बिना वे समाज में नैतिक विकास की बात को निरर्थक मानते हैं। वास्तव में गांधी जी ने धर्म के स्वस्थ रूप को राजनीति में प्रविष्ट किया और कराया। धर्म के महत्त्व के विषय में वे कहते हैं'जिसे धर्म का थोड़ा भी भान है, वह धर्म को छोड़ ही नहीं सकता। धर्म वस्त्र के समान पहना या उतारा नहीं जा सकता। धर्म देह

से भी ज्यादा बेशकीमती है। देह आवागमन से बद्ध है, धर्म आत्मा के साथ जुड़ी हुई वस्तु है, धर्म साफ़-साफ़ यह सिखाता है कि वह कभी बदला नहीं जा सकता। धर्म में जो गंदगी, जो सड़न पैदा हो गई है, वह दूर हो सकती है, पर धर्म का उच्छेद नहीं हो सकता।[2] धर्म की इसी समझ के चलते गांधी जी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और अन्य सभी प्रश्नों को अलग-अलग नहीं देखते उन्हें इन सभी प्रश्नों के मूल में धर्म दिखाई देता है। ऐसे ही गांधी जी के समकालीन विद्वान डॉ॰ अंबेडकर का मत था कि भारत की सामाजिक समस्याओं की जड़ में धर्म की विकृति है। यदि धर्म इस विकृति को ठीक नहीं करता है तो निश्चित रूप से इसे त्याग देना चाहिए (हिंदू धर्म को)। वे स्पष्ट कहते हैं, 'जो धर्म विषमता का समर्थन करता है, उसके विरोध का निर्णय हमने लिया। अगर हिंदू धर्म अस्पृश्यता का धर्म है, तो उसे समानता का धर्म बनना चाहिए। ...इसके लिए चातुर्वर्ण्य निर्मूलन की नितांत आवश्यकता है। इस धर्म और समाज की विषमता की जड़ चातुर्वर्ण्य व्यवस्था है। चातुर्वर्ण्य ही अस्पृश्यता की जननी है। जातिभेद और अस्पृश्यता विषमता के अन्य रूप हैं। अगर इस जड़ को नष्ट नहीं किया गया तो अस्पृश्य वर्ग इस धर्म को निश्चित ही त्याग देगा।'[3] वे व्यक्ति में सद्गुणों के विकास को ही सच्चे धर्म का अंतिम उद्देश्य मानते हैं। धर्म में बंधुत्व, समता, स्वतंत्रता के सद्गुणों के संस्कारों की आवश्यकता होती है। यह धर्म की आवश्यकता ही नहीं, बल्कि जिम्मेदारी भी है। डॉ॰ अंबेडकर का मत है, 'धर्म मनुष्य के लिए है, मनुष्य धर्म के लिए नहीं है। जो धर्म तुम्हें मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं करता, जो धर्म तुम्हें पीने के लिए पानी नहीं देना चाहता, वह धर्म, धर्म कहलाने के लायक नहीं होता। जो धर्म तुम्हारे ज्ञान और शिक्षा के अधिकार छीन लेता है, जो धर्म तुम्हारे भौतिक उत्कर्ष में बाधाएँ पहुँचाता है, वह धर्म-धर्म कहलाने लायक नहीं है। ...जो धर्म अज्ञानियों को अज्ञानी, निर्धनों को निर्धन रहने की सीख देता है। वह धर्म न होकर भयावह क़ैदखाना है।'[4] धर्म के विषय में इन दोनों विद्वानों की राय वास्तव में अपने जीवन में धर्म के कारण देखे-भोगे यथार्थ के कारण बनी है। धर्म को लेकर गांधी जी और डॉ॰ अंबेड़कर की यह धरणा सिद्ध करती है कि अनुभवों के भी अपने संसार होते हैं और उन्हें महसूस करनेवालों का भी अपना-अपना स्वभाव होता है।

आधुनिककालीन गैर ब्राह्मण वैचारिकी के पुरोधा डॉ॰ अंबेडकर धर्म को एक मूल्य-निर्धारण की प्रवृत्ति मानते हैं। उनका मत है, 'मनुष्य मात्र रोटी के सहारे जीवित नहीं रहता। उसका एक मस्तिष्क भी होता है, जिसे विचार रूपी खुराक की ज़रूरत होती है। धर्म मनुष्य में आशा का संचार करता है और उसे कर्म के लिए प्रेरित करता है।'[5] धर्म के विषय में अंबेडकर जी की यह समझ तत्कालीन परिस्थितियों में ही नहीं, बल्कि आज भी अपनी महत्ता रखती है। धर्म या धार्मिकता से उनका आशय समता, न्याय एवं मैत्री पर आधारित विचारों एवं व्यवहारों से है। वे समाज के निर्धन एवं नीच समझे जानेवाले लोगों को अनैतिक, अश्लील और शर्मनाक मानदंडों एवं परंपराओं की बेड़ियों से मुक्त करना धर्म का ही कार्य मानते हैं। वे धर्म को भाषा के समान एक सामाजिक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। इस संबंध में वे कहते हैं'धर्म भाषा के समान सामाजिक है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक जीवन के लिए वह अनिवार्य है और व्यक्ति को उसे मानना ही है, क्योंकि उसके बिना, वह समाज के जीवन में भाग नहीं ले सकता है।'[6] लेकिन आधुनिककाल में मानव-समाज में

धर्म के ठेकेदारों ने कुछ रूढ़ियों, परंपराओं और आचारों को ही धर्म कहना शुरू कर दिया और जिस तरह से नकली सिक्का असली सिक्के को मार्केट से गायब कर देता है, उसी तरह से रूढ़िवादी धर्म ने सच्चे धर्म के प्रति एक तिरस्कार व अवहेलना का माहौल बना दिया है। आज आम आदमी के लिए धर्म महज कुछ रीति-रिवाज़ों का पालन, शास्त्रों की आज्ञा का अनुशीलन और कुछ निश्चित विधानों का अनुसरण होकर रह गया है। ज्ञान और क्रिया के अभाव में आस्था और श्रद्धा अंधविश्वास का रूप धारण कर लेती है। वास्तविक दृष्टि से इसमें दोष धर्म का नहीं बल्कि दोष उसके समझाने और समझने वालों का होता है।

धर्म मूलतः मानवीय प्रकृति के ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पहलुओं में सम्यक् सामंजस्य को स्थापित करता है। यह मानव का आध्यात्मिक शक्तियों यानी मानवीय मूल्यों के प्रति नैतिकता से संवलित वह भावप्रधान प्रबुद्ध दृष्टिकोण है जिसकी चरम परिणति आत्मसाक्षात्कार में होती है। यह मार्क्सवाद के अनुसार जनता के लिए केवल अफ़ीम ही नहीं है। जैसाकि कुछ अधकचरे मार्क्सवादी उतावलेपन में मार्क्स का नाम लेकर प्रचारित-प्रसारित करते हैं, बल्कि यह जनता के लिए अमृत है। विघटन नहीं, बल्कि एकता का सूत्र है। बशर्ते कि इसे रूढ़ियों और स्वार्थांध व्यक्तियों के चंगुल से मुक्त करा दिया जाए। धर्म के अस्तित्व के लिए श्रद्धा और चिंतन में विवेक परमावश्यक है।

भारत में आचार-विचार की दृष्टि से अनेक धर्म-सम्प्रदाय पाए जाते हैं, लेकिन इन सभी धर्म-संप्रदायों को मुख्यतः दो धर्मोंब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण धर्म में बाँटा जा सकता है। गैर ब्राह्मण धर्म के अंतर्गत भारत की मूल आदिवासी द्रविड़ जातियों के परंपरागत ब्राह्मणेतर धर्म से लेकर मुस्लिम और ईसाई धर्म को भी रखा जा सकता है। यदि वस्तुनिष्ठ रूप से कहें तो मध्यकाल में जो इस्लाम और आधुनिककाल की पृष्ठभूमि में ईसाई धर्म का भारत में आगमन और विकास हुआ तो अधिकतर पराजित और दलित निम्नवर्ग के लोगों ने ही भय या लालचवश इन धर्मों को अपनाया। अतः ये धर्म भी भारत के संदर्भ में ब्राह्मणेतर धर्म ही हैं, इसमें कोई दो राय नहीं है। यहाँ एक सीधा सवाल यह उठता है कि ब्राह्मण धर्म क्या है? इसके मूल्य व सिद्धांत क्या हैं? इसकी कार्य-पद्धति क्या है? विरोधी धर्म के प्रति इसकी क्या सोच है?

समय-समय पर भारत पर आक्रमण कर अनेक आक्रमणकारी जत्थों ने भारत में प्रवेश किया। इन आक्रमणकारी जत्थों ने यहाँ की मूलनिवासी जनता को पराजित किया। आर्य या ब्राह्मणों का भी एक ऐसा ही जत्था यहाँ की जलवायु और धन-संपदा से आकर्षित होकर यहाँ आया और बकौल रोमिला थापर द्रविड़, शूद्र दलित युद्ध में हारे परिणामस्वरूप उन्हें गुलाम बनाया जाने लगा। ब्राह्मणों की दृष्टि में इन्हें शूद्र या निम्न समझा जाता था और दास शब्द का प्रयोग भी इन्हीं के लिए होता था। आज ब्राह्मण धर्म के नाम से जाने-पहचाने जाने वाले जत्थे ने, भारत में प्रवेश कर यहाँ की मूलनिवासी जनता को धीरे-धीरे साम-दाम-दंड-भेद की नीति से पराजित किया और स्वयं यहाँ के शासक बन गए या शासकों के निकट विश्वासपात्र। या फिर इन्होंने ऐसे व्यक्ति को शासक बनने में मदद की जो जी-जान से इनकी रक्षा करता था, इन्हें आश्रय देता था। इससे जब लड़ने-मरने का समय आता था, तो ब्राह्मण स्वयं पीछे हट जाता था तथा और ही लोग लड़ते-मरते रहते। बाद में जो

विजयी होता ब्राह्मण उसे प्रसन्न कर फिर उसे अपने मनसूबों के अनुरूप ढाल लेते। धीरे-धीरे यह आक्रमणकारी जत्था एक जाति या वर्ण 'ब्राह्मण' में तब्दील हो गया।

आरंभ में आर्य या ब्राह्मण जब भारत में आए तो उन्होंने अपने दैनिक जीवन की आवश्यकतानुसार अपने को तीन वर्णों या वर्गोंपुरोहित, योद्धा एवं साधारण में बाँट लिया। चौथा वर्ण या वर्ग शूद्रों का था, जो यहाँ के मूलनिवासी थे, गुलाम बनाए गए थे। इस जाति ने भारत पर शासन करने के अनेक उपायों को अपनाया। 'वेदों' की रचना करना और स्वयं को 'भूदेव' घोषित करते हुए स्वयं को सर्वश्रेष्ठ बताना और यह दावा करना कि केवल वे ही राजा को देवत्व प्रदान कर सकते हैं। देखते-ही-देखते ब्राह्मणों ने अपने चातुर्य और चालाकी से यहाँ पर पहले से विद्यमान संस्कृति-समूहों का पूर्णतः दमन कर दिया। उन्होंने इन संस्कृति-समूहों के दमन को धार्मिक मान्यता भी दे दी। चूँकि भारत प्राचीनकाल से खाद्यान्न और जीवन-परिवेश की दृष्टि से एक श्रेष्ठ भूखंड रहा है। इससे यहाँ के मूल निवासियों का स्वभाव बहुत ही सहनशील और शांतिप्रिय बन गया। इस संबंध में सूरज बड़त्या यूरोपीय इतिहासकार ए॰एल॰ बासम की पुस्तक 'The Wonder that was India' को उद्धत कर कहते हैं, 'प्रायः यह कहा जाता है कि भारत की प्रकृति में प्रकृति की स्थिति एवं भारत का मानसून पर पूर्णतः आश्रित होना देशवासियों के चरित्र-गठन में सहायक हुआ। आज की बाढ़, अकाल एवं प्लेग जैसे महान प्रकोपों का सामना करना कठिन है और अतीत में तो उनका नियंत्रण प्रायः असंभव ही था...भारतीय चरित्र इसी कारण शांतिप्रिय एवं भाग्यवादी तथा जीवन के सुख-दुख को बिना किसी आपत्ति के सहन करने का अभ्यस्त बन गया।'[7] इस दृष्टि से ब्राह्मण भारत में आसानी से स्थापित हो गए। इतना ही नहीं कालांतर में इस्लाम और ईसाइयत के भारत में जमने के मूल में भी भारतीयों का यही चारित्रिक स्वभाव उत्तरदाई रहा। धार्मिक श्रेष्ठता के दंभ व जातीय गौरवाभिमान की दृष्टि से ब्राह्मण, मुस्लिम और ईसाई तीनों ही एक जैसे हैं। इन तीनों ने शब्दाडंबरों के माध्यम से स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए बार-बार धर्म का सहारा लिया। मुद्राराक्षस जी ब्राह्मण, ईसाई और मुसलमानोंतीनों के उद्देश्यों को लक्ष्य कर कहते हैं'ब्राह्मण भारतीय नहीं थे और भारत में घुल-मिल जाने के लिए नहीं आए थे। भारत में अन्य अनेक जातियाँ भी समय-समय पर आई थीं, पर वे पूरी तरह घुल-मिल जाने के लिए आई थीं। हाँ, ईसाई और मुसलमानों के साथ ऐसा नहीं हुआ। उनकी अलग पहचान आज तक बनी हुई है। इसी तरह ब्राह्मण भी घुले-मिले नहीं। उनकी अलग पहचान आज तक बनी हुई है।'[8] ब्राह्मणों ने कर्म जन्म-आधारित बना दिया। इसके अतिरिक्त यहाँ की मूल निवासी जनता के मत्थे ऐसे कर्म मढ़ दिए, जिनसे उनमें हीनता-ग्रंथि के साथ-साथ परस्पर घृणा और अस्पृश्यता की भावनाओं ने भी घर कर लिया। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के स्तर से जो उच्चता भाव और शूद्र के साथ निम्नता-भाव एक बार लग गया, सो लग गया। वह आज तक भी अनेक संवैधानिक सुधारों के बावजूद नहीं छूट रहा है। यह ब्राह्मण धर्म की ही व्यवस्था है कि जो जितने उच्च पद पर रहेगा उसे सरकार की ओर से उतनी ही अधिक सुविधाएँ मिलेंगी और जो जितने निम्न पद पर रहेगा सरकार से उसे कोई सुविधा नहीं मिलेगी या उसे न के बराबर सुविधा मिलेगी। यहाँ मुख्य बात यह है कि उच्च पद पर वही पहुँचता है जिसके पास धर्म, जाति और धन-संपत्ति की सामर्थ्य है, यानी जो सवर्ण है।

आधुनिककाल में स्वतंत्र भारत के संविधान-निर्माण के समय भी वैदिक संस्कृति और ब्राह्मणवादी सोच वाला एक वर्ग 'मनुस्मृति' को भारत के संविधान के रूप में स्वीकार करने की जोरदार पेशकश करता रहा। 'वैदिक राष्ट्र दर्शन' पुस्तक के लेखक महामहोपाध्याय बालशास्त्री हरदास सरीखे आधुनिक विद्वान आज भी वैदिक संस्कृति, उपनयन संस्कार, वर्ण-व्यवस्था और मनु के विश्लेषण को सुगठित हिंदू समाज-व्यवस्था के लिए उचित बताते हैं।'[9] यह ब्राह्मण-मस्तिष्क ही भारत की सभी शैक्षिक-सामाजिक-धार्मिक और आर्थिक समस्याओं की जड़ है। वास्तव में पढ़त-लिखत की सभी सांस्थानिक-सांस्कृतिक परंपरा को ब्राह्मणों ने ऊपर के तीनों वर्गोंब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तक ही सीमित कर दिया और इनमें भी ब्राह्मण को विशेष दर्ज़ा दिया गया। यह ब्राह्मण-बुद्धि का चमत्कार ही कहा जाएगा कि उपनयन संस्कार यानी विद्या-आरंभ की आयु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की क्रमशः पाँचवे, सातवें और नौवें वर्ष में बताई गई है। क्या एक स्थान विशेष के समाज में एक जैसी परिस्थितियों में जन्मे और पले-बढ़े बच्चों के मानसिक स्तर में इतना अंतर वास्तव में होता है कि एक जाति का बच्चा पाँच वर्ष और दूसरी जाति का उसी काम की शुरूआत (यानी शिक्षा की) नौवें वर्ष में करेगा। और एक वर्ण या जाति विशेष का बच्चा कभी भी उस काम की शुरूआत के योग्य ही नहीं होगा। इतना ही नहीं शूद्र और स्त्रियों दोनों को ब्राह्मणों ने पशु-तुल्य बताकर इन्हें मानवीयता से ही च्युत कर दिया। ब्राह्मण धर्म ने कहीं भी शूद्रों और स्त्रियों की शिक्षा'उपनयन संस्कार' का ज़िक्र नहीं किया।

इस तरह ब्राह्मणधर्म या वैदिक संस्कृति या साहित्य की दृष्टि से 'ब्राह्मण' को सर्वश्रेष्ठ और समाज के अन्य वर्गों से विशिष्ट बताता रहा है। इसके लिए उसने यह भी ध्यान नहीं रखा कि यह विवेकसम्मत है भी या नहीं। जैसे वेदों में समाज की वर्ण-व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए कहा गया है, 'प्रजापति ने मनाव-समाज रूपी जिस पुरुष का विधान किया उसकी कल्पना कितने प्रकार की हुई है? इस पुरुष का मुख क्या है? इसके दोनों बाहु कौन हैं? कौन इसकी दोनों जाँघें हैं तथा इसके दोनों पैर कौन हैं? शरीर संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना?'[10] इसके प्रत्युत्तर में क्रमशः कहा गया है'पुरुष का मुख ब्राह्मण, बाहु क्षत्रिय, जाँघें वैश्य और पैर शूद्र हैं, यानी मुख से ब्रह्मविदों, बाहुओं से शौर्यवान क्षत्रिय, उरू से वैश्य तथा पैरों से शूद्र (श्रमशील) वर्गों या प्रवृत्तियों की उत्पत्ति हुई।'[11] ब्राह्मणों की इस वेद-पुराणोक्त धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या को किसी भी तरह से तर्क संगत नहीं ठहराया जा सकता। ब्राह्मण-धर्म जब एक पुरुष को जननी रूप में प्रस्तुत करता है, तो इससे स्त्रियों के प्रति ब्राह्मणों के इस नज़रिए का भी अंदाजा सहज ही लग जाता है कि यह 'मातृ' या 'जननी' रूप में भी स्त्री को सम्मान नहीं देता। ब्राह्मणों का यह व्यवहार जर्मनी के तानाशाह हिटलर के प्रचार मंत्री गोयबल्स के इस सूत्र के नजदीक था, 'अगर बड़ा झूठ बोला जाए, बार-बार बोला जाए, सच हो जाता है।'[12] हिटलर के प्रचार मंत्री ने तो यह बड़े झूठ के बार-बार बोलने का फॉर्मूला आधुनिककाल में इस्तेमाल किया, जबकि ब्राह्मणवर्ग ने तो वेदों के रूप में हज़ारों वर्ष पूर्व ऐसे बड़े-बड़े झूठों के संग्रह तैयार कर लिए, जिनमें तर्क का कहीं कोई स्थान नहीं था। यही कारण रहा कि उन्होंने ठाली बैठकर यजन-कार्य को धर्म कार्यों में प्रथम स्थान प्रदान किया है।[13]

इस तरह प्राचीनकाल से ब्राह्मणों ने भारत में प्रवेश करते ही धर्म के माध्यम से ऐसे-ऐसे

कपोल-कल्पित सिद्धांतों को समाज के सम्मुख रखा, जिनके विषय में तर्क का कहीं कोई स्थान नहीं था। दूसरे शब्दों में गैर-ब्राह्मण धर्म का संघर्ष ब्राह्मण धर्म यानी ब्राह्मणवादी व्यवस्था से है। ब्राह्मण धर्म या ब्राह्मणवादी व्यवस्था से आशय है रूढ़ जाति-व्यवस्था के अंतर्गत समाज को नियंत्रित करना। इस रूढ़ जाति-व्यवस्था के केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक पक्ष भी हैं। यह व्यवस्था वर्णाश्रम, पुनर्जन्म, कर्मफल और यज्ञ यानी काल्पनिक-वाग्जाल विशेष आचार-व्यवहार रूपी आधार स्तंभों पर खड़ी है। ये चारों घटक मिलकर समग्र रूप में ब्राह्मणवादी व्यवस्था का रूप-आकार ग्रहण करते हैं। ब्राह्मणों ने वेदों सहित ब्राह्मण-ग्रंथों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों की रचना की। इनके माध्यम से ब्राह्मण बुद्धि ने भक्ति का ईजाद किया। सामंतवादी विचारधारा में यह भक्तिभाव सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि यह उसकी आधारभूत आवश्यकता थी। 'सामंतवाद का सारतत्त्व है, वैयक्तिक निष्ठा की शृंखला, जो अनुजीवी (आश्रित व्यक्ति) को सरदार से, आसामी को मालिक से और सामंत को सम्राट से बाँधे रखती है। यह निष्ठा भावात्मक न होकर उत्पादन के साधन और संबंधों के रूप में एक विश्वसनीय आधार की बात थी। इसका मतलब था कि भूस्वामित्व, सैनिक सेवा, कर-संग्रहण और स्थानीय उपज का वस्तुओं में संपरिवर्तन, इन सबके माध्यम प्रभावशाली धनी-मानी हों।'[14] चूँकि धर्मग्रंथों में ब्राह्मणों को सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त था, इससे ब्राह्मणवाद चोटी पर आ गया। 12वीं सदी तक आते-आते 'कृत्यकल्पतरु' और 'चतुर्वर्ग चिंतामणि'[15] नामक ब्राह्मण संस्कारों और धार्मिक अनुष्ठानों (कर्मकांड) से संबद्ध ग्रंथों की रचना की गई, जिन्हें पुराणों और अन्य धर्मग्रंथों से लेकर संहिताबद्ध किया गया है। इनमें पहले ग्रंथ के रचयिता भट्ट लक्ष्मीधर (कन्नौज के गोविंदचंद्र गढ़वाल के मंत्री, लगभग 1150 ई॰) और दूसरे के रचयिता एक सदी बाद हेमाद्रि, देवगिरि (दौलताबाद) के अंतिम यादवों के अधीन वित्तमंत्री थे। एक अंधविश्वासी, आरामतलब, बिल्कुल परिश्रम न करने वाले वर्ग के प्रमाण-ग्रंथ के रूप में अन्य कोई कृति इनकी तुलना में नहीं रखी जा सकती। इनके विरोध में ही गैरब्राह्मण धर्म की परंपरा में धीरे-धीरे मध्यकालीन निर्गुणोपासना ने जोर पकड़ाजिसमें सभी दलित निम्न जातियों के लोग थे, जो अपने कष्टों को उलटबाँसी के माध्यम से कभी ईश्वर के सामने रोते थे, तो कभी अपने वर्ग-बंधुओं को चेताते थे कि भक्ति और ईश्वर की प्राप्ति किसमें और किस तरह है। इन संतों ने कर्मकांडों और अस्पृश्यता के बंधनों को नेस्तोनाबूत करने की जबरदस्त कोशिश की, इसके लिए इन्होंने अनेक कष्ट भी उठाए, लेकिन इसके विपरीत ब्राह्मणवादी सगुणोपासक भी रहे, जो शक्ति और सत्ता-संपन्न लोगों के आसपास डेरा डाले रहे। बराबर धनिकों और सत्तापतियों के पिट्ठू बने रहे, लेकिन जब इन्हें अपना फायदा नज़र आया तो ये इन निर्गुण संतों के स्वर में स्वर मिलाने से ज़रा भी नहीं हिचकिचाए।

आज प्राचीनकाल की जर्जर वर्णाश्रम व्यवस्था-जाति व्यवस्था में तब्दील हो चुकी है। पुनर्जन्म, कर्मफल और यज्ञ यानी विशेष आचार-व्यवहार के प्रति ब्राह्मणों सहित कुछ गैरब्राह्मण धर्मानुयायियों के मन में भी कहीं-न-कहीं श्रद्धा भाव है। पुनर्जन्म, कर्मफल और यज्ञ आदि में अंधविश्वास होने के कारण ही ब्राह्मणधर्म-व्यवस्था कायम है। अतः ब्राह्मणधर्म के खिलाफ लड़ने का अर्थ है पुनर्जन्म, कर्मफल तथा यज्ञ के खिलाफ लड़ना और इनके खिलाफ लड़ने का आशय है तर्क आधारित वैज्ञानिक मान्यताओं को स्वीकारना, एक नए विश्वदृष्टिकोण को अपनाना, एक नई

जीवन-व्यवस्था यानी समाज-व्यवस्था को अपनाना। संभवतः यहाँ पर पहले से स्थित मूलनिवासियों ने धार्मिक दृष्टि से ब्राह्मणधर्म का विरोध कर कड़ी टक्कर दी होगी। लेकिन उसके विरोध के ऐतिहासिक स्रोत नहीं मिलते, क्योंकि ब्राह्मणों ने उन स्रोतों को योजनाबद्ध रूप से समाप्त या विकृत कर दिया। इस विरोध का अंदाजा शूद्रवर्ग पर अपराध, संपत्ति और रहने-खाने तक के विषय में जो कठोर प्रतिबंध लगाए गए हैं उनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि ब्राह्मण धर्मानुयायियों ने अपने विरोधी या गैर ब्राह्मण धर्म को पूर्णतः दीन-हीन और पंगु बना डाला, जबकि ब्राह्मणधर्म को मानने वाले वर्ग को असीम अधिकार दिए गए। यह ठीक वही स्थिति थी, जो अँग्रेजों या मुस्लिम शासकबलबन, अलाउद्दीन खिलजी और औरंगजेब आदि ने छोटे से अपराध पर भी यहाँ की हिंदू जनता को कठोर-से-कठोर सजा दी, जबकि व्यक्ति की हत्या पर भी अँग्रेजों और मुस्लिम शासकों को कोई सजा नहीं दी जाती थी।

समय के साथ ब्राह्मणधर्म के अत्याचार और ज्यादतियाँ, ब्राह्मणेतर धर्म की जनता पर जब पराकाष्ठा पर पहुँच गए तब दो क्षत्रिय राजकुमारोंगौत्तम बुद्ध और महावीर स्वामी ने बौद्धधर्म व जैनधर्म के रूप में ब्राह्मणधर्म को टक्कर दी। यहाँ पर यह क्षत्रिय शब्द गौर करने लायक है। जिस तरह से इन क्षत्रिय राजकुमारों ने ब्राह्मण धर्म की कृत्रिमता और अंधविश्वासों की धज्जियाँ उड़ाई हैं, उससे ये ब्राह्मणों की वर्ण-व्यवस्था वाले क्षत्रिय किसी भी तरह नहीं ठहरते। संभवतः उस समय गैरब्राह्मण धर्म में यह क्षत्रिय शब्द किसी राजनीतिक शक्ति या समाज में सामाजिक प्रतिनिधित्व का बोधक रहा होगा। जिस तरह से दीन-हीन दलित जातियाँ इन धर्मों विशेषकर बौद्धधर्म की ओर आकर्षित हुईं, उससे किसी भी तरह से इस धर्म के प्रतिस्थापक ब्राह्मण-धर्म व्यवस्था वाले क्षत्रिय प्रतीत नहीं होते। ये दोनों धर्म युगानुरूप जनता के पक्ष में खड़े हुए। इन धर्मों ने ब्राह्मणों के वैदिक कर्मकांड पुनर्जन्म, वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति और संस्कृत भाषा आदि उन सब बातों का बहिष्कार किया, जिनके आधार पर यह स्वयं को श्रेष्ठ और जनसामान्य को निम्न बताता या ठहराता था। इन दोनों धर्मों ने सभी वर्णों की समानता की बात की और जन्म-आधारित जाति-प्रथा का घोर विरोध किया। यही कारण है समाज का दलित-निम्नवर्ग इन धर्मों मुख्यतः बौद्धधर्म की ओर आकर्षित हुआ। इस संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर का मत ध्यातव्य है'यद्यपि बौद्धमत और जैनमत ने वर्ण-व्यवस्था पर कभी प्रत्यक्ष प्रहार नहीं किया, फिर भी वे उसके विरोधी थे और इस दृष्टि से उन्हें वर्ण-निरपेक्ष आंदोलन कहा जा सकता है...ब्राह्मण पूजा के मुकाबले इन मतों में पूजा-पाठ के लिए धन का व्यय नहीं करना होता था, इसलिए भी समाज के उत्पीड़ित वर्ग इनकी ओर आकर्षित हुए।'[16]

धर्म के ऐतिहासिक विकासक्रम की दृष्टि से छठी शताब्दी ई॰पू॰ बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इस काल में बौद्ध और जैनधर्म के अतिरिक्त आजीवक, श्रमण, चार्वाक आदि ब्राह्मणेतर धर्म ब्राह्मण या वैदिक धर्म के विरोध में विकसित हुए। 'बुद्ध के समय में 62 दार्शनिक मत प्रचलित थे, जो ब्राह्मणदर्शन के विरोधी थे।'[17] इन ब्राह्मणेतर धर्मों से संबंधित छिटपुट जानकारी बौद्ध और जैनग्रंथों में मिलती है या फिर ब्राह्मण धर्मग्रंथों में ब्राह्मणेतर धर्मों पर या इन धर्मों के मानने वालों के प्रति जो विष-वमन किया गया है, उससे जनता में इन धर्मों के प्रभाव का अंदाजा लगाया जा सकता है।

इन ब्राह्मणेतर धर्मों के मूल में पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, ईश्वर और परलोकजो ब्राह्मणधर्म के मूल हैं, का निषेध है। वास्तव में भारतीय इतिहास में ईसा से पूर्व छठी शताब्दी अनेक दार्शनिकों के कृतित्वों के लिए जाना जाता है, जिन्होंने अपने विचारों को लिपिबद्ध किया था और जो इधर-उधर अनेक भागों में बिखरे पड़े हैं। इन दार्शनिकों में से अधिकांशतः वैदिककाल के यज्ञ की सर्वश्रेष्ठता के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुए थे और उन्होंने ब्राह्मणों की तथाकथित सर्वश्रेष्ठता को स्वीकार नहीं किया था। इन विचारों का प्रचार उन व्यक्तियों ने किया था, जो श्रमण थे अर्थात् ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने गृहस्थ जीवन को त्यागकर जनजागरण करते रहने का संकल्प किया था। दरअसल, ब्राह्मण-धर्म की ज्यादतियों की जब अति हो गई तो ब्राह्मणेतर धर्म के कुछ समाजचेता व्यक्तियों ने अपने गृहस्थ जीवन के सुखों को त्यागकर ब्राह्मणेतर धर्म को नेतृत्व प्रदान किया, क्योंकि इन्होंने ब्राह्मण-धर्म की चालाकियों को समझ लिया था। जिन्हें प्रारंभ में बौद्ध-भिक्षुओं, मध्यकाल में निर्गुण संतों और फिर आधुनिककाल में फुले, पेरियार, अंबेडकर और समकालीन दलित सशक्तिकरण के आंदोलन और चिंतन के रूप में जाना-पहचाना जाता है। लेकिन जैसा कि पहले बताया गया है कि ब्राह्मण-धर्म ने ब्राह्मणेतर धर्मग्रंथों और स्रोतों को योजनाबद्ध ढंग से विकृत कर दिया, नष्ट कर दिया। इस संबंध में मुद्राराक्षस जी के शब्द उल्लेखनीय हैं, 'आठवीं सदी ई॰पू॰ से लेकर उन्नीसवीं सदी तक लगातार लिखे जाते हिंदू धर्मग्रंथों का विरोध भी लगातार होता रहा, पर यह दुर्भाग्य है कि कौरस, कपिल, कवज, एलुष और तुरकार्वषीय से लेकर कबीर और फुले तक का विरोधी विचारधारा का इतिहास कभी नहीं लिखा गया। न कौरस आदि के बारे में हमारे पास कोई इतिहास ज़िंदा बचा है, न उन जनप्रतिनिधियों की कोई सूचना बच पाई है, जिन्होंने यास्क और भरतमुनि द्वारा ब्राह्मण पंथ के अभियान के विरुद्ध आवाज़ उठाई होगी। दुर्भाग्य की बात है कि मार्क्सवादी होकर भी ब्राह्मण बने रहे रामविलास शर्मा या ब्राह्मणत्व के सहयोगी क्षत्रिय भगवान सिंह जैसे लोग इन विरोधियों को दस्यु, पिशाच और राक्षस बताते रहे।'[18]

अब सवाल यह उठता है कि ब्राह्मण-धर्म के विरोधी ब्राह्मणेतर धर्म की अवधारणा या स्वरूप क्या है? इसमें कोई शक नहीं है कि हिंदू-समाज की वर्ण-व्यवस्था में 'चतुर्थ वर्ण' शूद्र और इसके अतिरिक्त 'पंचम वर्ण' के लोग ब्राह्मणेतर धर्म के अनुयायी थे। इन दोनों वर्णों मुख्यतः पंचम वर्ण की जनता को वर्ण-बाह्य और दस्यु भी शास्त्रों[19] में बताया गया है। समाज की यह वर्ण-बाह्य जनता ही आज का दलित-वंचित वर्ग है और इसी वर्ग का धर्म ब्राह्मणेतर या दलित धर्म है।

डॉ॰ अंबेडकर ने बौद्धधर्म अपनाते समय जो 22 प्रतिज्ञाएँ[20] की थीं। वे भी पूर्णतः ब्राह्मण-धर्म के विपरीत गैरब्राह्मण-धर्म के स्वरूप को ही निरूपित करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, राम, कृष्ण, गौरी-गणपति आदि हिंदूधर्म के किसी भी देवी-देवता को न मानना, न उनकी पूजा में व अवतारवाद में विश्वास करना, श्राद्ध व पिंडदान न करना, कोई भी क्रिया-कर्म ब्राह्मणों के हाथों न कराना, सभी मनुष्य समान हैंअतः समानता की स्थापना के लिए प्रयत्न करना, तथागत बुद्ध द्वारा निर्दिष्ट अष्टांग मार्ग व दस परमिताओं का पूरा पालन करना, प्राणी-मात्र पर दयाभाव रखना, चोरी-झूठ-व्यभिचार व शराब का इस्तेमाल न करना और बौद्धधर्म के अनुसार आचरण करने की प्रतिज्ञा करना। दलित चिंतक कंवल भारती जी[21] ने दलित-धर्म को समझाने और उसका स्वरूप निर्धारित करने के लिए

दलित जातियों के रीति-रिवाज़ों, परंपराओं, सांस्कृतिक मूल्यों यानी सामाजिक समस्या और दलित महानायकों की प्रवृत्तियों को आधार बनाकर दलित-धर्म की अवधारणा का पैमाना बनाने की सिफारिश की है। भारती जी ने उपर्युक्त दोनों तरीकों को आधार बनाकर दलित-धर्म के निम्नलिखित सिद्धांत तय किए हैं

1. दलित हिंदू नहीं हैं।
2. वे वेदों के ज्ञान में आस्था नहीं रखते।
3. वे यज्ञ नहीं करते हैं।
4. वे गुरु को मानते हैं।
5. वे समतावादी हैं।
6. वे वर्णव्यवस्था और जातिभेद का खंडन करते हैं।
7. वे स्त्रियों की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं।
8. वे निर्गुण, निराकार ईश्वर को मानते हैं।
9. वे जन्म-जन्मांतरवाद, अवतारवाद और स्वर्ग-नरक की धारणाओं को अस्वीकार करते हैं।
10. ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को नहीं मानते और न उनसे गुरु दीक्षा लेते हैं।
11. वे हिंदू देवी-देवताओं की पूजा नहीं करते।
12. वे श्रमजीवी हैं, भीख माँगकर नहीं खाते हैं।
13. वे संस्कृत को नहीं मानते, लोकभाषा को अपनाते हैं।

उपर्युक्त सिद्धांतों के आलोक में दलित यानी ब्राह्मणेतर धर्म का जो स्वरूप उभरता है, वह पूर्णतः ब्राह्मण या हिंदूधर्म के विपरीत ठहरता है। 'दलितधर्म की अवधारणा और बौद्धधर्म (2002) पुस्तक के पश्चात् कंवल भारती जी दलित-धर्म की और तन्मयता से खोज करते हैं और आजीवक-लोकायत धर्म को दलितों का धर्म बताते हैं। इसका प्रमाण है उनकी पुस्तक 'आजीवक परंपरा और कबीर अर्थात् दलित-धर्म की खोज (2009)'। लेकिन ब्राह्मणों ने ब्राह्मणेतर दलित-धर्म को नष्टप्राय करने के लिए इस्लाम और ईसाइयत को तो समानता का दर्जा दे दिया, लेकिन यहाँ की मूल निवासी जातियों के मूल धर्म को यथासंभव पंगु ही बनाए रखा है। भारत में ब्राह्मण-बुद्धि का यह चमत्कार ही कहा जाएगा कि धर्म की रक्षार्थ खड़े हुए सिक्ख धर्म की स्थिति भी धर्म की दृष्टि से अलग और महत्त्वपूर्ण है, दलित-धर्म की अपेक्षा। आज तक भी, वेद-उपनिषद, गीता आदि धर्मग्रंथों और शंकराचार्य से गांधी-नेहरू आदि का धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत कपोल-कल्पना बनकर रह गई है। ब्राह्मणों ने ''हिंदुत्व के धार्मिक आंदोलनों ने दलितों को हिंदू-व्यवस्था में बनाए रखने के लिए इस दलित-धर्म को तमाम प्रकार से विकृत किया और नाना प्रकार के मिथ्या प्रचार से उनमें हिंदू देवी-देवताओं की पूजा तथा जन्म- जन्मांतरवाद, पुनर्जन्म और स्वर्ग-नरक की धारणाएँ विकसित की हैं।'[22] जिस किसी ने भी ब्राह्मणों की कुचालों को समझकर तर्कपूर्ण बात समाज के समक्ष रखी तो इन ब्राह्मणों ने षड्यंत्रात्मक रूप से दुष्प्रचार और समाहार से उसे समाप्त कर दिया। इस संबंध में भक्तिकालीन गैरब्राह्मण धर्म की निर्गुण संत-परंपरा का ब्राह्मणधर्म के सशक्त पोषक तुलसीदास ने खंडन करते हुए कहा है

साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान।

भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान।[23]

निर्गुण संतों की इससे भी अधिक कटु आलोचना करते हुए ब्राह्मणधर्म के प्रतिष्ठाता तुलसी इन्हें अधम, नर-पिसाच, पाखंडी और सत्य-असत्य का भेद न जानने वाले (महामूर्ख) तक कह देते हैं

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोहबस कहहुँ भवानी।
तुम्हँ जो कहा रामकोउ आना। जेहि श्रुति गाब धरहिं मुनि ध्याना।
कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह-पिसाच।
पाखंड़ी हरि पद-विमुख, जानहिं झूठ न साच।[24]

तुलसी उन सबकी आलोचना करते हैं, जो वेद तथा पुराणों का विरोध कर श्रुति-सम्मत व पुराण-पोषित भक्तिपथ से अलग चलने की या कुछ कहने की कोशिश करता है। और वेद-पुराणों का विरोध और पुराण-पोषित भक्ति का विरोध कोई ब्राह्मण वर्ग का व्यक्ति ही करेगा। इस संबंध में ब्राह्मणों के व्यवहार को लक्ष्य कर मैनेजर पांडेय का मत उद्धरणीय है'तुलसीदास जिस वैदिक और पौराणिक परंपरा की रक्षार्थ निर्गुण की आलोचना करते हैं, उसमें विरोधी विचारों के साथ ऐसा व्यवहार बहुत पहले से होता आया है। उस व्यवहार के अनुसार किसी विरोधी विचार का पहले पूर्ण विरोध किया जाता है। यदि विरोध से वह नष्ट नहीं होता तो उसे विकृत किया जाता है। अगर वह विरोध और विकृति की प्रक्रिया को झेलते हुए जीवित रहता है तो उसके विद्रोही स्वर को दबाकर उसे आत्मसात् कर लिया जाता है। निर्गुणमत से पहले बौद्धदर्शन और लोकायत दर्शन विरोध, विकृति और समाहार की इसी पद्धति के शिकार हो चुके हैं।'[25]

तुलसीदास 'रामचरितमानस' में बार-बार निर्गुणवादियों को फटकारते हैं, लेकिन जब इससे बात नहीं बनी तो इन्होंने 'अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा',[26] कहकर नाम को अगुन-सगुन से भी बड़ा बताया। ब्रह्म के दो रूप बताने वाले तुलसी फिर इनमें अभेद बताते हुए कहते हैं

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।[27]

तुलसी 'राम-राज्य' का यूटोपिया घढ़ते हैं, लेकिन वे जाने-अनजाने में अपने युग के यथार्थ 'कलियुग' के वर्णन से लाख कोशिशों के बाद भी अपने को रोक नहीं पाते। कलियुग वास्तव में लोगों का तर्क और अपने अधिकारों के प्रति सचेत व लामबद्ध होने की प्रवृत्ति के युग का बोधक है। तुलसी के मानस में कलियुग वर्णन वास्तव में वेद-ब्राह्मण विरोधी मतों की निंदा करना और ब्राह्मण-समाज को चेतावनी देना है कि देखो ये ब्राह्मणेतर धर्मानुयायी एकजुट हो रहे हैं। यथासंभव इन्हें एकत्रित होने से रोको, इनकी नकेल कसो। वे शूद्र और स्त्रीवर्ग को नियंत्रित करने के लिए स्थापना करते हैं'ढोल गँवार सूद्र पशु नारी, सबहि ताड़ना के अधिकारी।' [28] ब्राह्मवादी तुलसी ब्राह्मणेतर मतानुयायियों को उनके रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान आदि सभी के लिए फटकारते हैं। लेकिन जब वे 'तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग मांहि' कहते हैं तो वेद और ब्राह्मण-विरोधी मत के पीछे विद्यमान विशाल जनसमर्थन सहज रूप से व्यक्त होता है। दलित या ब्राह्मणेतर परंपरा पर कुपित होकर तुलसी कहते हैं

बादहिं सूद्र द्विजन सन, हम तुम तें कछु घाटि?
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाँटि।[29]

तुलसीदास गैरब्राह्मण-धर्म के अनुयायियों को असंत, खल आदि संज्ञा देने के साथ-साथ इन्हें काम-क्रोध-मद और लोभपरायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल तथा पापों के घर बताते हैं। वे माता-पिता, गुरु और ब्राह्मण आदि किसी को नहीं मानते। मोहवश वे दूसरों से द्रोह करते हैं, उन्हें न तो संतों का संग सुहाता है और न भगवान की कथा ही सुहाती है। और कलियुग में इन अधम मनुजों की संख्या बहुत अधिक होती है'बहु होइहहिं कलिजुग मांहि' [30]। यहाँ वास्तव में तुलसी उन लोगों के बारे में बता रहे हैं जिनके पास गुजर-बसर के लिए कुछ नहीं है, जो रोटी के लिए साहस कर लड़ते हैं। भूखा व्यक्ति माता-पिता-गुरु और मुफ्तखोर पंडे-पुजारी यानी ब्राह्मण को भला कैसे खुश रख सकता है? बच्चा भी भूखा रहने पर माता-पिता की बात नहीं मानता, संतों का संग और ईश्वर भजन पेटभरों का कार्य-व्यापार है। जब तुलसी कहते है कि कलियुग में ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक हो गई है तो वे भली भाँति जानते हैं कि समाज के स्वार्थांध कुछेक व्यक्तियों का ही देश के सारे संसाधनों पर कब्ज़ा है और ज्यादातर लोग इसका विरोध करेंगे ही।

इस प्रकार ब्राह्मण-धर्म भारत के मूलनिवासियों के संदर्भ में पूर्णतः विदेशी आक्रमणकारी कुछ मुट्ठीभर व्यवहारकुशल, महास्वार्थी, सत्ता के पिपासु और शारीरिक श्रम से सदैव दूर रहने वाले लोगों का धर्म था। इसका कोई आदर्श नहीं था। इस धर्म को मानने वाले गिरगिट की भाँति समय-स्थान और अपने स्वार्थ के अनुसार स्वयं को ढाल लेते थे। इन मुट्ठी-भर लोगों के ब्राह्मण-धर्म को समय-समय पर अनेक समाज-चेताओं ने चुनौती दी और नवीन धर्म-संप्रदायों का उद्भव और विकास हुआ। इस संबंध में आजीवक-लोकायत चार्वाक धर्म-परंपरा तो पूर्णतः ब्राह्मणधर्म-विरोधी थी ही, इसके साथ ही बौद्ध-जैन, सिद्ध-नाथ और भक्तिकालीन निर्गुण संतों और आज के दलित चिंतन का उद्भव व विकास ब्राह्मण-धर्म के ही विरोध में हुआ। षड्दर्शन में केवल मीमांसा दर्शन (जो कर्मकांडों एवं यज्ञों का पक्षपाती था) के अतिरिक्त न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और वेदांत तार्किक और बुद्धिवादी दर्शन हैं। ये दर्शन संसार को पंचमहाभूतों का परिणाम मानते हैं, लेकिन कालांतर में ब्राह्मणों ने जैसे-तैसे इन दर्शनों को अपने स्वार्थों के अनुरूप ढाल लिया और षड्दर्शन भी ब्राह्मणधर्म के ही पर्याय होकर रह गए। इसके मूल में ब्राह्मणधर्म का ब्राह्मणेतर धर्म के प्रति विरोध, विकृति और समाहार का रवैया रहा है। यह ब्राह्मण धर्म अपने को श्रेष्ठ और सनातन ठहराता रहा है। हालांकि यह धर्म किसी भी तरह से न तो श्रेष्ठ है और न सनातन ही। ब्राह्मण धर्म समाज में सभी लोगों की परस्पर स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना का निषेध करता है। ब्राह्मणधर्म की ये विशेषताएँ आज के कुछ पढ़े-लिखे गैर-ब्राह्मण यानी दलित-वर्ग के लोगों में भी दृष्टिगत हो रही हैं। बेचारों की उनकी भी मजबूरी है, क्योंकि उन्हें जैसे-तैसे अपने सरकारी पद पर बने रहना है, अपने नजदीकियों को सरकारी-व्यवस्था में निर्णायक पदों पर बैठाना-बिठवाना है।

गैरब्राह्मण-धर्म मानता है कि हिंदू या ब्राह्मणधर्म ने हमें अपना गुलाम बनाया हुआ है। अतः हमें इसे त्याग देना चाहिए। गैरब्राह्मण-धर्म में दलितों के समक्ष विकल्प-रूप में पहले आजीवक और बौद्धधर्म है। इनमें वर्ण-व्यवस्था या जाति-भेद के लिए कोई स्थान नहीं है। डॉ॰ अंबेडकर ने बौद्धधर्म को स्वीकार कर इसे गैरब्राह्मण धर्मानुयायियों के लिए महत्त्वपूर्ण बना दिया। आधुनिककाल के सभी दलित विमर्शकार इस बात पर सर्वसम्मत हैं कि हिंदूधर्म का गैरब्राह्मण-धर्म की जानता से दूर-दूर तक

कोई रिश्ता नहीं हैसिवाय शोषक और शोषित या मालिक और गुलाम या फिर श्रेष्ठ और निम्न के। इसी आधार पर हिंदूधर्म के ब्राह्मणवर्ग द्वारा घढ़े और स्थापित मिथकों और परंपराओं के प्रति गैर ब्राह्मण यानी दलितवर्ग के लोग विद्रोह भाव व्यक्त करते हैं। दलित धर्मचिंतकों ने ब्राह्मण साहित्य और ईश्वर-रूपों के समांतर अपने पृथक साहित्य और ईश्वरीय-रूपों की खोज, छानबीन और प्रतिस्थापना की शुरुआत कर दी है। अब देखना यह है कि दलितवर्ग ब्राह्मणधर्म की चालाकियों को जान-समझकर कहाँ तक सँभल पाता है।

संदर्भ

1. धर्मांतरंण और दलित, सं॰ जयप्रकाश कर्दम, आतीश प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2002, संपादकीय,
2. सनातन धर्म और महात्मा गांधी, पुषराज, श्रीविनायक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994, पृ॰ 47
3. डॉ॰ बाबा साहेब अंबेडकर डॉ॰ सूर्यनारायण रणसुभे, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 2006, पृ॰ 30
4. वही, पृ॰ 82
5. धर्मांतरंण और दलित, सं. जयप्रकाश कर्दम, आतीश प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2002, संपादकीय, पृ॰ 15
6. वही, पृ॰ 18
7. सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, सूरज बड़त्या, पृ॰ 36-37
8. वही, पृ॰ 37
9. वही, पृ॰ 37
10. यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
    मुखं किमस्य कौ बाहू का उरू पादा उच्येते।
    ऋग्वेद संहिता, सं. पं. श्रीराम शर्मा आचार्यभगवतीदेवी शर्मा, ब्रह्मवर्चस, शांतिकुंज, हरिद्वार, 1995, मंडल-10, सूक्त 90, मंत्र 11, पृ॰ 166
11. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासिद् बाहू राजन्यः कृतः।
    ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत। वही, मंत्र, 12
12. घृणा की राजनीति, सीताराम येचुरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2006, पृ॰ 75
13. ऋग्वेद संहिता, सं. पं. श्रीराम शर्मा आचार्यभगवतीदेवी शर्मा, ब्रह्मवर्चस, शांतिकुंज, हरिद्वार, 1995, मंडल-10, सूक्त-90, मंत्र-16, पृ॰ 166
14. मिथक और यथार्थ, दामोदर धर्मानंद कोसंबी, अनुवादक नंदकिशोर नवल, ग्रंथ शिल्पी, प्रा. लि. दिल्ली, 1977, पृ॰ 42
15. वही, पृ. 42-43
16. भारत का इतिहास, रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1975, पृ॰ 59-60
17. आजीवक परंपरा और कबीर अर्थात् दलितधर्म की खोज, कँवल भारती, स्वराज प्रकाशन, 2010, पृ॰ 13
18. संधान पत्रिका, सं. लालबहादुर वर्मा, अंक-2, 2001, पृ॰ 32, मुद्राराक्षस का लेख
19. मनुस्मृति 10-15
20. युद्धरत आम आदमी (पत्रिका) सं. रमणिका गुप्ता अंक - 104, जुलाई-सितंबर, 2012, बाबा साहब की 22 प्रतिज्ञाएँ, पृ॰ 95
21. हासिये की वैचारिकी, सं. उमाशंकर चौधरी (कँवल भारती का लेख : दलितधर्म की अवधारणा और

बौद्धधर्म), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., 2008, पृ॰ 260
22. वही, पृ॰ 267
23. तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खंड (मानसेतर एकादश ग्रंथ) सं रामचंद्र शुक्ल-ब्रजरत्नदास-भगवानदीन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2031, दोहावली, दोहा554, पृ॰ 126
24. रामचरितमानस (बालकांड) तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर सं. 2064 पृ॰ 111
25. भक्ति-आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2001, पृ॰ 26
26. रामचरितमानस (बालकांड) तुलसीदास, गीता प्रेस, गौरखपुर सं. सं.-2064 पृ0-29
27. वही पृ॰ 112
28. रामचरितमानस (सुंदरकांड), तुलसीदास, गीता प्रेस, गौरखपुर सं. 2064, पृ॰ 751
29. तुलसी ग्रंथावली, सं. रामचंद्र शुक्ल-ब्रजरत्नदास भगवानदीन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2031, दोहावली, दोहा, 553, पृ॰ 126
30. रामचरितमानस (उत्तरकांड) तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर सं. 2064, पृ॰ 932

गाँव मोहम्मदपुर, पो॰आ॰ अलीपुर
दिल्ली 110036
मो॰ 9582691776

ब्रह्मानंद सरस्वती की दार्शनिक चेतना

राममूर्ति (शोधछात्र)
हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
डॉ॰ बाबूराम (डी॰लिट्॰)
प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

भारत में प्राचीनकाल से ही ऋषि-मुनियों, संत महात्माओं, दार्शनिक, चिंतक और योगियों की परंपरा रही है जिसके कारण पाश्चात्य विद्वान भारतीयों को दार्शनिक और योगी कहते हैं। हरियाणा प्रदेश भी इस परंपरा से अछूता नहीं रहा है। इसी परंपरा में संत ब्रह्मानंद सरस्वती भूमा 'कुरुक्षेत्री' का आविर्भाव हुआ था, जिन्होंने अपनी अलौकिक, सम्यक् दिव्यदृष्टि से मानवता की सेवा की।

'दर्शन' का शाब्दिक अर्थ हैदेखना। दर्शनशब्द 'दृश' धातु में 'ल्युट' प्रत्यय लगने से व्युत्पन्न होता है, जिसका शाब्दिक निर्वचन के आधार पर अर्थ हैजिसके द्वारा देखा जाए। [1] शब्दकोश के अनुसार दर्शन का अर्थवह ज्ञान जो देखने से हो, साक्षात्कार, तत्त्वज्ञान संबंधीशास्त्र या विद्या, जिसमें ब्रह्म, जीव, जगत, प्रकृति का विवेचन से है।[2]

ब्रह्म

ब्रह्म को सच्चिदानंद, रसरूप और आनंदघन कहा जाता है। 'वहदारण्यकोपनिषद्' में ब्रह्म को सबका ईश्वर, सब प्राणियों का स्वामी, भूतों का पालन करने वाला सेतु तथा संपूर्ण लोकों को ध ारण करने वाला परब्रह्म कहा है।'[3]

श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन इस प्रकार है

सर्वस्य चाहं हृदि, सन्निविष्टो मत्तः स्मतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।[4]

संत ब्रह्मानंद जी ने 'ब्रह्म' को अचिन्त्य, अबोधगम्य, अनिर्वचनीय माना है, जिसे असंख्य जन्म प्राप्त करने के पश्चात् भी जाना नहीं जा सकता

कितनी बार जन्म को पाया।
फिर भी भेद तेरा नहिं पाया।[5]

वे आगे लिखते हैं

जिससे सब-कुछ जाना जा सकता है
उसको किससे जानें, जो सबको जानता है
स्वस्वरूप वही तो है
जिसको तू ब्रह्म मानता है,[6]

स्वामी जी ने ब्रह्म को साकार और निराकार दोनों रूपों में माना है, जिसमें साकार प्रत्यक्ष और निराकार अप्रत्यक्ष है

सबल ब्रह्म पारब्रह्म है, दो रूप अपारा।
सबल ब्रह्म साकार है, पारब्रह्म निराकारा।[7]

जीव

जीवात्मा को परमात्मा का ही अंश कहा गया है। जगतगुरु शंकराचार्य ने जीव और ब्रह्म को अभिन्न माना हैजीव ब्रह्मै नापरः अर्थात् जीव और ब्रह्म अलग-अलग नहीं है। जगद्गुरु ब्रह्मानंद ने 'श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा' में जीवात्मा और परमात्मा के रहस्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है

एक वृक्ष पक्षी दो बैठे उसकी डाल।
कर्त्ता भर्त्ता एक है साक्षी एक भूपाल।[8]

स्वामी जी के अनुसार यह जीवात्मा शरीर से अलग है और अजर-अमर है

कोई नहीं किसी का भाई, दुनिया रुक्के मारे सारी।
अजर अमर है आत्मा, शरीर से रहती न्यारी।[9]

श्रीमद्भगद्गीता में जीवात्मा को अजर और अमर बताया गया है

ना जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हयन्ते हन्यमाने शरीरे।[10]

अर्थात् आत्मा के लिए किसी भी काल में न तो जन्म है, न मृत्यु। वह न तो कभी जन्मा, न जन्म लेता है और न जन्म लेगा। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर वह मारा नहीं जाता। इसी अमरता के संदर्भ में स्वामी जी के विचार हैं

अजर-अमर, अविनाशी है तू शरीर नाश हो जाना है
जनम-मरण, जवानी बुढ़ापा देह के अंदर पाना है।
आत्मा नहीं जन्म ले, नहीं मरता है
फिर क्यों फिरे तू दुःख भरता है।[11]

जगत्

जगत् का शाब्दिक अर्थ है'गच्छति इति जगतः' अर्थात् जगत् सदा गतिमान और परिवर्तनशील है। संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर हैं, जिस कारण इसे क्षणभंगुर कहा जाता है। स्वामी जी ने प्रकृति के गुणों से जगत् की उत्पत्ति मानी है। वे पाँच तत्त्वों द्वारा शरीर की रचना मानते हैं

आकाश, वायु, तेज, आप, धरती।
इस देह के अंदर पाँचों की भरती।[12]

संसार की असारता को स्वामी जी ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है

प्रकृति का है खेल जिसको तू देखता है।
प्रकृति का है विकार जिसको तू देखता है।
तीन गुणों का है विस्तार जिसको तू देखता है
एक रस नहीं है यह जिसको तू देखता है।
परिवर्तनशील है यह जिसको तू देखता है।[13]

माया

'माया' शब्द की व्युत्पत्ति 'मा' धातु से मानी जाती है, जिसका शाब्दि अर्थ हैपरिधि, सीमा का माप, कोई ऐसी कृति-रचना या रूप जिससे लोग धोखे या भ्रम में पड़ते हैं, माया कही जाती है।[14]

'श्वेताश्वेतरोपनिषद् में प्रकृति को माया कहा गया है। कबीर ने माया को जग की ठगिनी कहा है।

वीतरागी संत श्री ब्रह्मानंद सरस्वती ने सत-रज-तम गुणों से युक्त त्रिगुणात्मक प्रकृति को ही माया कहा हैसात्विकराज सतामस लक्षाणि त्रयोः गुणा। [15] आगे स्वामी जी कहते हैं कि सारा संसार तीन गुणों में बह गया है'बह गया तीन गुणों में संसार। [16]

स्वामी जी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि संपूर्ण दोषों से मुक्त होकर सत्य का उपदेश दिया है ताकि जीवात्मा भवबंधन से मुक्त होकर परमात्मा का साक्षात्कार कर मोक्ष की प्राप्ति कर सके।

कर्मयोग

संत महात्माओं और ऋषि-मुनियों ने निष्काम कर्म पर बल दिया है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में कर्म के महत्त्व को अभिव्यक्त किया गया है'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्। अर्थात् कर्म करो फल की इच्छा न करो। यही संदेश कुरुक्षेत्र के रण में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया था।

स्वामी जी कर्म के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं

काम के करने वाले को नरक न टोया मिलता है।
कर्मवीर के आगे कोई दुःख डाटे नहीं डटता है।[17]

गीता के संदेश 'कर्म करो फल की इच्छा न करो' के प्रत्युत्तर में स्वामी जी के विचार दृष्टव्य है

इच्छा लेकर कर्म करे, सब पापों का मूल
निरिच्छित हो कर्म करे, पाप मिले सब धूल।[18]

भक्तियोग

मोक्ष-प्राप्ति के लिए कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग में भक्तिमार्ग को ही श्रेष्ठ मार्ग बताया गया है। 'भक्ति' शब्द 'भज्' में 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर बनता है, जिसका शाब्दिक अर्थ हैभजन करना या सेवा करना। 'नारद भक्तिसूत्र' में भक्ति के विषय में कहा गया हैसा तस्मिन परम प्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च।[19]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा हैश्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।[20]

संत ब्रह्मानंद सरस्वती भक्तियोग के संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं

यह प्रेम का घर है, खाला जी का बाड़ा नहीं।
यहाँ आज्ञा का पालन है, कुंजी और ताला नहीं।[21]

ज्ञानयोग

अज्ञान ही मनुष्य को मोह-माया में बाँधे रखता है तथा यह मोक्ष-प्राप्ति में बाधक होता है।

इसलिए ज्ञान-प्राप्ति अति आवश्यक मानी जाती है। ज्ञान से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि दोषों से छुटकारा मिलता है। स्वामी जी ने ज्ञान को पवित्र मानते हुए अपनी वाणी में प्रतिपादित किया है

ज्ञान विचार नहीं जो करता कर्म धर्म बेकार।
शुद्ध विचारे अंतर थारे क्रिया करम अपार।
ज्ञानी को संसार में किस विध हो निर्वाह।
जैसे जल के बीच में कमल रहे तरता।।[22]

गुरु महिमा

संत कबीर ने गुरु गोविंद कहकर गुरु का स्थान परमपिता परमात्मा के समतुल्य माना है। सांसारिक मोह-माया से निकालने वाला गुरु ही होता है। 'गुः' शब्द का अर्थ हैअंधकार, 'रु' का अर्थ हैरुकावट (निरोधक)। अज्ञान (अंधकार) को हटाकर जो ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान करता है, वही गुरु है।[23]

तपस्वी श्री ब्रह्मानंद सरस्वती माता-पिता, ओउ्म तथा संत महात्माओं को गुरुतुल्य मानकर इन्हें प्रणाम करते हैं

माता-पिता गुरु, इन तीनों से विद्या शुरु।
इन तीनों को जो फटकारे, वे फिरते हैं मारे-मारे।
ब्रह्मानंद जी करे विचार, इनके बिना न नैया पार।
ऊँ गुरु जी, ऊँ गुरु जी, ऊँ गुरु जी ऊँ, तीन ताप तीन दोष।
कटे क्षण में हो निर्दोष।[24]

नाम स्मरण

लगभग सभी साधु-संतों और ऋषि-मुनियों ने नाम-स्मरण पर बल दिया है। संत कबीर के अनुसार सच्चे मन से किया गया सुमिरन (स्मरण) फलदाई होता है। अन्य साधकों की तरह स्वामी ब्रह्मानंद जी भी नाम-स्मरण को कल्याण का मार्ग मानते हुए ओंकार के महत्त्व को अभिव्यक्त करते हैं

ओंकार सबसे उत्तम, सबसे बड़ा है नाम।
ओउ्म जप से शुद्ध होवे आत्मा, पूर्ण हों सब काम।[25]

संत कबीर के उपदेशों से की भाँति स्वामी जी भी बनावटी नाम-स्मरण का खंडन अपने शब्दों में करते हैं

माला फेरत उमर गई, जन्म लिया बहुबार।
वेदशास्त्र बहुत पढ़े, मन का न गया विकार।[26]

गुरु नानकदेव जी ने भी नाम-स्मरण पर बल देते हुए कहा हैनाम खुमारी नानका चढ़ै दीनराति।

सत्संग का महत्त्व

संगति का प्रभाव मनुष्य पर अवश्य पड़ता है तथा यह प्रभाव दूरगामी होता है। 'नीतिशतक',

'श्रीमद्भागवत', 'नारद भक्ति सूत्र' आदि में संगति से उत्पन्न गुण-दोषों का वर्णन मिलता है। 'श्रीरामचरित मानस' में गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं

जहाँ सुमति तहं संपत्ति नाना। जहाँ कुमति तहं विपत्ति निदाना।[27]

सुसंगति (साधु-संतों की संगति) से जहाँ मनुष्य जन्म-जन्मातंर के चक्र से मुक्ति पा लेता है, वहीं कुमति से विद्वान व्यक्ति भी जड़ बुद्धि को प्राप्त हो जाता है। संत ब्रह्मानंद जी ने भी सत्संग महिमा का बखान अपनी वाणी में किया है

षम-संतोष-विचार-सत्संग, सब भरमों का करदे भंग।
जीव रहे प्रकृति के संग में, रँगा जावे उसी के रंग।
ब्रह्म की तरफ से जो मुख को मोड़ा।
सब दुःखों से नाता तोड़ा।[28]

योगसाधाना

भारत को विश्व में योगगुरु कहा जाता है। भारत वर्ष के योगियों ने योग की अलख संपूर्ण विश्व में जगाई है। जीवात्मा और परमात्मा के मिलने को ही योग की संज्ञा दी जाती है। भगवान शंकर को आदि योगी (आदिगुरु) कहा जाता है। संत ब्रह्मानंद सरस्वती ने अपनी वाणी में अष्टांग-योग को प्रमुखता दी है

यम, नियम, आसन, प्राणायाम।
करना चाहिए सुबह शाम।
प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।
अष्टांग-योग से सब मिटे उपाधि।[29]

अष्टांग-योग से परमात्मा की प्राप्ति संभव है।

निष्कर्ष

संत ब्रह्मानंद सरस्वती जन्मना वीतरागी, अवधूत तथा दार्शनिक थे। उन्होंने माता के गर्भ में ही आत्म-साक्षात्कार कर लिया था। उनकी अलौकिक दृष्टि ने जमाने की रफ्तार को समझ लिया था। उन्होंने वेद, उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता का सम्यक् पारायण कर सरल भाषा में मानव जाति को संदेश देने का कार्य किया था जिसके कारण वे सच्चे दार्शनिक की श्रेणी में प्रमुख स्थान पर गिने जाते हैं।

ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि अनसुलझे बिंदुओं को उन्होंने अपनी सम्यक् दृष्टि से समझाकर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया। ब्रह्म सच्चिदानंद रसरूप है। जीव ब्रह्म का अंश है। माया सांसारिक दोषों का आवरण है। जगत गतिमान और परिवर्तनशील है। गुरु ही वह माध्यम है, जो सांसारिक मायाजाल से निकालकर जीवात्मा और परमात्मा का साक्षात्कार करवाता है। अर्थात् गुरु कृपा से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

'श्रीमद्भगवद्गीता' में वर्णित निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग में स्वामी जी ने भक्ति को मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग माना और ज्ञान को पवित्र कहा। गुरु महिमा में माता-पिता, ओउ्म तथा साधु संतों को गुरु तुल्य माना जिसके सहारे बीच भँवर में फँसी नाव को पार उतारा जा सके।

नाम-स्मरण, सत्संग का महत्त्व और योग-साधना का प्रतिपादन कर स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती दार्शनिकता की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ उमेश, भारतीय दर्शन, पृ॰ 7
2. आप्टे शिवराम वामन, संस्कृत हिंदी कोश, पृ॰ 790
3. वृहदारण्यकोपनिषद् 4-4-19
4. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 15,श्लोक 15
5. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद ब्रह्म विचार, पृ॰ 6
6. वही, पृ॰ 9
7. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद 426, पृ॰ 45
8. वही, पद-347, पृ॰ 41
9. वही, पद-419, पृ॰ 44
10. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 20
11. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद विचार, पृ॰ 16, 19
12. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद 363-64, पृ॰ 39
13. वही, पद-26, पृ॰ 11
14. संपा॰ रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, तीसरा खंड, पृ॰ 344
15. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद शरीरकोपनिषद्, पृ॰ 6
16. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद 181, पृ॰ 15
17. वही, पद-497, पृ॰ 51
18. वही, पद-232, पृ॰ 27
19. नारद भक्ति सूत्र 2/4
20. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग-1
21. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद-159, पृ॰ 22
22. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद-483-125, पृ॰ 50, 19
23. गुशब्दस्त्वन्धकारः स्वयाद्रु शब्द स्तन्निरोधकः।
    अन्धकार निरोधित्वाद गुरुरित्यभिधीयते। अद्वयतारकोपनिषद्-16
24. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद 64-66, पृ॰ 13
25. वही, पद-25, पृ॰ 11
26. वही, पद-448, पृ॰ 47
27. तुलसीदास, रामचरितमानस
28. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद 46-41-42, पृ॰ 12
29. वही, पद 69-70, पृ॰ 14

समकालीन कथासाहित्य में व्यक्ति और समाज की बदलती पहचान

डॉ॰ पुष्पा गर्ग

किसी भी दौर का साहित्य अपने समय और समाज की स्थितियों के यथार्थ का साक्षात्कार प्रस्तुत करता है। यह साक्षात्कार हमें स्थिति के मूल स्रोत तक पहुँचा सकता है। उस दौर की समझ प्रदान करके तथा निर्णय ले सकने का विवेक पैदा कर सकता है। स्थितियों और समस्याओं के चित्रण या बयान से कहानी न ही आधुनिक बन सकती है और न ही समकालीन। इनके चित्रण निरूपण तथा इनके साथ जुड़े मानवीय संबंधों से यथार्थ के सघन, जटिल और गहरे स्तरों को जाना जा सकता है।

यदि समकालीनता को आधुनिकता के परिपेक्ष्य के रूप में देखा जाए तो समकालीनता की जमीन वर्तमान है, आज है, आज का परिदृश्य और घटनाएँ हैं, लेकिन यह 'आज' न बीते हुआ कल से कटा हुआ है और न ही आने वाले 'कल' से। यह वर्तमान पर टिकी ऐसी दृष्टि है, जो अतीत और भविष्य से जुड़ी हुई है। वर्तमान स्थिति और समसामयिक जीवन को समझे बिना हम अतीत को भी नहीं समझ सकते और न ही उसकी पुनर्व्याख्या कर सकते हैं। डॉ॰ कल्याणचंद ने अपनी पुस्तक 'समकालीन कवि और काव्य' में समकालीनता का आशय स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'अपने समय के प्रति ईमानदार व्यक्ति तभी होता है, जब वह संकटों की परवाह किए बिना समय के क्रूर यथार्थ से अभेद संबंध स्थापित कर लेता है और उस निर्मम यथार्थ की ज्वाला में जलता हुआ अदभुत साहस के साथ समय को चुनौती देता है।'[1]

डॉ॰ नरेंद्रमोहन ने समकालीन के संदर्भ में कहा है, 'समकालीनता समकालीन घटनाओं, तथ्यों और संदर्भों तक सीमित नहीं है। बोध और संवदेना के धरातल पर इतिहास से इसका कोई विरोध नहीं। आज के यथार्थ को पाने के लिए, उसे अधिक सशक्त ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए अगर समकालीन लेखक इतिहास में जाता है और उसे अपनी कल्पनाशक्ति और स्मृतिबोध के जरिए वर्तमान तक ले आता है, तो यह उस लेखन की व्यापक दृष्टि और कला-कौशल का ही परिचायक है।[2]

किसी और के लिए समकालीनता महज समसामयिक इतिहास मात्र और समय खंड हो, लेकिन साहित्यकार के लिए वह इतिहास के साथ-साथ संवेदन भी है। वर्तमान स्थिति में छिपे इतिहास को संवेदना में ढालना और संवेदना को इतिहास में फैलाना समकालीनता की पहली शर्त मानी जाती है। यह समकालीनता ही है, जो आधुनिकता को नए-नए संदर्भों, हलचलों और आंदोलनों से गुंजाती

हुई आधुनिकता को आकार देते हुए उसे हाड़-मांस प्रदान करती है। समकालीन साहित्य का उद्देश्य केवल समसामयिक परिस्थितियों के ब्योरे और आँकड़े पेश करना भर नहीं है, बल्कि उसका उद्देश्य समसामयिक घटनाओं और स्थितियों के साथ जुड़े हुए आत्मगत और सामाजिक पहलुओं को पहचानते हुए वास्तविकता के जटिल और गहरे परिवेश में प्रवेश करना है। समसामयिकता से तो हमें कच्चा माल ही मिलता है जिसे समकालीन जीवनबोध और इतिहास-बोध की भट्ठी में घधकाना जरूरी है।

रचनाकार जिस परिस्थिति में और जिस समय में जी रहा होता है वह स्थिति एवं समय उसे अवश्य प्रभावित करता है। उसकी रचनाओं में वह स्थिति और समय किसी-न-किसी रूप में प्रतिबिंबित होते हैं। इसलिए समकालीनता में समयगत चेतना का बोध रहता है और उसी में से नई-नई प्रवृतियाँ पैदा होती हैं। यदि कोई साहित्यकार मुख्य प्रवृत्तियों, समसामयिक रुझानों के प्रति अनदेखी करके किसी दायरे में कैद प्रवृत्ति को लेकर रचना लिखता है, वह रचना कभी भी समकालीन नहीं हो सकती।

विभाजन के पश्चात् साहित्य और साहित्यकार मोहभंग की लपेट में आ गए और उनके विचार, सरोकार और व्यवहार ठीक वही नहीं रहे, जो विभाजन से पहले थे। उनकी चिंतन-पद्धतियों, ज्ञानात्मक आधारों और संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन आया। आजादी से पहले व्यक्ति और समाज मन और परिवेश की अलग-अलग स्वतंत्र इकाइयों की बड़ी धूम थी जिसके फलस्वरूप सामाजिक कहानी, व्यक्तिपरक कहानी, मनोवैज्ञानिक कहानियों के वर्ग निर्धारित कर दिए गए थे, परंतु स्वाधीनता के पश्चात ये वर्ग और इकाईयाँ एक-दूसरे में समाने लगे।

स्वाधीनता के पश्चात् नई पीढ़ी के रचनाकार पुरानी कथा रूढ़ियों से सर्वथा मुक्त होकर वास्तविक जीवन से जुड़ने के लिए व्याकुिल थे। उस समय की कहानियों में यही व्याकुलता वास्तविकता के अवबोध और अभिव्यक्ति की प्रक्रियाओं में बदली हुई प्रतीत हुई। यही वह केंद्रबिंदु है, जहाँ से कहानी में समकालीनता का सफर आरंभ हुआ। समकालीन कहानियों में अधिक रागात्मक और प्रामाणिक संबंधों में झलक रही सामाजिक-आर्थिक चेतना के विविध रूपों और व्यवहारों को देखा जा सकता है। नई कहानियों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ उभर आईं और पुराना ढाँचा एकदम चरमरा गया। इन रचनाकारों ने व्यक्ति और समाज की बदलती पहचान तथा उनमें हो रहे बदलाव को गहराई से अनुभव किया। इनके प्रचलित रूप बदलने लगे और बँधे-बँधाए ढाँचों में दरारे पड़ने लगीं। नैतिक मूल्यों के स्थायित्व का मिथ टूटा और इन्होंने नए जीवन-यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में बदली हुई पहचान और जीवन स्थितियों एवं संबंधों में व्याप्त जटिलता को पहचाना और उन्हें कभी आत्मगत तो कभी वस्तुगत स्तरों पर, कभी दोनों के द्वंद्व के रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया।

समकालीन कहानियों में व्यक्ति और समाज के संबंधों में कभी बदलाव, तनाव, स्वार्थ, बेबसी, छटपटाहट, ईर्ष्या, द्वेष, भय आदि का विघटन हुआ, तो कभी जीवन के नए आयाम, नई दृष्टि, पाश्चात्य प्रभाव, वैयक्तिक चेतना, बौद्धिक चेतना, सेक्स भावना और नैतिकता के प्रति नए प्रतिमान की प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं। इस युग के रचनाकार ने न तो परंपरा को माना और न ही मानवीय मूल्यों को स्वीकार किया। उन्होंने अपने भोगे हुए यथार्थ के बीच से व्यक्ति और समाज की बदलती पहचान का चित्रण किया। यथाज्ञानरंजन की कहानी 'पिता', 'शेष होते हुए', रमेश बख्शी की कहानी 'पिता

दर पिता' और 'हे राम', मन्नू भंडारी की कहानी 'त्रिशंकु' में मानवीय संबंधों के बदलाव और विघटन तथा पीढ़ियों के बीच बढ़ते फासले और संघर्ष को उभारा गया है।

ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' में पुरानी पीढ़ी का अपने समकालीन परिवेश से कटते चले जाने का दर्द चित्रित है। इस कहानी में बदलती हुई मानसिकता का भी अंकन है। इसी के साथ दो पीढ़ियों का संघर्ष भी उजागर किया गया है। उन्होंने अपनी कहानियों में तत्कालीन समाज में तेजी से हो रहे परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में मध्यवर्गीय भारतीय पारिवारिक संस्था के तनाव को ही नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के टकरावों को भी रेखांकित किया है

'वह घूम-फिरकर लौट रहा था, तो पिता अपना बिस्तर बाहर लगाकर बैठे थे। कनखी से उसने उन्हें अपनी गंजी से पीठ का पसीना रगड़ते हुए देखा और बचता हुआ वह घर के अंदर दाखिल हो गया। उसे लगा कि पिता को गर्मी की वजह से नींद नहीं आ रही है, लेकिन उसे इस स्थिति से रोष हुआ। सब लोग पिता से अंदर पंखे के नीचे सोने के लिए कहा करते हैं, पर वह जरा भी नहीं सुनते। हमें क्या, भोगें कष्ट।'[3]

इस कहानी में पिता ऐसे हैं, जो जीवन की अनिवार्य सुविधाओं से चिढ़ते हैं और निरकुिंश हैं। कहानी के 'वह' को अनुभव होता है कि पिता एक भीमकाय दरवाजे की तरह खड़े हैं जिससे टकरा-टकराकर हम सब निहायत दयनीय स्थिति में पहुँच रहे हैं। टूटते एवं बदलते हुए संबंधों की संवेदना यहाँ वास्तविक जीवन-संदर्भो से जुड़ी हुई है। इसी प्रकार रमेश बख्शी की 'पिता-दर-पिता' और 'हे राम' कहानी रोमेंटिक कथा-संस्कारों के बावजूद पीढ़ियों के बीच फासले और संघर्ष को उजागर करती है। कहानी की बुजुर्ग माँ अपने बेटे-बहू की समस्या को समझना नहीं चाहती है। वह सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है। बेटे-बहू की नाक में दम करके रखती है और बेटे-बहू को जली-करी सुनाती रहती है'मा ने तीखी जबान में कहा, 'भई तुम्हारे घर में टुकड़े तोड़ती हूँ तो सोचा कि कुछ मैं भी करूँ? .... वे कड़ाही में सब्जी डालती शुरू हो गई हैं।[4]

आज के बुजुर्ग नौजवानों की सोच-विचार का समर्थन नहीं कर पाते, क्योंकि उन्होंने अपने समय में जो भोगा-झेला है, जो सोच पाल रखी है, उन्हीं विचारों को अपनी संतानों पर थोपते हैं। जैसे कि 'हे राम' कहानी की सुलू अपनी सास की करतूतों को बयान करती हुई कहती है, 'कौन उनके खिलाफ नहीं होगा। जब भी हम अपने कमरे में दो मिनट को बात करने बैठते हैं, उनका (माँ) रक्तचाप बढ़ जाता है, आखिर क्यों? जब भी हम बालकनी में खड़े दो मिनट को अपने दुख-सुख की बात करते हैं, उन्हें जोर-जोर की डकारे आने लगती हैं, आखिर क्यों? जब भी हम किसी बात को लेकर हँसते हैं, उनके चेहरे पर गंदे कीड़े कुलबुलाने लगते हैं, आखिर क्यों? सुलू बोलते-बोलते थर-थरा उठी।'[5]

मन्नू भंडारी की कहानी 'त्रिशंकु' में आधुनिकता के स्तरों, परंपरागत संस्कारों और मूल्यों के द्वंद्व को बड़ी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। एक ओर दावे, फ्री सेक्स और तमाम तरह की आधुनिकता, दूसरी ओर व्यवहार और आचरण कोरमकोर गैर-आधुनिक-आधुनिकता उस हद तक ही जिस हद तक उससे अपने अहं की पूर्ति हो। त्रिशंकु कहानी के मम्मी-पापा को अपनी आध ुनिकता तुष्ट करने के अवसर मिलने चाहिए। मुक्त रहो और बच्चों को मुक्त रखो कहने वाली मम्मी तनु और शेखर के प्रेम संबंध को बरदाश्त नहीं कर पाती और उस पर उबल पड़ती है। मम्मी के इस

रूप में तनु को अपने नाना बैठे दिखाई देते हैं, तनु यही सोच रही है कि नाना पूरी तरह नाना ही हैं शत्-प्रतिशत। परंतु उसकी मम्मी दोहरा व्यक्तित्व और संक्रांत मानसिकता को लिए बैठी है। एक तरफ आधुनिकता के बहाने अपने अहं को तुष्ट करने की लालसा, दूसरी तरफ परंपरागत संस्कारों की जकड़न में धँसी हुई। इसी दोहराव के कारण उन माँ-बेटी के संबंध के बीच द्वंद्व दिखाई देता है, परंतु आज की पीढ़ी में निर्णय लेने का साहस है और साथ-साथ आज का बदलता समाज भी इस साहस को उकसाता है। समाज में वर्जनाओं में मुक्ति के स्वर भरे हुए हैं, लेकिन जब कोई निर्णायक क्षण आता है, तब पुरानी पीढ़ी के मूल्य आड़े आ जाते हैं। पुरातन मूल्यों की जकड़न से मुक्ति की छटपटाहट में व्यक्ति त्रासद-भरी स्थितियों के बीच जीने के लिए विवश है।

दूसरी तरफ आज के नौजवानों ने भी अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों को आधुनिकता की आड़ में ताक पर रख दिया है। आज के मानव का जीवन इतना यांत्रिक हो गया है कि उसे आत्मजगत के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता और प्रत्येक कदम पर आर्थिक एवं स्वार्थ दृष्टि से सोचता है। जैसे कि काशीनाथ की कहानी 'अपना रास्ता ले बाबा' में देवनाथ के घर में अपने बाबा के लिए कोई जगह नहीं है और गाँव से आए बाबा को केवल 10 रुपए की दवाइयों देकर उन्हें वापिस गाँव भेज देने में कामयाब होते हैं

'बाजार चलते समय उनके दिमाग में जो दवाइयाँ आई थी, उन्हें वे रास्ते में ही खरीद सकते थे, लेकिन बाबा पीछे-पीछे लगे रहते और देखते कि कितने पैसे खर्च हो रहे हैं। ऐसे तो पूछने पर कुछ भी बताने के लिए स्वतंत्र थे। साथ ही रास्ते में होने पर इतनी आसानी से मिलने वाली दवाओं के महत्त्व के बारे में उन्हें संदेह हो जाता। उन्होंने काफी सोचने-विचारने के बाद तीन पैसे वाली 'बी कांपलेक्स' की सौ गोली, पाँच पैसे वाली 'लिव फिफ्टी टू' की पचास और ऐसे ही दर्द की दस टिकियाँ लीं। उन्हें अलग-अलग शीशियों में रखवाया। उन्हें राहत मिली कि सारा मामला दस रुपए के अंदर ही निपट गया।'[6]

देवनाथ उसकी पत्नी और बच्चों के लिए बाबा एक फालतू चीज हैं जिससे हर कोई बचना चाहता है। देवनाथ में अपने प्यारे से गाँव की याद जरूर बाकी है और याद के साथ लिपटी हुई गाँव की चीज़ें भी, जो उसे भावुक बनाती हैं और वह सोचता है 'वे भी इतने ही सरल और आसान रहे हो जितने कि बाबा।'[7] लेकिन दूसरे ही पल वह इस याद को जड़ समेत उखाड़ फेंकता है। कहानी की अंतिम पंक्तियों में देवनाथ के विचार व्यक्त होते हैं'सारी जिंदगी और सारी दुनिया और सारा जमाना तुम्हारे सामने पड़ा है और तुम एक बेमतलब को बूढ़े को लेकर मुँह लटकाए बैठे हो।'[8]

आज मनुष्य के आचरण व व्यवहार में विसंगतियाँ आने पर हर मनुष्य को मूल्यगत द्वंद्व, तनाव और अपमानित-सा जीवन जीना पड़ता है। आज की युवा पीढ़ी ने आधुनिकता का ऐसा चोला पहन लिया है जिसकी आड़ में वह अपनी पहचान खोता जा रहा है। रामदरश मिश्र की कहानी 'सड़क' में रमेश ने अपने स्वार्थ को साधने के लिए अपने बूढ़े, ब्राह्मण, पुराने काँग्रेसी, स्कूल के अध्यापक एवं रिटायर हुए पिता को चाय की दुकान खुलवा दी और झूठे बर्तन धोने के लिए मजबूर कर दिया, तो दूसरी तरफ मास्टर जी का शिष्य एम॰एल॰ए॰ जंगबहादुर यादव को जरा-सी भी शर्म नहीं है और

वह अपने मास्टर जी पर हँसता है और उस पर व्यंग्य करता हुआ कहता'यादव जी ने ठहाका लगाया, अच्छा मास्टर जी आपने अब यह धंधा भी शुरू कर दिया। ठीक है, आदमी को कुछ-न-कुछ करते रहना चाहिए। पैसा बड़ी चीज है, मेरे लायक कोई सेवा हो तो कहिएगा मास्टर जी। फिर एक ठहाका लगाया और साथ के लोगों ने भी ठहाके का अनुसरण किया। एक ने खुशामद के तौर पर कहा, 'अरे यादव जी, आपकी बदौलत जब इस इलाके में सड़क आ रही है तो न जाने कितने लोगों का पेट पलेगा।'[9]

इस कहानी का मास्टर जी यादव द्वारा अपमानित होते हैं और आत्मभर्त्सना के दौर से गुजरते हैं। अर्थात् हम कह सकते हैं कि आज का आदर्श, आधुनिकता, टेक्नोलॉजी महानगरीपन, स्वार्थ की आड़ में तिलमिलाता हुआ-सा दिखाई देता है। आज किसी को किसी अन्य की कोई परवाह नहीं है कि उसके ऐसे आचरण एवं व्यवहार से दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ेगा। मनुष्य केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि में विश्वास रखता है। ऐसे परिवेश में एक आदर्शवादी, परंपरावादी मनुष्य को युवापीढ़ी की उपेक्षा, तिरस्कार, अपमान, घृणा को झेलना पड़ता है और कई तरह से अपमानित होकर जीवन की इस डोर को बँधे रखना पड़ता है। वर्तमान समय में आधुनिकता की आड़ में मनुष्य अनुचित काम करने से भी नहीं डरते। उन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति को दाँव पर लगा दिया है और आधुनिक बनने के चक्कर में वे न तो आधुनिक ही बन पाते और न ही अपने संस्कारों के अनुसार चल पाते हैं। ऐसा करने पर यदि कोई विरोध व्यक्त करता है, तो उसे दूसरी तरफ से फँसा दिया जाता है। जैसे ममता कालिया द्वारा लिखी गई कहानी 'जाँच अभी जारी है' में अपर्णा एक मेहनती और संस्कारी लड़की है। वह अपने काम से काम रखती है। दफ्तर के कई पुरुष उससे सेक्स को लेकर अनैतिक व्यवहार करना चाहते हैं, परंतु वह कोई-न-कोई बहाना बनाकर टाल देती है। एक दिन मि॰ सिन्हा के अनुरोध पर उसे रुकना पड़ता है। कुछ मित्रों के आने पर मि॰ सिन्हा अपने संस्कारों और नैतिकता को भूल जाते हैं और व्हिस्की की बोतल खोल लेते हैं। मिस अपर्णा जैसी सुसंस्कारी भारतीय नारी को यह बहुत बुरा लगता है। वह वहाँ से उठकर अपने घर चली जाती है

'सबसे सबका परिचय हुआ। केक की रस्म अदा होने के बाद अपर्णा ने देखा, चपरासी दाताराम एक बड़ी से प्लेट में ढेर सारी बर्फ ले आया। इसके पहले कि वह चीजों को समझे, बात की बात में न जाने किसी कोने से व्हिस्की की बोतल लेकर मेज पर रख दी गई। बैठे लोगों के थके चेहरों पर एकाएक स्फूर्ति आ गई। सिंध ने मेज की दराज़ से गिलास निकाल लिए, 'एक्सक्यूज मी।' अर्पणा ने कहा और उठ गई। 'अरे-अरे आप क्या अनर्थ करती हैं बैठिए। सिन्हा ने उसे रोका।'[10]

क्या आज हमारे जीवन की नैतिकता का इतना पतन हो गया है कि एक बहन के समान किसी लड़की के सामने अपने मित्रों को बिठाकर उनके साथ शराब दी जाए। उस समय उस लड़की के अलावा कमरे में दूसरी कोई और औरत भी न हो। प्राचीन समय में हमारी नैतिकता और हमारे संस्कार ऐसे होते थेएक गाँव, एक जगह काम करने वाली, एक साथ पढ़ने वाली सभी लड़कियों को बहन का दर्जा दिया जाता था। एक गाँव की बेटी पूरे गाँव की बेटी समझी जाती थी। विवाहित लड़की को गाँव का कोई भी आदमी मिल जाता, तो उसके सिर पर हाथ फेरता था और उसे शगुन के रूप में कुछ रुपए भी दिए जाते थे, परंतु आज के यांत्रिक युग में, मशीनीकरण, औद्योगिकरण के

कारण मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया कि आज लड़की अपने गाँव के किसी इंसान पर तो क्या अपने पिता और भाई तक पर विश्वास नहीं कर सकती। उसे उनसे भी खतरा है। आज उसकी आबरू खतरे में है। आज वह अपने घर से लेकर कार्यक्षेत्र के हर स्थान पर असुरक्षित है। 'जाँच अभी जारी है' कहानी की नायिका अपर्णा को इतना ही नहीं, मि॰ सिन्हा और मि॰ खन्ना ने उसे ऐसे कुचक्र में फँसा दिया, जिससे निकलना अपर्णा के लिए बहुत मुश्किल था। अंत में अपर्णा अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहती है

'जिन दिनों जाँच की कार्रवाई स्थगित रहती, अपर्णा के मन में बेहद आक्रोश इकट्ठा होता रहता। वह सोचती, उसे खन्ना के केबिन में घुसकर एक दिन उसे ताबड़तोड़ मारना है। सिन्हा के स्कूटर के सामने उसे पत्थर रख देना है। एक दिन कुर्सी पर खड़े होकर वह चीख-चीखकर सबको बताएगी कि इस राष्ट्रीयकृत बैंक में कैसे घपले और सौदेबाजी होती है। झूठे बिलों के जरिए हर आदमी हजारों रुपए डकारता है। चाहे वे मेडिकल बिल हों या स्टेशनरी बिल। इन सबकी कोई शिकायत नहीं होती। इन सब पर जाँच नहीं बैठाई जाती। जाँच उसके अठारह सौ के बिल पर बैठाई गई है। जिस पर अब तक अठाईस हजार रुपए खर्च हो चुके हैं। उसे पता है कि इस बैंक में छोटा-बड़ा कोई कर्ज बिना कमीशन के मंजूर नहीं होता। ऊपर से नीचे तक सबका परसेंटेज बँधा है।'[11]

इस कहानी में बाह्य भ्रष्टाचार की भयानकता के कारण उसका आंतरिक पूरी तरह से क्रूरता, नफरत से भर गया है। उसकी यातना उसे गहरे मानसिक स्तरों तक उभारती है। आज का पुरुष अवसर मिलते ही नैतिक मूल्यों को ताक पर रखने में नहीं हिचकिचाता। जैसा कि मि॰ सिन्हा और मि॰ खन्ना, अपर्णा को पार्टी में रोककर रौब दिखाना चाहते हैं और उस पर गलत आरोप लगाकर प्रताड़ित करते हैं।

आज दो जून की रोटी के लिए मनुष्य मारा-मारा फिरता है। उसे योग्यतानुसार काम नहीं मिलता। परिणामस्वरूप एक आदर्शवादी अपने आदर्शों की आहुति देकर भ्रष्टाचार में लिप्त होने के लिए मजबूर होता है। जिस प्रकार रेगिस्तान में कोई प्यासा ऊँट को मारकर उसके पेट की थैली में भरा पानी पीने के लिए विवश हो जाता है। उसी प्रकार नौकरी न मिलने की कष्टप्रद स्थिति में व्यक्ति कुछ भी करने में नहीं हिचकता। रामनारायण शुक्ल की कहानी 'सहारा' में व्यक्ति और व्यवस्था ऐसी ही टकराहट देखने को मिलती है'मास्टर जी ने कहा थाजब प्यास असह्य हो जाती है, तो लोग ऊँटों को मारकर उसके पेट के अंदर भरी थैली का पानी पी लेते हैं।'[12]

इसी प्रकार धर्मेंद्र गुप्त की कहानी 'अपंग संज्ञा' में भी एक ऐसे व्यक्ति को दर्शाया गया है, जो अपने परिवेश की भ्रष्टता के विरूद्ध लड़ता है। वह भी अपनी मान्यताओं के विरूद्ध काम करने पर मजबूर है'कुछ देर पहले ही उसे उसके अफसर ने अपने कमरे में बुलाकर तबादले की सूचना दी थी। उसने तबादले की बात अनसुनी कर दी। पहले से ही तैयार मैडिकल लीव का कागज बैग से निकालकर अफसर के आगे फेंक दिया और बाहर निकल आया। उसका अफसर उसकी आदतों से परिचित था और वह स्वयं अफसर की शक्ति से परिचित था।'[13]

पहले तो नौकरी मिलना बहुत कठिन कार्य है। यदि किसी तरह नौकरी मिल भी जाती है, तो उसे आराम से नौकरी करने नहीं दिया जाता है। आए दिन तबादले होते रहते हैं। मनुष्य अपने

परिवार के साथ एक स्थान पर टिककर नहीं रह सकता। मनुष्य को इतना परेशान कर दिया जाता है कि न चाहते हुए भी वह ऐसा काम करता है, जो उसे नहीं करना चाहिए।

आज हम कितने ही आधुनिक हो गए हैं, परंतु हमारे समाज में पंडित को आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचा स्थान दिया जाता है किंतु जब वही पंडित अनैतिक और क्रूरतापूर्ण कार्य करता है, तो समाज कलंकित हो उठता है। 'अँधेरे की आँख' कहानी का नायक पंडित जी कोई भी अनैतिक काम करने से नहीं हिचकता

'पंडत जी की आँखों में लाल डोरे खिंच आए हैं। वह भर-भर 'लुंगड़ी' (स्थानीय नशैया पेय) के कटोरे पी रहा है। उसके सामने उसका एक हमउम्र हंसी बैठा है, जो उसको पीये जाने के लिए उत्तेजित किए जा रहा है। उसकी मूँछे घनी हैं, चेहरा छोटा है और पिचका हुआ है और एक आँख में उसकी सफेदी आई हुई है। उसकी बगल में दो बूढ़ी औरतें कानों में बालियाँ डाले डफ बजा रही हैं और उनके साथ, आपस में सटकर, कुल्लू की दो युवतियाँ बैठी हैं। संन्यासी और सहकारी युवक दुकान में बैठे सुल्फा पी रहे हैं।'[14]

हमारी सृष्टि जड़ और चेतन दो तत्त्वों से मिलकर बनी है। चेतन जगत में मानव के साथ मूक प्राणी भी है, जो बोल तो नहीं सकते, परंतु सुख-दुख, मोह-माया की सारी संवेदनाएँ उनके पास हैं। ईश्वर ने हम सबको जीने का अधिकार दिया है। कोई भी मनुष्य किसी अन्य प्राणी को मारने का अधिकार नहीं रखता है, परंतु 'अँधेरे की आँख' का नायक पंडत जी एक मूक प्राणी बकरी को मार देता है। जिससे पंडित के चरित्र की क्रूरता उभरकर आती है। वह एक ऐसा व्यक्ति है, जो अपने स्वार्थ के लिए हर चीज को निचोड़ने का फन जानता है। वह धरती का लँगोट बनाए, पहाड़ी नदी की शिलाओं में अटकी हुई लकड़ियाँ निकाल लेता है और निरीह बकरी की जान ले लेता है'पंडत जी अपने पराजय का कारण ढूँढ रहा था...और जैसे ही उसने कारण ढूँढ ही निकाला। उसी क्षण उछला और कोने में एक और सिमटी बैठी बकरी को उसने जा दबोचा। कुछ क्षण बकरी की अनवरत 'मैं-मैं' अँधरे को चीरती रही। फिर एक हृदयविदारक स्वर वैसा जो रिसर्च मृत्यु के क्षण ही कोई पशु निकाल सकता है, पहाड़ चुप थे। उनमें कोई हरकत न थी। पेड़ निकंद थे।'[15]

आधुनिक समय में विज्ञान ने जी-तोड़ उन्नति की है। मनुष्य ने समय को अपनी मुट्ठी में बंद कर लिया है। इतनी उन्नति करने के बावजूद आज मानव को मानसिक भयाक्रांत स्थिति में जी रहा है। शांति नहीं है। शहर में रहता व्यक्ति तो बिल्कुल ही संवेदन शून्य होता जा रहा है। निरूपमा सेवती की कहानी 'आतंक-बीज' का नायक केशव अपने जीजा से मिस-शीला का कोई काम करवाना चाहता है, परंतु उसका जीजा बड़ा आदमी बन गया है। वह किसी पार्टी का मेंबर भी है। वह भ्रष्टाचार और बेईमानी से कमाए गए धन से ऐश और शान-शौकत भरी जिंदगी जी रहा है, परंतु केशव गरीबी के कारण अपने बच्चों को दो जून की रोटी तक नहीं दे पाता। जिस बहन को उसने उसके पति के लिए बुरा भला कहा था। अंत में उसी बहन के घर जाकर उसकी पत्नी कमला गेंहू माँगकर लाती है और अपने बच्चों का पेट भरती है और वह अपने ही सम्मुख अपमानित हो जाता है और मानसिक द्वंद्व से घिर जाता है'जैसे कि उसका माथा जलने लगा, तो क्या कभी भी वह कुछ देर को पंगु बन सकता है? या ऐसे भी हो सकता है कि इससे बचने के लिए वह खुद भी किसी

आतंक का इस्तेमाल करने की सोचने लगे? दोनों ही भयावह बातें हैं और मुट्ठियों के भिंचाव का दर्द फिर से बड़े तीखेपन से महसूस होने लगा था।'[16]

आज मनुष्य भय, आतंक, असुरक्षा, उदासी, आत्मपीड़न की ऊबाऊ जिंदगी जीने के लिए मजबूर है। महानगरीय व्यक्ति की मानसिकता टेक्नोलॉजी के दबावों से बुरी तरह ग्रस्त है। वह हर समय स्वयं को संकट में घिरा पाता है। आतंक और मृत्यु भय के दहला देने वाले अनुभवों में से गुजर रहा है। यांत्रिकी के भयावह संदर्भों में वह अस्तित्व-संकट की लड़ाई निहत्था ही जूझ रहा है। जैसे योगेश गुप्ता की कहानी 'एंक्लोज़र' में घनश्याम पर यांत्रिकी का बहुत गहरा पड़ता है। यंत्र-दैत्य के पंजे में पड़े आदमी का भय और घुटन इस कहानी स्पष्ट दिखाई देता है 'गली में बंद होने की प्रक्रिया नजर आई। एक गोलाई और जाने का रास्ता अनदीखता उसका दम घुटने लगा। सामने आसमान को छूती एक इमारतों की कतार। पीछे आसमान को छूटी हुई इमारतों की दूसरी कतार।'[17]

गंगाप्रसाद 'विमल' की कहानी 'विध्वंस' में नायक युद्ध के दौरान भीषण विनाश को देख लेता है जिसके कारण उसकी आत्मा मर चुकी है और सारी संवदेनाएँ शून्य हो गई हैं। किसी भी घटना का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मोहमाया और आसक्ति उसे बेकार लगती है'मुझे याद है, युद्ध के दिनों, दूसरे पक्ष की सेनाओं ने कुछ ही क्षणों में हमारे शहर को निर्जीव कर दिया था। मेरी आँखों में तब भय नहीं था, सिर्फ एक कौतुक था। तब 'मृत्यु' मरे हुए चेहरे अजीब किस्म से मुझे तृप्त करते थे। तब टूटे हुए मकान, उजाड़ दुकानें, अकेली सड़कें अजीब तरीके का आकर्षण भरती थीं, परंतु यह कुछ देर ही रहा।'[18]

महीपसिंह की कहानी 'पारदर्शक' में महानगरीय जीवन की भयाक्रांत स्थितियों को व्यक्त किया गया है। कहानी का नायक स्कूटर एक्सीडेंट देखने के बाद जब घर आता है, तो उसकी अतंश्चेना में मृत्यु-भय गहराता रहता है और वह मानसिक उथल-पुथल के कारण मानसिक तनाव से घिर जाता है। साथ ही उसकी पत्नी भाषी, जो मिस्टर मेहरा की स्कूटर एक्सीडेंट में मौत की खबर सुनकर भयभीत हो जाती है। भयाक्रांत मनःस्थिति में संवेदनात्मक प्रक्रिया से गुजरने हुए संभोग की उत्कटता का शब्द-चित्र उसके तनाव को मूर्त करता है और छटपटाहट को व्यंजित करता है'भाषी उसके होंठों पर अपने होंठ बड़े जोर से रगड़ रही थी। कुछ क्षणों के अंतराल से वह बराबर यही किए जा रही थी। पता नहीं कौन-सा भय था कि वह उसे उसके होंठों के सान्निध्य से पी जाना चाहती थी रगड़कर बहा देना चाहती थी।'[19]

आज समाज में भ्रष्टाचार, बेईमानी, स्वार्थपरता, धोखाधड़ी, अकेलापन, घुटन, परायापन इस कदर छा गया है कि मनुष्य अपने-आपको जीते-जी मरा हुआ अनुभव करता है। आज हमारी संस्कृति और सभ्यता को समाज के अत्याचारी और आततायी लोगों ने अपने शिकंजे में जकड़ा हुआ है जिससे हमारा अस्तित्व विसंगत हो गया है और हमारे मानवीय मूल्य मखौल बनकर रह गए हैं। मनुष्य विसंगतियों के अँधेरे से बाहर आने के लिए छटपटाता रहता है। देवेंद्र इस्सर की कहानी 'मुर्दाघर' में ऐसी छटपटाहट देखने को मिलती है'मुझे अँधेरे से बड़ा डर लगता है दोस्तो! इस अँधेरे में कब से भटक रहा हूँ। जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वे मेरे सामने एकदम आ खड़े होते हैं। बाजार में, गली में, मोड़ पर, सीढ़ियों पर, हर जगह, जहाँ अँधेरा घना हो जाता है बिजली के खंभे पर नग्न स्त्री की लाश क्रॉस

की तरह उठाए वह मेरे सामने आ खड़ा होता है और मुझसे पूछता है'बताओ, इसका हत्यारा कौन है?' और सहसा दूसरी ओर से वह काले घोड़े पर सवार राक्षसी-हँसी हँसता हुआ आ जाता है, भाले की नोक पर बच्चे की लाश उछालता हुआ। वे दोनों सदियों से मेरे पीछे घूम रहे हैं। मैं किधर जाऊँ? इस सघन अँधेरे में मुझे कुछ सुनाई नहीं देता। हे ईश्वर! मुझे रोशनी दिखाओ, लेकिन ईश्वर कहाँ है? हमने उसकी भी तो हत्या कर दी है।'[20]

निष्कर्षतः, हम कह सकते हैं कि आज का मानव अतिशय महत्त्वाकांक्षी है, जो अपने सपनों को साकार करने के लिए लगातार भागदौड़-भरा जीवन व्यतीत करने को विवश है। अपनों के बीच रहकर भी उसे अकेलेपन का अनुभव होता है। भीड़-भरे जीवन में भी वह अकेला है, कुंठित है, परायापन और अजबीपन है। आज हर व्यक्ति की सोच बदल रही है। व्यक्ति की सोच बदलने से समाज में बदलाव अवश्य आता है।

संदर्भ

1. समकालीन कवि और काव्य, डॉ॰ कल्याणचंद, पृ॰ 12
2. बात से बात चले, नरेंद्रमोहन, पृ॰ 72
3. पिता, ज्ञानरंजन
4. समकालीन हिंदी कहानियाँ, डॉ॰ नरेंद्रमोहन, पृ॰ 198
5. वही, पृ॰ 199
6. वही, पृ॰ 34-35
7. वही, पृ॰ 36
8. वही, पृ॰ 36
9. वही, पृ॰ 235
10. वही, पृ॰ 139
11. वही, पृ॰ 145-146
12. वही, पृ॰ 245
13. वही, पृ॰ 94
14. वही, पृ॰ 251
15. वही, पृ॰ 251-252
16. वही, पृ॰ 121
17. वही, पृ॰ 191
18. वही, पृ॰ 41
19. वही, पृ॰ 149
20. वही, पृ॰ 78

हिंदी विभाग
फतहचंद महिला महाविद्यालय
हिसार (हरियाणा)
मो॰ 09215512414

कवि ग्वाल और उनका 'हम्मीरहठ'

डॉ॰ विशेषकुमार शर्मा
सहायक अध्यापक
चित्रगुप्त इंटर कालेज, मुरादाबाद

राजस्थान में 600 वर्ष तक सुदृढ़ शासन की पताका फहरानेवाले चौहान वंश में तीन महापुरूष सर्वश्रेष्ठ सैनानी गिने जाते हैं। पृथ्वीराज चौहान, हम्मीरदेव और कृष्णदेव (कान्हड़देव)। पृथ्वीराज चौहान ने अजमेर के साथ-साथ दिल्ली में भी अपनी राजधानी स्थापित की और सम्भल ही नहीं कालिंजर तक अपनी विजय पताका फहरायी। जालौर के शासक कान्हड़देव ने भी विदेशी आक्रमणकारियों के साथ डटकर संघर्ष किया। विदेशी आक्रांताओं से दुर्धर संघर्ष करने और उनके समक्ष घुटने न टेकने के लिए रणथंभौर नरेश हम्मीरदेव का नाम अग्रगण्य है। इस नरेश का राज्याभिषेक संवत् 1339 में हुआ और लगभग 18 वर्ष पश्चात संवत् 1358 के श्रावणमास (जुलाई सन् 1301) में उन्हें प्रतिज्ञा-पालन और शरणागत की रक्षा हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा। अलाउद्दीन खिलजी और हम्मीरदेव का यह युद्ध इतिहास प्रसिद्ध है। प्राणोत्सर्ग के पश्चात भी हम्मीरदेव के पराक्रम, शौर्य एवं शरणागत वात्सल्य की कथा न केवल इतिहास में अमर हो गयी, बल्कि काव्यजगत में भी अपना जीवंत प्रभाव बनाने में सफल हुई। रीतिकाल के अंतिम चरण में कवि ग्वाल ने महाराज हम्मीरदेव की प्रतिज्ञा-पालन, शरणागतवात्सल्य एवं उनकी हठ को प्रदर्शित करने वाला 'हम्मीरहठ' नामक काव्य लिखा।

कवि ग्वाल

रीतिकालीन हिंदी साहित्य के इतिहास का अनुशीलन करते समय विक्रम की 19वीं शताब्दी के अन्त में कवि ग्वाल एवं चंद्रशेखर वाजपेयी के रूप में दो ऐसे कवि प्राप्त होते हैं जिन्होंने शृंगार रस के साथ ही वीररस में भी काव्य का सृजन किया। इन्होंने रीतिकाव्य परंपरा को आगे बढ़ाने का भरसक प्रयास किया, लेकिन यह कवि न तो रीतिकाल की अधोगति को ही रोक सके और न प्रबंधकाव्यों को गरिमापूर्ण स्थान ही दिला सके। इस विषय में डॉ॰ रामानंद शर्मा का यह कथन दृष्टव्य है'वस्तुतः पद्माकर, चंद्रशेखर वाजपेयी, प्रतापसाहि और ग्वाल ऐसे समय में हुए जब रीतिकालीन आचार्य- कवि-परंपरा का सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगा था, परवर्ती आचार्य कवियों की कीर्ति तो गोधूलि के प्रकाश के समान है। शब्दांतर से यही कहा जा सकता है कि ग्वाल रीतिकाव्य गंगा की वह सशक्त सीढ़ी हैं, जहाँ से वह निरंतर अधोमुखी होती चली गयी।[1]'

कवित्व एवं आचार्यत्व का सम्यक् निर्वाह करने वाले रीतिकालीन अंतिम चरण के सर्वांग-निरूपक कवियों में ग्वाल का स्थान अन्यतम कहा जा सकता है। ग्वाल का व्यक्तित्व रीतिकालीन दरबारी कवि का प्रतिनिधि व्यक्तित्व माना जा सकता है, जो शानो-शौकत से युक्त विलासिता पूर्ण

जीवन जीता है और मनोरंजन तथा जीविका हेतु काव्यसृजन करता है। ग्वाल काव्य का अनुशीलन करने पर उनके व्यक्तित्व की एक तस्वीर सामने आती है। ग्वाल के जीवन में राजसी ठाठ-वाट शानो-शौकत एवं वैभव का वातावरण रहा। अतः हम कह सकते हैं कि ग्वाल चार्वाक् के सिद्धांत 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्, भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः' के अनुयायी थे इस विषय में ग्वाल के कथन से उनकी जीवनशैली स्वयं स्पष्ट हो जाती है

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो 'ग्वाल कवि'
खाओ-पियो लेउ-देउ यहीं रह जाना है।

कवि ग्वाल का जन्म विक्रम संवत् 1848 में हुआ अथवा संवत् 1859 में यह विवादास्पद है। मीनाई साहब, जो रामपुर, रियासत से 40 वर्ष संबद्ध रहे और ग्वाल कवि अभिन्न मित्र थे, उनका जन्म संवत् 1859 में मानते हैं। अधिकांश विद्वानों ने मीनाई साहब के मत का समर्थन कर दिया है, लेकिन अंतःसाक्ष्यों के आधार पर यह मत तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। यदि मीनाई साहब द्वारा बताई कवि की जन्म संवत् मानी जाए तो ग्वाल के प्रौढ़ साहित्यिक ग्रंथ 'रसिकानंद' जिसकी रचना उन्होंने संवत् 1879 में की थी, के समय उनकी आयु मात्र 20 वर्ष होती है। इतनी कम अवस्था में ऐसे प्रौढ़ ग्रंथ की रचना तर्कसंगत नहीं लगती। दूसरी ओर मथुरा निवासी पंडित नवनीत चतुर्वेदी उनकी जन्मतिथि मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया, संवत् 1848 स्वीकारते हैं। यद्यपि पं॰ नवनीत चतुर्वेदी ने भी कोई पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है, लेकिन वे मथुरावासी ही थे और वयोवृद्ध कवियों से जानकारी प्राप्त करके ही उन्होंने अपना लेख छपवाया था। विशेष बात यह है कि मीनाई साहब की अपेक्षा उनकी जन्मतिथि अधिक तथ्यपरक और विश्वसनीय है। श्री प्रभुदयाल मीतल ने भी इसे ही न्याय्य माना है और हम भी इसे ही यथार्थ और तथ्यपरक मानते हैं। ऐसा मानने पर 'यमुनालहरी' और 'रसिकानंद' की रचना के समय कवि की आयु 31 वर्ष ठहरती है और वे तब तक चार वर्ष राज्याश्रय में भी व्यतीत कर चुके थे, जो इन दोनों ग्रंथों की प्रौढ़ता की दृष्टि से उचित ही है। ग्वाल के जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में अधिक मतभेद नहीं है। शिवसिंह सैंगर, जार्ज ग्रियर्सन, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ॰ रामकुमार वर्मा और डॉ॰ भगीरथ मिश्र आदि विद्वान ग्वाल को मथुरावासी मानते हैं। यद्यपि ग्वाल ने अपने जन्मस्थान का स्पष्ट उल्लेख कहीं पर भी नहीं किया, किंतु उनके कुछ ग्रंथों से ज्ञात होता है कि उनका बचपन वृंदावन में व्यतीत हुआ और वे बाद में मथुरा में जाकर बस गए थे।

शिक्षा-दीक्षा एवं काव्यगुरु

कवि ग्वाल ने अपने 'रसिकानंद' नामक ग्रंथ में 21 दोहों में अपने वंश, कुलपरंपरा एवं पूर्वजों का इतिहास वर्णित किया है। कवि जाति से ब्रह्मभट्ट (बंदीजन) थे। ये 'राय' या 'राव' अल्ल का प्रयोग करते थे। उनके इस वर्णन से ऐसा ज्ञात होता है कि कवि के पूर्वज भी वृंदावन के ही निवासी थे, क्योंकि कोलिया घाट पर उनके कुछ सजातीय अभी भी निवास करते हैं तथा ग्वाल के मकान के ध्वंसावशेष आज भी पाए जाते हैं। इनके पिता सेवाराम राय भी एक कवि थे। पं॰ जवाहरलाल चतुर्वेदी ने इनके 'भँवरगीत' की चर्चा की है। सेवाराम राय का परिवार छोटा ही था, पति पत्नी और एक पुत्र। दुर्वैववशात् वे अल्पायु में ही परलोक सिधार गए। उस समय ग्वाल मात्र आठ वर्ष के थे। इनकी माता जगदंबा इन्हें अपनी पैतृक काव्याभ्यास की शिक्षा दिलाने के लिए व्यग्र थीं। इन दिनों वृंदावन में

दयानिधि, जिनका मूल नाम दयालाल गोस्वामी था और कविताओं में वे दयानिधि छाप रखते थे, एक श्रेष्ठ कवि एवं काव्यशिक्षक के रूप में प्रसिद्ध थे तथा वृंदावन में काव्यशाला चलाते थे। माता ने ग्वाल को काव्यशिक्षा के लिए इन्हीं दयानिधि को सौंप दिया तथा इनकी माता के अनुनय पर दयानिधि ने इन्हें काव्य की शिक्षा-दीक्षा देना स्वीकार कर लिया। उन्हीं दिनों यहीं गोपालसिंह 'नवीन' और हरदेव कवि भी काव्य शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। दयानिधि का व्यवहार 'नवीन' के प्रति स्नेहपूर्ण था, लेकिन ग्वाल को वे हेय दशष्टि से देखते थे, फलतः ग्वाल की शिक्षा यहाँ अधिक दिन नहीं चल पायी। ग्वाल की माता उन्हें लेकर अपने पितृगृह काशी चली गयीं। काशी से लौटने के पश्चात ग्वाल ने बरेली निवासी कवि खुशहालराय को काव्यगुरु बनाया और उनके सान्निध्य में काव्य रचना का अभ्यास किया। खुशहालराय एक श्रेष्ठ कवि ही नहीं, उदार और सहृदय व्यक्ति भी थे। उन्हें ग्वाल से काफी प्रेम था और कवि भी उनके प्रति असीम श्रद्धाभाव रखते थे। ग्वाल ने अपने छंदों में खुशहालराय को 'कविमुकुटमणि' कहा है, जो अपने गुरु के प्रति उनकी असीम आस्था का ही परिचायक है।

राज्याश्रय

रीतिकालीन काव्यपरंपरा राजाओं के आश्रय में ही पुष्पित एवं पल्लवित हुई। तत्कालीन अधिसंख्यक कवि, राजा या सामंतों के आश्रित थे। राज्याश्रय में काव्य-सृजन करने वाले कवियों को यथोचित धन, पद, प्रतिष्ठा एवं सम्मान की प्राप्ति होती थी। वित्तेष्णा एवं लोकेष्णा से अभिभूत कवि आश्रयदाआतों के मनोविनोद हेतु काव्यसृजन करते थे। ग्वाल के समय के अधिकांश कवियों की भी यही स्थिति थी और ग्वाल भी इसके अपवाद नहीं थे। ग्वाल भी अनेक राजाओं और नवाबों के आश्रित रहे।

ग्वाल जीविकोपार्जन हेतु देशाटन करते हुए सर्वप्रथम पंजाब की नाभा रियासत के अधिपति महाराज जसवंतसिंह के दरबार में पहुँचे। जसवंतसिंह जो कि स्वयं काव्यप्रेमी थे, ने प्रीतिपूर्वक ग्वाल को अपने दरबार में रख लिया। ग्वाल ने नाभानरेश की आज्ञा ने संवत् 1879 में 'रसिकानंद' नामक ग्रंथ की रचना की। ग्वाल नाभा में कब तक रहे इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। नाभा निवास के पश्चात उनका संबंध अमृतसर के सरदार देशराजसिंह मजीठिया और उनके पुत्र लहनासिंह से स्थापित हुआ। लहनासिंह, महाराजा रणजीतसिंह द्वारा पहाड़ी राज्य का शासक नियुक्त किया गया था, लेकिन यह अमश्तसर में रहकर ही राजकाज देखता था। अमृतसर में ही रहकर कवि ग्वाल ने संवत् 1883 में 'हम्मीरहठ' तथा संवत् 1891 में 'कविदर्पण' की रचना की। इसके पश्चात लहना सिंह के माध्यम से ही ग्वाल का प्रवेश लाहौर दरबार में हुआ। ग्वाल किस संवत् में लाहौर गये थे इसे भी विश्वासपूर्वक कहना कठिन है, किंतु ऐसा अनुमान होता है कि वे महाराज रणजीतसिंह की मृत्यु, संवत् 1886 से पूर्व कभी लाहौर आए होंगे। जहाँ वे संवत् 1901-02 तक आनंदपूर्वक रहे। कवि ने 'विजयविनोद' की रचना लाहौर दरबार में रहकर ही महाराज शेरसिंह के समय में की। महाराज शेरसिंह और उनके मंत्री ध्यान सिंह ग्वाल का बहुत आदर करते थे। संवत् 1901 में लहनासिंह की मृत्यु हो जाने पर लाहौर अस्थिर हो उठा और ग्वाल लाहौर छोड़कर पुनः नाभा में महाराजा देवेंद्रसिंह के पुत्र महाराज भरपूरसिंह के आश्रित रहे। यहीं कवि ने गुरुपचासा (मौलिक काव्य) तथा मीरहसन की प्रसिद्ध मसनवी कृति 'सिहरउलबयाना' का 'इश्कलहरदरयाब' नाम से संवत् 1917 में काव्यानुवाद प्रस्तुत किया।

श्री नवनीत चतुर्वेदी का मानना है कि ग्वाल ने लाहौर से चलकर पंजाब की सुकेत मंडी में डेरा डाला तथा वहाँ के शासक बलवीर दयाल की आज्ञा से 'बलवीरविनोद' ग्रंथ की रचना की। एक बार ये टोंक राज्य में भी गए थे व टोंक के नवाब के लिए उन्होंने खड़ीबोली में कृष्णाष्टक बनाकर सुनाया, लेकिन यह अंतःसाक्ष्य से सिद्ध नहीं होता। बहुत संभव है, ग्वाल भ्रमणार्थ वहाँ गए हों, क्योंकि देशाटन उनका व्यसन था। तदनंतर कवि वापस मथुरा आ गये और संवत् 1919 में उन्होंने 'दृगशतक' की रचना की तथा 'भक्तभावन' का संपादन किया। यहाँ से वे यदा-कदा राजस्थान की रियासतों का दौरा कर आते थे।

ग्वाल का अंतिम जीवन रामपुर दरबार में व्यतीत हुआ। रामपुर के शहजादे इमदादुल्ला खाँ 'ताब' मथुरा आते रहते थे और ग्वाल के शिष्य बन गए थे। सं॰ 1914 में जब रामपुर में नवाब यूसुफ अली खाँ का शासन था, तब उनके कहने पर उनके मुफ्ती और प्रसिद्ध विद्वान अमीर अहमद मीनाई ने ग्वाल को रामपुर आमंत्रित किया। सात माह रामपुर में रहने के पश्चात् वे पुनः मथुरा आ गए। वे मथुरा छोड़कर अन्य किसी स्थान पर नहीं जाना चाहते थे किन्तु इमदादुल्ला खाँ के आमन्त्रण पर कवि पुनः रामपुर आए और एक वर्ष नौ माह रामपुर में रहे। उन्होंने अंतिम श्वास भाद्रपद शुक्ल एकादशी संवत् 1924 (तद्नुसार 10 सितंबर सन् 1867) में रामपुर की सरज़मीं पर ही ली।

ग्वाल ने अपने जीवन के अंतिम चरण में मथुरा में यमुना नदी के किनारे मकान भी बनवाया था, जो तीन मंज़िल का था और उसमें विशाल सहन के साथ अठारह कमरे थे एवं विशाल भूमिगत तहखाना था। इसके साथ ही आराधना हेतु मंदिर भी बनवाया था, जिसमें शिव एवं शिवा (जगदम्बा) की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। मंदिर पर लगी पट्टिका में मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा की तिथि इस प्रकार है-

उनइस सत इक बीस धरि, सिवरात्री भश्गुवार।
पधराये प्रभु 'ग्वाल' कवि, सँवरि संभु सुखसार।

ग्वाल इस मकान का उपयोग स्वल्प ही कर पाये, क्योंकि इसके चार वर्ष बाद ही उनकी मृत्यु हो गयी और इस अवधि के दो वर्ष उन्होंने रामपुर में व्यतीत किए। यह मकान आज भी विद्यमान हैं। उनके द्वारा प्रतिष्ठित मंदिर 'ग्वालेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध है, मंदिर का चबूतरा 'ग्वाल चबूतरा कहलाता है और हवेली एक जौहरी के अधिकार में है।

हम्मीरविषयक काव्य-परंपरा

भारत चिरकाल तक विदेशी आक्रांताओं के आतंक से पीड़ित रहा। इन विदेशी आक्रांताओं से लोहा लेने का कार्य भारतीय क्षत्रिय राजाओं ने किया, क्योंकि भारत के पश्चिमोत्तर भाग पर सिन्ध से लेकर दिल्ली तक इन्हीं राजपूतों का शासन था। चौहान, प्रतिहार, परमार आदि वंशों के राजाओं को पुनः-पुनः विदेशी आक्रांताओं से संघर्ष करना पड़ा। न तो ये राजा ही शताब्दियों तक सुख से सो सके और न ही इन्होंने आक्रमणकारियों को ही चैन से सोने दिया। जिन राजस्थानी राजपूत राजवंशों ने सदियों तक विभिन्न आक्रांताओं का डटकर सामना किया, उनमें चौहानवंशीय शासकों का अप्रतिम योगदान है। 'दिल्ली का अंतिम सम्राट पृथ्वीराज, रणथंभौर का हठी वीरवर हम्मीर, और जालौर का देवावतार राय कान्हड़दे इसी चौहान वंश के मुकुटमणि राष्ट्ररक्षक नरवीर थे। मुसलमान लेखकों को भी

इनके पौरुषपूर्ण पराक्रमों का बखान करना पड़ा। कई हिंदू लेखकों को भी इनकी गौरवपूर्ण गाथा गाने और लिखने के लिए पुण्य कर्त्तव्य ने प्रेरित किया।'[2] 'विजातीय आक्रांताओं के साथ इनका संघर्ष मात्र सत्ता-संघर्ष नहीं था, बल्कि संस्कृति और संपत्ति भी इसमें अनुस्यूत थी।

रणथंभौर नरेश हम्मीर के प्रतिज्ञापालन एवं उनकी शरणागत वत्सलता से अभिभूत होकर कई भारतीय भाषाओं के कवियों ने तत्संबद्ध काव्यसृजन करके ख्याति अर्जित की। यही कारण है कि हम्मीरदेव पर रचित ग्रंथों की संख्या सर्वाधिक प्राप्त होती है। उन्होंने शरण में आए अलाउद्दीन के विद्रोही सैन्य अधिकारी मुहम्मदशाह को सुलतान को नहीं सौंपा और उसकी रक्षा के लिए दिल्ली सल्तनत से वैर मोल लिया तथा उसकी रक्षा करते-करते प्राणोत्सर्ग कर दिया। यही कारण है कि आधुनिक इतिहासक भी उनकी प्रशंसा करते हैं। 'राजपूतों में अपने परिवार की प्रतिष्ठा कायम रखने, अपना वचन निभाने और शरणार्थियों को शरण देने की जो परंपराएँ पायी जाती हैं, उनका हम्मीर ने निर्वाह किया है। हम्मीर ने जिस शौर्य, साहस और प्रतिज्ञा पालन का परिचय दिया, उसमें राजपूत संस्कृति की झलक मिलती है।'[3]

हम्मीददेव के उदात्त चरित्र से अभिभूत होकर नयचंद्र सूरि ने संस्कृत में हम्मीर महाकाव्य की रचना की। यह काव्य चौदह सर्गों में विभक्त तथा 1576 श्लोकों में निबद्ध विशाल कलेवर वाला महाकाव्य है, जिसमें चौहानों की उत्पत्ति और विकास से लेकर हम्मीरदेव और अलाउद्दीन के युद्ध तक का समस्त विवरण उल्लिखित है। हम्मीर महाकाव्य के रचयिता नयचंद्र सूरि ने अपने इस काव्यसृजन के दो प्रेरणा स्रोत बताए हैंप्रथम, हम्मीर की दिवंगत आत्मा ने उन्हें स्वप्न में इस काव्य की रचना का आदेश दिया। द्वितीय, ग्वालियर के तत्कालीन शासक वीरमदेव ने भरी सभा में कवि नयचंद्र को लक्ष्य करके यह व्यंग्य किया कि आज के कवियों में पुराने कवियों के समान महाकाव्य सश्जन की सामर्थ्य नहीं रह गयी है। कवि नयचंद्र ने वीरमदेव की इस चुनौती को स्वीकार किया और हम्मीरमहाकाव्य की रचना की। हम्मीरमहाकाव्य के अंत में कवि ने अपने लिए जो लक्ष्य निर्धारित किये हैं वे हैं, हम्मीरविषयक गाथा की प्रस्तुति, महाकाव्य का रूपाकार और आश्रयदाता से प्रशंसा के साथ ही धनार्जन भी और कहने की आवश्यकता नहीं है कि कवि अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल रहा है। डॉ॰ रामानंद शर्मा के शब्दों में'निश्चयतः यह एक सफल महाकाव्य है। चौहानों की प्रारंभिक वंशावली एवं विरुदावली की दृष्टि से भी ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। रचयिता की एक विशेषता यह भी रही है कि उसने नितांत प्रामाणिक इतिहास का आधार लिया है। उसने हिंदू इतिहासकारों को ही नहीं, मुस्लिम इतिहासकारों को भी अध्ययन का विषय बनाया है। साथ ही हम्मीर को देवपुरुष नहीं मानव रूप में प्रतिष्ठित किया है।'[4]

इस ग्रंथ में केवल हम्मीर की ही नहीं वरन् संपूर्ण चौहान वंश की गाथा प्रस्तुत की गयी है। चौहानों के इतिहास की जानकारी के लिए यह काव्य विशुद्ध इतिहास ग्रंथ के समान प्रामाणिक और विश्वसनीय है। इसमें क्षत्रियकुल के संस्थापक चाहमान से लेकर हम्मीरदेव तक 38 पीढ़ियों का अन्तराल पड़ता है और प्रत्येक राजा का वर्णन उसके महत्त्व के अनुसार कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार से यहाँ उपन्यस्त है। संवत् 1339 में राजा जैत्रसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र हम्मीरदेव को राज्य सिंहासन देकर स्वयं वानप्रस्थ ले लिया था, जिसने अठारह वर्षों तक बड़े शान से राज्य किया और अंत में धर्म

की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देकर अमर कीर्ति अर्जित की। इस प्रकार हम्मीर महाकाव्य इतिहास और काव्य दोनों दृष्टियों से एक प्रतिभासंपन्न सफल रचना है। नयचंद्र सूरि के कवित्व पर प्रकाश डालते हुए पंडित बलदेव उपाध्याय कहते हैं'कवि की शैली बड़ी सुंदर है। प्रसादमयी भाषा में निबद्ध यह काव्य सचमुच वीररस से सर्वथा आप्लुत है, ओजस्विता तथा स्फूर्ति प्रदान करने में यह काव्य सर्वथा समर्थ है।'[5]

महेश कविरचित 'हम्मीर रासो'

महेश कवि ने हम्मीररासो ग्रंथ का सश्जन किया। जिसकी एक हस्तलिखित प्रति एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता में सुरक्षित है तथा दो त्रुटित एवं अपूर्ण प्रतियाँ श्री अगरचंद्र जी नाहटा के निजी संग्रहालय में रखी हुई हैं। कहा जाता है कि जयपुर और जोधपुर के ग्रंथागारों में भी इसकी पूर्ण प्रतियाँ उपलब्ध हैं। यह ग्रंथ कब लिखा गया, इसके विषय में आधिकारिक रूप से कुछ भी कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि ग्रंथ में रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। लेकिन 'डॉ॰ भगवानदास तिवारी इसका लिपिकाल संवत् 1861 देते हैं और इसमें 900 छंद बताते हैं।'[6] श्री वेदप्रकाश गर्ग जी इसकी छंद संख्या 324 बताते हैं। उनका मंतव्य उन्हीं के शब्दों में दर्शनीय हैमहेशकृत 'हम्मीररासो' नामक एक ग्रंथ भी मिलता है और जोधराजकृत यह 'हम्मीररासो' उसी महेशकृत 'हम्मीररासो' का रूपान्तर मात्र है। जोधराज ने धन और पद की लालसा में महेशकृत केवल 324 छंदों की लघुकाय रचना हम्मीररासोकी कतिपय घटनाओं और छंदों का विशदीकरण करके उसके कलेवर को 979 छंदों का कर दिया है इस प्रकार जोधराज ने अपने चातुर्य से महेशकृत 'हम्मीररासो' का लाभ उठाकर अपने आश्रयदाता से प्रचुर धन एवं यश प्राप्त किया है। वास्तव में जोधराज में मौलिक प्रतिभा नहीं थी। महेशकृत 'हम्मीररासो' की उपलब्धि ने उसके कविरूप को छिन्न कर दिया है। उसकी कल्पनाशक्ति का इतना योगदान अवश्य है कि उसने महेशकृत रासो का विशदीकरण करने का प्रयास किया है।'[7]

'मिश्रबंधुओं ने भी अपनी खोज के आधार पर महेश कवि के विषय में वही सूचनाएँ दी हैं, जो डॉ॰ तिवारी दे रहे हैं, वे प्रतिलिपिकाल संवत् 1861 देते हैं और ग्रंथ का नाम 'हम्मीररासो' देते हैं।'[8] इस काव्यकृति के जो विवरण उपलब्ध होते हैं, उनमें इतना वैभिन्न्य है कि किसी निष्कर्ष तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है। इसमें कहीं 324 छंद बताए गए हैं तो कहीं 900 छंद। कवि महेशदास का उद्देश्य केवल इतिहास विश्रुत वीरवर हम्मीर तथा अलाउद्दीन का यशोगान करना है। तभी महेश की रचना अपने आप में एक उत्कृट रचना बन गयी है। इस रचना में कवि ने तत्कालीन समाज में बहुप्रचलित कथा को आधार माना है। यदि इस रचना के सन्-संवत् इतिहास से मेल नहीं खाते हैं, तो इसमें रचयिता का इतना दोष नहीं है, जितना आज समझा जा रहा है। रासो, काव्य है, इतिहास नहीं और उन दिनों आज की तरह जनसाधारण में ऐतिहासिक अभिरुचि भी नहीं थी।

जोधराजकृत हम्मीररासो

जोधराज अत्रिगोत्रीय गौड़ ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बालकृण था। ये अपने समय के श्रेष्ठ कवि ही नहीं, एक उत्कृष्ट ज्योतिषी भी थे। जोधराज ने नींवगढ़ या नीमराणा (अलवर के पास) के राजा चंद्रभान सिंह चौहान के आश्रय में रहकर 'हम्मीररासो' की रचना की थी। जिसका रचनाकाल विषयक दोहा इस प्रकार है

चंद्र नाग वसु पंच गिनि, संवत माधव मास।
सुक्ल सु तृतीया जीव जुत, ता दिन ग्रंथ प्रकास।

जोधराज पर एक ओर पौरणिकता का प्रभाव रहा है तो दूसरी और वीरगाथाओं का। उनके काव्य का प्रारम्भ और अन्त भी पौराणिक प्रभाव की सूचना देता है। रणथम्भौर दुर्ग का निर्माण और पद्म ऋषि के अंगों से हम्मीर, मुहम्मदशाह, अलाउद्दीन खिलजी और मरहट्टीबेगम का निर्माण, सबकी एक साथ उत्पत्ति और एक साथ स्वर्ग में मिलन, यह सब पौराणिकता का ही प्रभाव है। जोधराज ने ऐतिहासिक तथ्यों की धज्जियाँ उड़ायी हैं। वे एक ओर हम्मीरदेव की जन्म-कुण्डली प्रस्तुत करते हैं, लेकिन उनका समय इतिहास से मेल नहीं खाता, उसमें शताब्दियों का अंतर है। पौराणिकता के साथ-साथ जोधराज पर आदिकालीन वीरगाथाओं का भी व्यापक प्रभाव है। उनकी भाषा में वीरगाथाओं की तड़क-भड़क है। यह सूदन में भी मिलती है। अनुरणात्मकता के लिए शब्दों से खिलवाड़ भाषा को निष्प्राण बनाता है और यह जोधराज में व्यापक रूप में प्राप्त होता है। कथारूढ़ियों पर भी वीरगाथाओं का प्रभाव है, ऋतुवर्णन, शृंगारवर्णन, अंगवर्णन आदि उसी परंपरा के अनुकरण के प्रमाण हैं, छंदोयोजना भी उसी की साक्षी है।

जोधराज द्वारा ग्रंथ का प्रारंभ ही विचित्र कल्पना को आधार मानकर किया गया है। इस विषय में डॉ॰ रामानंद शर्मा का मत दर्शनीय है'जोधराज ने हम्मीरदेव और अलाउद्दीन के चरित्र का काफी विकास किया है, जिससे कथानक अस्त-व्यस्त भी हो गया है। वस्तुतः उनके कल्पना विधान और प्रस्तुति विधान पर रासो काव्यों का व्यापक प्रभाव रहा है।'[9] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी इस काव्य की प्रशंसा की है। 'प्राचीन वीरकाल के अंतिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप और भाषा में अंकित होना चाहिए था, उस रूप और उसी प्रकार की भाषा में जोधराज अंकित करने में सफल हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन्हें हिंदीकाव्य की ऐतिहासिक परंपरा की अच्छी जानकारी थी।'[10] 'हम्मीररासो' में जोधराज ने ऐतिहासिकता को उतना महत्व नहीं दिया जितना पौराणिकता या कल्पनाशीलता को दिया है। यही कारण है कि ऐतिहासिक दृष्टि से वे कई तथ्यों को विकृत सा कर गये हैं। यथा- रणथंभौर दुर्ग का निर्माण जैतसिंह ने नहीं कराया था इसे चौहानों ने यादवों से छीना था। पद्म ऋषि नितान्त काल्पनिक पात्र है। अलाउद्दीन और हम्मीरदेव की मृत्यु एक ही दिन मानना गलत है क्योंकि हम्मीरदेव की दिवंगति 10 जुलाई 1301 को हुई थी, जबकि अलाउद्दीन की मृत्यु 06 जनवरी 1316 को हुई। जोधराज ने हम्मीरदेव की जन्मतिथि-वार, तिथि एवं नक्षत्र सहित दी है, हम्मीर की जन्म पत्रिका भी दी है जो इतिहासानुमोदित नहीं है।

ग्वाल रचित हम्मीरहठ

कवि ग्वाल ने हम्मीर के चरित को प्रबंधकाव्यों की इतिवृत्तात्मक शैली से बाहर निकालकर पंजाबी वारशैली में 'हम्मीरहठ' नामक काव्य की रचना की। इस शैली के तीन प्रमुख अंग होते हैं। युद्ध का कारण, युद्ध और परिणाम। यदि ऐसा न होता और ग्वाल खंडकाव्य का आदर्श स्वीकारते तो ऋतुवर्णन के लिए विख्यात और यमुना लहरी में भी ऋतुपरक छंद रखने वाले ग्वाल मृगया के अवसर पर वन की वासंती शोभा या शरद की सघन हरीतिमा का वर्णन अवश्य करते, लेकिन कवि ने पंजाबी लोक साहित्य की वारशैली में काव्य का सृजन किया है जो अलाउद्दीन के मश्गया प्रसंग से प्रारंभ

होकर महिमा मंगोल की शरणागति, युद्ध और महाराज हम्मीरदेव की दिवंगति पर समाप्त होता है।

चंद्रशेखर वाजपेयी रचित हम्मीरहठ

चंद्रशेखर वाजपेयी ने पटियाला नरेश महाराजा नरेंद्रसिंह के आश्रय में रहकर फाल्गुन कृण चतुर्थी दिन रविवार संवत् 1902 में 'हम्मीरहठ' की रचना की, जिसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है

कर नभ रस अरु आत्मा, संवत् फाल्गुन मास।
कृस्न पच्छ तिथि चौथि रवि जेहि दिन ग्रंथ प्रकास।

चंद्रशेखर वाजपेयी ने 'हम्मीरहठ' की रचना ग्वाल की प्रतिद्वन्द्विता में की है। उनकी सारी कथा ग्वाल के समानांतर चली है, किंतु उन्होंने कवि ग्वाल की चरित्रविषयक न्यूनताओं का परिष्कार अवश्य किया है। ग्वाल के हम्मीर मुहम्मदशाह से सुलतान का सिर काटने को कहते हैं, जिसे वह नमक खाने के कारण अस्वीकृत कर देता है। यहाँ हम्मीर के चरित्र में अपकर्ष और मुहम्मदशाह के चरित्र में उत्कर्ष स्पष्ट लक्षित होता है। इसके विपरीत वाजपेयी का मुहम्मदशाह बादशाह को मार डालने को कहता है, जिसे हम्मीरदेव यह कहकर अस्वीकृत कर देते हैं, 'साह न मारत काठ को, जे खेलत सतरंज।' निश्चित रूप से यहाँ हम्मीरदेव का उत्कर्ष दिखाया गया है। उसका शौर्य और स्वाभिमान प्रशंसनीय है।

कवि ग्वाल रचित 'हम्मीरहठ'

कवि ग्वाल ने अमृतसर में सामंत सरदार लहनासिंह के आश्रय में रहकर 'हम्मीरहठ' की रचना की थी। कवि ग्वाल ने दीपावली संवत् 1883 को 'हम्मीरहठ' की रचना पूर्ण की, जिसमें रचनाकाल निम्नवत् दिया गया है

संवत् गुन सिधि सिधि ससी, कातिक कुहू बखान।
श्री हमीर हठ प्रगट्यो, अमश्तसर सुभ थान।

अमृतसर उस समय महाराजा रणजीत सिंह के लाहौर राज्य का एक अंग था और सरदार लहना सिंह अमृतसर में रहकर ही इन राज्यों की देखभाल करता था। अतः नाभा और पटियाला दरबार की प्रतिद्वंद्विता में 'हम्मीरहठ' की रचना की धारणा निरर्थक है। स्पष्टतः ग्वाल ने इस कृति की रचना न तो नाभा दरभार में रहकर की है और न ही चंद्रशेखर वाजपेयी के अनुकरण पर ही की है।

यह ग्रंथ संवत् 1940 में प्रकाशित हो चुका है। 'मथुरा निवासी बाबू श्यामचरण के पास ये ग्रंथ बंगला अक्षरों में लिखा हुआ था। मथुरा के प्रकाशक ने इसे बंगला अक्षरों से नागरी लिपि में लिखकर और लीथो प्रेस में छपवाकर प्रकाशित किया।'[11]

हम्मीरविषयक काव्य-परंपरा के प्रायः सभी कवियों ने हम्मीर के ऐतिहासिक चरित्र को भी उद्घाटित करने का प्रयास किया था, लेकिन ग्वाल का 'हम्मीरहठ' ऐतिहासिक न होकर शुद्ध साहित्यिक है। इसमें न तो चौहानों की वंशावली है और न ही रणथम्भौर का इतिहास। यह काव्य विशुद्ध रूप में अलाउद्दीन एवं हम्मीर के युद्ध पर आधारित पंजाब की वारशैली में लिखा गया है। जिसमें युद्ध का कारण, युद्ध और युद्ध का परिणाम (हम्मीर की दिवंगति) का साहित्यिक वर्णन किया गया है।

इस काव्यकृति का कथासार इस प्रकार हैएक बार अलाउद्दीन खिलजी अपनी बेगमों के साथ जंगल में शिकार खेलने गया। वहाँ उसकी एक बेगम मरहट्टी एक सैन्य अधिकारी महिमा मंगोल पर आसक्त हो गई और उससे प्रणय-निवेदन किया। महिमा मंगोल ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। लेकिन बेगम द्वारा सुलतान के कान भरने और दंडित कराने के भय से उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनों समागम कर ही रहे थे कि वहाँ एक शेर आ गया, जिसे महिमा ने एक ही वाण में धराशायी कर दिया और आसन भी नहीं छोड़ा। समागम के पश्चात् जब दोनों जाने लगे तो महिमा ने इस घटना को किसी से न कहने की प्रार्थना की। एक रात्रि सुलतान मरहट्टीबेगम बेगम के साथ रंगमहल में सहवास कर रहे थे, तभी वहाँ एक चूहा निकल आया, जिसे अलाउद्दीन ने वाण मारकर गिराया। सुलतान स्वयं जब अपनी धनुर्विद्या की प्रशंसा करने लगे तो बेगम को हँसी आ गयी। सुलतान ने हँसी का कारण जानना चाहा तो मरहट्टीबेगम ने अगले दिन बताने को कहकर महिमा मंगोल को राज्य छोड़कर जाने का परामर्श दिया। महिमा सभी जगह से निराश होकर रणथंभौरनरेश हम्मीर की शरण में आया और उसका संरक्षण एवं आश्वासन पाकर वहाँ रहने लगा। बेगम द्वारा रहस्य उद्घाटित करने पर अलाउद्दीन अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और महिमा की तलाश में उसने चारों ओर दूत दौड़ाए। एक दिन एक राजदूत ने बताया कि महिमा रणथंभौर में रह रहा है। सुलतान यह सुनकर क्रोधातिरेक से भर गया और उसने मोल्हण नामक दूत को इस संदेश के साथ भिजवाया कि महिमा की मुश्क बाँधकर तथा बहुधन भेंटकर उनके चरणों में मस्तक नवाओ। मोल्हण ने हम्मीरदेव को सुलतान का पौरुष एवं आतंक दिखाया, यह भी बताया कि शरीर बचने पर ही सब कुछ बच सकेगा, लेकिन हम्मीरदेव शरणागत को सौंपने को तैयार नहीं हुए। सुलतान के बल, पौरुष एवं आतंक का हम्मीरदेव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत हम्मीर ने तीन शर्ते रख दीं- ज्येष्ठ शहजादा (सेवा हेतु) ज्येष्ठ शहजादी (विवाह हेतु) और मरहट्टीबेगम (महिमा हेतु) तुरंत भेज दिये जाएँ। जब मोल्हण सुलतान के पास पहुँचा तो बड़े संकोच के साथ उसने सारी बातें बताई और कहा कि वह बड़ा प्रतापी है। उसका हाथ बार-बार तलवार तक जाता है। यह सुनकर सुलतान ने सेना को कूच का आदेश दिया। दोनों दलों में संग्राम होने लगा। एक दिन हम्मीरदेव किले के ऊपर नर्तकियों का नृत्य देख रहे थे कि सुलतान के उड़ानबेग नामक सैन्य अधिकारी ने नर्तकी के पैर में तीर मारकर उसे घायल कर दिया। इससे राव चिन्तित हुए और अलाउद्दीन का सिर काटने का आदेश महिमा मंगोल को दिया, लेकिन महिमा ने सामने आकर सुलतान का छत्र एक ही वाण में काट दिया। उसने वाण में एक पत्र भी बाँधा जिसमें लिखा था कि तुम्हारा नमक खाया है इसलिए सिर नहीं काटा केवल छत्र काटा है। अब तुम यहाँ से भाग जाओ अन्यथा बेहाल कर दिए जाओगे। यह पत्र देखकर सुलतान अत्यंत चिंतित हुआ और डेरा छोड़कर भागने लगा। जब वह लौटकर जा रहा था तो मार्ग में हम्मीर के दो बन्धु रणपाल और कृपाल मिले जिन्होंने सुरंग लगाकर दुर्ग क्षतिग्रस्त कराया। हम्मीर ने अपने सभी सभासदों से मंत्रणा की और सभी ने एक स्वर से बाहर निकलकर युद्ध करने का निर्णय लिया। हम्मीर की माता ने पीठ थपथपाते हुए विजय का आशीर्वाद दिया। हम्मीर ने रानियों के पास जाकर उन्हें माता के वचन का पालन करने का निर्देश दिया और कहा कि जब तक रणभूमि में हमारे ध्वज लहरायें, तब तक हमें सुरक्षित समझना और जब ध्वज झुक जाएँ तो हमारी दिवंगति समझकर जौहर कर लेना। जाजदेव

को संकटकाल में घर जाने का परामर्श दिया, लेकिन उसने संकट में स्वामी का साथ छोड़ना अत्यधिक अनुचित माना। राव सेना सहित बाहर निकल आए और तुमुल युद्ध होने लगा। तलवारें बरछी, तोप, बंदूकें चलने लगीं। हम्मीरदेव का पराक्रम देखकर शत्रु सेना के छक्के छूटने लगे। जाजदेव ने भी अपनी तलवार का कौशल दिखाया। उसकी तलवार के सामने जो भी तुर्क आया वह तलवार का ग्रास बना। सुतलान का दल बेहाल हो गया। अतः सुलतान को सभी साजो-सामान छोड़कर भागना पड़ा। राव के सैनिकों ने सुलतान के डेरों में लूट मचा दी। इसी समय ध्वजवाहकों ने ध्वज रेत में गाड़कर लूटना प्रारंभ कर दिया। दैवयोग से तीव्र हवा के झोके से ध्वज गिर गए, जिसे दुर्गवासियों ने राव की दिवंगति माना। फलतः रानियों ने जौहर कर लिया और महिमा ने कुएँ में कूदकर प्राण दे दिए। राव जब दुर्ग में वापस आए तो अवाक् रह गए। अंततः उन्होंने गोदान, अन्नदान आदि करके राज्य अपने पुत्र को सौंप दिया और अपना मस्तक शिव को समर्पित कर दिया।

ग्वाल ने कथा का विकास सहजतापूर्ण ढंग से किया है। मरही एवं महिमा के प्रेमप्रसंग का वर्णन अश्लीलता का स्पर्श कर गया है। युद्धवर्णन एक ही स्थान पर आता है किंतु फिर भी यह श्रेय तो ग्वाल को दिया ही जाना चाहिए कि उन्होंने एक कथा को ऐतिहासिक परिदृश्य से निकालकर साहित्यिक कथा से परिदृश्य में कुशलतापूर्वक समाहित कर दिया है। हम्मीरदेव अपने मंत्री से भी शरणागत की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की बात कहते हैं और अपने क्षत्रिय धर्म का निर्वाह प्रत्येक दशा में करने को प्रतिबद्ध दिखायी देते हैं वे कहते हैं

अतल वितल फिर सुतल तलातलहू,
बहुरि महातल, रसातल पताल लौं।
सातौं लोक नीचे के, पलट आवैं ऊपर कौं,
तौऊ न मैं, त्यागौं निज धर्म अंत काल लौं।
छत्री के जनम, क्यों अछत्री के गहौं मैं कर्म,
आयौ जो सरन ताहि, राखौं प्रन भाल लौं।
टारौं नहि बोल मैं, हम्मीरदेव मंत्री सुन
मारूँ फौज साह की, सहज ही के ख्याल लौं।

हम्मीरदेव के सैन्य अभियान का चित्रण भी कवि ग्वाल ने अत्यंत ओजपूर्ण भाषा में किया है

कूच कियो डेरा महाराज श्री हम्मीरदेव,
घेरा कियो जाय बादशाह को उमड़िके।
छूट गये छक्के छितिपालन के छिति छोर,
फूट गये सेस फन, भूमि पड़ि धड़िके।
'ग्वाल' कवि, वीरन के फरकत भुजदंड,
धड़िकें अरिंद-हिय चहूँ चक्क चड़िके।
कड़कि-कड़कि डाढ़ कोल की कड़ाके भरैं,
तड़कि-तड़कि पीठ कच्छप की तड़िके।

इतना ही नहीं हम्मीरदेव के सेनापति एवं प्रमुख मंत्री जाजदेव बडगूजर की युद्ध वीरता का वर्णन भी कवि ग्वाल ने बड़ा ही सुंदर किया है। उनकी वीरता दर्शनीय है

काढ़ि तेग कटि ते सुभट जोर जाजा जब,
जोति की जमातें जहाँ झलकत झुक्क-झुक्क।
ताकत ही तुरक मुरक भजैं पाछे केते,
आगे को सिधाये ते चबाय ढार ढुक्क-ढुक्क।
'ग्वाल' कवि कहत न मानै ढाल बखतर,
तुरक सयाने पै अयाने जिती रूक्क-रूक्क।
सीस गजरान के गरब-गरूर-भरे,
फरकें घरा पै धरा धरकत धुक्क-धुक्क।

ग्वाल कवि के 'हम्मीरहठ' के विषय में प्रभुदयाल मीतल ने यह लिखा था'यह ग्रंथ पटियाला के दरबारी कवि चंद्रशेखर वाजपेयी कृत 'हम्मीरहठ' की प्रतियोगिता में लिखा गया है। उक्त ग्रंथ की रचना के समय ग्वाल जी नाभा के दरबारी कवि थे। पटियाला और नाभा के सिक्ख राज्यों में प्रायः नोंक-झोंक होती रहती थी, अतः पटियाला में एक वीररस के काव्य की रचना होने पर नाभा नरेश ने भी ग्वाल जी द्वारा इस ग्रंथ को रचने की आवश्यकता समझी होगी।'[12]

वास्तव में यह ग्वाल के विषय में प्रारंभिक वक्तव्य मात्र ही है और तब लिखा गया, जब ग्वाल विषयक अध्ययन-अनुशीलन अपने प्रारंभिक चरण में था। आज जब ग्वाल पर पर्याप्त कार्य हो चुका है तो प्रभुदयाल मीतल का यह वक्तव्य स्वतः आधारहीन सिद्ध हो जाता है। यहाँ कुछ बातें कहनी आवश्यक हो जाती हैं

1. ग्वाल ने 'हम्मीरहठ' की रचना नाभा दरबार में रहकर नहीं बल्कि अमृतसर में रहकर की है। वास्तव में लहना सिंह लाहौर नरेश महाराजा रणजीतसिंह का एक विश्वस्त सामंत या अधिकारी था जो अमृतसर में रहकर ही पहाड़ी राज्यों का शासन सूत्र सँभालता था। अतः यह नाभा दरबार की रचना नहीं है। यहाँ डॉ॰ रामानंद शर्मा का मत दृष्टव्य है'संवत् 1883 में उनका संबंध अमश्तसर के सरदार देशराज सिंह मंजीठिया और उनके पुत्र सरदार लहनासिंह से स्थापित हुआ। लहना सिंह महाराजा रणजीत सिंह द्वारा पहाड़ी राज्यों का शासक नियुक्त किया गया लेकिन यह अमश्तसर में रहकर ही राजकार्य देखता था। यहाँ रहकर उन्होंने 'हम्मीरहठ' एवं 'कविदर्पण' की रचना की।'[13] इससे भी स्पष्ट है कि 'हम्मीरहठ' अमृतसर में रचा गया।
2. ग्वाल ने 'हम्मीरहठ' की रचना संवत् 1883 में की। रचनाकाल से संबंधित दोहा पूर्व में दिया चुका है, जबकि चंद्रशेखर वाजपेयी ने 'हम्मीरहठ' की रचना फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी संवत् 1902 में की यथा

कर नभ रस अरु आत्मा सम्वत् फागुन मास।
कृस्न पच्छ तिथि चौथि रवि जेहि दिन ग्रंथ प्रकास।

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि चंद्रशेखर वाजपेयी ने 'हम्मीरहठ' ग्वाल के 19 वर्ष 4 माह बाद लिखा। इस भ्रांत धारणा को डॉ॰ रामानंद शर्मा ने अपने शोध में स्पष्ट किया है'ग्वाल के पश्चात

चंद्रशेखर वाजपेयी ने भी 'हम्मीरहठ' (रचनाकाल सं॰ 1902) की रचना की जो स्पष्टतः ग्वाल का ही प्रभाव रहा है। विद्वानों की यह धारणा निर्मूल ही है कि ग्वाल द्वारा 'हम्मीरहठ' चंद्रशेखर वाजपेयी की देखा-देखी लिखा गया।'[14] अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि चंद्रशेखर वाजपेयी ने ग्वाल की प्रतिस्पर्धा में कृति की रचना की न कि ग्वाल ने वाजपेयी की प्रतिद्वंद्विता में।

3. ग्वाल का शृंगार वर्णन प्रायः बाजारूपन या कामशास्त्रीय निरूपण का स्पर्श करने लगता है। यहाँ भी मीर मंगोल एवं बेगम के समागम में कई कामशास्त्रीय आसनों का वर्णन ग्वाल ने किया है। विद्वानों ने इस कृति में शृंगार एवं वीररस का रम्य परिपाक माना है।
4. ऐतिहासिकता के दृष्टिकोण से ग्वाल इस कृति में कई स्थलों पर ऐतिहासिक चरित्रों के साथ न्याय नहीं कर सके हैं। हम्मीरदेव द्वारा महिमा से सुलतान के वध को कहना तथा महिमा का कुएँ में गिरकर आत्महत्या करना काव्यगरिमा के विरुद्ध है। महिमा मंगोल ने रणभूमि में कौशल दिखाया था यह ऐतिहासिक सत्य है उसे ग्वाल द्वारा कुएँ में कूदकर आत्महत्या करते दिखाया जाना निश्चय ही अनुचित है।

कवि ग्वाल के 'हम्मीरहठ' का महत्त्व जानने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि चंद्रशेखर वाजपेयी रचित 'हम्मीरहठ' के साथ उसके गुण दोषों का सम्यक् अनुशीलन कर लिया जाए। ग्वाल एवं चंद्रशेखर वाजपेयी रचित 'हम्मीरहठ' काव्यों की यदि तुलना की जाए तो यह दशष्टिगत होता है कि चंद्रशेखर की सारी कथा ग्वाल के समानांतर ही चली है। कथासाम्य होते हुए भी दोनों में पर्याप्त वैषम्य है, जिसे अधोलिखित रूप में देखा जा सकता है

1. ग्वाल ने मरही बेगम और महिमा मंगोल के मिलन-प्रसंग में अपने कामशास्त्रीय ज्ञान का निरूपण करने के कारण अश्लीलता का समावेश कर दिया है, जबकि चंद्रशेखर वाजपेयी ने इस प्रसंग को संक्षिप्त एवं सांकेतिक ही रखा है।
2. ग्वाल ने दुर्ग में नृत्य करने वाली नर्तकियों के नाम धारू और वारू दिए हैं। चंद्रशेखर ने भी यही नाम दिया है'वीर हमीर हिये हरषै लखि मारू भयो सुलतान मलीनो'। यह प्रकरण कई काव्यों में मिलता है। केवल नामों में भिन्नता है।
3. ग्वाल ने हम्मीर के अलाउद्दीन से मिलने वाले विश्वासघाती बंधुओं के नाम रनपालदेव एवं कृपालदेव दिये है, जबकि चंद्रशेखर वाजपेयी ने रणमल और उसका पुत्र रणपाल दिए हैं, जिनमें रणपाल तो समान ही है।
4. ग्वाल ने जाजदेव की वीरता पर एक कवित्त भी दिया है। जाजदेव या जाजा बड़गूजर हम्मीरदेव का मंत्री ही नहीं उनका दामाद भी था ऐसी जानकारी राजस्थानी सूत्रों से उपलब्ध होती है। चंद्रशेखर वाजपेयी हम्मीरदेव द्वारा जाजदेव को चले जाने को कहते हैं लेकिन उनकी वीरता से सम्बन्धित कोई छंद नहीं देते, जबकि सूत्रों से पता चलता है कि अंतिम युद्ध में जाते समय हम्मीरदेव ने अपना मुकुट एवं दुर्ग की रक्षा का भार जाजदेव को सौंपा था और हम्मीर की दिवंगति के दो दिन बाद तक जाजदेव ने शाही सेना को दुर्ग में प्रवेश नहीं करने दिया था।
5. ग्वाल और वाजपेयी दोनों ही ने अलाउद्दीन द्वारा प्रेषित दूत का नाम मोल्हण दिखाया है किन्तु वाजपेयी की तुलना में ग्वाल का दूत अधिक मनोवैज्ञानिक एवं तार्किक है।

6. उड्डान बेग और महिमा मंगोल की तीरंदाजी का उल्लेख दोनों ही कवियों ने किया है लेकिन चरित्र की दशष्टि से वाजपेयी सशक्त हैं। ग्वाल के काव्य में हम्मीरदेव अलाउद्दीन को वाण से मारने के लिए कहते हैं, जिसे महिमा यह कहकर मना कर देता है कि मैंने शाह का नमक खाया है जबकि चंद्रशेखर के काव्य में महिमा स्वयं सुलतान को मारने को कहता है, जिसे हम्मीरदेव यह कहकर मना कर देते हैं कि राजा काठ का भी नहीं मारा जाता

साह न मारत काठ को, जे खेलत सतरंज।
उचित न यह जो डारियै, पातसाह प्रभु भंज।

7. चंद्रशेखर वाजपेयी ने अपने काव्य के नायक हम्मीरदेव को अत्यंत धीर एवं गंभीर दिखाया है। बेटी द्वारा स्वयं को शाह को सौंपने की बात कहने पर वे कहते हैं'बेटी न बोल कांचो वचन यह समयो न हि सोक को।' माता से आशीर्वाद लेने का प्रसंग दोनों ही काव्यों में है, लेकिन वाजपेयी ने माता के मुख से क्षत्राणी के योग्य वक्तव्य कहलाकर उसके चरित्र को ऊँचा उठा दिया है। जबकि ग्वाल ने यह अवसर गँवा दिया है।
8. चंद्रशेखर के काव्य में सैन्य अभियान का विशद् वर्णन है, जबकि ग्वाल के काव्य में ऐसा नहीं है। चंद्रशेखर वापजेयी तीन जगह युद्ध दिखाते हैं, जबकि ग्वाल ने एक ही स्थल पर युद्ध दिखाया है।
9. ग्वाल का मोल्हण केवल महिमा मंगोल की माँग करता है, जबकि चंद्रशेखर का मोल्हण दंड के रूप में पुत्री का डोला एवं बहुत सा धन भी माँगता है। हम्मीरदेव का उत्तर दोनों स्थलों पर एक जैसा ही है।
10. चंद्रशेखर वाजपेयी हम्मीर की प्रतिज्ञा को बार-बार कहलाकर उन्हें सत्यप्रतिज्ञ सिद्ध करने में प्रयासरत रहे हैं, लेकिन बार-बार वही बातें दोहराने से काव्य में पुनरुक्ति दोष आ गया है। ग्वाल में यह प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती।
11. ग्वाल ने शारंगधर का यह दोहा यथावत् उद्घृत किया है

सिंह भोग सत्पुरुषवच, कदली फल इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार।

इसी दोहे को यत्किंचित शब्दांतर से चंद्रशेखर वाजपेयी भी उद्धृत करते हैं

सिंह गमन सुपुरुषवचन, कदलि फलै इक सार।
तिरिया तेल हमीरहठ, चढ़ै ने दूजी बार।

12. जाजा बड़गूजर का चरित्र एवं संवाद दोनों ही कवियों ने लगभग समान रखा है, लेकिन महिमा मंगोल के साथ ग्वाल न्याय नहीं कर सके हैं। ग्वाल के अनुसार मीर मंगोल हम्मीरदेव के कहने पर दुर्ग में ही रह जाता है और हम्मीरदेव की पराजय का समाचार सुनकर कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर लेता है। ऐतिहासिक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि हम्मीरदेव की वीरगति के पश्चात घायल मीर मंगोल को देखकर अलाउद्दीन पूछता है कि यदि मैं चिकित्सा द्वारा तुम्हें स्वस्थ करा दूँ तो तुम मेरे साथ केसा व्यवहार करोगे? मीर कहता है'जैसा तुमने हम्मीर के साथ किया।' अलाउद्दीन ने क्रोधित होकर उसे हाथी से कुचलवा दिया, लेकिन उसकी स्वामिभक्ति

का सम्मान करते हुए उसे ससम्मान दफनाने का आदेश दिया। चंद्रशेखर ने उसे इस कलंक से बचाया है, लेकिन वे अंतिम युद्ध में महिमा को पूर्णतः भूल गए हैं, जो उस जैसे वीर के साथ अन्याय ही कहा जायेगा। चंद्रशेखर वाजपेयी ने 'हम्मीरहठ' की रचना ग्वाल की प्रतिद्वंद्विता में नहीं, उसकी अनुकृति में की है। उन्होंने ग्वाल का कथानक और अभियान दोनों यथावत् ग्रहण किए हैं। इस अनुकरण और चरित्रोन्नयन के प्रयास के उपरान्त भी अपनी वीररस से परिपूर्ण उक्तियों के कारण चंद्रशेखर वाजपेयी का 'हम्मीरहठ' हिंदी साहित्य की अमूल्य कृति मानी जाती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसकी प्रशंसा में कहते हैं'चंद्रशेखर का साहित्यिक भाषा पर बड़ा भारी अधिकार था। अनुप्रास की योजना प्रचुर होने पर भी भद्दी कहीं नहीं हुई, सर्वत्र रस में सहायक ही है। युद्ध, मृगया आदि के वर्णन और संवाद आदि सब बड़ी मर्मज्ञता से रखे गए हैं। जिस रस का वर्णन है ठीक उसी के अनुसार पदविन्यास है। जहाँ शृंगार का प्रसंग है, वहाँ यही प्रतीत होता है कि सर्वश्रेष्ठ शृंगारी कवि की रचना पढ़ रहे हैं। तात्पर्य यह है कि 'हम्मीरहठ' हिंदी साहित्य का एक रत्न है।'[15]

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ग्वाल रचित 'हम्मीरहठ' देखा ही नहीं था, जबकि विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने परवर्ती काल में उसे देखा और स्वीकारा 'हमीरहठ' चंद्रशेखर वाजपेयी के 'हम्मीरहठ' (संवत् 1902) के समान है और उससे पूर्व रचा गया है। कथा और घटनाओं का रूप एक-सा है, भेद केवल प्रणाली का है।'

ग्वाल और चंद्रशेखर वाजपेयी दोनों ही के 'हम्मीरहठ' काव्यों का सम्यक् अनुशीलन करने के पश्चात डॉ॰ रामानंद शर्मा का यह कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है'ग्वाल की अपेक्षा चंद्रशेखर वाजपेयी का 'हम्मीरहठ' एक अधिक उत्कृष्ट रचना है, इसमें संदेह नहीं, लेकिन कथासंधान और अभिधान के लिए वे कवि ग्वाल के ऋणी हैं। इसके अभाव में मौलिक प्रबंध की कल्पना भी नहीं की जा सकती और कहना पड़ेगा कि चंद्रशेखर वाजपेयी ने कथा का संधान नहीं किया है, ग्वाल के निर्बल तत्त्वों का निवारण मात्र किया है।'[16]

निश्चय ही चंद्रशेखर वाजपेयी रचित 'हम्मीरहठ' एक श्रेष्ठ कृति है, लेकिन इसे इस बात का भी लाभ मिला है कि ग्वाल का 'हम्मीरहठ' प्रकाशित होकर भी प्रचारित एवं प्रसारित नहीं हो सका। यदि वह पहले सामने आ जाता और विद्वानों को उसके अनुशीलन परिशीलन का अवसर मिल जाता तो उन्हें निश्चय ही यह स्वीकारना पड़ता कि चंद्रशेखर वाजपेयी ने कथा सन्धान नहीं किया है। उन्होंने ग्वाल की कथा को ही यथावत् स्वीकार किया है। ग्वाल ने हम्मीरहठ में जो काव्यभाषा का रूप चुना है, वह ब्रजभाषा का आदर्श रूप है। उनके काव्य में रासो काव्यों के समान तड़क-भड़क नहीं है। ग्वाल ने पंजाबी वारशैली अपनायी है जिसके तीन ही तत्व होते हैंयुद्ध का कारण, युद्ध और परिणाम। चंद्रशेखर वाजपेयी के पास अच्छा अवसर था कि वे इस कथा में कुछ नवीन प्रयोग करते किंतु उन्होंने ग्वाल का अनुकरण मात्र किया है। इस कथानक के लिए वे ग्वाल के ऋणी है। अब ग्वाल रचित हम्मीरहठ विद्वानों के करकमलों में है तो इस पर नए अनुसंधान और शोधकार्य होने का अवसर शोधार्थियों को मिलेगा जिससे कुछ नये तथ्य विद्वानों के सम्मुख आ सकेंगे।

संदर्भ

1. डॉ॰ रामानंद शर्मा, (संपादक), रसरंग (भूमिका), पृ॰ 19
2. मुनि जिनविजय, हम्मीरमहाकाव्य (भूमिका), पृ॰ 12
3. डॉ॰ विश्वेश्वरस्वरूप भार्गव, मध्यकालीन भारतीय इतिहास, पृ॰ 73
4. डॉ॰ रामानंद शर्मा (सम्पादक), कवि ग्वालरचित हम्मीरहठ, पृ॰ 57
5. पंडित बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ॰ 272
6. डॉ॰ भगवानदास तिवारी, रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्य, पृ॰ 286
7. डॉ॰ वेदप्रकाश गर्ग, हिंदी साहित्य की भ्रांतियाँ और उनका निवारण, पृ॰ 166
8. मिश्रबंधु, मिश्रबंधुविनोद, पृ॰ 880
9. डॉ॰ रामानंद शर्मा, (सम्पादक) कवि ग्वाल रचित हम्मीरहठ, पृ॰ 64
10. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 384
11. प्रभुदयाल मीतल, ग्वाल कवि, पृ॰ 55
12. प्रभुदयाल मीतल, ग्वाल कवि, पृ॰ 54
13. डॉ॰ रामानंद शर्मा, रसरंग (भूमिका), पृ॰ 24
14. डॉ॰ रामानंद शर्मा, रसरंग (भूमिका), पृ॰ 33
15. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 255
16. डॉ॰ रामानंद शर्मा (सम्पादक), ग्वालरचित हम्मीरहठ, पृ॰ 70

पूनम विहार कालोनी, निकट सैनिक फार्म
पी०ए०सी० रोड, खुशहालपुर
मुरादाबाद 244001
मो॰ 09761552728

गढ़वाल का नामकरण और पराधीन गढ़वाल

डॉ॰ गुड्डी विष्ट
असिस्टेंट प्राफेसर-हिंदी
हे॰न॰ब॰ गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय, (उत्तराखंड)

गढ़वाल नाम से पूर्व इस भूभाग का नाम कदारखंड था। चातक लिखते हैं'गढ़वाल नामकरण संभवतः 1500 ई॰ पूर्व में पड़ा, जब अजयपाल ने छोटे-छोटे बावन गढ़ों को विजित कर एकछत्र राज्य की नींव डाली।'[1] रतूड़ी[2] ने इस तथ्य को पूर्व में ही सिद्ध किया था। एच॰जी॰ वाल्टन[3] ने यही बात दूसरे ढंग से कही। बहुत सारे गढ़ों वाला अंचल 'गढ़वाल' (जैसे हरावाला, रायवाला आदि)। गढ़वाला से ही धीरे-धीरे गढ़वाल हो गया। पातीराम[4] 'गढ़पाल' से 'गढ़वाल' बनने के सिद्धांतकार हैं।

हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' इस संदर्भ में विस्तृत विवेचना करते हुए लिखते हैं'मेरी अपनी मान्यता और स्थापना है कि गढ़वाल शब्द 'गडवाल' से निकला है। 'गड' और 'वाड' ये दोनों शब्द वैदिक संस्कृत के हैं और इनका गढ़वाली भाषा में प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है। 'गाड' बड़ी नदी और 'गड' छोटी नदियाँ जैसे दुण्गड़, लोधगड़ आदि। इस प्रदेश में जितनी छोटी-छोटी नदियाँ और जलधाराएँ हैं, उतनी हिमालय के किसी और अंचल में नहीं हैं। इसलिए 'गडवाल' अर्थात् हजारों छोटी-छोटी नदियों वाला प्रदेश। 'वाल' शब्द गढ़वाली भाषा में बहुत प्रयुक्त होता है जैसे सेमवाल, डंगवाल आदि। वैसे 'गड' या 'गडक' संस्कृत में भेड़-बकरियों को भी कहते हैं। हिंदी में गडरिया 'गड' शब्द से ही बना है। पहाड़ी इलाकों में गाँव-गाँव में भेड़, बकरियाँ काफ़ी मात्रा में पाली जाती हैं। इसलिए यह भी हो सकता है कि गडवाल'गढ़वाल' भेड़-बकरियाँ पालने वालों का प्रदेश, क्योंकि यहाँ के लोगों का पशुपालन और खेती-बाड़ी ही मुख्य पेशा है।[5]

बेंजवाल के अनुसार'पंद्रहवीं सदी से पूर्व किसी राजा (गढ़ाधिपति) की राजधानी को 'गढ़' ही कहा जाता था। प्राचीन समय में यहाँ बस रही जातियाँ भी अपने गाँव या गढ़ क नाम पर 'वाल' लगाकर अपनी उपजातियाँ रखती थीं। निश्चय ही इसी तरह गढ़ों के क्षेत्र 'गढ़' के साथ 'वाल' लगाकर गढ़वाल शब्द की उत्पत्ति हुई। गढ़ किसी ऊँचे टीले पर बना होता था। प्रायः गढ़ पर चढ़ने क लिए एक ही मार्ग रखा जाता था, जिससे दुश्मनों क आक्रमण का मुकाबला किया जा सक। गढ़ के चारों ओर ऊँची दीवार बनी होती थी। गढ़ में स्थानीय वास्तुशिल्प से गढ़ाधिपति का भवन बना होता था। शक्तिशाली गढ़ से ज़मीन क अंदर सुरंग बनी होती थी। यह सुरंग किसी पानी के स्रोत या नदी तक जाती थी। यह सुरंग शत्रु क अचानक गढ़ पर हमला किए जाने पर गुप्त मार्ग क रूप में भी प्रयुक्त की जाती थी।'[6]

गढ़वाल के प्राचीन गढ़ों के ध्वंसावशेष मिट्टी-पत्थरों के ढेर में तब्दील हो गए हैं। इनका न ही संरक्षण किया जा रहा है और न ही उत्खनन की ओर पुरातत्व विभाग का ध्यान गया है। ज्ञात

ऐतिहासिक गढ़ों का उत्खनन किया जाए तो बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री मिल सकती है। रतूड़ी[7] ने जिन बावन गढ़ों की सूची 'गढ़वाल का इतिहास' में प्रकाशित की है, इस प्रकार हैं

क्र॰सं॰	नाम	परगना/पट्टी	जाति
1.	अजमीर गढ़	अजमीर	पयाल
2.	इडिया गढ़	रवाई बड़कोट	इडिया
3.	उपु गढ़	उदयपुर	चौहान
4.	एरासू गढ़	श्रीनगर के ऊपर	-
5.	कंडारा गढ़	नागपुर	कंडारी
6.	कांडा गढ़	रावतस्यूं	रावत
7.	कुइली गढ़	कुइली	सजवाण
8.	कुजेगी गढ़	कुजेगी	सजवाण
9.	कोल्ली गढ़	बछुवाबाणस्यूँ	बिष्ट
10.	गडताङ् गढ़	टकनौर	भोट
11.	गढ़कोट गढ़	मल्ला ढाँगू	बगडवाल बिष्ट
12.	गुजडू गढ़	गुजडू	-
13.	चम्पा गढ़	-	-
14.	चाँदपुर गढ़	तेली चाँदपुर	सूर्यवंशी
15.	चौंदा गढ़	तेली चाँदपुर	चौंडाल
16.	चौंदकोट गढ़	चौंदकोट	-
17.	जौट गढ़	जौनपुर	-
18.	जौलपुर गढ़	-	-
19.	ढाँगूगढ़	गंगा सलाण	-
20.	तोप गढ़	-	तोपाल
21.	दशोलीगढ़	दशोली	-
22.	देवलगढ़	देवलगढ़	-
23.	धौनागढ़	इडवालस्यूं	धौन्याल
24.	नागपुरगढ़	नागपुर	नागवंशी
25.	नयालगढ़	कटूलस्यूं	नयाल
26.	नालागढ़	देहरादून	-
27.	फल्याण गढ़	फल्दाकोट	फल्याण
28.	बदलपुर गढ़	बदलपुर	-
29.	बधाणगढ़	बधाण	बधाणी
30.	बनगढ़	बनगढ़	-
31.	बागगढ़	गंगा सलाण	बागुड़ी नेगी
32.	बागरगढ़	बागर	नागवंशी राणा

33.	बिराल्टागढ़	जौनपुर	रावत
34.	भरदारगढ़	भरदार	-
35.	भरपूरगढ़	भरपूर	सजवाण
36.	भुवनागढ़	गंगा सलाण	-
37.	मुंगरागढ़	रवाई	रावत
38.	मौल्यागढ़	रमोली	रमोला
39.	रतनगढ़	कुजणी	धमदा
40.	रवाड़गढ़	बदरी मार्ग	खाड़ी
41.	राणीगढ़	राणीगढ़ पट्टी	खाती
42.	रामीगढ़	शिमला	राणा
43.	रैकागढ़	रैका	रमोला
44.	लंगूरगढ़	लंगूर पट्टी	-
45.	लोदगढ़	-	-
46.	लोदनागढ़	-	-
47.	लोहबागढ़	लोहबा	लोहबा नेगी
48.	श्रीगुरुगढ़	सलाण	पडियार
49.	संगेलागढ़	नैल चामी	संगेला बिष्ट
50.	साँकरीगढ़	रवाई	राणा
51.	सावलीगढ़	सावली	-
52.	सिलगढ़	सिलगढ़	सजवाण

अकाल, भूवं+प और गोरख्याणी

पँवारों के 450 वर्षों और 20 राजाओं के राज्यकाल में 84 युद्ध हुए। अंतिम दिनों में गढ़वाल की राजनीतिक आर्थिक स्थिति बदतर होने लगी। राजदरबार षड्यंत्रों के केंद्र तथा राजा विलासी और विक्षिप्त होने लगे। इस तरह की स्थिति गढ़वाल राज्य के पतन का कारण बनी, किंतु कुछ और महत्त्वपूर्ण कारण भी थे। चातक लिखते हैं'1795 क (बावनी नाम से ख्यात) अकाल और 1803 के भूकंप ने उसकी जड़ें हिला दी थीं। रैपर ने भूकंप का और डार्विक ने अकाल का वर्णन करते हुए गाँवों के उजाड़ हो जाने की बात लिखी है। आख़िरी धक्का गोरखों से लगा। गोरखा आक्रमण के लिए उपयुक्त समय ढूँढ रहे थे। सन् 1790 में वे कुमाऊँ पर अधिकार कर चुक थे। अगले वर्ष उन्होंने गढ़वाल पर भी आक्रमण कर दिया। गढ़वाल क इतिहास की सबसे बड़ी घटना गोरखा आक्रमण के रूप में घटी, जिसकी नृशंसता का स्मरण आज भी गढ़वाल और कुमाऊँ के लोग गोरख्याणी के नाम से करते हैं।'[8]

8 सितंबर, 1803 को आए भूकंप पर रैपर ने लिखा था, 'श्रीनगर का शहर प्रायः सारा ध्वस्त हो गया। पाँच में से एक घर में कोई रहता था, नहीं तो सारे घर खंडहर हो गए थे। राजा का महल रहने लायक नहीं रह गया था। भूकंप के झटक कई महीनों तक आते रहे। कहा जाता है कि कई धाराएँ सूख गईं और कितने ही नए स्रोत निकल आए।'[9] चूँकि भूकंप से पूर्व भयानक अकाल पड़ा

था। इस तहस-नहस का होना ही मानो काफ़ी नहीं था। गोरखों क आक्रमण और नृशंस अत्याचारों ने गढ़वाली समाज को नारकीय जीवन जीने को बाध्य कर दिया। 1804 में प्रद्युम्नशाह देहरादून के खुड़बुड़ा में गोरखों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए और पूरे गढ़वाल पर गोरखों का अधिकार हो गया। प्रभात उप्रेती लिखते हैं'गोरखा अदम्य शौर्यवान थे, परंतु अत्यधिक क्रूर कुशासन से युक्त थे। इन्होंने पूरे उत्तराखंड को आँधी की तरह तहस-नहस कर डाला। सामाजिक-आर्थिक रूप से सारे उत्तराखंड को दास बना डाला। दास क रूप में आम जनता को ऋषिकश व हरिद्वार में बेचा गया। स्त्रियों की हालत और भी बदतर हो गई। लोगों ने गोरखों के आतंक से गाँव छोड़ दिए। सारा प्रदेश अकाल, आतंक, व्यभिचार, बलात्कार से भर गया। आम जनता की हालत जो कि अथाह करों, राजाओं की आपसी लड़ाई, दरबारी षड्यंत्रों से पहले से खराब थी वह और भी बदतर हो गई।'[10]

इससे आगे प्रभात एक महत्त्वपूर्ण पंक्ति द्वारा आज तक ख़स्ताहाल इस पहाड़ी खित्ते की बर्बादी की समयरेखा इन शब्दों में खींचते हैं'इसके पूर्व उत्तराखंड की जनता आर्थिक दृटि से आत्मनिर्भर तो थी, परंतु अब तो वह भी न रही।'[10]

गढ़वाल का विभाजन : ब्रिटिश गढ़वाल और टिहरी गढ़वाल

गोरखाओं द्वारा राजच्युत प्रद्युम्नशाह के पुत्र सुदर्शनशाह ने अपने खोए राज्य को प्राप्त करने के लिए अँग्रेज़ों से सहायता माँगी। सुदर्शनशाह ने गोरखाओं पर जीत के बदले अँग्रेज़ों को देहरादून देने का वचन दे रखा था। सन्1815 ई॰ में सिंगोली संधि के अंतर्गत गोरखे हारे और सारा उत्तराखंड अँग्रेज़ों के हाथ में आ गया। अँग्रेज़ों ने गढ़वाल राज्य के बदले पाँच लाख रूपए राजा से माँगे, लेकिन राजा क पास इतना धन न होने से अलकनंदा नदी वार क्षेत्र अँग्रेज़ों का हुआ तथा नदी पार क्षेत्र टेहरी गढ़वाल राजाओं के हाथ में आ गया। श्रीनगर (पुरानी राजधानी) अँग्रेज़ों क पास होने से राजा सुदर्शनशाह ने अपनी राजधानी भागीरथी व भिलंगना क संगमस्थल टिहरी में स्थापित की। पँवार वंश द्वारा स्थापित इस राज्य को टिहरी रियासत के नाम से जाना जाने लगा। शेष भाग अँग्रेज़ों के अधीन था, जिसे ब्रिटिश गढ़वाल के नाम से जाना जाता था। बाद में ब्रिटिश गढ़वाल को कुमाऊँ कमिश्नरी से जोड़ दिया गया।

प्रभात लिखते हैं'अँग्रेज़ उत्तराखंड को पाकर बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि यह उनके देश की जलवायु से मिलता था। गर्मियों से बचाव हुआ। अतुलित वनसंपत्ति उनके हाथ लगी और गोरख्याणी से पीड़ित उत्तराखंडवासियों को भी अँग्रेज़ों का राज्य एक सुकून लगा। अँग्रेज़ों ने अपनी शासन-कुशलता से इस प्रदेश का पुनर्गठन किया। शोषण के लिए ही सही, उन्होंने पहली बार उत्तराखंड को यातायात के साधनों से जोड़ा।'[11] ट्रेल, बेटन व रामजे को उनके द्वारा किए गए बंदोबस्त व विकासकार्यों से अपार ख्याति मिली। भूमि बंदोबस्त, चकबंदी की आधारशिला है। अँग्रेज़ों के बाद इस दिशा में हुए नाकाफ़ी प्रयास पहाड़ों की पलायन संस्कृति हेतु ज़िम्मेदार हैं। 'यदि सात समुद्र पार से आया विकट (1863-73) बंदोबस्त व भू-सुधार योजना 10 वर्षों में पूर्ण कर इतिहास बना सकता है, तो क्यों नहीं वर्तमान प्रशासनिक अधिकारी अत्याधुनिक उपकरणों की मदद से महज़ 5 वर्षों में यह कार्य कर सकते हैं। शासन प्रशासन स्तर पर दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।'[12]

यहाँ की जनता की वीरता को देखते हुए उसे फौज में भर्ती किया जाने लगा और रॉयल गढ़वाल राइफल का जन्म हुआ। युद्धों में जाने और देश-विदेश घूमने से पहाड़ी जनता का मानसिक विकास

हुआ। प्रकृति से सीधा संबंध होने क कारण उसकी सामान्य बुद्धि पहले से ही अधिक तीव्र थी। अब उसका और भी विकास हो गया। अँग्रेज़ों में प्रशासनिक कुशलता तो थी ही, मानवीय संदर्भों में वह तत्कालीन राजाओं से आगे थे। जिम कॉर्बेट ने 'माइ इंडिया' नामक अपनी पुस्तक में जिस आत्मीयता के साथ अपनी हिमालयी अंतरंगता को दर्शाया है, वह अद्वितीय है। एटकिंसन ने हिमालय का जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सूक्ष्म अध्ययन किया, वह आज भी बड़े-बड़े विश्वविद्यालय खुलने और बड़े डॉक्ट्रेटधारकों के बाद भी इतना विस्तृत नहीं हो पाया है। जानवरों से लेकर संस्कृति तक का अध्ययन वाकई एक ज़बरदस्त तपस्या का उदाहरण है।

दूसरी ओर टिहरी गढ़वाल, राजाओं के हाथ में आने के कारण एक अलग इतिहास से गुज़रा, जिसमें रियासत के ख़िलाफ़ लड़ाई का एक अलग समानांतर प्रकरण चला। एक ओर ब्रिटिश गढ़वाल अँग्रेज़ों के साए में आराम फरमा रहा था दूसरी ओर टिहरी रियासत राजा क अत्याचारों से धधक रही थी। टिहरी की जनता श्रद्धेय सुमन के नेतृत्व में काँग्रेसी तथा नागेंद्र सकलानी के नेतृत्व में साम्यवादी विचारधारा के रूप में अपना आक्रोश व्यक्त कर रही थी।

गढ़वाल में स्वतंत्रता-आंदोलन

गोरख्याणी से पीड़ित गढ़वाल की जनता अँग्रेज़ों को अपना मुक्तिदाता समझती थी। यही कारण है कि गढ़वाल में स्वतंत्रता-आंदोलन बीसवीं सदी में ही शुरू हुआ। सन् 1919 में बैरिस्टर मुकंदीलाल ने अनसूयाप्रसाद बहुगुणा के साथ मिलकर गढ़वाल में राष्ट्रीय काँग्रेस की नींव डाली। प्रभात लिखते हैं'गढ़वाल और कुमाऊँ दोनों में कुली-बेगारी प्रथा का विरोध किया गया। उत्तराखंड की जनता ने नए जंगल कानूनों का विरोध किया, जिसमें अँग्रेज़ों ने वनों के अधिक शोषण के बाद वन बचाए रखने के लिए उनके दैनिक हक़ और हुकूकों को बंद कर दिया। फौज के अंदर भी क्रांति के बीज उत्तराखंडी जनता ने डाले, जिसमें चंद्रसिंह गढ़वाली ने 1935 में पेशावर कांड में अँग्रेज़ों के कहने पर निहत्थे पठानों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया। इसी कांड ने बाद में आज़ाद हिंद फौज बनने और नेवी विद्रोह के कारणों में आधार का काम किया।'[13] बेंजवाल लिखते हैं'09 जून, 1930 को पौड़ी में कुमाऊँ परिषद का सम्मेलन हुआ, इस सम्मेलन में सत्याग्रह समिति का गठन किया गया। जनचेतना से गढ़वाल में भी सत्याग्रह तेज हो गया। इसी वर्ष समिति द्वारा दुगड्डा में एक सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें नेहरू ने भी भाग लिया। सन् 1930 में ही तत्कालीन कलैक्टर इंबटसन पर पत्थर फेंकने के जुर्म में डेढ़ दर्जन लोगों को गिरफ़्तार कर तीन माह के लिए कारावास में डाल दिया गया था।'[14]

एक ओर ब्रिटिश गढ़वाल राष्ट्रीय आंदोलनों के साथ क़दमताल कर रहा था, दूसरी ओर टिहरी की जनता राजा क अत्याचारों क क्षुद्रता के स्तर तक पहुँच जाने से कराह रही थी। प्रभात लिखते हैं'टिहरी रियासत में तो ससुराल आने-जाने तक में एवं गाय, भैंस क ब्याने, विवाह करने तक में भी टैक्स था। राजा की आज्ञा के बिना कोई व्यक्ति कक्षा 8 के बाद शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता था।'[15]

टिहरी रियासत में सन् 1935 के वन-आंदोलन के साथ रवांई की जनता को तिलाड़ी कांड में राजा की पुलिस ने जलियाँवाला कांड की तरह भून डाला। श्रद्धेय सुमन व कामरेड नागेंद्र सकलानी को टिहरी आज़ाद करने के लिए अपनी शहादत देनी पड़ी। सन् 1944 में श्रीदेव सुमन की 84 दिनों की ऐतिहासिक भूख हड़ताल कई मायनों में अन्ना आंदोलन का प्रस्थानबिंदु मानी जा सकती है। इस

पूरे घटनाक्रम पर प्रभात बेबाक टिप्पणी करते हैं 'राजा इन कुकर्मों से अलग-थलग रहा, क्योंकि उसने अपने को धर्म से जोड़ दिया। वह बोलांदा बद्रीनाथ हो गया और मैक्यावली नीति की तरह उसने अपने अत्याचार और कुशासन का दोष अपने प्रशासकों पर मढ़ दिया।'[16]

कुल मिलाकर ब्रिटिशकाल में गढ़वाली जनता चार मोर्चों पर थी। एक फौज के रूप में विश्वयुद्ध लड़ने अँग्रेज़ों के साथ, आंतरिक रूप में वन अधिनियम, कुली बेगार-प्रथा के विरुद्ध, तीसरा धार्मिक सामाजिक कुप्रथाओं, यथानायर प्रथा, डोला-पालकी प्रथा क ख़िलाफ़, चौथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम तथा टिहरी में राजशाही के विरुद्ध आंदोलनों में भाग लेती।

संदर्भ

1. गोविंद चातक, भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ-मध्य हिमालय, पृ॰ 10
2. हरिकृष्ण रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास, पृ॰ 02
3. वाल्टन, ब्रिटिश गढ़वाल गजेटियर, पृ॰ 112
4. पातीराम, गढ़वाल एनसिएंट एंड मॉडर्न, पृ॰ 13
5. शैलेश, गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, पृ॰ 353
6. रमाकांत बेंजवाल, गढ़वाली भाषा की शब्द-संपदा, पृ॰ 28
7. हरिकृष्ण रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास
8. गोविंद चातक, गढ़वाली लोकगीत-एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰ 42
9. रमाकांत बेंजवाल, गढ़वाली भाषा की शब्द-संपदा, पृ॰ 31
10. प्रभात, संघर्षरत उत्तराखंड, पृ॰ 12
11. प्रभात, संघर्षरत उत्तराखंड, पृ॰ 13
12. उत्तराखंड इयर बुक 2010, पृ॰ 369
13. प्रभात, संघर्षरत उत्तराखंड, पृ॰ 15
14. रमाकांत बेंजवाल, गढ़वाली भाषा की शब्द-संपदा, पृ॰ 34
15. प्रभात, संघर्षरत उत्तराखंड, पृ॰ 14
16. प्रभात, संघर्षरत उत्तराखंड, पृ॰ 82

पुत्री श्री विजयसिंह बिष्ट
बिष्ट भवन, नर्सरी रोड
श्रीनगर गढ़वाल 246174 **(उत्तराखंड)**
मो॰ 09412356344, 09411591586

शैक्षिक चिंतक गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर का शिक्षा-दर्शन

डॉ॰ आदित्यकृष्ण सिंह चौहान
विभागाध्यक्ष बी॰एड॰ विभाग
शांतिदेवी आहूजा गर्ल्स कॉलेज ऑफ एजूकेशन
शिकोहाबाद (फिरोजाबाद)
श्रीमती प्रवीता चौहान
एम॰ए॰ समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र
रामनाथसिंह शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
सिथौली, ग्वालियर (म॰प्र॰)

रवींद्रनाथ टैगोर का जीवन-परिचय

रवीद्रनाथ टैगोर का जन्म 6 मई, 1861 को कलकत्ता के निकट हुआ था। इनके पिता देवेंद्रनाथ टैगोर एक प्रसिद्ध समाज-सुधारक तथा धार्मिक व्यक्ति थे। टैगोर की आरंभिक शिक्षा ओरियंटर सेनिबरी, नार्मल स्कूल, बंगाल एकेडमी में हुई। बाद में उन्होंने सेंट जेवियर स्कूल में दाखिला लिया, किंतु परिणाम अच्छा न आने पर वे घर पर ही व्यक्तिगत रूप से पढ़ने लगे। 16 वर्ष की उम्र में वे पढ़ने के लिए इग्लैंड गए, परंतु शिक्षा की कोई डिग्री लिए बिना ही वापस आ गए। सन् 1905 में उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया तथा राष्ट्र-भक्ति से भरे हुए गीतों की रचना की। 40 वर्ष की आयु में उन्होंने बोलपुर नामक स्थान पर एक स्कूल खोला, जिसका नाम उन्होंने शांति निकेतन रखा। बाद में यह स्कूल 'विश्व-भारती विश्वविद्यालय के नाम से विख्यात हुआ। आज भी इस विद्यालय में देश-विदेश के छात्र अध्ययन के लिए आते हैं। 1913 में इन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार इन्हें उनकी पुस्तक 'गीतांजलि' पर मिला। अपने जीवन में उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की तथा संसार के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भाषण देकर ख्याति प्राप्त की। ब्रिटिश सरकार ने टैगोर जी को 'नाइट' की उपाधि से सम्मानित किया। महात्मा गांधी ने इन्हें गुरुदेव की उपाधि से सम्मानित किया, तबसे ये गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के नाम से पहचाने जाने लगे। सन् 1941 ई॰ में गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर सदा के लिए हमसे बिछुड़ गए।

रवींद्रनाथ टैगोर का जीवन-दर्शन

रवींद्रनाथ टैगोर का जीवन-दर्शन अद्वैतवाद से प्रभावित था। वे सौंदर्य के पुजारी थे तथा प्रकृति के उपासक थे। उनके विषय में डॉ॰ एम॰पी॰ वर्मा का कहना है'वे प्रेम मैत्री तथा सहयोग के भविष्य के वक्ता थे, उन्होंने मनुष्य को एकता का पाठक पढ़ाया। उन्होंने विभाजन करनेवाले सिद्धांत को संदेह की दृष्टि से देखा तथा संपूर्ण मानव-जाति को एक माना। वे ईश्वर में विश्वास करते

थे, इसलिए मनुष्य में भी विश्वास करते थे। उनकी धारणा थी कि मनुष्य परमात्मा का स्वरूप है। ईश्वर की उपासना न केवल पवित्र नगरों के मंदिरों तथा बड़े शहरों के गिरजाघरों में की जा सकती है, बल्कि भूमि को जोतकर तथा पत्थरों को तोड़कर भी की जा सकती है।'

रवींद्रनाथ टैगोर के जीवन दर्शन की निम्न विशेषताएँ हैं

1. मानव एकता में विश्वास होना चाहिए।

2. ईश्वर की प्राप्ति करने के प्रयास करने अत्यंत आवश्यक हैं। रवींद्रनाथ टैगोर के शब्दों में, अब हमें अपने ईश्वर को प्राप्त करना होगा, अब हमें उस पूर्ण सत्य के लिए जीना होगा, जो हमें भूल भरे बंधनों से मुक्त करता है, जो हमें भौतिक धन के प्रभाव की अपेक्षा आंतरिक प्रकाश तथा प्रेम देता है।'

3. रवींद्रनाथ टैगोर का जीवन-दर्शन व्यक्तिवादी तथा प्रकृतिवादी रहा है।

4. रवींद्रनाथ टैगोर का आधारभूत सिद्धांत है'आध्यात्मिक जीवन के अनुभव, धर्म को जीवन का केंद्र मानना, एक सत्य विचारों की एकता।'

रवींद्रनाथ टैगोर का शिक्षा-दर्शन

यद्यपि रवींद्रनाथ ने कोई बंधनयुक्त स्कूली शिक्षा ग्रहण नहीं की थी, फिर भी वे ऐसे अद्वितीय गुणों तथा शक्तियों एवं क्षमताओं से संपन्न थे, जिन्होंने उन्हें न केवल एक दार्शनिक वरन् एक महान शिक्षाशास्त्री बना दिया। उन्होंने स्वशिक्षा द्वारा अपनी अनेक शक्तियों का विकास किया, पाश्चात्य शिक्षाशस्त्रियों के विचारों का अध्ययन किया, विभिन्न अनुभवों द्वारा शिक्षा के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया तथा अंत में उन्होंने स्वानुभव के आधार पर स्वयं अपने शिक्षा-सिद्धांतों को प्रतिपादित किया। अपने इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप वे एक महान शिक्षाशास्त्री बने तथा उन्होंने शांति निकेतन के किए गए शैक्षिक प्रयोगों के आधार पर अपने सिद्धांतों की उपयोगिता तथा श्रेष्ठता को सिद्ध किया। टैगोर के शिक्षा-दर्शन में स्वतंत्रता, रचनात्मक आत्माभिव्यक्ति तथा प्रकृति एवं मनुष्य के रचनात्मक संबंध पाए जाते हैं।

स्वतंत्रता के संबंध में टैगोर का कहना है कि शिक्षा का अर्थ तथा उद्देश्य स्वतंत्रता में है। यहाँ स्वतंत्रता विश्व के नियमों की अज्ञानता के प्रति होनी चाहिए, यह स्वतंत्रता पूर्वाग्रहों तथा हठधर्मी के प्रति हों कि हमारे मानव-समाज में है। मनुष्य आमने-सामने अपनी एकांत प्रकृति के कारण प्रकृति के साथ सहयोग करता है। प्रकृति के रहस्यों का शोषण करता है तथा उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए सभी सुविधाओं का उपयोग करता है।

टैगोर मानव मात्र की एकता में विश्वास रखते थे। उनका कहना है'मानव मात्र के उदाहरण में एकता अनुभव करनी चाहिए, जो संवेदनाओं में गहन हो, सत्ता में पहले की अपेक्षा शक्तिशाली हो।

शिक्षा के उद्देश्य

टैगोर द्वारा, निर्धारित किए जाने वाले शिक्षा के मुख्य उद्देश्य अग्रलिखित हैं

1. पूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए बालक का पूर्ण विकास करना।

2. बालक का वैयक्तिक, व्यावसायिक और सामाजिक विकास करना।

3. बालक के शरीर का स्वस्थ और स्वाभाविक विकास एवं उसके विभिन्न अंगों इंद्रियों को प्रशिक्षित करना।

4. बालक को वास्तविक जीवन की बातों, स्थितियों और पर्यावरण की जानकारी देकर एवं उनसे अनुकूलन कराके उसके मस्तिष्क का विकास करना।

5. बालक को धैर्य, शांति, आत्म-अनुशासन, आंतरिक स्वतंत्रता, आंतरिक शक्ति और आंतरिक ज्ञान के मूल्यों से अवगत करा के उसका नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना।

शिक्षण-विधि

टैगोर बालक की असीम शक्ति एवं जिज्ञासा के प्रति आस्था प्रकट करते हैं। वे बालक की अनन्यत्रमें विश्वास करते हैं और कहते हैं कि प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत मित्रता को ध्यान में रखकर उसकी शिक्षा का प्रबंध किया जाए। वे बालक को पूर्ण स्वतंत्रता देने का समर्थन करते हैं। उनका विचार है कि बालकों में विशेष प्रकार की आदतें डालकर उन आदतों का उन्हें दास न बनाया जाए। उनका कथन है कि शिक्षण सजीव होना चाहिए। शिक्षण में सजीवता लाने के लिए बालक की रुचियों एवं संवेगों पर ही विधि आधारित हो। यहाँ पर संवेगों पर ध्यान देना चाहिए। शिक्षण जीवन की यथार्थ परिस्थितियों के द्वारा दिया जाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि का शिक्षण प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ही प्रदान किया जाए। भ्रमण, दृश्य-दर्शन आदि प्रविधियों के द्वारा शिक्षा में यथार्थ दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है।

शिक्षा-जगत के लिए रवींद्रनाथ टैगोर की मुख्य देन

रवींद्रनाथ टैगोर ने 'शांतिनिकेतन' और 'विश्वभारती' के रूप में शिक्षा जगत को अपनी जो अमूल्य धरोहर सौंपी है वह भारतवर्ष के लिए ही नहीं अपितु विश्वभर में अपना अतुलनीय स्थान रखती है।

शांतिनिकेतन स्थापना के उद्देश्य

1. बालकों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करना।
2. बालकों के हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करना।
3. बालकों के व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास का प्रयास करना।
4. बालकों में मानव प्रेम तथा विश्वबंधुत्व की भावना का विकास करना।

विश्वभारती के विभाग

1. पाठ भवन (स्कूल)
2. विद्या भवन (अनुसंधान केंद्र)
3. कला भवन (ललित कला का विद्यालय)
4. हिंदी भवन (हिंदी की शिक्षा तथा शोधकार्य के लिए)
5. शिक्षा भवन (महाविद्यालय)
6. चीनी भवन (चीन संबंधी अध्ययन के लिए)
7. संगीत भवन (कुटीर उद्योग संस्था)

8. श्री निकेतन (ग्राम निर्माण संस्थान)
9. विनय भवन (शिक्षण प्रशिक्षण केंद्र)
10. शिल्प भवन (उद्योग विद्यालय)

शिक्षा-दर्शन का मूल्यांकन

रवींद्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचार और प्रयोग एकदम नए और मौलिक हैं। यद्यपि टैगोर के विचार और प्रयोंगों के अधिकांश को प्राचीन समय के शिक्षास्त्रियों द्वारा किसी-न-किसी रूप में विकसित किया जा सकता है और तत्कालीन शिक्षाशास्त्रियों द्वारा कम अथवा अधिक मात्रा में उनका प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 20वीं शताब्दी के प्रथम भाग के भारतीय शिक्षाशास्त्रियों में रवींद्रनाथ टैगोर सर्वश्रेष्ठ थे।

रवींद्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का मूल्यांकन करते हुए डॉ॰ एच॰बी॰ मुखर्जी ने कहा है कि रवींद्रनाथ टैगोर आधुनिक भारत में शैक्षिक पुनरुत्थान के सबसे महान पैगंबर थे। रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने देश के सामने शिक्षा के सर्वोच्च आदर्शों को स्थापित रखने के लिए निरंतर संघर्ष करते रहे। रवींद्रनाथ टैगोर ने अपनी शिक्षा संस्थाओं में शैक्षिक प्रयोग किए, जिन्होंने उन्हें आदर्श का सजीव प्रतीक बनाया।

संदर्भ

1. दुर्गेशनंदिनी, शिक्षा दर्शन
2. सरोज सक्सेना, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार,
3. डॉ॰ रामशकल पांडेय एवं डॉ॰ बीना कपूर, शिक्षा के दार्शनिक आधार
4. डॉ॰ सुकेश यादव, डॉ॰ सविता सक्सेना, शिक्षा के दार्शनिक आधार, साहित्य प्रकाश, आगरा
5. प्रो॰ रमनबिहारी लाल, डॉ॰ गजेंद्रसिंह तोमर, विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिंतक,
6. अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र, आगरा
7. दैनिक जागरण, दैनिक समाजचार पत्र, आगरा

भारत में पंचायतीराज का विकास

श्रीमती शालिनी यादव

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्रीय देश है। विश्व में जनसंख्या के आधार पर द्वितीय स्थान पर है। सवा सौ करोड़ से अधिक आबादी वाले इस देश की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गाँव में रहती है। इसलिए विकासशील श्रेणी में आनेवाली भारत की अर्थव्यवस्था ग्रामीण है। ऐसे विशाल और ग्रामीण परिवेश वाले देश में शासन केंद्र द्वारा नहीं चलाया जा सकता। इसलिए शक्तियों का विवऋद्रीकरण आवश्यक है। देश के संपूर्ण विकास और गाँवा. को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि स्थानीय प्रशासन को क्रियान्वित किया जाए।

स्थानीय शाासन की बात आते ही कई प्रश्न मस्तिष्क में स्थान बना लेते हैं कि ये स्थानीय प्रशासन क्या है? नीति-निर्माताओं ने किस प्रकार गाँवा. को मुख्य धारा के साथ जोड़ा? संविधाननिर्माताआ. द्वारा किए गए प्रमुख प्रयास कौनसे थे? प्रारंभ में इन प्रयासा. की असफलता के कारण और विभिन्न समय पर दिए गए सुझाव क्या हैं?

स्थानीय शासन को विभिन्न देशा. में अलग-अलग नामा. से पुकारा जाता है। जैसे भारत म. स्थानीय स्वशासन, फ्रांस म. स्थानीय प्रशासन, अमेरिका में म्यूनिस्पिल प्रशासन आदि। जब भारत में विदेशी राज्य था तो स्थानीय स्वशासन अथवा स्वायत्त शासन शब्दा. का प्रयोग किया जाता था, किंतु आज स्वशासन शब्द का महत्त्व खो चुका है। क्या.कि देश में वऋद्र और राज्या. के स्तर पर 'स्वशाासन' विद्यमान है। अतः स्थानीय प्रशासकीय संस्थाआ. के लिए भारतीय संविधान में स्थानीय शासन शब्द प्रयुक्त किया गया है। सारभूत रूप में स्थानीय शासन का अभिप्राय यही है कि स्थानीय मामलों का प्रबंध स्थानीय व्यक्ति स्वयं अपने प्रतिनिधि द्वारा कर.।

स्थानीय शासन से अभिप्राय ऐसी शासन-प्रणाली से है, जिसके अनुसार स्थानीय क्षेत्रा. का शासन-संचालन वहाँ के निर्वाचित प्रतिनिधिया. द्वारा किया जाता है। स्थानीय हैएक महानगर, नगर, कस्बा, गाँव। इस प्रकार स्थानीय शासन से अभिप्राय उन स्थानीय लोकप्रिय संस्थाओं के शहरी व ग्रामीण के शासन से है, जिसका निर्माण राष्ट्रीय या राजकीय कानून के अंर्तगत किया जाता है।

'स्थानीय शासन का अर्थ पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अंदरूनी प्रबंधित एवं छोटे क्षेत्र में निर्णय लेने तथा उनको क्रियान्वित करनेवाली सत्ता से है।'[2]

वर्तमान जगत में स्थानीय शासन, शासन की चतुरस्तरीय व्यवस्था का एक अभिन्न अंग है। इस व्यवस्था के शीर्ष पर संयुक्त राष्ट्रसंघ है। वह एक राष्ट्रोपरि संस्था है और उसका रूप ऐच्छिक है। वह अपने प्रभुत्वसंपन्न सदस्यों के पारस्परिक संबंधों और व्यवहार की आचार-संहिता निर्धारित

करती है....। शासनव्यवस्था के दूसरे स्तर पर हम. अलग-अलग राष्ट्रीय राज्य देखने को मिलते हैं, जो अपनी राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर अपने राष्ट्रीय संविधाना. के अनुसार कार्य करते हैं। राष्ट्रीय राज्या. के घटक राज्य, प्रांत आदि शासनव्यवस्था के तीसरे स्तर पर हैं। चौथा तथा निम्नतम स्तर स्थानीय शासन है। उसकी रचना राष्ट्रीय अथवा राजकीय कानून के द्वारा की जाती है और वह अधिनियम द्वारा निर्धारित सीमित क्षेत्राधिकार के अंतर्गत कार्य करता है।[3]

प्राचीन भारत म. गाँव को शासन की धुरी माना जाता था। वैदिक काल के आरंभ म. गाँव को शासन की धुरी माना जाता था। वैदिककालीन ग्रंथों में भी इस प्रकार की सीमा का उल्लेख किया जाता है।[4]

ऋग्वेदकाल म. जो ग्रामसभाएँ होती थीं, उनम. ग्राम मुखिया को 'ग्रामीण' कहा जाता था। अथर्ववेद म. भी इसका वर्णन मिलता है।

मनुस्मृति म. भी गाँव को राज्य की आधारभूत इकाई माना गया है। मनुस्मृति से ज्ञात होता है कि ग्रामसभाओं एवं इसी प्रकार के अन्य जनतांत्रिक संगठना. म. भाग लेनेवाले व्यक्ति रागद्वेष से अलग होकर न्याय के हित में विचार व्यक्त करते थे।[5]

रामायणकाल म. ग्राम-प्रमुख को ग्रामीण अथवा महत्तर के नाम से जाना जाता था। इसके अलावा जनपदों का भी अस्तित्व था। महाभारत काल में भी ग्रामसभा विद्यमान थी'ग्रामजनां पदाश्चैव क्षेत्राणी च गृहाणि च।'[6]

बौद्धजातक कथाआ. म. बौद्धकाल से सुस्थापित पंचाययततंत्र का वर्णन मिलता है। ग्रामसभा के प्रधान को 'ग्रामभोजक' कहा जाता था। मौर्यकाल में 'ग्राम' शासन की सबसे निचली इकाई थी। मौर्यकाल म. ग्राम के प्रशासन की देखरेख के लिए ग्रामिक के अलावा ग्रामिक संघ एवं ग्रामिक सभाएँ अस्तित्व म. थीं।[7]

कौटिल्य के अनुसार स्थानीय विवादा. का निर्णय ग्राम-मुखिया या बुजुर्गों एवं सामंता. द्वारा किया जाता था। यदि वह निर्णय नहीं ले पाते थे, तो वहाँ का धार्मिक पुरुष निर्णय लेता या मध्यस्थ बना दिया जाता था।[8]

मुगलकालीन लेखा. से यह तथ्य सामने आता है कि इस काल में पंचायती संस्थाआ. की उपयोगिता में कमी आई, जिसका प्रमुख कारण मुगल सम्राटा. के द्वारा इन पर ध्यान न देना था। इस काल में ग्रामपंचायतें तथा सभाएँ पूर्व की भाँति निहित थीं, शासन का उनकी कार्यप्रणाली में हस्तक्षेप प्रायः नहीं था।

ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन व्यवस्था

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासक पंचायता. को अधिकार देने के विरोध में थे। इसके बावजूद इनका दृष्टिकोण व्यावहारिक था। ब्रिटिशकाल म. पंचायतों ने अपनी सत्ता गँवा दी, क्या.कि ब्रिटिश सरकार ने सारी बागडोर अपने हाथ में ले ली।

1882 म. तत्कालीन वायसराय लार्ड रिपन ने शासन को नए आयाम देने के लिए प्रसिद्ध अधिनियम पारित करने की घोषणा की। लार्ड रिपन का मानना था कि भारत के गाँव केवल गल्ला पैदा करके शहरा. के लोगा. का पेट भरने तथा मालगुजारी देने के लिए नहीं हैं। रिपन की योजना थी

कि भारत म. निचले स्तर तक स्थानीय स्वशासन स्थापित हो। उसम. गैरसरकारी निर्वाचित सदस्या. का बहुमत हो।[9]

इसके अलावा सन् 1920 म. ब्रिटिश सरकार ने 'संयुक्त प्रांत विलेज अधिनियम' पारित किया। इसके अंतर्गत पंचायतों की स्थापना का अधिकार जनपद के जिलाधिकारी को प्रदान किया गया।

महात्मा गांधी के स्वतंत्रता-आंदोलन का एक प्रमुख उद्देश्य भारत में ग्रामराज्य के माध्यम से रामराज्य का स्वप्न साकार करना था। सन् 1920 म. असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया गया एवं पंचायतीराज संस्थाआ. को अधिक-से-अधिक योग्य बनाने के लिए जोर दिया गया। सन् 1942 म. गांधी जी ने गोलमेज सम्मेलन म. ग्रामपंचायता. द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन का सुझाव दिया।

गांधी जी ने भी ग्रामस्वराज की कल्पना की थी, जिसके लिए गाँवा. म. पंचायतीराज संस्थाआ. का विकास किया जाए और इन संस्थाआ. से गाँवा. म. खुशहाली लाई जाए।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् स्थानीय शासन के क्षेत्र में प्रगति का नवयुग प्रारंभ हुआ। भारत की अधिकतर जनता गाँव में रहती है। जब तक ग्रामीण क्षेत्र का पुनर्गठन नहीं किया जाएगा, तब तक राष्ट्रीय विकास भी संभव नहीं हो सकता। इस उद्देश्य से जो भी योजनाएँ देश के विकास के लिए बनाई गईं, उनमें ग्रामीण क्षेत्र के विकास को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रजातंत्र की स्थापना की गई।

संविधान की धारा 40 के अनुसार 'राज्य ग्रामपंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत शासन की इकाई के रूप में कार्य योग्य बनाने के लिए आवश्यक हैं।[10] इन नीति-निर्देशक सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने के लिए पंचायतीराज की स्थापना की गई।

आधुनिक भारत म. पंचायतीराज प्रणाली की उत्पत्ति सामुदायिक विकास कार्यक्रम से हुई। 2 अक्टूबर 1952 को 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' तथा 2 अक्टूबर 1953 को 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' को प्रारंभ किया।

इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक तथा आर्थिक विकास को उच्च करना था, लेकिन सरकार ग्रामीण समुदाय को इन कार्यक्रम में सक्रिय रूप में शामिल नहीं कर पाई। कुछ समय पश्चात् यह अनुभव किया गया कि जब लोग उन्नति के लिए स्वयं प्रयास नहीं करते, ऐसा संभव नहीं है। उन्हें ऐसा करने के लिए स्वतंत्र उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए। इन कार्यक्रमा. की असफलता का मुख्य कारण लोगों म. इनकी जानकारी और चेतना का अभाव था।

1956 म. योजनाओं के सफलतापूर्वक ढंग से कार्य न करने के कारण योजना आयोग ने श्री बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता म. एक जाँच समिति की स्थापना की, जिसकी रिपोर्ट 1957 म. प्रस्तुत की, जिसम. कहा कि देश म. चल रहे विकासकार्यों के लिए विकास-योजना चलाई जाए और प्रशासनिक सत्ता का छोटे से छोटे स्तर पर विकेंद्रीकरण किया जाए। मुख्य सिफारिश.

1. पंचायतीराज का ढाँचा त्रिस्तरीय होना चाहिएग्राम स्तर पर पंचायत, ब्लाक स्तर पर पंचायत समिति और जिलास्तर पर जिला परिषद। पंचायत. पूरी तरह से निर्वाचित होनी चाहिए।

पंचायत समिति, जिसका स्वरूप एक कार्यकारिणी समिति जैसा हो, का गठन ग्राम पंचायतों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप म. होना चाहिए। जिला परिषद् का गठन भी नीचे की इकाई द्वारा होना चाहिए। इसका अध्यक्ष जिला अधिकारी हो।

2. पंचायतों को अपने क्षेत्र के होनेवाले समस्त विकासकार्यों पर पूर्ण नियंत्रण दिया जाना चाहिए। सरकार का कार्य नियोजन, निरीक्षण और निर्देशन तक सीमित होना चाहिए।

3. केंद्र तथा राज्य सरकार द्वारा ब्लाकस्तर पर दी गई समस्त आर्थिक सहायताराशि पंचायत समिति के माध्यम से व्यय की जानी चाहिए।

4. जल-आपूर्ति, सफाई, प्रकाशव्यवस्था, सड़कों का रखरखाव तथा भूमिप्रबंध ग्रामपंचायतों को अनिवार्य कर्त्तव्य निर्धारित किया जाना चाहिए।

5. सरकार को जनहित म. किसी पंचायत समिति को निलंबित करने का अधिकार होना चाहिए।[11]

सरकार ने रिपोर्ट पर विचार करके, 1958 म. इस समिति की सिफारिशों को मान लिया। सरकार ने राज्य सरकारों को अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार मुख्य सिद्धांतों के अंतर्गत रहते हुए पंचायतीराज को अपनाने का आदेश दिया। राजस्थान पहला राज्य था, जहाँ 2 अक्टूबर 1959 को पंचायतराज की स्थापना की गई।

हरियाणा म. भी प्रारंभ म. पंचायत उत्तराधिकार म. प्राप्त त्रिस्तरीय पंचायतराज प्रणाली थी लेकिन 1973 म. जिला परिषद समाप्त कर दी गई।

परंतु मेहता कमेटी के परिणाम उसकी आशाआ. के विपरीत निकले। इस बात को ध्यान म. रखते हुए जनता दल की सरकार ने 1978 म. अशोक मेहता कमेटी का गठन किया, जिसे उच्च शक्ति कमेटी की संज्ञा दी गई। इसकी मुख्य सिफारिशें निम्न थीं

1. पंचायतीराज का ढाँचा त्रिस्तरीय के स्थान पर द्विस्तरीय होना चाहिए। पहली जिला स्तर पर ओर दूसरी मंडल स्तर पर।

2. जिला परिषदा. का गठन प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होना चाहिए। जिले की समस्त विकासपरक गतिविधियाँ, जिनका संचालन अब तक राज्य सरकार द्वारा किया जाता रहा है, जिला परिषद् द्वारा किया जाना चाहिए।

3. जिलाधिकारी को जिला परिषद् के अधीन किया जाना चाहिए। जिला परिषद् का अध्यक्ष गैर-सरकारी व्यक्ति होना चाहिए।

4. जिला परिषद् और मंडल पंचायतों को पर्याप्त संसाधन हस्तांतरित किए जाने चाहिए।

5. पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाना चाहिए।

6. पंचायतीराज चुनावों में राजनीतिक दला. को भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए।

7. इन संस्थाआ. के चुनाव समय पर अनिवार्य हो जाने चाहिए।

अशोक मेहता कमेटी की सिफारिशा. म. से सबसे प्रमुख सिफारिश थी संवैधानिक दर्जा दिया जाना, जोकि 73वाँ संशोधन म. पूरी हो पाई। इसके बाद लोकसभा म. 64वाँ संशोधन किया गया, जिसम. निम्न बात. थीं। इसम. फिर से त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था की गई, लेकिन जिन राज्यों की

जनसंख्या लाख से अधिक नहीं है, वह द्विस्तरीय प्रणाली लागू की जा सकती है, जिसम. मध्य स्तर की आवश्यक नहीं होता। चुनाव सार्वजनिक वोट देने के अधिकार के तहत हर पाँच वर्ष बाद नियमित रूप से हा.गे। इसके अलावा अनुसूचित जाति व जनजाति और महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत पद आरक्षित करना संशोधन का विशेष गुण है।

इस संशोधन के बावजूद अनेक ऐसी कुरीतियाँ थीं, जिनके कारण 73वाँ संशोधन किया गया। जैसेपंचायतों के चुनाव समय पर न होना, उन्हें लंबे समय तक निलंबित रखना, राज्य सरकार द्वारा पंचायतीराज का दमन करना। पंचायतीराज के विकास के आर्थिक संसाधना. का अभाव। अनुसूचित जातिया. और जनजातिया. एवं महिलाआ. को पर्याप्त उत्तरदायित्त्व न मिलना। इन बुराइया. को दूर करने के लिए 73वाँ संशोधन विधेयक पास किया गया।

1991 म. लोकसभा चुनाव के बाद काँग्रेस (आई) सरकार ने संविधान का 72वाँ संशोधन बिल संसद म. प्रस्तुत किया, जो कि काफी सीमा तक 64वें संशोधन से मेल खाता था। परंतु इसम. कुछ विशेष प्रावधान रखे गए। जैसे सभी राज्या. म. ग्रामसभा का गठन, अनुसूचित जाति तथा जनजातिया. को आरक्षण जनसंख्या के अनुपात से दिया जाए। महिलाआ. को 1/3 आरक्षण दिया गया।

21 नवंबर 1992 को यह संशोधन बिल राज्यसभा म. बहुमत द्वारा पास किया गया और 24 दिसंबर 1992 को इसे 73वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम नाम दिया गया तथा यह 23 अप्रैल 1993 को संपूर्ण राष्ट्र म. व्यावहारिक स्तर पर लागू किया गया। इसे संविधान म. भाग 9 तथा 11वीं अनुसूची म. जोड़ा गया। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं

1. 73वें संशोधन के द्वारा पंचायतीराज को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई तथा पंचायतीराज प्रणाली के संबंध में संविधान म. भाग 9 तथा 11वीं अनुसूची को जोड़ा गया।

2. ग्राम पंचायत के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत जिन व्यक्तिया. के नाम मतदाता सूची म. है। सामूहिक रूप से ग्रामसभा का निर्माण करते हैं। स्थानीय सरकारों को परिभाषित करते हुए इस संशोधन में कहा है कि पंचायत सभ्य शासन की वह संस्था है, जिसकी स्थापना ग्रामक्षेत्र में राज्य सरकार द्वारा की जाती है।

3. सभी राज्या. में ग्रामसभा का गठन अनिवार्य होगा तथा उन्ह. वे सभी अधिकार एवं शक्तियाँ प्राप्त होंगी, जो राज्य विधान मंडल ने कानून द्वारा उन्ह. प्रदान की हैं।

4. 73वें संशोधन के अनुसार पंचायत के सभी सदस्या. का चुनाव प्रत्यक्ष होगा। पंचायतीराज संस्थाआ. का निर्वाचन ऐसी संस्था के नियंत्रण एवं निरीक्षण म. होगा, जिसकी व्यवस्था राज्य विधान मंडल करेगा।

5. प्रत्येक स्तर पर अनुसूचित जातिया. एवं जनजातिया. को उनकी जनसंख्या के अनुपात म. आरक्षण दिया जाएगा।

6. पंचायतीराज संस्थाआ. के तीनों स्तरा. पर अध्यक्ष पदा. के एक तिहाई स्थान भी महिलाआ. के लिए आरक्षित हा.गे।

7. तीना. स्तरा. पर पंचायता. का कार्यकाल पाँच वर्ष होगा। यदि किसी कारण से पंचायता. को उनके निर्धारित समय से पूर्व भंग कर दिया गया है तो छः महीने के अंदर चुनाव करवाना जरूरी

होगा।[12]

8. सभी स्तरो. पर चुनावा. के नियंत्रण निर्देशन एवं निरीक्षण के लिए स्वतंत्र एवं निष्पक्ष राज्य चुनाव आयोग का गठन किया जाएगा।

9. इस संशोधन के अनुसार राज्य विधान मंडल कानून पारित करके एक संस्थ की स्थापना करेगा। जिसम. पंचायता. के निर्वाचन संबंधी याचिकाएँ प्रस्तुत की जाएँगी तथा न्यायालय पंचायता. के निर्वाचन म. हस्तक्षेप नहीं करेगा।

10. इसके अतिरिक्त इस संशोधन के द्वारा यह भी प्रावधान किया गया है कि राज्य विधान मंडल कानून का निर्माण करके पंचायता. का सामाजिक एवं आर्थिक विकास की योजनाएँ बनाने एवं लागू करने का अधिकार सौंपता है। इसके अलावा 11वीं अनुसूची म. 29 विषया., जिसमें कृषि, भूमि सुधार, पशु-पालन, लघु उद्योग, शिक्षा का प्रबंध, स्वस्थ और सफाई, गरीबी दूर करना, पेयजल, सड़क सार्वजनिक वितरण प्रणाली इत्यादि पर पंचायता. को समवर्ती दायित्व होगा।

इस प्रकार हम देख.गे की 73 वाँ संवैधानिक संशोधन स्थानीय स्वशासन के इतिहास म. एक कांतिकारी कदम है। पंचायतीराज का मुख्य उद्देश्य लोकतंत्र को वास्तविक बनाना है। जनता को अधिक से अधिक शक्तियाँ प्रदान करना है। 73वें संविधान संशोधन द्वारा इसे और अधिक सार्थक बनाने का प्रयास किया गया। 60 वर्षों के पश्चात् पंचायतीराज आज इस मुकाम तक पहुँचा है।

संदर्भ

1. हरिश्चंद्र शर्मा, भारत म. स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो जयपुर, 1972, पृ॰ 2
2. एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका, हरिश्चंद्र शर्मा, भारत म. स्थानीय प्रशासन, वही पृ॰ 3
3. श्री राम महेश्वरी, भारत म. स्थानीय शासन ओरियंट लांगमैन, नई दिल्ली 1971, पृ॰ 1
4. डॉ॰ राजकुमारी सुराणा, भारत म. लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और नव पंचायतीराज, राज पब्लिशिंग हाउस जयपुर 2000, पृ॰ 3
5. वही
6. शांति पर्व, 12/30
7. हरिशचंद्र शर्मा, भारत म. स्थानीय शासन का इतिहास, कालेज बुक डिपो, जयपुर 1975-76, पृ॰ 25
8. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 3/9/11
9. सुरौलिया विनोद, पंचायतीराज म. जनता की सहभागिता प्रतियोगिता दर्पण, राजनीतिक लेख, मई 1995, पृ॰ 1546
10. डी॰डी॰ बासु, भारत का संवैधानिक कानून, प्रिय.टिक हाल ऑफ इंडिया प्रा॰लि॰, नई दिल्ली, पृ॰ 41
11. समाचार पत्र हिंदुस्तान, नई दिल्ली, 2 जुलाई 1989, पृ॰ 6
12. अली अशरफ एंड एस एन मिश्रा, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पृ॰ 314-15

द्वारा श्री संदीपकुमार
म॰नं॰ 1584
ग्राम व पो॰ वजीराबाद, सेक्टर-52,
गुड़गाँव (हरि॰) 122003
मो॰ 09873551202

उत्तर प्रदेश में अचल संपत्तियों के मूल्यांकन से संबंधित विधि का एक अध्ययन

जियाउलहक

व्यावसायिक व वाणिज्यिक क्रियाओं को गतिशील बनाने के लिए चल तथा अचल संपत्तियों का हस्तांतरण या क्रय-विक्रय करना अति-आवश्यक है। चल व अचल संपत्तियों के क्रय-विक्रय करने के लिए उनके मूल्यांकन से संबंधित विधि का ज्ञान होना अति आवश्यक है। यदि अचल संपत्तियों के मूल्यांकन संबंधी विधि का ज्ञान नहीं होगा, तब अचल संपत्ति का क्रय-विक्रय करते समय संपत्ति के मूल्यांकन में त्रुटि होगी, जिससे संपत्ति का हस्तांतरण अवैधानिक होगा। अवैधानिक प्रक्रिया से किए गए अचल संपत्तियों के हस्तांतरण निष्प्रभावी व अस्तित्वविहीन होंगे तथा दंडनीय अपराधों की श्रेणी में आएँगे, इसलिए अचल संपत्तियों के मूल्यांकन से संबंधित विधि का ज्ञान होना आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। अन्य देशों की भाँति भारत में भी भूमि, भवन आदि अचल संपत्तियों के संव्यवहारों को व्यवस्थित रूप देने हेतु केंद्रस्तर व राज्यस्तर पर कानून बनाए गए हैं। इन्हीं कानूनों के अंतर्गत संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, स्टांप अधिनियम, पंजीयन अधिनियम, शहरी भूमि सीमा नियमन निरस्तीकरण, भूमि मूल्यांकन अधिनियम, नगरपालिका अधिनियम, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि-व्यवस्था अधिनियिम आदि कानून बनाए गए हैं। इन कानूनों का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अचल संपत्तियों जैसे भूमि-मकान आदि के हस्तांतरण को वैधानिक रूप देना व उनका मूल्यांकन करना है।

अचल संपत्तियों का मूल्यांकन करके स्टांप ड्यूटी की अवधारणा ही राज्य के राजस्व अर्जन करने के उद्देश्य से की गई थी, जो कि आज भी विद्यमान है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि यह अधिनियम वर्तमान में राज्य के लिए राजस्व अर्जन करने से संबंधित अधिनियमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अधिनियमों में से एक है। अचल संपत्तियों का मूल्यांकन कर स्टांप शुल्क अदा करना इसलिए भी परम आवश्यक है, क्योंकि इससे प्राप्त राजस्व से राज्य सरकार अनेक कल्याणकारी योजनाएँ बनाने व वाणिज्यिक क्रियाओं को प्रोत्साहन देने व अनेक सामाजिक, आर्थिक विकास कार्यों को क्रियान्वित करने में सक्षम हो सकेगी। संपत्ति का मूल्यांकन कम करके स्टांप ड्यूटी/कर कम अदा करना दंडनीय अपराध है। प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य है कि वह संपत्तियों का मूल्यांकन सही तरीके से करके स्टांप ड्यूटी/कर राजस्व के रूप में अदा कर अपने राष्ट्र की सेवा करें।

उत्तर प्रदेश स्टांप (संपत्ति का मूल्यांकन) विधि में राज्यपाल महोदय ने अपनी शक्तियों के प्रयोग द्वारा निम्नलिखित कानून बनाए हैं। यह एक्ट उत्तर प्रदेश (संपत्तियों का मूल्यांकन) नियम 1997 के नाम से जाना जाएगा। इस एक्ट के अनुसार अधिकृत प्रतिनिधि से आशय ऐसे व्यक्ति

से है, जो अपनी प्रमुख का मुख्तारी अधिकार का प्रतिनिधित्व करता है या एक ऐसा व्यक्ति होता है, जिसे लिखित अधिकार द्वारा अधिकृत किया जाता है। देहात का अर्थ एक ऐसे क्षेत्र से है जो शहरी अर्धशहरी क्षेत्र से अलग हो। व्यावसायिक इमारत का अर्थ एक ऐसे व्यावसायिक दुकान या ऐसे प्रतिष्ठान से है जो औद्योगिक विकास क्षेत्र का अर्थ ऐसे क्षेत्र से है, जिसे उत्तर प्रदेश में औद्योगिक विकास एक्ट 1976 के अनुभाग 2 के परिच्छेद के अंतर्गत परिभाषित किया गया है। संबंधित अधिकारी का अर्थ अदालत या निम्न में से कोई स्टाम्प आयुक्त, अतिरिक्त आयुक्त, उप आयुक्त, सहायक आयुक्त एक्ट के अनुभाग 47ए के अंतर्गत राजस्व बोर्ड द्वारा अधिकृत अधिकारी से है। पंजीकरण अधिकारी का अर्थ पंजीकरण एक्ट 1908 के अंतर्गत नियुक्त रजिस्ट्रार तथा उपरजिस्ट्रार से है। अर्द्धशहरी क्षेत्रों से आशय ऐसे क्षेत्रों से है, जो उत्तर प्रदेश नगर योजना एवं विकास एक्ट के अंतर्गत घोषित शहरी क्षेत्र से अलग है। शहरी क्षेत्र का अर्थ ऐसे क्षेत्र से है, जो उत्तर प्रदेश नगर निगम एक्ट के अंतर्गत महानगरीय अथवा नगरीय क्षेत्र के अंतर्गत सम्मिलित है। अचल संपत्ति का मूल्यांकन करते समय तथा प्रपत्र तैयार करते समय प्रपत्र में ये निम्नलिखित ब्यौरा पूर्णतः प्रदान किया जाना चाहिए। जमीन के संदर्भ में जमीन का क्षेत्रफल वर्ग मीटर में जिले के कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम मूल्य, अचल संपत्ति का स्थान की वह शहरी क्षेत्र में अथवा अर्द्धशहरी या ग्रामीण क्षेत्र में है। इमारत के संदर्भ में अचल संपत्तियों का मूल्यांकन करते समय उसका कुल आवृत्त क्षेत्र तथा खुला क्षेत्र यदि है तो वर्गमीटर में मंजिलों की संख्या, इमारत पक्की है अथवा कच्चा निर्माण है, निर्माण का वर्ष, वास्तविक वार्षिक किराया उस संपत्ति का क्षेत्रीय प्राधिकरण द्वारा मूल्यांकित वार्षिक मूल्य तथा देय कर कितना है। इमारत की प्रकृति व्यावसायिक अथवा गैरव्यावसायिक है अगर इमारत व्यावसायिक है तो जिले के कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम निर्माण मूल्य, स्थान शहरी है अथवा अर्द्धशहरी या ग्रामीण क्षेत्रीय है। गैरव्यावसायिक भवनों के संदर्भ में भवन के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री का मूल्य, निर्माण का प्रकार, आयु तथा भवनों का अवमूल्य। व्यावसायिक भवनों के संदर्भ में क्षेत्र में प्रचलित किराया क्षेत्र में आर्थिक गतिविधि का प्रकार, अचल संपत्तियों का मूल्यांकन करते समय इन बातों को ध्यान रखते हुए उनका मूल्यांकन करना चाहिए तथा प्रपत्रों में उनका स्पष्ट उल्लेख करना भी आवश्यक है। जिले के कलेक्टर महोदय दो वर्षों के भीतर अचल संपत्तियों के मूल्यांकन को पुनः मूल्यांकित कर सकते हैं। जिले के कलेक्टर प्रति वर्ग मीटर जमीन का न्यूनतम मूल्य व्यावसायिक, गैर-व्यावसायिक भवनों का निर्माण, मूल्यांकन, भवनों का प्रति वर्ग मीटर न्यूनतम किराया निर्धारण करने के पश्चात् रजिस्ट्रार के पास भेजते हैं। इस विवरण में अचल संपत्तियों तथा व्यावसायिक भवनों के निर्माण का न्यूनतम मूल्य निर्धारित किया जाता है। जमीन का न्यूनतम मूल्य निर्धारित करने के लिए जमीन के क्षेत्रफल को कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम मूल्य से गुणा करके किया जाता है। व्यावसायिक भवनों के संदर्भ में किराया निर्धारित करने के लिए भवन के प्रत्येक तल के निर्मित क्षेत्रफल को कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम किराए से गुणा किया जाता है। इस प्रकार अचल संपत्तियों का मूल्यांकन कर उस पर ड्यूटी/कर अदा किया जाता है। यदि मूल्यांकन करने में कोई त्रुटि हो जाती है अथवा मूल्यांकन कम करके कर कम अदा दिया जाता है तो इस स्थिति में कलेक्टर महोदय पार्टियों को कारण बताओं नोटिस जारी कर सकते हैं तथा कलेक्टर महोदय अचल संपत्ति का मूल्यांकन कम दर्शाने पर संपत्ति

के मूल्यांकन की जाँच कराकर पार्टियों के खिलाफ वैधानिक कार्यवाही कर सकते हैं।

अचल संपत्ति के मूल्यांकन-संबंधी नियमों का संपूर्ण कर-प्रणाली में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अतः इनका मूल्यांकन बहुत सोच-समझकर किया जाना चाहिए। संपत्ति-कर की प्रस्तावना एवं नियमों को बनाने से पूर्व आर्थिक, प्रशासनिक, विधिक तथा सामाजिक आशयों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। अचल संपत्ति पर कर के निर्धारण में मूल्यांकन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। संपत्ति-कर का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है अथवा किन करो को कम किया जाता है, उसका प्रभाव जनमानस पर पड़ना स्वाभाविक होता है। सरकार द्वारा संपत्ति के मूल्यांकन द्वारा प्राप्त राजस्व को विभिन्न प्रकार के सुधार-कार्यक्रमों में प्रयोग किया जा सकता है। जैसे शिक्षा, आधारभूत वैज्ञानिक शोध, परिवहन की मूलभूत सुविधाएँ इत्यादि जो अर्थव्यवस्था की क्षमता में बढ़ोत्तरी करती हैं, संपत्ति के मूल्यांकन एवं नियमों में परिवर्तन से जनमानस पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। सरकार को इनके माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा-संबंधी सुविधाओं हेतु धन प्राप्त होता है।

भारतीय परिवेश में हम जब विभिन्न राज्यों की संपत्तियों की मूल्यांकन विधि में तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि जिन राज्यों में अचल संपत्तियों के मूल्यांकन पर स्टांप दरों में कमी है, उन राज्यों को राजस्व वसूली अधिक प्राप्त होती है, क्योंकि उन राज्यों के लोग संपत्ति का मूल्यांकन सही दर्शाकर स्टांप ड्यूटी/कर की चोरी नहीं करते हैं जिससे उस राज्य को अधिक राजस्व प्राप्त होता है तथा उस राज्य में कम भ्रष्टाचार व्याप्त होता है, अधिक राजस्व प्राप्त होने से उस राज्य का सामाजिक, आर्थिक स्तर उच्चकोटि को होगा व उस राज्य में संपत्ति-संबंधी विवाद कम दायर होंगे। इसके विपरीत जिस राज्य में ड्यूटी/कर संपत्ति पर अधिक होगा उस राज्य में जनता द्वारा स्टांप ड्यूटी/कर बचाने के लिए संपत्ति का मूल्यांकन कम दर्शाकर स्टांप ड्यूटी/कर की चोरी करने का प्रयास किया जाता है, जिससे कि उस राज्य में भ्रष्टाचार व रिश्वतखोरी बढ़ेगी और उस राज्य को राजस्व कम प्राप्त होगा व उस राज्य का आर्थिक व सामाजिक विकास कम हो पाएगा तथा उस राज्य में संपत्ति-संबंधी विवाद ज्यादा दायर होंगे।

उत्तर प्रदेश के अचल संपत्ति के मूल्यांकन विधि का अन्य भारतीय राज्यों के अचल संपत्तियों के मूल्यांकन विधि से तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि उत्तरप्रदेश एक विकासशील राज्य है। यहाँ की संपत्ति के मूल्यांकन पर वसूल की जानेवाली स्टांप ड्यूटी अन्य राज्यों की तुलना में काफी कम है, जबकि अन्य राज्यों (बिहार को छोड़कर) अधिक है। उत्तरप्रदेश की अचल संपत्तियों के मूल्यांकन से प्राप्त होनेवाला राजस्व 9261.10 मिलियन है जो कि अन्य राज्यों की तुलना में दूसरे स्थान पर है। प्रथम स्थान पर तमिलनाडु राज्य है, परंतु तमिलनाडु राज्य में वसूल की जानेवाली स्टांप ड्यूटी/कर की दर 8.42 प्रतिशत है। जबकि उत्तर प्रदेश में यह दर 4.43 प्रतिशत है जो कि तमिलनाडु से लगभग आधी है। इस प्रकार हम उत्तर प्रदेश का अन्य राज्यों से तुलनात्मक अध्ययन करने पर पाते है कि उत्तर प्रदेश अचल संपत्ति से प्राप्त होनेवाली राजस्व आय में अन्य राज्यों में दूसरा स्थान प्राप्त करता है तथा यहाँ पर अन्य राज्यों की तुलना में वसूल की जाने वाली स्टांप ड्यूटी/ कर काफी कम है।

संपत्ति-कर शहरी प्रशासन के राजस्व का प्रमुख स्रोत है। इस राजस्व से प्राप्त होनेवाली आय में पर्याप्त बढ़ोत्तरी नहीं हो पा रही है, क्योंकि सरकार की नीतियाँ लचर हैं। इसके अतिरिक्त कानूनी एवं प्रशासनिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। संपत्ति-कर की व्यवस्था को सही प्रकार से प्रबंध किए जाने की आवश्यकता है, जिससे राजस्व उत्पादन में सुधार के साथ-साथ नीतिगण एवं कानूनी ढाँचे में भी सुधार किया जा सके। उच्च स्टांप ड्यूटी के बोझ के कारण व्यक्तियों ने कर से बचने के लिए कानूनी उपयों को खोज लिया है। जैसे मुख़्तारी अधिकार के सामान्य उपयोग से विक्रय-पत्र को बिना कब्जे के विक्रय समझाते में बदल दिया जाता है एवं घोषणात्मक बिक्री वाद इत्यादि। अतः सरकार को चाहिए कि वह इस प्रकार की प्रणाली की स्थाना करे कि व्यक्ति किसी भी प्रकार से कर न बचा सके और सरकारी राजस्व की हानि न हो। उच्च स्टांप कर की दरों के कारण व्यक्ति गैरकानूनी ढंग से कर की चोरी करने लगते हैं। इसका सबसे लोकप्रिय उपाय अधोमूल्यांकन है। इसलिए को ऐसे तंत्र की स्थापना करनी चाहिए जो यह सुनिश्चित करे कि किसी भी लेने-देन का अधोमूल्यांकन न हो। कर एकत्रित करनेवाले कार्यालयों के कर्मचारी/अधिकारी भ्रष्ट, अमित्रवत् तथा असहायक होते हैं, अतः इन कार्यालयों को मित्रवत् एवं सहायक बनाया जाना चाहिए। स्टांप पेपर का फर्जी उत्पादन एवं प्रयोग स्टांप कर के प्रशासन में महत्त्वपूर्ण चुनौती है। स्टांप पेपर इस प्रकार के होने चाहिए कि उन्हें कूट रचित न किया जा सके तथा फर्जी स्टांप पेपर की आसानी से पहचान हो सके। भारत में अचल संपत्तियों के मूल्यांकन विधि में स्टांप कर को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक कम किया जाना चाहिए। इसके परिणामस्रूप अधोमूल्यांकन तथा ब्लैक अर्थव्यवस्था के प्रभावों को कम किया जा सकता है।

उत्तरप्रदेश में भी इसी प्रकार के कुछ सुधार-कार्यक्रमों की आवश्यकता है। उत्तरप्रदेश सरकार को इस बात पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए कि यहाँ जो कर एकत्रीकरण कार्यालय है, उनमें सुधार की अत्यंत आवश्यकता है। अधिकारियों/कर्मचारियों की कार्यप्रणाली जो अत्यंत असंतोषजनक है, उसमें आवश्यक सुधार किए जाने चाहिए। स्टांप ड्यूटी/करों की दरों को कम करना तथा ढाँचे को आसान बनाना चाहिए, जिससे कि संपत्ति का अधोमूल्यांकन न हो पाए। ये उपाय राजस्व बढ़ाने में महत्त्वूपर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं तथा लोगों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले कानूनी एवं गैरकानूनी उपायों पर भी लगाम लगा सकते हैं। उत्तर प्रदेश सरकार को संपत्ति मूल्यांकन की प्रक्रिया में सरलता लानी चाहिए एवं प्रक्रिया को कड़ाई से लागू करना चाहिए, जिससे कर-अपवंचन को रोका जा सके। संपत्ति-कर प्रक्रिया में अक्सर यह देखा जाता है कि नियमों एवं कानूनों का कड़ाई से पालन नहीं हो पाता है, जिससे बड़ी संख्या में लोग कर की चोरी तथा कर बचाने की प्रक्रिया में जुट जाते हैं। प्रक्रिया तथा प्रशासनिक व्यवस्था में अत्यधिक लचीलापन होने के कारण व्यक्तियों के पास कानूनी एवं गैरकानूनी उपाय उपलब्ध होते हैं, जिससे वे आसानी से कर-चोरी अथवा कर बचाने जैसे उपाय कर लेते हैं। उत्तरप्रदेश सरकार को चाहिए कि वह मूल्यांकन की विधि को सरल, लचीली व आधुनिक बनाए, जिससे लोगों को स्टांप ड्यूटी/कर नियमानुसार अदा करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। सारांशतः कहा जा सकता है कि भारत में अचल संपत्तियों के मूल्यांकन के तरीके/दर और भ्रष्टाचार में अन्योन्याश्रित संबंध दर्शित होता है। इसमें संशोधन करके कुछ खामियों को दूर किया जा सकता

है। अंततः यह स्वीकार करते हुए किए मनुष्य एक सामाजिक और सामान्य प्राणी है, जिसमें स्वार्थ की मात्रा भी विद्यमान है, देश के नीति-निर्माताओं को मूल्यांकन-संबंधी नियमों की समय-समय पर समीक्षा करते रहना चाहिए और राजस्व जैसे अति महत्त्वपूर्ण विषयों पर संपूर्ण भारतवर्ष में अचल संपत्तियों के मूल्यांकन की दर एक समान होनी चाहिए, क्योंकि संपत्ति का मूल्यांकन और उससे प्राप्त वास्तविक राजस्व एक गंभीर सामाजिक, आर्थिक मुद्दा है व अधोमूल्यन राजस्व-प्राप्ति की प्रमुख बाधाओं में से एक है।

काजीपाड़ा, बिजनौर (उ०प्र०)
मो० 09927208475

बहुआयामी व्यक्तित्व 'भगतसिंह'

अनंत वडघणे

हिंदी जीवनी-साहित्य के अंतर्गत कई महापुरुषों को लेकर जीवनियाँ लिखी गई हैं, जिसमें जीवनीकारों ने उनके जीवन को प्रभावी रूप में अभिव्यक्ति दी है। साथ ही उनके जीवन को लेकर जो भी ग़लत धरणाएँ हैं, उसका सूक्ष्मता से अध्ययन कर एक वास्तविक तस्वीर समाज के सामने प्रस्तुत की है। भगतसिंह का जीवन भी लोगों के सामने जिस रूप में पहुँचना चाहिए, उस रूप में नहीं पहुँचा है। उनको एक कांतिकारी होने के कारण अँग्रेज़ी सरकार ने फाँसी पर चढ़ाया। इसके अलावा भगतसिंह के व्यक्तित्व के जो विभिन्न पहलू हैं, जिसमें उनके विचारों की प्रगल्भता, इच्छाशक्ति, व्यक्ति संघटन, मानवतावादी दृष्टि, साम्यवादी दृष्टि, साहसी वृति, निभीकता, जात-धर्म विरहित एक राष्ट्र की संकल्पना आदि। ऐसे भगतसिंह जो एक समय गांधीजी से भी अधिक लोकप्रिय थे, उनके जीवन पर प्रकाश डालने का कार्य कई जीवनीकारों ने किया है, जिनमें वीरेंद्र सिंधु ने भगतसिंह और उनके मृत्यंजय पुरखे, जितेंद्रनाथ सान्याल ने 'भगतसिंह की जीवनी', हंसराज रहबर ने 'भगतसिंह एक जीवनी', चमनलाल जी ने भगतसिंह आदि जीवनियाँ लिखी हैं।

भगतसिंह का जन्म 28 सितंबर 1907 को चक्क नं. बंगे, जिला लायपुर (अब फैसलाबाद पाकिस्तान) में हुआ। 23 मार्च 1931 में उन्हें फाँसी हुई। इस अल्प आयु में ही इन्होंने जो कार्य किया, वह अत्यंत सराहनीय है। भगतसिंह का अध्ययन उच्चकोटि रहा है। इन्होंने इटली की क्रांति, मेजिनी और गौरीबाल्डी की जीवनियाँ, रूस की राज्यक्रांति, लेनिन की जीवनी जैसी कई किताबें पढ़ी हैं। इनकी इसी अध्ययनशीलता को लेकर शहीद सुखदेव के भाई मथुरादास थापर कहते हैं'गोर्की, मार्क्स, उमर ख्याम, एंजिल्स, आस्कार वाइल्ड, बर्नार्ड शा, चार्ल्स डिकेन्स, विक्टर ह्यूगो, टाल्स्टाय और दास्तोव्स्की जैसे महान चिंतकों और लेखकों पर घंटों सिर जोड़े चर्चा करते रहते।'[1] भगतसिंह ने अपनी 17 वर्ष की आयु में 'पंजाब की भाषा और लिपि की समस्या' पर लेख लिखा और उसे प्रथम पारितोषिक भी मिला। उसी के साथ 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' ग्रंथ भी लिखा, जिसमें उनके वैचारिक का परिचय होता है। उनका हिंदी, अँग्रेज़ी, पंजाबी, उर्दू जैसी भाषाओं पर प्रभुत्व था। इन्होंने डान ब्रीन की 'माई फाइट फार आयरिश फ्रीडम' का हिंदी अनुवाद भी किया है। वे जानते थे कि उन्हें फाँसी होनेवाली है, फिर भी इन्होंने अपना अध्ययन बंद नहीं किया।' यहाँ तक कि फाँसी के तख़्ते पर जाने से कुछ मिनट पहले तक वह लेनिन की एक किताब पढ़ रहे थे।'[2]

भगतसिंह एक अध्ययनशील व्यक्ति थे, उसी तरह वे कलाकार भी थे। उन्होंने कई नाटकों में अभिनय किया था तथा प्रशंसा भी पाई थी। जैसेनेशनल कॉलेज, लाहौर में पढ़ते समय ड्रामेटिक क्लब के सदस्य रूप में भगतसिंह ने 'मेवाड़ पतन' में महाराणा प्रताप की भूमिका निभाई, जिसे

सरोजिनी नायडू ने देश और भगतसिंह की प्रशंसा की।'[3] इससे उनके कलाकार होने का परिचय हमें हो जाता है।

भगतसिंह ने अपने प्राण इस भारतभूमि को समर्पित किए। उसी के साथ घर, परिवार से भी अपने को दूर रखा। इतना ही नहीं, उन्होंने विवाह करने से भी मना किया। वह अपने मित्रों से कहते हैं कि 'पराधीन भारत में मेरा विवाह हुआ, तो मृत्यु ही मेरी दुल्हन होगी। घर में एक विधवा है....और विधवा नहीं होनी चाहिए। एक लड़की का जीवन मैं बरबाद नहीं करूँगा।'[4] इससे भगतसिंह की राष्ट्रभक्ति एवं उनके विचारों की महानता का पता चलता है। इन्होंने राष्ट्रमुक्ति के लिए अपने-आपको अर्पित कर दिया। इतना ही नहीं, जब उन्हें फाँसी की सज़ा सुनाई गई तो उन्होंने अपने क्रांतिकारी साथी 'बटुकेश्वर दत्त' को पत्र लिखा। इसमें वे लिखते हैं'फाँसी के तख़्त पर मैं ख़ुशी से जाऊँगा और दुनिया को दिखाऊँगा कि क्रांतिकारी अपने आदर्श के लिए कितनी वीरता से बलिदान करते हैं।'[5]

भगतसिंह के व्यक्तित्व में देशसेवा के साथ-साथ समाजसेवा का भी गुण था। 1924 में गंगा के प्रलंयकारी प्लावन में इन्होंने बाढ़-पीड़ितों की दिन-रात सेवा की। गंगा में बह रहे लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना, उनके खाने-पीने की व्यवस्था करने का कार्य बड़े उत्साह से किया। बटुकेश्वर दत्त कहते हैं कि 'बाढ़ की प्रलयकारी लीला में सब-कुछ गँवाकर हताश, भूखे असहाय लोगों का वह हुजूम!...भोजन की प्रतीक्षा करते स्त्री-पुरुष अलग-अलग क़तारों में पत्तल के सामने बैठे थे कि तभी गर्म पूड़ियों की टोकरी दोनों हाथों से ऊपर उठाएँ तरुण सरदार दिखाई पड़ा।...लेकिन बातचीत का समय कहाँ। वह उत्साह एवं उमंग के साथ भूख से बेचैन लोगों की क़तार की तरफ़ बढ़ गया।'[6] इस तरह भगतसिंह के समाजसेवा से जुड़े अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिसमें उनके क्रांतिकारी होने के साथ जनसेवा के प्रति कटिबद्धता भी दिखाई देती है।

भगतसिंह के विचार स्पष्ट एवं निर्भय थे। इन्होंने धर्म, जाति आदि का विरोध कर एक मानवतावादी धर्म पर बल दिया है। वे उस धर्म का विरोध करते हैं, जो मनुष्य को तोड़ने का कार्य करे, अंधश्रद्धा फैलाए। इनके मतानुसार, 'जो मनुष्य को सुखी बनाए, समता, समद्धि एवं बंधुता के मार्ग पर आगे बढ़ाये, वही धर्म है।'[7] भगतसिंह के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू सामने आते हैं। उसमें उनकी दूरदृष्टि भी एक है। इसमें इन्होंने अपने मृत्यु के पूर्व एक बात कही थी। वे कहते हैं, 'हमारे फाँसी लगने से पंद्रह साल बाद अँग्रेज़ यहाँ से चले जाएँगे, क्योंकि उनकी जड़ें खोखली हो चुकी हैं। उनके चले जाने के बाद जो राज होगा, वह लूट-खसोट, स्वार्थ और गुंडागर्दी का राज होगा।'[8] आज हम उसी स्थिति का अनुभव कर रहे हैं।

भगतसिंह का स्वभाव साहसी था। इसलिए मृत्यु का डर उन्हें कभी नहीं लगा। इन्होंने जब संसद में बम-धमाका किया, तब भी वे वहाँ से नहीं हटे, उन्होंने ख़ुद अँग्रेज़ों को अपने-आपको सौंप दिया। उन्हें पता था कि इसकी सज़ा फाँसी या जन्मक़ैद भी हो सकती है, किंतु वह अँग्रेज़ों को दिखाना चाहते थे कि भारत स्वाधीनता-हेतु हम प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार हैं। यथा'किसने बम धमाका किया, यह समझ में नहीं आ रहा था। सभी ओर धुआँ फैला था, किसे पकड़ना है यह समझना मुश्किल था, फिर भी भगतसिंह और बटुकेश्वर वहीं खड़े थे। वे चाहते तो वहाँ से भाग जा सकते

थे, किंतु वह भागनेवालों में से नहीं थे। वे वीर, साहसी क्रांतिकारी थे।'[9]

इस प्रकार भगतसिंह का व्यक्तित्व बहुआयामी था, इनमें महापुरुष के सभी गुण मौजूद थे, जो वर्तमान समय में भी नवयुवकों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध हो सकते हैं। उनकी ज्ञान-अर्जन की जिज्ञासा तथा विचारपूर्ण वृत्ति एवं राष्ट्रभक्ति जैसे गुण समाज को सदा ही दिशा दर्शक रहेंगे।

संदर्भ

1. भगतसिंह, चमनलाल, पृ॰ 19-20
2. भगतसिंह, चमनलाल, पृ॰ 67-68
3. भगतसिंह, चमनलाल, पृ॰ 20
4. शहीद भगतसिंह, समग्र वाङ्मय, सं॰ दत्ता देसाई, पृ॰ 16
5. शहीद भगत सिंह, समग्र वाङ्मय, सं. दत्ता देसाई, पृ॰ 188
6. भगत सिंह, चमनलाल पृ॰ 168
7. स्मरणचित्रो क्रांतिकारी शहिदांची, अनु॰ चित्रा बेड़ेकर पृ॰ 35
8. भगतसिंह, चमनलाल, पृ॰ 187
9. शहीद भगतसिंह, प्रा.व.न. अिंगळे पृ॰ 72

डॉ॰ बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद 431004
मो॰ 08554006708

स्वामी विवेकानंद : भारत का पुनरुत्थान

डॉ॰ रोहताश जमदग्नि
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
आर॰के॰एस॰डी॰ (पी॰जी॰) महाविद्यालय,
कैथल (हरियाणा)

भारत की महान विभूति पुण्यात्मा स्वामी विवेकानंद भारतभूमि पर ऐसे समय में अवतरित हुए, जबकि भारत की जनता अँग्रेजों की दासता से मुक्त होने के लिए जूझ रही थी और सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी। उन्होंने देश की पीड़ित जनता को अपनी ओजपूर्ण वाणी से प्रोत्साहन का मार्ग दिखाया, बल्कि विदेशों में भ्रमण करके, भारत को गौरवान्वित किया। शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर स्वामी विवेकानंद ने अपने जो उद्‌गार प्रकट किए, उसमें महान भारत के ऋषित्व, वीरता और दान-भक्ति का पूर्ण समावेश था'मेरा भारत वह ऋषि है, जो कई दिनों से भूखा रहने पर भी कठिनता से प्राप्त भोजन, दूसरे भूखे को दे सकता है। मेरा देश वह महावीर है, जो सीमाएँ नहीं, हृदय जीतता है। मेरा देश वह महादानी है, जो अपना भरपूर कोष दान करके भी मुस्कराता रहता है।'[1]

समय-समय पर भारत में अनेक ऐसे मनीषियों ने जन्म लिया है, जिन्होंने अपनी आस्था, निष्ठा और विद्वत्ता से सारे संसार को चमत्कृत किया। 'स्वामी विवेकानंद वर्तमान युग में इस परंपरा के प्रतिनिधि थे।'[2] स्वामी विवेकानंद वेद, उपनिषद, दर्शन-ज्ञान और तत्त्व के ज्ञानी थे, मगर रूढ़ियों के विरोधी थे। वे स्वस्थ परंपराओं के पोषक थे। वे हिंदूजाति को उसकी राष्ट्रीय भूमिका में सबल और सगौरव देखना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि इस देश में एक भी व्यक्ति नंगा, भूखा या तंगहाली में रहे। वे मनुष्य द्वारा मनुष्य की गुलामी के कट्‌टर विरोधी थे। वे अज्ञान, अशिक्षा, अकर्मण्यता के घोर विरोधी थे। 'वे व्यक्ति नहीं, संस्था थे, युगद्रष्टा और युगप्रवर्तक थे, वे ब्रह्मवेत्ता थे।'[3]

युगद्रष्टा स्वामी विवेकानंद का जीवन अगाध और विशाल समुद्र के सदृश था। उनका व्यक्तित्व दार्शनिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक चिंतन से प्रभावित था। उन्होंने धरती के प्राणियों में ईश्वर का साक्षात्कार किया। स्वामी विवेकानंद एक ऐसे बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, जिन्होंने संन्यास को केवल अपनी मुक्ति का साधन न बनाकर, स्वदेश के ही नहीं, वरन् संपूर्ण विश्व की मानव-जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का साधन बनाया। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों तथा बुराइयों को दूर करने का अथक प्रयास किया, साथ ही नारी-जाति के उत्थान को देश की उन्नति का आधार माना। विवेकानंद भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधारा के समन्वयवादी थे। उन्होंने विश्वबंधुत्व की नींव रखी, वे एक सच्चे देशभक्त थे। भारतीय इतिहास में उन्होंने स्वयं को ऐसे उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया कि संपूर्ण विश्व भारत को धर्मगुरु मानकर उसके

सामने नतमस्तक हो गया। 'विवेकानंद के ओजस्वी विचार जितने स्वाधीनता से पूर्व महत्त्वपूर्ण थे, उतने ही आधुनिक युग में भी महत्ता रखते हैं।'[4]

उन्हें अब महसूस होने लगा था कि केवल भाषणों व उपदेशों से भारत का पुनःउत्थान जैसा कार्य नहीं हो सकता। भाषण के क्षणिक आवेग में कोई भले ही आ जाए, पर महान कार्य करने के लिए संस्कार के हथौड़े से साधे हुए कुछ दृढ़हृदय युवक चाहिए। स्वामी विवेकानंद सबको इसी निर्माण-कार्य व इस संस्कार-कार्य में लगाना चाहते थे। विवेकानंद कहा करते थे'दो हजार वीर-हृदय, विश्वासी, चरित्रवान व बुद्धिमान युवक, तीस करोड़ रुपए होने पर मैं भारत को अपने पैरों पर खड़ा कर सकता हूँ।'[5] 'भारत का पुनःउत्थान होगा, पर जड़ की शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति द्वारा। वह उत्थान विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् शांति और प्रेम की ध्वजा सेसंन्यासियों के वेश मेंधन की शक्ति से नहीं, बल्कि भिक्षापात्र की शक्ति से संपादित होगा।'[6]

इतना ही नहीं कहा था स्वामी विवेकानंद ने, बल्कि अपनी कार्यप्रणाली की रूपरेखा का भी हवाला दिया था'यही मेरी कार्यप्रणाली हैहिंदुओं को यह दिखा देना कि उन्हें कुछ भी छोड़ना पड़ेगा, केवल उन्हें ऋषियों द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना होगा और सदियों की दासता के फलस्वरूप प्राप्त अपनी जड़ता को उखाड़ फेंकना होगा, भारत में वह धर्म है।'[7] भविष्य के भारत-निर्माण का पहला कार्य, वह पहला सोपान, भारत की यह धार्मिक एकता ही है। भारत में राष्ट्र का संगठन होगा।'[8] एक बार 'मद्रास टाइम्स' के प्रतिनिधि पत्रकार ने स्वामी विवेकानंद से साक्षात्कार करते हुए पूछ लिया थाः भारत के लिए आप क्या करना चाहते हैं? स्वामीजी ने उत्तर दिया था कि 'मेरी समझ में देश के जनसाधारण की अवहेलना करना ही हमारा महान् राष्ट्रीय पाप है, और यह हमारी अवनति का एक कारण है। जब तक भारत की साधारण जनता उत्तम रूप से शिक्षित नहीं हो जाती, जब तक उसे खाने-पीने को अच्छी तरह नहीं मिलता, जब तक उसकी अच्छी तरह देखभाल नहीं होती, तब तक कितना ही राजनीतिक आंदोलन क्यों न हो, उससे कुछ फल न होगा। यदि हम भारत का पुनःउत्थान चाहते हैं तो हमें अवश्य ही उनके लिए कार्य करना होगा। युवकों को धर्मप्रचारक रूप में शिक्षित करने के लिए मैं पहले दो केंद्रीय शिक्षालय अर्थात् मठ स्थापित करना चाहता हूँ। उनमें से एक तो मद्रास में होगा और दूसरा कलकत्ते में। मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कर्मियों का संग्रह करूँगा। वे सिंहविक्रम से देश की यथार्थ उन्नति-संबंधी सारी समस्या का समाधान करेंगे। वर्तमान काल में अनुष्ठेय आदर्श को मैंने एक निर्दिष्ट रूप में व्यक्त कर दिया है, और उसको कार्यान्वित करने के लिए मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। यदि मुझे इसमें सफलता न मिले, तो मेरे बाद मुझसे कोई श्रेष्ठ व्यक्ति भविष्य में जन्म ग्रहण कर उसे कार्य में परिणत करेगा। मैं उसके लिए जी-जान से प्रयत्न करके ही संतुष्ट रहूँगा। मेरी राय में वर्तमान भारत की समस्या के समाधान का एकमात्र उपाय यही है कि सर्वसाधारण को उनके अधिकार दे दिए जाएँ। संसार में भारत का धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। वे सर्वसाधारण को धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान करेंगे। वे एक केंद्र से दूसरे वृत्त का विस्तार करेंगे, और इस प्रकार हम धीरे-धीरे समग्र भारत में फैल जाएँगे। आत्मविश्वास लाना ही हमारा सबसे प्रधान कर्तव्य है, यहां तक कि भगवान में विश्वासी होने से पहले सबको अपने में विश्वास लाना होगा। विश्वास करना होगा कि आत्मा अविनाशी है, अनंत और सर्वशक्तिमान है। मेरा विश्वास है कि गुरु से साक्षात संपर्क रखते हुए, गुरुगृह में निवास करने से ही यथार्थ शिक्षा की प्राप्ति होती है। गुरु के साक्षात् संपर्क हुए बिना किसी प्रकार की शिक्षा नहीं हो

सकती। हमारे वर्तमान विश्वविद्यालयों की ही बात लीजिए। उनका आरंभ हुए पचास वर्ष हो गए, पर फल क्या मिला है? वे एक भी मौलिक-भाव-संपन्न व्यक्ति उत्पन्न नहीं कर सके। वे परीक्षा लेने वाली संस्थाएं मात्र हैं। साधारण जनता की जागृति और उसके कल्याण के लिए स्वार्थत्याग की मनोवृत्ति का हममें थोड़ा भी विकास नहीं हुआ है।'[9]

स्वामी विवेकानंद ने तीन भविष्यवाणियाँ की थीं एक, भारत अगले पचास वर्षों में आज़ाद होगा। दूसरा, पहली श्रमिक क्रांति सोवियत संघ में होगी। तीसरा, भारत एक बार फिर विश्वगुरु बनेगा। प्रथम दो भविष्यवाणी सिद्ध हो चुकी हैं, भारत स्वाधीन हो गया और जबकि श्रमिकों के मसीहा कार्ल मार्क्स ने 'व्यापार संगठन आंदोलन' की मजबूती के आधार पर श्रमिक क्रांति जर्मनी में बताई थी, लेकिन स्वामी विवेकानंद इतिहास के इतने अच्छे अध्येता थे कि उन्होंने ऋषि-प्रधान सोवियत संघ में श्रमिक क्रांति की कल्पना की थी, जो सत्य साबित हुई। परिणामतः उनकी तीसरी भविष्यवाणी अब तक पूरी नहीं हुई है, क्योंकि हमने उन द्वारा बताए गए रास्तों पर चलना अच्छा नहीं समझा। उन्होंने भारत के पुनःउत्थान के कुछ उपाय बताए थे। जो निम्नलिखित हैं

1. **शक्ति की स्रोत जनता**

जीवन में व्यक्ति और समाज के हितों में जब टकराव पैदा होता है, तब हमें मानना चाहिए कि स्वार्थपरता ही निःस्वार्थ का पहला शिक्षक है। स्वदेश के स्वार्थ में अपना स्वार्थ होना चाहिए। नेतृत्व करने वालों का आधार धन, बल और विद्या हो, परंतु उनकी शक्ति का आधार जनता ही हैं, जो शासक जनता से जितना दूर रहेगा, वह उतना ही शक्तिहीन होता चला जाएगा।

2. **त्याग और सेवा**

महात्मा बुद्ध ने त्याग किया और जनकल्याण के नए-नए रास्ते दिखाए। जनमानस की सेवा की, जिसके कारण भारत छः शताब्दियों में समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया। त्याग और सेवा भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं। इन्हें अपनाओ और भारत फिर अपना स्थान पा लेगा।

3. **शिक्षा का आधार आत्मनिर्भरता**

मैकाले शिक्षा का आवरण भारत में भारतीयों को सिर्फ मुनीम बना रहा है, यह शिक्षा अँग्रेज़ों ने अपनी सुविधा हेतु प्रचलित की है। यदि भारतीयों को आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा का आधार ऐसा हो, जो व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाए अर्थात् शिक्षा ऐसी हो जिससे आम व्यक्ति को रोजी-रोटी के लाले न पड़ें, वह अपनी पढ़ाई ख़त्म करके परिवार के पालन-पोषण की चिंता से मुक्त हो जाए, तब फिर वह स्वदेश के भविष्य के बारे में सही सोच पायेगा।

४. नारी-सम्मान

आज दुनिया भौतिकवादी युग की ओर अग्रसर है। वर्तमान में नारी दशा शोचनीय एवं विचारणीय है। जब तक आधी दुनिया जाग्रत नहीं होगी, तब तक भारत का कल्याण कैसे सोचा जा सकता है। बड़े-बड़े देशों की सफलता का केंद्र-बिंदु नारी ही रही है। जिन देशों में नारी का सम्मान नहीं, वे देश कभी बड़े नहीं बन पाएँगे।

5. **राष्ट्रीय महापुरुषों की पूजा**

जो लोग उन सब सनातन तत्त्वों की अनुभूति कर गए हैं, जैसे भारत में श्रीराम, श्रीकृष्ण

और श्रीरामकृष्ण। इनको आदर्श-रूप में पूजना शुरू करो। स्वार्थ गंधरहित शुद्ध बुद्धि की सहायता से महान उद्यम के साथ कमर कसकर सब-कुछ ठीक-ठाक जानने के प्रयास में लग जाओ।

6. शिक्षा बुनियादी आवश्यकता

स्वामीजी कहते थे कि देश को पहले शिक्षित करो, अतः समाजसुधार के लिए भी पहला कर्तव्य हैलोगों को शिक्षित करना। भारत के सर्वनाश का मुख्य कारण यही है कि देश की सारी विद्या-बुद्धि, राज-शासन और दंभ के बल पर मुट्ठी-भर लोगों के एकाधिकार में रखी गयी। यदि हमें फिर से उन्नति करनी है, तो हमको उसी मार्ग पर चलना होगा, अर्थात् जनता में विद्या का प्रसार होना चाहिए।

७. रोटी बनाम धर्म

यह बात सही है 'भूखे पेट तो भजन भी नहीं होता'। विवेकानंद कहा करते थे कि पहले रोटी और तब धर्म। उन्होंने कहा था कि मुझे विश्वास नहीं है कि जो भगवान मुझे पृथ्वी पर रोटी नहीं दे सकता, वह स्वर्ग में मुझे अनंत सुख देगा। वर्तमान हिंदू-समाज केवल उन्नत आध्यात्मिक लोगों के लिए ही गठित है, बाकी सबको यह निर्दयता से पीस डालता है। पुरोहित-प्रपंच की बुराइयों को दूर करना होगा, गरीबों को भोजन देना होगा, भारत को उठाना होगा।

8. विदेशों में आवागमन

स्वामीजी ने कहा था कि विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु, प्रेम ही जीवन है और द्वेष ही मृत्यु। अतः हमें पृथ्वी के सभी देशों से मिलना-जुलना पड़ेगा। आज जरूरत हैविदेशी नियंत्रण को हटाकर हमारे विविध शास्त्रों, विद्याओं का अध्ययन हो और साथ-साथ अँग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान भी सीखा जाए। हमें उद्योग-धंधों की उन्नति के लिए यांत्रिक-शिक्षा भी प्राप्त करनी होगी, जिससे देश युवक नौकरी ढूँढने के बजाय अपनी आजीविका के लिए समुचित धनोपार्जन भी कर सकें।

9. नष्ट मत करो

मूर्तिभंजक सुधारक लोग संसार का कोई उपकार नहीं कर सकते, किसी वस्तु को मत तोड़ो, हो सके तो जोड़ो। एक शिशु स्वयं शिक्षा प्राप्त करता है। उसके मार्ग की बाधाएँ दूर करना, हमारा कर्तव्य है।

10. भारतीय श्रमजीवी

विवेकानंद ने श्रमजीवियों से कहा था कि तुम्हारे पुरखे दो दर्शन लिख गए हैं, दस काव्य तैयार कर गए हैं, दस मंदिर खड़े कर गए हैं और तुम्हारी बुलंद आवाज से आकाश फट रहा है और रुधिर-स्राव से मनुष्य-जाति की यह सारी उन्नति हुई है, उनके गुणों का बखान भला कौन कर सकता है? तुम्हारे जैसे अत्यंत छोटे से कार्य में भी, सबको अज्ञात भाव से जो वैसी ही निःस्वार्थता एवं कर्तव्यपराणता दिखाते हैं, वे ही धन्य हैं।

11. जनोद्धार

स्वामीजी ने कहा था कि 'धर्म को हानि पहुँचाए बिना जनता की उन्नति' ही सार्थक है। हमारा सबसे बड़ा पाप हैजनता को अनदेखा करना। हम चाहे जितनी भी राजनीति करें, उससे तब तक कोई लाभ नहीं होगा, जब तक भारत की जनता एक बार फिर सुशिक्षित, सुपोषित तथा सुपालित नहीं

होती। यदि हम भारत को पुनर्जीवित करना चाहते हैं तो हमें उनके लिए काम करना होगा।

12. **अपना इतिहास पहचानो**

अतीत से भविष्य बनता है। हमारे पूर्वज महान थे। हमें समझना चाहिए हम किन उपदानों से बने हैं? कौनसा ख़ून हमारी नसों में बह रहा है? विश्वास और अतीत गौरव-ज्ञान से हम निश्चय ही पहले से श्रेष्ठ भारत बनाएँगे।

13. **धर्म पर चोट नहीं**

स्वामीजी ने कहा था कि मैं तुम्हें सदा याद दिलाना चाहता हूँ कि यहाँ ये सारे विषय गौण हैं, मुख्य विषय धर्म ही है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, उसके बाद कुछ और है। जब तक हिंदूजाति अपने पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकार को नहीं भूलेगी, तब तक संसार की कोई शक्ति उसका नाश नहीं कर सकती, देश चाहे निर्धन हो, यदि ख़ून शुद्ध है तो सब-कुछ ठीक हो जाएगा।

14. **धर्म का दोष नहीं**

पिछले कुछ वर्षों से विचारशील लोग समाज की दुर्दशा का कारण हिंदूधर्म को मान रहे हैं। धर्म ही दिखाता है कि संसार सारे प्राणी आत्मा के विविध रूप हैं। हिंदूधर्म के महान उपदेशों का अनुसरण करके समाज की यह दशा दूर करनी होगी।

15. **निःस्वार्थ देशभक्तों का जत्था हो**

कहा जाता है कि जापान में लड़कियाँ अपनी गुड़ियों से गहरा प्यार करती है, इस आशा से कि वे गुड़िया जीवित हो उठेंगी। विवेकानंद ने भी कहा था कि यदि हम भारतवासियों से हृदयमयी प्यार करें तो भारत पुनः जाग्रत हो जाएगा।

16. **भारतीय परंपराओं का ढाँचा**

आप सभी जानते हैं कि जब श्रीराम ने श्रीलंका जाने के लिए राम सेतु बनाना शुरू किया तब एक गिलहरी ने थोड़ा-सा बालू लाकर अपना योगदान दिया था। यह अद्‌भुत राष्ट्र-जीवन-यंत्र युग-युग से कार्य करता आया है। हमारे पीछे हमारे अपने परंपरागत संस्कार और हजारों वर्षों के कर्म हैं। अतः हमें स्वभावतः अपने संस्कारों के अनुसार चलना होगा।

17. **विश्वास और श्रद्धा**

विवेकानंद ने कहा था कि मेरे गुरुदेव कहते थे कि जो अपने को दुर्बल सोचता है, वह दुर्बल ही हो जाता है और यह बिल्कुल सही है। इस श्रद्धा को तुम्हें पाना ही होगा। पश्चिमी जातियों द्वारा अर्जित की हुई, जो भौतिक शक्ति तुम देख रहे हो, वह इस श्रद्धा का ही फल है। वे अपने दैहिक बल में विश्वासी है और यदि तुम अपनी आत्मा पर विश्वास करो, तो वह कितना अधिक कारगर होगा।

18. **अग्रदूतों से आह्‌वान**

स्वामीजी कहा करते थे कि तेजस्वी युवकों का एक दल गठित करो और उसे अपनी उत्साह की अग्नि से प्रज्वलित कर दो। क्रमशः इसकी परिधि का विस्तार करते हुए इस संघ को बढ़ाते रहो। मेरा विश्वास युवा पीढ़ी में है, मेरे कार्यकर्ता उन्हीं में से आएँगे और वे शेरों की भाँति सभी समस्याओं के हल निकलेंगे।

19. **श्रमिक जागृति**

ब्राह्मण राज में वंश के आधार पर भयंकर पृथकता रहती है। क्षत्रिय शासन क्रूर और अन्यायी होता है। वैश्य शासन में कुचलने और ख़ून चूसने की मौन शक्ति बड़ी भीषण होती है। अब शुद्र शासन का युग आ गया है। वे अवश्य ही राज करेंगे और उन्हें कोई नहीं रोक सकता। इनके राज में भौतिक सुखों का बराबर वितरण होगा और संस्कृति का निम्न स्तर आ जाएगा। एक ऐसा समय आएगा, जब शुद्रत्व सहित शूद्रों का प्राबल्य होगा।

20. **तीव्र कर्मठता**

स्वामी विवेकानंद ने प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक देश को महान बनाने के लिए तीन चीजें आवश्यक बताई हैंएक, सदाचार की शक्ति में विश्वास। दूसरा, ईर्ष्या और संदेह का परित्याग। तीसरा, जो सत् बनने के लिए यत्नवान हों, उनकी सहायता करो।

यह बात एकदम सत्य है, जो स्वामी विवेकानंद जी ने 19 नवंबर 1894 में न्यूयार्क से भारतीयों से कही थी'साहसी बच्चो, आगे बढ़ो, चाहे धन आए या न आए, आदमी मिले या न मिले, तुम्हारे पास प्रेम है। क्या तुम्हें ईश्वर पर भरोसा है? बस आगे बढ़ो, तुम्हें कोई नहीं रोक सकेगा। सतर्क रहो, जो कुछ असत्य है, उसे पास न फटकने दो, सत्य पर दृढ़ रहो, तभी हम सफल होंगे। भविष्य की सदी तुम्हारी ओर देख रही है, भारत का भविष्य तुम पर निर्भर है। काम करते रहो।'[10]

संदर्भ

1. एम॰पी॰ कमल, स्वामी विवेकानंद, दिल्ली : राजा पाकेट बुक्स, 2009, पृ॰ 98
2. डॉ॰ भगवानसिंह राणा, भारत के अमर मनीषी : स्वामी विवेकानंद, डायमंड बुक्स, दिल्ली : 2009, पृ॰146
3. आबिद रिजवी, युग पुरुष : स्वामी विवेकानंद, आफसैट प्रिंटर्स, मेरठ, पृ॰ 3
4. राजू 'राज', स्वामी विवेकानंद, विपुल प्रिंटर्स, मेरठ, पृ॰ 194
5. शांता कुमार, विश्व-विजेता : विवेकानंद, भारतीय प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2004, पृ॰ 83
6. स्वामी विवेकानंद, नया भारत गढ़ा, नागपुर : रामकृष्ण मठ, 2005, पृ॰ 43
7. स्वामी विवेकानंद, हे भारत! उठो! जागो!, रामकृष्ण मठ, 1997, पृ॰ 21
8. स्वामी विवेकानंद, भारत और उसकी समस्याएँ, रामकृष्ण मठ, 2002, पृ॰ 33-34
9. मद्रास टाइम्स, फरवरी-1897
10. दैनिक भास्कर-समूह प्रस्तुति, अहा! जिंदगी, अगस्त-2013

सहायक प्रोफेसर, राजनीतिविज्ञान विभाग
आर॰के॰एस॰डी॰ (पीजी) महाविद्यालय
कैथल (हरियाणा)
मो॰ 09813450923, 09911817060

मानवतावादी लेखिकाकैथरीन मैंसफील्ड

प्रा॰ माधुरी एस॰ मोगल
हिंदी विभाग
के॰टी॰एच॰एम॰ महाविद्यालय
गंगापुर रोड, नाशिक

साहित्यकार क्यों लिखता है? यदि इस सवाल का जवाब ढूँढें, तो पता चलता है कि हर व्यक्ति का अपना दृष्टिकोण, अपना परिवेश, परिस्थितियाँ और व्यक्तिगत सुख-दुःख होते हैं, जिन्हें वह बाँटना चाहता है, किंतु वह उसका दिखावा नहीं करना चाहता है। किसी साहित्यकार को लेखन के प्रति कौन प्रेरित करता है, इसके भी अलग-अलग कारण हो सकते हैं। देश और दुनिया के तमाम साहित्यकारों के बारे में देखा जाए तो दिखाई देता है कि हर साहित्यकार को किसी-न-किसी से प्रेरणा मिली है। ऐसी एक विश्वप्रसिद्ध लेखिका हैं, कैथरीन मैंसफील्ड।

कैथरीन मैंसफील्ड का लेखन प्रथम विश्वयुद्ध के आस-पास का रहा है। उस वातावरण एवं लेखिका की सोच को समझना, उनकी कहानियों द्वारा संभव है। कैथरीन न्यूजीलैंड के वेलिंग्टन में जन्मी एक छोटी प्यारी-सी बच्ची आगे चलकर विश्वसाहित्य में चमकता सितारा बन गई। वह ऐसे देश में जन्मी, जिसके बारे में दुनिया यह मानती थी कि वह उगते सूरज की पहली किरण देखने वाला देश है। कैथरीन का लेखन न सिर्फ़ साहित्य को बढ़ाता है, बल्कि वह मानव-सभ्यता की विरासत को समृद्ध करता है।

14 अक्टूबर 1988 को जन्मी कैथरीन का परिवार उच्च-मध्यवर्गीय एवं सुसंस्कृत था। बचपन से ही अध्ययन में गहन रुचि होने के कारण वह तरह-तरह की किताबें पढ़ती रही थीं। न्यूजीलैंड और लंदन के प्रतिष्ठित स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की थी। लेखिका ने 19 वर्ष की अवस्था में ही साहित्य को अपना कैरियर तय किया और वह लंदन चली आईं। वहाँ उन्होंने साहित्य का गंभीर अध्ययन किया।

उम्र के 21 वें वर्ष में उन्हें जार्ज बाडेन से प्रेम हो गया और 1909 में उसने जार्ज बाडेन के साथ विवाह किया। प्रारंभिक दौर का उनका लेखन ऑस्ट्रेलियाई पत्रिका नेटिव कंपैनियन में छपा करता था। पति के साथ मिलकर उसने बहुत-सा लेखन किया, किंतु संवेदनशीलता, बौद्धिकता और पारिवारिक क्रूरता का ताल-मेल नहीं बिठा सकीं, परिवार में तनाव बढ़ता चला गया और विवाह-संबंध टूट गया। विवाह-विच्छेद के बाद भी लेखन उनकी ज़रूरत थी। 1911 में उनका पहला कहानी-संग्रह 'इन ए जर्मन पेंशन' प्रकाशित हुआ। इसी दौरान उनकी मुलाकात प्रख्यात आलोचक और निबंधकार

मिड्लटन मरी से हुई। 1918 में उनसे दूसरी शादी की। मरी ने कैथरीन की बहुत-सी कहानियाँ 'रिदम' और 'द ब्लु रिव्यु' में छपी।

कहानी-संग्रह इन ए जर्मन पेंशन की कहानियाँ लेखिका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि की पूर्वपीठिका है। ऐसा उनके कहानी-संग्रह का अनुवाद करने वाली मीनू मंजरी का मानना है। 'ब्लिस' 1920 में प्रकाशित कहानी-संग्रह है, जिसमें लेखिका की गहरी भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। सन 1922 का 'द गार्डन पार्टी' कहानी संग्रह में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं। 'द डव्स नेस्ट' अंतिम कहानी-संग्रह है। उसकी कहानियाँ क्लासिक मानी जाती है। अनुवादक मीनू मंजरी ने उनकी कहानियों के संग्रह से जो कहानी-संग्रह कैथरीन की मृत्यु के बाद छापा 'समथिंग चाइल्डिश' को समझते हुए माना कि कैथरीन की कहानियों के पात्र एक छोटी बच्ची (बच्ची जो थकी थी), युवा पत्नी (एक कप चाय), बुढ़ा बाप, एक कलाकार, नौकरानी, अधेड़ होती अभिनेत्री, इन सभी की सोच को लेखिका ने स्वभाविक रूप से प्रस्तुत किया है। कैथरीन के कहानियों के पात्र सीधे-सादे, आस-पास की ज़िंदगी के सहज प्रवाह में जीने वाले पात्र हैं। उनके जीवन की घटनाओं को विस्तृत रूप से, सूक्ष्म विवरण और सौंदर्यवादी दृष्टि से किसी कवयित्री के जैसे भावों को अभिव्यक्ति मिली है। कहानियों के पात्र हैं, जैसेछोटी बच्ची, युवा स्त्री-पुरुष, बूढ़े, उच्चवर्ग, मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग के पात्र भी हैं, जो साधारणतः सभी क्षेत्रों में दिखाई देते हैं। कई बार पात्रों के नज़दीक पहुँचाते हैं। कहानियों में स्त्रियों के मनोभावों को लेकर सत्य प्रकट करती है, 'जैसे सभी औरतें बहने हैं'। यहाँ फिर रोज़मेरी को लगता है कि किसी ग़रीब लड़की के जीवन की परी-माँ बन सकती है। पुरुष पात्रों को वैसा ही प्रस्तुत किया, जैसेउनकी मानसिकता है। यदि पात्र पति है, तो उसे पत्नी के निर्णय को अस्वीकार करना या फिर कहानी 'पापा' में केजिया को पिता का पीटना। यह मानसिकता पुरुष वर्चस्ववाद को दिखाती है।

कैथरीन की कहानियाँ न सिर्फ़ मार्क्सवादी और न नारीवादी बल्कि वह मानवतावादी अधिक है। जीवन और यथार्थ को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है। लेखिका पर चेख़व का गहरा वैचारिक बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। चेखव ने लघु मनोवैज्ञानिक कहानियों का जो संसार रचा है, उसे कैथरीन ने विस्तारित किया है। जो ठोस, परिपक्व, सुदृढ़ है। कैथरीन की कहानियों की कथावस्तु में हमें कई बार मार्क्स का प्रभाव दिखता है, पर उससे बढ़कर पाठकों को मानवता की ओर लेकर चलती कहानियाँ हैं। कहानी 'गुडिया घर' में दो वर्ग स्पष्ट दिखाए हैं, जिसमें जी रही ग़रीब घर की दो छोटी बच्चियों के साथ किया गया व्यवहार न सिर्फ़ मार्क्स के विचारों को जगाता है, बल्कि गहरी मानवीय संवेदना जगाता है। बच्चों के सूक्ष्म मनोविज्ञान के साथ उनके बच्चियों के साथ हुआ व्यवहार संपूर्ण बाल सूक्ष्म मनोभावों के परिणामों को उद्घाटित करता है। इस प्रकार की कैथरीन की कहानियों से नई जीवनदृष्टि जाग्रत होती है। विश्वसाहित्य में ये कहानियाँ पूरी मानव-जाति के लिए समझदारी विस्तृत करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका दे सकती हैं।

आज के विश्वमानव में जो चेतना लुप्त हो रही है और बौद्धिकता को अग्रसर कर ज्ञान के महत्त्व को बढ़ावा देकर विवेक ठुकराया जा रहा है, वहाँ कैथरीन की कहानियाँ प्रासंगिक हैं। कैथरीन की कहानियाँ टिपिकल मनोवैज्ञानिक नहीं है, न उनमें नाटकीयता है। वह सचेतन कहानियाँ हैं। जैसे, कहानी 'रोज़मेरी' की नायिका बाह्य सौंदर्य को महत्त्व देती है, किंतु अंदर से वह कैसे असहायता-सी

असुरक्षा का अनुभव करती है। यह लेखिका ने रोज़मेरी का वाक्य 'क्या मैं सुंदर हूँ'? के माध्यम से बहुसंख्यक ग़ुलाम पत्नियों का असुरक्षा बोध प्रस्तुत किया है। दुनिया में आज देशों की स्त्रियाँ स्वावलंबी बनी हैं, किंतु क्या वह पुरुष-सत्ता के घरेलू वातावरण में स्वतंत्र हैं। यह इन कहानियों में प्रस्तुत हुआ है। 'संगीत कक्षा' की मिस मिडोज का प्रेमी उसे चिट्ठी लिखता है कि 'मुझे बार-बार लगता है कि हमारी शादी एक ग़लती होगी, ऐसा नहीं है कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करता, मैं तुम्हें उतना प्यार करता हूँ, जितना मैं किसी औरत को कर सकता हूँ, लेकिन सच्चाई यह है कि मैं शादी-वादी करने लायक आदमी नहीं हूँ। एक जगह टिककर बैठने का विचार मुझे कोफत..।' यह पढ़कर मिडोज जिन मानसिक स्थितियों से गुज़रती हैं, वहाँ लगता है कि स्त्री चाहे जिस प्रांत की क्षेत्र की हो वह भावात्मक रूप से एक ही है।

कहानियों की कथावस्तु साधारण होते हुए भी उनका तथ्य गहरा है। कथावस्तु अंतर्जगत और बाह्य जगत को उनके सामंती परिवारों, छद्म मूल्यों, दोहरी भावनाओं, पितृसत्ता और झूठ पर टिके संबंधों को तीखे यर्थार्थ के साथ उद्घाटित करती है। बेशक यहाँ लेखिका के शब्दों और संवेदनाओं को अनुवादित करना कठिन कार्य है, किंतु मीनू मंजरी ने बहुत अच्छा प्रयास किया है। उसमें वह कालानुरूप परिस्थितियों में ढलकर शब्दों एवं रचनाओं को वैसा ही अनुदित करना कठिन कर्म है। कई बार कई शब्दों को रूपांतरित करते वक़्त कई कठिनाइयाँ आई हैं, किंतु मीनू मंजरी जी यह कार्य संपन्न कर हमें कैथरीन की कहानियों के परिवेश में ले गई है।

कैथरीन की कहानियाँ मध्यवर्गीय भावनाओं और पारिवारिक संबंधों के स्वाथी समीकरणों का सच हैं। एक सामंती पारिवारिक संरचना में सारी उम्र शासक की स्थिति में रहा पितृसत्ता से लाभान्वित पुरुष कैसे बुढ़ापे में अकेला पढ़ता है, उसे अभिव्यक्त किया कहानी 'आदर्श परिवार' द्वारा। आदर्श परिवार का वास्तव सचमुच कितना आदर्श का ढोंग लेकर चलता है, उसकी सच्चाई का चित्र उद्घाटित हुआ कहानी में। जहाँ खुद का बेटा, बेटियाँ यहाँ तक पत्नी भी साथ नहीं निभाते हैं, उनकी वास्तविक जिंदगी अलग-अलग पथ पर है। यह यथार्थ दिखाया है। कहानियों द्वारा कई परिवारों की, युग की, समाज की, झूठी शान का पर्दाफ़ाश हुआ, इन त्रासद स्थितियों को समाज झेल रहा है। घर का प्रमुख जब सबकी ज़रूरतें पूरी करने दौड़ता है, तब सभी मज़ें लेते हैं, किंतु जब वह थक जाता है। तब सभी अपनी-अपनी राह लेते हैं, किंतु कोई उस व्यक्ति का दर्द महसूस नहीं करना चाहता। 'आदर्श परिवार' की कहानी आज भी उतनी प्रासंगिक है।

कैथरीन की कहानियाँ विवाह संस्था, परिवार, दांपत्य जीवन के संबंधों की यथार्थता दिखाती हैं और बुनियादी सवालों के कटघरे में खड़ा कर देती हैं। कई घरों में प्रेम, परिवार की ज़िम्मेदारियों के बीच भावात्मक संबंधों की त्रासदी को झेल रहे पात्रों की विवशता दर्शाती हैं। कई बार यह प्रेमभाव और जीवन में संघर्ष दिखाई देता है। कई स्त्रियों की इस तरह की खींचतान भरे जीवन में भी प्रेम के झरने ढूँढती कहानियाँ हैं।

कैथरीन की कहानियाँ बहुत बड़े तत्त्वों को नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाएँ जगाने का काम करती हैं। सहज ढंग से कहानियों की अभिव्यक्ति है, यही सहजता उनकी शैली बनी है, जो अनूठी है। कई बार साधारण से साधारण कही जाने वाली बात से ही तो महत्त्वपूर्ण तत्त्व निकल आते हैं।

हमारे इर्द-गिर्द घट रही घटनाओं को लेकर कैथरीन की कहानियाँ समाज की वर्गीय संरचना और व्यक्तियों के वर्गचरित्र को विश्लेषित करती हैं। 'गुड़िया घर' की केल्वी की बच्चियों को उच्चवर्ग की बरनेल की लड़कियों ने गुड़िया का घर दिखाने से मना किया, यह घटना कई सवाल खड़े करती है। उच्चवर्ग एवं मध्यवर्ग की परदे के पीछे की सच्चाइयों को और सुसंस्कृत छवियों को बेनकाम करती कैथरीन बेहद यथार्थवादी हैं। ग़लत पर टीका जैसा ढल जाता है, वैसा ही कहानियों का सच सामने लाने का काम बिना किसी योजना के वह करती हैं।

बेहद संवेदनशील कहानियों में कई बार मानव के छोटे-छोटे सुख, दुःख के पल कैसे उस पर हावी होते हैं, यह 'सुख' कहानी की नायिका के परदे के पीछे का दुःख है। जो झूठे सुख का परदा लिए था, उसे तोड़ डालती है। अभावग्रस्त लोग किन जीवन परिस्थितियों को झेलने का नाटक रचते हैं, यह कहानी 'चित्र' प्रस्तुत होता है। कहानी के पात्र की संघर्षरत जीवन-पद्धति को लेखिका ने गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है।

कैथरीन की कहानियाँ जीवन-दृष्टिकोण को संपन्न बना देती हैं और संवेदनशीलता जाग्रत करती हैं, जो आज की जरूरत है। कई बार हम घटनाओं को देखते हैं, संवेदनशील बनते हैं, किंतु आगे बढ़कर मानवता नहीं दिखाते ऐसे में कैथरीन के पात्रों जैसी घुटन महसूस कर हम जी ले लेते हैं। किंतु आगे चलना ही है, यह कैथरीन का एक दर्शन है। वह कोरी भावुकता नहीं चाहती, न ही बौद्धिक यथार्थवाद चाहती हैं। वह जीवन को समझने-सँवारने और मानवीय मूल्यों को बढ़ाने में मार्गदर्शन करती है। अनुवादक लेखिका मीनू मंजरी ने कैथरीन की कहानियों का अनुवाद करते हुए यह माना कि उनकी कहानियों का अनुवाद करना बड़ा 'टची' काम है, क्योंकि भावों की तीव्रता ही उनका प्राण है। यह तीव्रता लाना कोई बाज़ार में मिलने वाली चीज़ नहीं है। लेखिका के मन के कैनवास पर उतरना पड़ता है, वैसी ही तीव्रता और नजाकत लानी पड़ती है। इसमें अनुवादक मंजरी जी का भरसक प्रयास सराहनीय है। उन्होंने कैथरीन के जीवन और साहित्य से परिचित कराके विदेशी संस्कृति, सभ्यता जीवन संघर्ष और वहाँ की संवेदनशीलता से हिंदी पाठकों को रूबरू कराया है। कैथरीन जैसे साहित्यकारों द्वारा हमें न्यायप्रियता, सत्यता, मानवता, क्षमाशीलता आदि गुणों को बढ़ावा देने में प्रेरणा मिलती है।

संदर्भ

1. कैथरीन मैंसफील्डः 'एक संसार मन के पार'अनुवादक मीनू मंजरी

हिंदी विभाग
के॰टी॰एच॰एम॰ महाविद्यालय
गंगापुर रोड, नाशिक–2
मो॰ 09822167202

भारतीय भाषाओं की चर्चित कहानियों में सामाजिक सरोकार

डॉ. रूबी जुत्शी

डॉ॰ गुलाबराय के अनुसार : 'साहित्य में जो शक्ति छिपी है वह तोप, तलवार और बम के गोले में भी नहीं पाई जाती है।' (उपन्यासकार राजेंद्र यादव : समाजशास्त्रीय अध्ययन) पृ॰ 16, 17 डॉ॰ अजमेरसिंह काजल)

विभिन्न धर्म के लोगों, वर्ग एवं जातियों के समूह को समाज नाम दिया गया है। साहित्यकार इसी समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग होने के नाते समाज के आचार-विचारों का पालन ही नहीं करता, बल्कि उन्से विभिन्न समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते भी सामान्यजन की तुलना में वह अधिक भावक एवं संवेदनशील होता है। वह समाज के सुख-दुख को विहंगम दृष्टि से देखकर लेखनीबद्ध करता है, जिससे उसका लेखन समाजगत हो जाता है, क्योंकि हर कोई रचनाकार अपनी लेखनी की आधारभूमि समाज से ही लेता है और समाज को ही अर्पित भी करता है।

भारत कृषि-प्रधान देश है, किंतु आज के युग में ज़मीदार अपनी ज़मीदारी से विलग हो रहे हैं, कारण सर्वशिक्षा अभियान है, क्योंकि इस अभियान से उस बालक तक शिक्षा पहुँची जिसके पास पहने के लिए कपड़े नहीं हैं। दूसरा कारण यह भी है कि एकल परिवार का रिवाज तीव्र गति से बढ़ रहा है। कृषक ज़मीन को मकानों के लिए बेच रहे हैं, जिससे भारतवर्ष में उपजाऊ भूमि लुप्त हो रही है। इस बदलते सामाजिक स्वरूप एवं बदलती जीवन-शैली को जम्मू की प्रसिद्ध डोगरी लेखिका पद्मा सचदेव ने अपने कथासाहित्य में यथासंभव स्थान दिया है। 'पेंशन' कहानी के आरंभ में इस दुख को व्यक्त करते हुए वह कहती हैं—'ज़मीदारी खत्म हुए बरसों हो गए हैं, पर ऊँची हवेली का हाथी दरवाज़ा भव्यता का प्रतीक नहीं, विपन्नता की निशानी है।' (पेंशन, पृ॰ 24)

सदियों से चली आ रही सामाजिक समस्या 'दहेज़ प्रथा' समाज के लिए ऐसा अभिशाप है, जिस पर समाज का एक-एक प्राणी अपनी नाराज़गी ही व्यक्त नहीं करता बल्कि इसके प्रति विद्रोह भी करना चाहता है, किंतु दहेज़ देने वाले भी 'हम ही' और दहेज़ लेने वाले भी 'हम ही हैं। कारण यह है कि इस घोर समस्या का समाधान न बड़े-बड़े समाज-सुधारक कर पाए और न ही कोई नियम-अधिनियम इसको रोक सका, क्योंकि समाज का एक-एक अंश इसको किसी न किसी रूप में स्वीकारता है। इस समस्या को व्यंग्य किए है, किंतु यह समस्या बढ़ती

ही जा रही है, समाप्त होने का नाम ही नहीं लेती है, क्योंकि परिस्थितियाँ कहीं-कहीं पर कन्यापक्ष को दहेज़ देने के लिए विवश भी करती हैं या स्वयं ही दहेज़ देने के इच्छुक होते हैं, क्योंकि लड़की की शारीरिक अपूर्णता 'छाटा-सा कद, काला चेहरा और पीठ पर बड़ा सा कूबड़' (पृ॰ 25, पेंशन : पद्मा सचदेव)

बेटी की अपूर्णता माँ-बाप के लिए गहरा घाव होती है, जिसको वह दहेज़ देकर पूर्ण करता है और दोषमुक्त होकर समाज में अपनी प्रतिष्ठा बरकरार रखता है–'पिता ने उसका हाथ उनके हाथ में देकर कन्यादान कर दिया था। भार हल्का हो गया था। विदाई के वक्त हाथी दरवाज़े से उसकी पालकी उठाए जब कहार निकले थे तो ससुर ने पहले मुट्ठी मोहरों की भरकर डोली पर से न्योछावर की थी। दूसरी मुट्ठी उसके पिता ने पकड़ ली थी। फिर दुअन्नियाँ रुपयों की बौछार के मार बार-बार पालकी रुकती थी।' (पृ॰ 26, पेंशन, पद्मा सचदेव)

पीढ़ियों का संघर्ष केवल मनुष्य-जाति का ही नहीं है, बल्कि मान्यताओं एवं मूल्यों का है। पुरानी पीढ़ी आदर्शों को लेकर चलती हैं, किंतु नई पीढ़ी यथार्थ में जी रही है। जहाँ पुरानी पीढ़ी नैतिकता को पसंद करती हैं, वहीं नई पीढ़ी निजी आकांक्षा एवं स्वतंत्रता को लेकर अपना जीवन व्यतीत करती है। वर्तमान पीढ़ी ज़िंदगी के अहम निर्णय में भी माँ-बाप का हस्तक्षेप आवश्यक नहीं समझती है–'आजकल के लड़के। अपनी ही बात पर अड़े रहते हैं। चार-छः महीने नहीं झक-झक होती रही। आखिर हमें मानना पड़ा।' (पृ॰ 31 मराठी कहानी, जीत या हार, डॉ॰ सिंधू भिंगारकर सरिता)

कहीं-कहीं पर पुरानी पीढ़ी आज भी बेटियों की शिक्षा के विरुद्ध है। कई लोगों का मानना है कि पढ़ाई-लिखाई पर जितना खर्चा होगा तो शादी पर खर्चा कहाँ से लाएँ, एक उदाहरण प्रस्तुत है–'लड़कियों की आज़ादी और इतनी पढ़ाई-लिखाई रमा की माँ और लाला को बिल्कुल नहीं भाती थी।' 'इतना पैसा पढ़ाई में खर्च करती हो बेवे, स्कूल की फीस, ड्रेस, खेलकूद का सामान, बचपन में ही लड़कियों पर इतना खर्च कर रही है तो शादियाँ कहाँ से करेगी?' (पृ॰ 38, 39, किस्मत का खेल : मारवाड़ी कहानी : प्रेम जैन)

बाँझपन पर किसी भी संसारिक प्राणी का अधिकार नहीं। बाँझ महिला भी हो सकती है और पुरुष भी, यह कुदरत का दिया हुआ शाप है। घूस देकर भी हम इस शाप से मुक्त नहीं हो सकते हैं। शारीरिक अपूर्णता भी ऐसी सामाजिक समस्या बन गई है जिसे पूरा समाज परेशान है, क्योंकि इस समस्या से आए-दिन कई दंपती विलग होते रहते हैं। कई आत्महत्या कर लेते है। शिक्षितवर्ग की बुद्धि भी इस समस्या को लेकर भ्रष्ट हो गई। समाज में उसको घृणा की दृष्टि से देखा जाता और तरह-तरह की उलाहने देकर नारी का जीवन सूना बना देते हैं। इस विवाद को सहते-सहते वह पागलों की भाँति स्वप्नों को भी साकार मानने लगती है। अमृता प्रीतम की कहानी 'सिर्फ औरत' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है–'स्वप्न में मैं पौधों में पानी दे रही होती थी और एक बच्चे का चेहरा खिल उठता था.... जब मैं जाग जाती थी, मैं वैसी ही होती थी, सूनी, वीरान और अकेली एक 'सिर्फ औरत', जो अगर माँ नहीं बन सकती थी, तो जीना नहीं चाहती थी।' (पृ॰ 11 : सिर्फ औरत : पंजाबी कहानी) बाँझ सिर्फ औरत, एक माँ सिर्फ औरत, सुहागन सिर्फ औरत, केवल एक साहित्यकार ही उसकी जगह रिक्त कर देता है। उपर्युक्त समस्या एकल परिवार की अपेक्षा संयुक्त परिवार की बाँझ औरत को न के बराबर प्रभावित करती है, क्योंकि

साँझे में उसको अपने-पराए का बोध ही नहीं रहता है। किसी करीबी रिश्ते के बच्चे के मुँह से छोटी माँ, बड़ी माँ संबोधन सुनकर कभी अपना जीवन सूना, वीरान एवं अकेला महसूस नहीं होता है–'कम्मो का विचार था कि गोद लेने से एक की, न लेने से सबकी मैं बड़ी माँ हूँ।.. ...उसके पति भी तो उससे बच्चे की तरह ही लाड़-प्यार करते थे।' (पृ॰ 38 कहानी : किस्मत का खेल) बाँझ होना नारी-पुरुष के लिए कोई बड़ी समस्या नहीं है, अगर दोनों इस बात को समझ लें कि दंपती का रिश्ता...एक ऐसा रिश्ता है, जिसको बाँझपन क्या कोई भी अलग नहीं कर सकता, पर दोनों अगर ऊँची सोच वाले हों। मन्नू भंडारी ने भी अपनी कहानी 'ऊँचाई' में यही माना है कि जिस 'ऊँचाई' पर पत्नी होती है, उस ऊँचाई को प्रेमिका भी छू नहीं सकती है।

पुराने ज़माने में संयुक्त परिवार के बच्चे 'आपस में लड़ें-मरें, पर मजाल है, बच्चों की माएँ, अपना-पराया समझकर डाँट-डपट करें।' (पृ॰ 37 : किस्मत का खेल) परिणाम यह था कि बाँझ को बाँझ होने का आभास नहीं होता था। आज तो एकल परिवार ने बाँझपन की जड़ें मजबूत की हैं, दो ही लोग (पति-पत्नी) होने के कारण बच्चे के आभाव में अपना अकेलापन दूर करने के लिए तलाक लेते हैं, जिससे तलाक की संख्या बढ़ी रही है। अशिक्षित वर्ग की अपेक्षा शिक्षित वर्ग की सोच इस समस्या को लेकर अधिक ही संकीर्ण है, जबकि यह सारा किया-कराया भाग्यविधाता का ही है।

आधुनिक सुविधाओं के प्रसार से आजकल युवक-युवतियाँ बहुत ज़िद्दी हो रहे हैं। इनको अपने बड़ों से ज़रा भी भय नहीं लगता और न ही माँ-बाप अपने पुत्र-पत्री को इस प्रकार के संस्कार देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं–'सब लड़कियों की नाक बिंधी पर छूटना के सामने किसी की न चली। उसे नहीं बिंधवानी थी, उसने नहीं बिंधवाई।' रमा चुप रह गई, कुछ न बोल पाई। (पृ॰ 39, किस्मत का खेल : प्रेम जैन)

'सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री-चेतना ने ही 'स्त्री-विमर्श' को जन्म दिया है। 'स्त्री-विमर्श और कुछ नहीं आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता और सम्मानाधिकारी की पहल का दूसरा नाम है।' (डॉ॰ अर्जुन चव्हाणन, विमर्श के विविध आयाम, पृ॰ 29)

इक्कीसवीं सदी को नारी सशक्तीकरण का युग कहा जाता है। नारी को अबला नहीं, अब सबला कहा जाता है। परंपरागत मान्यताएँ एवं रूढ़ियों, पुरुष प्रधान समाज में होने वाले अन्यायों और अत्याचार आदि के विरुद्ध आज भी नारी कदम उठाने का साहस नहीं करती। मारवाड़ी परिवारों में वही परंपरा अभी भी बनी है, जो आज से सदियों पुरानी व्यवस्था थी–'मर्दों के बाद बड़ी माँ व बड़ी बहुएँ खाना खाती हैं, फिर छोटियों की बारी आती है। जब पटेर पर बैठती हैं, तब भी अपनी-अपनी पदवी के अनुसार। हर छोटी-बड़ी बातों के लिए पैर छूने व पैरों पड़ने का चयन तो है ही, चूड़ियाँ पहनीं तो सास दादस के पैर छूना, मेहँदी लगाई या और कोई ऐसी सी बात तो बड़ों का आशीर्वाद लेना अनिवार्य था।' (किस्मत का खेल, प्रेम जैन, पृ॰ 37)

नारी सशक्तीकरण से ही नारी में आत्मशक्ति उत्पन्न हुई है। 'मधु अब भी सोच रही है' कहानी में लेखिका आशारानी ब्होरा ने राज नायक के द्वारा समाज के सामने इस बात को प्रस्तुत किया है कि इक्कीसवीं सदी के पढ़े लिखे स्त्री-पुरुष को इस बात की पूरी स्वतंत्रता मिली है

कि वह निजी विचार रखे और उन्हें अमल में लाने के लिए भरपूर प्रयास करे....चाहे उसके पति को ज़िंदगी से हाथ ही क्यों न धोना पड़े, पर वह प्रेमी के स्वप्नों में ही खोयी रहती है–'राज की प्रतीक्षा करते हुए। चाय बनाते हुए। न जाने क्या सोचती जा रही है।' (पृ॰ 44) रिश्ते ऐसे मूल्यहीन हो रहे हैं कि पति-पत्नी प्रत्यक्ष होकर भी परोक्ष होते हैं, क्योंकि मन की दरारों से ही सतत अंतर्द्वंद्व में जी रहे हैं। बहिरूप से पुष्ट दिखनेवाले कुछ पुरुष यथार्थ में आंतरिक रूप से उतने ही पीड़ित होते हैं, जितनी एक नारी। पुरुष का अंतर्मन भी दुख, दर्द या संत्रास का शिकार होता है। चाहे वह पिता, पति, भाई या पुत्र के रूप में हो। कोई पुरुष प्रेमिका की मार से पीड़ित है, कोई आर्थिक विषमता के कारण, कोई अपनी पत्नी से पीड़ित है–'काश, राज ने अपने पर ज़ोर डाल-डालकर अपना दिल 'बड़ा' करने का प्रयत्न न किया होता। पर अब इस अंतिम समय में वह उसे दिल छोटा करने के लिए भी कैसे कहे।' 'हार्ट-एनलार्जमेंट.....फिर 'सीरियस हार्ट एनलार्जमेंट'..... ओफ्फ। कभी इस बीमारी का नाम भी सुना था पहले। (पृ॰ 47 : मधु जब भी सोच रही है : आशारानी ब्होरा)

पुरानी कहानियों में अधिकांशत: नारी का चरित्रांकन पुरुष की दमित आकांक्षाओं से प्रेरित होकर किया गया है, जिसमें नारी के सच्चे स्वरूप एवं यथार्थता को ध्यान में कम ही रखा जाता था, किंतु आज कहानी में नारी का चित्रण यथार्थ रुप में किया जाता है। स्वतंत्र व्यक्तित्व तथा दंपती के आपसी संबंधों के बीच द्वंद्व का सफल चित्रांकन होता है।

भारतीय समाज में परंपरागत मूल्यों का विघटन हो रहा है किंतु मारवाड़ी परिवारों में कहीं-कहीं पर अभी भी वह मूल्य सुरक्षित है, जिसको डॉ॰ सिंधु भिंगारकर ने अपनी कहानी में सफलतापूर्वक दिखाया है। पद्मा सचदेव तो अतीत के सहारे ही वर्तमान जी लेती हैं। ज़मीदारी, तवी से औरतों का सुबह उठके मटके में पानी लाना, चूल्हा जलाना आदि परंपराओं को याद करते हुए वह अपने 'कथासाहित्य' का ढाँचा तैयार करती हैं। किसी भी भाषा, किसी भी क्षेत्र की लेखिका या लेखक क्यों न हो 'दर्द' एक जैसे ही हैं और एक ही समाज की हम विभिन्न शाखाएँ हैं। विषय अलग-अलग होने के बावजूद कहीं-कहीं एक जैसे ही लगते हैं, क्योंकि चाहे वह सामाजिक समस्या हो या आर्थिक, धार्मिक हो राजनीतिक, नारी पीड़ा हो, नवीन मूल्यों का पर्दाफ़ाश आदि केवल भारतीय समाज की समस्या न होकर, पूरे विश्व की है।

कहीं-कहीं वर्गसंघर्ष या परिवारों में संकीर्णता है, उसमें बदलाव लाना बहुत ही अनिवार्य है, क्योंकि जिनको हम नौकर समझकर दोयम दर्जा देते हैं, वह सरासर ग़लत है। अमीर अगर उन्नति कर रहा है तो उसका हकदार नौकर भी है, किंतु कुछ परिवारों में अभी भी मान्यताएँ हैं कि नौकर-चाकरों की दृष्टि पड़ने से दही कम पड़ती है–'सवेरे बड़ी माँ (लालाजी की पत्नी) का समय तो दही बिलोने में ही लग जाता था, क्योंकि यह काम नौकरों पर छोड़ने से घर में बरकत नहीं आती (पृ॰ 37, किस्मत का खेल : प्रेम जैन)

शिल्प की दृष्टि से ये कहानियाँ नवीनता लिए हुए हैं और नए प्रयोग भी किए हैं। छोटे और बड़े-बड़े संवादों से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। कहीं-कहीं इनकी आंचलिकता भी प्रकट होती है–'यह झगड़ा थारे घर का है.....अपनी लाड़ली ने सँभालो, समझाओ या फिर डॉक्टर ने यहाँ से हटाओ। अगर कुछ न कर पाओ तो कर दो छोरी के हाथ पीले'... मारवाड़ी भाषा। (किस्मत का खेल, पृ॰ 38)

अत: नई कहानी की भाषा एवं शिल्प में जो परिवर्तन आए हैं, उनका प्रभाव इन कहानी लेखिकाओं में भी परिलक्षित हुआ है, इनकी कहानियों में अपने ग्रामीण अंचल की भाषा की सुगंध और आम जीवन का संस्पर्श है। इन्होंने कथ्य के अनुरूप ही शिल्प का भी प्रयोग किया है।

वास्तव में साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है। भारतीय समाज ने परिवर्तन के जितने सोपान पार किए, उस हर सोपान पर उपर्युक्त समस्याएँ विद्यमान रहीं। चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हों। सभ्यता के विकास में दिन-प्रतिदिन मान्यताएँ बदलती जाती हैं, किंतु आज वे कोई दूसरा रूप लेकर हमारे सामने कहीं न कहीं विद्यमान हैं, क्योंकि भारतीय समाज-व्यवस्था और धर्म-व्यवस्था सामाजिक समस्याओं का पोषण करती आई है। यही कारण ही कि कहीं-कहीं लेखिकाएँ सामाजिक मान्यताओं की ज़बरदस्त समर्थक भी दिखाई देती हैं।

अगर इन कहानियों में कुछ कमी भी रही होगी, तो भी हमें मानना पड़ेगा कि उपर्युक्त कहानियाँ अपने समय की चर्चित कहानियाँ रही हैं, भले ही इन समस्याओं का समाधान न दे पाएँ, लेकिन समस्याओं के मूल स्रोत को उन्होंने समाज-व्यवस्था में अवश्य ढूँढकर पाठक के समक्ष रखा है, ताकि पाठक, जो समाज का विशेष अंग है, इन समस्याओं को किसी हद तक रोक पाए और क्रांतिकारी रूप में समाज के सामने आए।

संदर्भ ग्रंथ

1. उपन्यासकार राजेंद्र यादव (समाजशास्त्रीय अध्ययन) डॉ अजमेरसिंह काजल
2. पेंशन (कहानी) पद्मा सचदेव (मूल डोगरी एवं हिंदी लेखिका)
3. जीत या हाल : डॉ॰ सिंधु भिंगारकर 'सरिता' (मूल : मराठी कहानी)
4. किस्मत का खेल : प्रेम जैन (मूल मारवाड़ी कहानी)
5. सिर्फ़ औरत : अमृता प्रीतम (पंजाबी कहानी)
6. विमर्श के विविध आयाम : डॉ॰ अर्जुन चव्हाण, वाणी प्रकाशन, 2008
7. मधु अब भी सोच रही है : आशारानी ब्होरा

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

- **निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

ग़ज़ल और उसका व्याकरण	250.00

- **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल**

हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1	495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2	700.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00
शोध अंक भाग-1	100.00
शोध अंक भाग-2	100.00
शोध अंक भाग-3	100.00
शोध अंक भाग-4	100.00
शोध अंक भाग-5	100.00
शोध अंक भाग-6	100.00
शोध अंक भाग-7	100.00
शोध अंक भाग-8	100.00
शोध अंक भाग-9	100.00
शोध अंक भाग-10	100.00
शोध अंक भाग-11	100.00
शोध अंक भाग-12	100.00
शोध अंक भाग-13	100.00
शोध अंक भाग-14	100.00
शोध अंक भाग-15	100.00
शोध अंक भाग-16	100.00
शोध अंक भाग-17	150.00
शोध अंक भाग-18	200.00

शोध अंक भाग-19	200.00
शोध अंक भाग-20	200.00
शोध अंक भाग-21	200.00
शोध अंक भाग-22	200.00
शोध अंक भाग-23	200.00
शोध अंक भाग-24	200.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	500.00
सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	200.00
डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • **डॉ॰ अंजु भटनागर**	500.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • **डॉ॰ ज्योति सिंह**	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • **डॉ॰ ज्योति सिंह**	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • **डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी**	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ मनोजकुमार**	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • **डॉ॰ दीपा के॰**	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)• **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	450.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	350.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • **डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी**	450.00
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • **डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा**	350.00
एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • **अनिरुद्ध सिन्हा**	150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • **डॉ॰ ज्योति व्यास**	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • **डॉ॰ अशोककुमार**	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित**	300.00
साहित्य और संस्कृति • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित**	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • **डॉ॰ आशा रावत**	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • **डॉ॰ प्रेम जनमेजय**	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • **विनोदचंद्र पांडेय**	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान • **डॉ॰ स्वाति शर्मा**	450.00

वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • **डॉ॰ शुचि गुप्ता**	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • **डॉ॰ शिवशंकर लधवे**	200.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • **डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन**	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • **अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात**	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • **रवींद्र प्रभात**	300.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • **डॉ॰ मीनल रश्मि**	250.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • **नवलकिशोर शर्मा**	150.00
हिंदी सिनेमा में दांपत्य-संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	450.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (गीत खंड) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दोहा खंड) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
अमरकांत का कथासाहित्य • **डॉ॰ योगेश पाटिल**	450.00
नारी-समस्याओं का समाजशस्त्रीय अध्ययन • **डॉ॰ अनुभूति भटनागर**	450.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
बाबू झोलानाथ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
भज्जी का जूता • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
क्लियर फंडा • **महेशचंद्र द्विवेदी**	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • **काका हाथरसी**	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • **काका हाथरसी**	200.00
कक्के के छक्के • **काका हाथरसी**	200.00
लूटनीति मंथन करी • **काका हाथरसी**	200.00
खिलखिलाहट • **काका हाथरसी**	200.00
वसीयतनामा • **पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास**	150.00
पैसे कहाँ से दें • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • **डॉ॰ आशा रावत**	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • **महेश राजा**	150.00

ए जी सुनिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
चुटपुटकुले • **अशोक चक्रधर**	60.00
तमाशा • **अशोक चक्रधर**	60.00
सो तो है • **अशोक चक्रधर**	60.00
हँसो और मर जाओ • **अशोक चक्रधर**	60.00
नमस्ते जी • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
अब हँसने की बारी है • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
अजगर करे न चाकरी • **बाबूसिंह चौहान**	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • **गोपाल चतुर्वेदी**	150.00
सच का सामना • **हरीशकुमार सिंह**	150.00
• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	65.00
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • **डॉ॰ शिव शर्मा**	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
अपने-अपने भस्मासुर • **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • **दामोदरदत्त दीक्षित**	100.00
धमकीबाषी के युग में • **निश्तर ख़ानक़ाही**	60.00
नो टेंशन • **डॉ॰ सुरेश अवस्थी**	170.00
ला ख़र्चा निकाल • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
जलनेवाले जला करें • **गजेंद्र तिवारी**	60.00
ये है इंडिया • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	120.00
आँखों देखा हाल • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	150.00
लिफ़्ट करा दे • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	200.00

देवेंद्र के कार्टून • **देवेंद्र शर्मा** 80.00
कार्टून कौतुक • **देवेंद्र शर्मा** 120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र • **डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा** 120.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • **सूर्यकुमार पांडेय** 100.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • **डॉ॰ आश रावत** 200.00
एक थी माया • **विजयकुमार** 200.00
सरहदों के पार • **सुरेशचंद्र शुक्ल** 200.00
छोटे-छोटे सुख • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
कथा जारी है • **बाबूसिंह चौहान** 150.00
इक्कीस कहानियाँ • **सत्यराज** 100.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 150.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • **डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी** 200.00
एक बौना मानव • **महेशचंद्र द्विवेदी** 100.00
लव जिहाद • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
हैं आस्माँ कई और भी • **नीरजा द्विवेदी** 200.00
कौन कितना निकट • **रेणु 'राजवंशी' गुप्ता** 120.00
लघु कथाएँ • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा** 150.00
कमरा नंबर 103 • **सुधा ओम ढींगरा** 150.00
इमराना हाज़िर हो • **महेशचंद्र द्विवेदी** 150.00
कहानियाँ अमेरिका से • **सं॰ इला प्रसाद** 150.00
कुत्तेवाले पापा • **मीना अग्रवाल** 150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका** 150.00
लघुकथाएँ मानव-जीवन की • **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'** 150.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ • **राजेन्द्र मिश्र** 450.00
अनोखा उपहार • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
आसरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 100.00
तीन बीघा ज़मीन • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
मन के जीते जीत • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
कालचक्र से परे • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी** 200.00
भीगे पंख • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
मानिला की योगिनी • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
और लहरें उफनती रहीं • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध** 200.00

बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) ● **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
अराज-राज ● **डॉ॰ मोहन गुप्त**	200.00
सुराज-राज ● **डॉ॰ मोहन गुप्त**	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी ● **डॉ॰ आशा रावत**	150.00
एक चेहरे की कहानी ● **डॉ॰ आशा रावत**	150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) ● **डॉ॰ आशा रावत**	100.00
इतिहास की आवाज़ ● **डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र**	450.00

एकांकी-नाटक

● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
बच्चों के अनोखे नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला ● **बाबूसिंह चौहान**	150.00
ग्यारह एकांकी ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
दमन ● **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष ● **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	150.00
अफलातून की अकादमी ● **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले ● **निश्तर ख़ानक़ाही**	125.00
यादों का मधुबन ● **कृष्ण राघव**	150.00
समय के चाक पर ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	125.00
समय एक नाटक ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	160.00
दर्पण झूठ बोलता है ● **बाबूसिंह चौहान**	60.00

मकड़जाल में आदमी • **बाबूसिंह चौहान**	80.00
उफनती नदियों के सामने • **बाबूसिंह चौहान**	100.00
पीठ पर नील गगन • **बाबूसिंह चौहान**	100.00
इन दिनों समर में (प्रकाशनाधीन) • **डॉ॰ कृष्णकुमार रत्तू**	250.00
अनुभव के पंख • **चंद्रवीरसिंह गहलौत**	250.00

गीत-ग़ज़ल

निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	500.000
ग़षल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	80.00
ग़षलों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	150.00
कोई आवाष देता है • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	150.00
दिन दिवंगत हुए • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मातृभूमि के लिए • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	200.00
संघर्ष जारी है • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	170.00
जीवन-पथ में • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
देश हम जलने न देंगे • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
उजियारा आशाओं का • **तारा प्रकाश**	150.00
बुलंदी इरादों की • **तारा प्रकाश**	150.00
चलने से मंषिल मिलती है • **तारा प्रकाश**	200.00
इंद्रधनुष • **तारा प्रकाश**	200.00
संवेदनाओं के रंग • **तारा प्रकाश**	200.00

तारा प्रकाश समग्र • **तारा प्रकाश**	600.00
शमा हर रंग में जलती है • **रामेश्वरप्रसाद**	150.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) • **रामगोपाल भारतीय**	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) • **आर्यभूषण गर्ग**	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
ज़िंदगी गाती तो है/(ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	100.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	100.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	150.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
सुरों के ख़त • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनाते हुए ऋतुगीत • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सुबह की अंगूठी • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	150.00
अग्निसुता • **राजेंद्र शर्मा**	150.00
सीतायनी • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
एक मुट्ठी धूप • **नीरजा सिंह**	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर • **डॉ॰ कमल मुसद्दी**	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00

सुख के बिरवे रोप (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
अनजाने आकाश में • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
बातें कुछ अनकही • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
मैंने देखा है • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
हौसला तो है • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
षिंदगी रुकती नहीं • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
जष्बात की धूप • **धूप धौलपुरी**	250.00
मैं एक समुद्र • **डॉ॰ तारादत्त 'निर्विरोध**	200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ • **नवलकिशोर शर्मा**	180.00
जब चाँद डूब रहा था • **नवलकिशोर शर्मा**	200.00
एड्स शतक • **पूरणसिंह सैनी**	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) • **पूरणसिंह सैनी**	300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
राष्ट्र-शक्ति • **सलेकचंद संगल**	150.00
माँ तुझे प्रणाम • **सलेकचंद संगल**	150.00
लहरों के विरुद्ध • **डॉ॰ रामप्रकाश**	200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता • **महेंद्र कुमार**	200.00
समय के भूगोल में • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
असाबिया • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
पीड़ा का राजमहल • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	200.00
उड़ान जारी है • **विनोद भृंग**	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • **रामेश्वर वैष्णव**	150.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) • **हरिराम पथिक**	200.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग एक) • **सं॰ डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग दो) • **सं॰ डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00

मान भी जा छुटकी • **गीतिका गोयल** 150.00
धनुषभंजक राम • **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'** 200.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन • **काका हाथरसी** 300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेन्द्र उपाध्याय** 250.00
आत्मसरोवर • **ओम्प्रकाश अग्रवाल** 125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु • **नीरजा द्विवेदी** 200.00
सफ़र साठ साल का • **डॉ॰ अजय जनमेजय (सं)** 400.00
यादों की गुल्लक • **गीतिका गोयल, डॉ॰ अनुभूति (संपादक)** 300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 150.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी** 250.00
संवाद : साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'** 200.00
उत्तरोत्तर • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)** 250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • **शंभूनाथ तिवारी** 150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • **विनोद भृंग** 150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) • **बालकृष्ण गर्ग** 150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • **गीतिका गोयल** 150.00
किशोर मन की कहानियाँ • **डॉ॰ सरला अग्रवाल** 150.00
चलो आकाश को छू लें • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध** 200.00
मानव-विकास की कहानी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
पार्टी गेम्स • **चाँदनी कक्कड़** 125.00
कागज की नाव • **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ** 150.00
गधा बत्तीसी • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00

विविध

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • **नवलकिशोर शर्मा** 150.00
उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन • **डॉ॰ सरिता शाह** 200.00
• **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 300.00

नारी : कल और आज	300.00
• **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	125.00
हिंसा : कैसी-कैसी	200.00
• **रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन • **डॉ॰ गिरिराज शाह**	200.00
गुरु नानकदेव • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
वेद-वेदान्त दर्शन • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
कन्हैया गीता • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स • **डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर**	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी • **मनोज भारद्वाज**	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी • **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas • **Dr.Vikram Singh IPS**	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232, 0124-4076565

07838090732